GL H 385.0954
BHA

122095
LBSNAA

लाल बहादुर श[illegible] अकादमी
L.B.S. National Academy of Administration

मसूरी
MUSSOORIE

पुस्तकालय
LIBRARY

अवाप्ति संख्या
Accession No. ~~4068~~ 122095

वर्ग संख्या
Class No. GL H 385·0954

पुस्तक संख्या
Book No. BHA भारती

भारतीय रेल

के

एक सौ वर्ष

1853–1953

नयी दिल्ली

रेलवे मंत्रालय (रेलवे बोर्ड)

भारत सरकार

1953

PRB. 125(N)
500

लेखक

जे० एन० साहनी

यह पुस्तक रेलवे मंत्रालय से प्राप्त रेल के निर्माण और उसके संचालन-सम्बन्धी तथ्यों और दूसरे ब्यौरों के आधार पर लिखी गयी है। साथ ही पूरक रूप में कुछ उन तथ्यों का भी समावेश इसमें हुआ है जिन्हें लेखक, श्री साहनी, ने दूसरे साधनों से तथा प्रमुख रेलवे-केन्द्रों में जाकर इकट्ठा किया। पुस्तक में जो विचार प्रतिपादित किये गये हैं, वे अनिवार्यतः रेलवे मंत्रालय के विचार नहीं हैं।

मैनेजर, एलबियन प्रेस, कश्मीरी गेट, दिल्ली द्वारा मुद्रित।

दो शब्द

भारतीय रेल अपने कार्य और विस्तार के एक सौ वर्ष 16 अप्रैल 1953 को पूरा कर लेगी। कार्य-काल की इस पिछली सदी में, रेलों ने देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक जीवन में विशेषरूप से हाथ बँटाया है। रेलों के बन जाने से दूर-दूर जगहों में आना-जाना सुलभ हो गया है। देश और विदेश के खपत-केन्द्र जो पहले उत्पादकों से बहुत दूर और उनकी पहुँच के बाहर थे, रेल-द्वारा अब उनके निकट सम्पर्क में आ गये हैं। रेलों ने विशिष्ट उत्पादन-प्रणाली और देश में बड़े-बड़े उद्योग-धन्धों के क्रमिक विकास में भी हाथ बँटाया है। इस तरह भारतीय रेल राष्ट्र के पिछले सौ वर्षों के आर्थिक विकास का लघु रूप है।

इस पुस्तक से पाठक को भारत के रेल-निर्माण की जानकारी आरंभ से होगी। रेल का विस्तार और विकास कब और कैसे हुआ, कौन कौन सी समस्याएँ और कठिनाइयाँ सामने आयीं और अन्त में किस तरह भारतीय रेल देश के सबसे बड़े राष्ट्रीयकृत संगठन के रूप में हमारे सामने आयी, आदि बातें सबकी समझ में आ जानेवाली शैली में बतायी गयी हैं। रेलों के अनेक प्रकार के काम करने के ढंग विस्तार से बताये गये हैं। इन सब बातों से भारतीय रेल का इतिहास बहुत कुछ दिलचस्प हो जाता है।

अपने इतिहास की दूसरी सदी में पैर रखते ही भारतीय रेलें देश की एक महत्वपूर्ण योजना को सफल बनाने में लगी हुई हैं। वह है पंचसाला योजना जो देश को अन्न की दृष्टि से स्वावलम्बी बनाने, औद्योगिक विकास की प्रगति और दूसरे क्षेत्रों में सर्वमुखी आर्थिक विकास के उद्देश्य से बनायी गयी है। दूसरे देशों की तरह यहाँ के जलमार्गों और सड़कों का ठीक ठीक विकास न होने के कारण भारतीय रेल अभी वर्षों तक यहाँ के यातायात का सबसे प्रमुख साधन बनी रहेगी। आगे चलकर उस पर नयी जिम्मेदारियाँ आने वाली हैं जिन्हें निभाने के लिए पहले की अपेक्षा उस पर अधिक भार पड़ेगा। स्वतंत्रता के बाद रेलों में जो कुछ काम हुआ है और सफलताएँ मिली हैं, उनसे मुझे आशा है कि रेलें देश की और भी अच्छी सेवा कर सकेंगी। मैं विश्वास के साथ कह सकता हूं कि देश की आनेवाली आर्थिक उन्नति में उनका भाग पहले से कहीं अधिक होगा।

आवश्यकता इस बात की है कि देश की आर्थिक उन्नति से सम्बन्धित ऐसे महत्वपूर्ण राष्ट्रीय आयोजन की सारी बातें अधिक से अधिक लोगों को ठीक-ठीक बतायी और समझायी जायँ। अतएव, मुझे आशा है कि देश तथा विदेश के सब तरह के लोग, जो भारतीय रेल के इतिहास, उसकी प्रगति तथा वर्तमान कार्य-प्रणाली में दिलचस्पी रखते हैं, इस पुस्तक को बड़े ध्यान और रुचि से पढ़ेंगे।

नयी दिल्ली
25 मार्च 1953.

(लाल बहादुर)
रेल और परिवहन मंत्री,
भारत सरकार।

विषय-सूची

परिशिष्ट

1. प्रारम्भ

आज रेल हमारे लिए आश्चर्य की वस्तु नहीं रह गयी है। हमारे जीवन में उसका प्रायः वही स्थान हो चला है जो पहाड़, नदी, झील, जंगल और दैनिक जीवन के दूसरे स्थायी अंगों का। जब हम उस समय पर दृष्टि डालते हैं जब रेलें नहीं थीं, तो हमारे सामने मानव जीवन की प्रारंभिक अवस्था का चित्र खिंच जाता है। इस बात का विश्वास करना कठिन हो जाता है कि 1825 ई० से पहले संसार के किसी भाग में आज जैसी रेलें न थीं और हमारे लिए घोड़े की सवारी से अधिक तेज चाल का कोई दूसरा साधन न था।

प्राचीन फारस के सन्देश वाहकों के बारे में हेरेडोटस ने कहा था कि इन सन्देश-वाहकों के समान तेज चलनेवाला संसार में कोई दूसरा नहीं है। रेल-युग के प्रारम्भ से पहले, चाल में घोड़ा ही सर्वप्रथम था। आज संसार में फैली हुई रेल की लाइनों की लम्बाई लगभग 770,000 मील से भी अधिक है और यह संसार की परिधि का तीस गुना है। बहुत सी लाइनें दोहरी हैं। संसार के रेल-पथ की कुल लम्बाई इतनी है कि उससे भूमध्य रेखा के समानान्तर 35 लाइनें खींची जा सकती हैं। संसार की रेलें प्रतिवर्ष 62,000 लाख मील की दूरी तय करती हैं जो सूर्य से लेकर सौर-मण्डल के दूरतम ग्रह, यम, तक यात्रा करने और वापस आने के बराबर है। 10 मील प्रतिघण्टा की चाल से आरम्भ होकर आज रेलें घण्टे में 112.5 मील की दूरी तय करती हैं। एक बार तो एक रेलगाड़ी ने 43 मील की दूरी को 100 मील प्रतिघंटा की औसत चाल से तय किया था।

भारतीय रेलें

भारत में रेल-पथ की लम्बाई 34,000 मील है। इसके बहुत बड़े भाग पर दोहरी लाइनें बिछायी गयी हैं। भारतीय रेलों पर 862 करोड़ रुपये की पूंजी लगी हुई है। 1951-52 में रेल की कुल आमदनी 294 करोड़ रुपये थी जबकि संचालन-व्यय 228 करोड़ रुपये था। वर्ष के भीतर रेलों ने 1880 लाख मील की दूरी तय की जो सूर्य और मंगल के बीच की दूरी से 140 लाख मील अधिक है। उसी वर्ष रेलों ने 980 लाख टन माल और 12320 लाख यात्री ढोया; उनमें 108 लाख टन कोयले की खपत हुई जिसकी लागत 30.4 करोड़ रुपये थी।

आधुनिक रेल-व्यवस्था असाधारण प्रशासन-क्षमता, शिल्पिक ज्ञान, व्यवसायिक उपक्रम और साधन-सम्पन्नता का संगठित रूप है। रेल संसार के विशिष्ट व्यवसायों में से एक है। रेल-पथ, पुल-पुलिया, सुरंग, स्टेशन, डिब्बों के यार्ड, लादघर, सिगनल, भाप, डीजल और

बिजली के इंजन, सवारी और माल के डिब्बे, रेल-मोटर, स्टीमर, टेलीफोन, तार और बेतार के सामान, बिजलीघर, कारखाने, छापाखाने, कोयले की खान, होटल, भोजनालय, अस्पताल, गोदाम, समुद्री सामानघर आदि आधुनिक रेल-व्यवस्था के कुछ प्रमुख अंग हैं।

सौ वर्ष पहले

16 अप्रैल 1853 को, सौ वर्ष पहले, बम्बई और थाना के बीच 21 मील लम्बी लाइन पर पहली रेलगाड़ी चली। यह ऐतिहासिक घटना थी। बम्बई को रेल द्वारा थाना, कल्याण तथा थालघाट और भोरघाट की तलहटी के मैदान से मिलाने की बात सबसे पहले बम्बई सरकार के चीफ इन्जीनियर, श्री जार्ज क्लार्क को सूझी। यह विचार उनके मन में उस समय आया जब 1843 में वह भांडुप दौरे पर गये थे। 13 जुलाई 1844 को बम्बई के चीफ जस्टिस, सर अर्सकिन पेरी की अध्यक्षता में बम्बई के प्रमुख नागरिकों की बैठक बुलायी गयी जिसमें 'बम्बई ग्रेट ईस्टर्न रेलवे' नाम पर श्री क्लार्क की योजना के अनुसार, सालसिट होकर बम्बई और थालघाट-भोरघाट के बीच रेल की लाइन निकालने के प्रश्न पर विचार हुआ।

इसी बीच श्री जार्ज क्लार्क ने कुर्ला और थाना के बीच रेल की सविस्तार योजना तैयार की। एक विशेष समिति ने इस योजना की जाँच की। बम्बई के चीफ़ सेक्रेटरी, श्री हेनरी कानी वेयर इस समिति के प्रधान थे। 19 अप्रैल 1845 को कर्नल जी. आर. जर्विस की अध्यक्षता में बम्बई के नागरिकों की एक बैठक हुई जिसमें यह योजना स्वीकार कर ली गयी और इसे कार्यान्वित करने के लिए एक समिति भी बनायी गयी।

इसी समय लन्दन में जी. आई. पी. रेलवे कम्पनी की स्थापना हुई। 15 जुलाई 1844 को इस कम्पनी की नियमावली प्रकाशित की गयी। कम्पनी के कुछ भारतीय संचालक भी नियुक्त किये गये जिनमें सर जमसेत जी जीजी भाई भी थे। इनके एक हस्तलेख से मालूम होता है कि रेल-इंजिन के आविष्कर्ता, जार्ज स्टीफ़ेन्सन (1781-1848) भी इस कम्पनी के एक संचालक थे। उनके पुत्र राबर्ट स्टीफेन्सन (1803-59) जी. आई. पी. रेलवे कम्पनी के सलाहकार इन्जीनियर नियुक्त हुए। कुछ समय बाद बम्बई के कुछ प्रभावशाली व्यक्तियों की एक समिति बनायी गयी जिसका काम यह था कि लन्दन समिति के सहयोग से इस योजना को कार्यान्वित करे। 17 अगस्त 1849 को जी. आई. पी. रेलवे कम्पनी और ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालक-मण्डल के बीच संविदा हुआ और रेलवे कम्पनी ने 5 लाख पौण्ड पूँजी इकट्ठा करने के लिए कम्पनी से प्रार्थना की। 14 नवम्बर 1849 को श्री जे० जे० वर्कले भारत में जी. आई. पी. कम्पनी के आवासी इन्जीनियर नियुक्त हुए। फरवरी 1850 में वह भारत आये और लगभग एक साल तक लाइन की जाँच-पड़ताल में लगे रहे।

कार्य आरंभ

श्री वर्कले के भारत आने के बाद काम तेजी के साथ आगे बढ़ा। 31 अक्टूबर

1850 को बम्बई और कल्याण के बीच रेलवे लाइन पर काम आरंभ होने का समारोह सिग्रन नामक स्थान के निकट मनाया गया। समारोह का उद्घाटन बम्बई के चीफ जस्टिस, श्री जे. पी. विलोबी ने किया; उत्सव में बम्बई के प्रमुख नागरिकों ने भाग लिया। रेलवे लाइन बनाने का, यह भारत में ही नहीं, मध्यपूर्व और सुदूरपूर्व में भी, पहला समारोह था। 1851 में बम्बई से थाना तक लाइन बनाने का ठेका फरेल और फाउलर नाम की एक अंग्रेजी व्यवसाय-संस्था को दिया गया। इसने लाइन पर काम के लिए दस हजार मजदूर लगाये।

18 फरवरी 1852 को बाईकुला के निकट बम्बई में पहला रेलवे इंजन डिब्बे काटते-जोड़ते देखा गया। "शंटिंग" का यह स्थान स्त्री, पुरुष और बच्चों के लिए मेला बन गया और प्रतिदिन वहाँ भीड़ इकट्ठा होने लगी। बाद को इस इंजन का नाम बम्बई के तत्कालीन गवर्नर, लार्ड फाकलैण्ड के नाम पर "फाकलैण्ड" रखा गया। 18 नवम्बर 1852 को कम्पनी के संचालक ने अपने कुछ मित्रों के साथ पहली रेलगाड़ी में बम्बई से थाना तक यात्रा की। 21 मील की यह दूरी 45 मिनट में तय की गयी। संचालक और उनकी मित्र-मण्डली ने कुर्ला सुरंग में जलपान किया। यह भारत की पहली रेलवे सुरंग थी।

पहली रेलगाड़ी

बम्बई-थाना लाइन का उद्घाटन समारोह 16 अप्रैल 1853 को हुआ। साढ़े तीन बजे दिन के समय भारी जनसमूह की हर्ष ध्वनि और 21 तोपों की सलामी के साथ 14 डिब्बों की गाड़ी 400 मेहमानों को लेकर बोरी बन्दर से रवाना हुई। गवर्नर का बैण्ड बज रहा था, किन्तु स्वयं गवर्नर महोदय समारोह में उपस्थित न थे। वह एक दिन पहले, इस ऐतिहासिक समारोह की विशेषता का ध्यान न रखते हुए, पहाड़ पर चले गये थे। इस दिन सरकारी कार्यालयों और बैंकों में छुट्टी थी। गाड़ी लगभग 4-45 पर थाना पहुँची। वहाँ मेहमानों के लिए खेमों में जलपान का प्रबन्ध था। मेजर स्वैनसन ने नयी कम्पनी और उसके चीफ़ इन्जीनियर, श्री बर्कले, की सफलता की कामना की। 17 अप्रैल 1853 को 7 बजे शाम को मेहमान बम्बई वापस आये। दूसरे दिन सर जमसेत जी जीजी भाई ने पूरी गाड़ी आरक्षित करायी और अपने कुछ कुटुम्बियों के साथ बम्बई से थाना गये और वापस आये।

एक वर्ष बाद यह लाइन कल्याण तक बढ़ायी गयी। बम्बई के गवर्नर, लार्ड एलिफिन्सटन, ने पहली मई 1854 को इसका उद्घाटन किया। उस समय इन्जीनियरिंग-क्षेत्र के विकास को देखते हुए कल्याण तक लाइन बढ़ाने का काम कठिन था और इसका पूरा होजाना बड़े महत्व की बात थी। इस रास्ते में नदी के मुहाने से लेकर मुख्य स्थल तक दोहरा पुल बनाने की आवश्यकता थी। इसके अतिरिक्त इस लाइन पर दो सुरंगें भी बनानी पड़ीं। सतारा के निकट सड़क पर एक छोटी सी सुरंग को छोड़ कर ये ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा बम्बई अहाते में पूरे किये गये पहले दो बड़े निर्माण-कार्य थे। इन सुरंगों पर प्रति मील 84000 रुपये खर्च हुए।

कल्याण से खोपोली तक की रेलवे लाइन 12 मई 1856 को, और खाण्डला-पूना लाइन 14 जून 1858 को यातायात के लिए खोली गयीं। इससे पहले खोपोली और खाण्डला के बीच पालकी, टट्टू या बैलगाड़ी के अतिरिक्त यातायात का कोई दूसरा साधन न था। यह लाइन 1862 में बन कर तैयार हो गयी। कसारा लाइन पहली जनवरी 1861 को खोली गयी। थालघाट-इगतपुरी लाइन का उद्घाटन गवर्नर, सर जान बार्टिल फ्रेयर, ने 30 दिसम्बर 1864 को किया। इस लाइन के बन जाने के बाद भारत में रेल-विकास का मार्ग खुल गया क्योंकि यह एक कठिन योजना थी।

हावड़ा से हुगली

हावड़ा से हुगली को पहली सवारी गाड़ी 15 अगस्त 1854 को रवाना हुई। ईस्ट इण्डियन रेलवे के 24 मील लम्बे इस टुकड़े के उद्घाटन के साथ देश के पूर्वी भाग में रेल-परिवहन का श्रीगणेश हुआ। श्री रोलैण्ड मेकडानल स्टीफेन्सन, जिन्होंने 1844 में लन्दन में ईस्ट इण्डियन रेलवे कम्पनी की स्थापना की, इस कम्पनी के पहले एजेन्ट बने। 1845-46 के जाड़े में उन्होंने कलकत्ता से लेकर दिल्ली तक लाइन बनाने की प्रारंभिक जांच की। लन्दन वापस जाकर उन्होंने ईस्ट इंडिया कम्पनी और संचालक-मण्डल के सामने अपना प्रस्ताव रखा। तीन साल के वाद-विवाद और विचार-विनिमय के बाद 'परीक्षण के रूप में' रानीगंज तक रेल की लाइन बनाने की स्वीकृति मिली। सन् 1850 में जब श्री स्टीफेन्सन भारत आये, तो उन्होंने कहा कि "सक्रियरूप से अभी तक योजना पर काम आरंभ नहीं हो सका है। पिछले तीन वर्ष का समय वाद-विवाद और बहुत सी बातों के स्पष्टीकरण में निकल गया है।"

कलकत्ता में रेल का 'उन्माद' 1845-46 से ही आरंभ हो गया था। गंगा के किनारे कलकत्ता से भगवानगोला तक रेल बनाने की एक योजना तैयार की गयी। 15 लाख पौण्ड की पूंजी से एक कम्पनी स्थापित हुई और उसकी शानदार नियमावली निकाली गयी। कम्पनी का नाम सेन्ट्रल बंगाल रेलवे कम्पनी रखा गया। कलकत्ता के बहुत से लोगों ने इसके हिस्से खरीदे। उस समय के एक समाचार पत्र की सूचना है कि संस्थापकों ने इस योजना का समारोह मनाया और टाउनहाल में शानदार दावत दी। किन्तु थोड़े ही दिनों के बाद कम्पनी के संस्थापक रुपय के साथ लुप्त हो गये।

दो दुर्घटनाएँ

मेकडानल्ड स्टीफेन्सन के प्रयत्नों के फलस्वरूप 1853 के अन्त तक पंडुआ तक (38 मील) रेल की लाइन बन कर तैयार हो गयी। किन्तु दो दुर्घटनाओं के कारण इस लाइन पर एक साल तक गाड़ी न चल सकी। जिस जहाज में नमूने के डिब्बे आ रहे थे, वह सैन्डहेड में डूब गया। दूसरा जहाज जिसमें पहला इंजन आ रहा था, गलती से आस्ट्रेलिया पहुँच गया। इसके अतिरिक्त चन्द्रनगर की सीमा के झगड़े में भी समय लगा। इस

फ़्रान्सीसी बस्ती की सीमा ठीक-ठीक निर्धारित न थी और कुछ समय के बाद मालूम हुआ कि लाइन चन्द्रनगर की सीमा में है। इस झगड़े के निबटारे तक लाइन बनाने का काम रुका रहा।

ईस्ट इन्डियन रेलवे के लोकोमोटिव चीफ़ इन्जीनियर, श्री जॉन हॉगसन को जब मालूम हुआ कि नमूने के डिब्ब नष्ट हो गये हैं, तो उन्होंने कलकत्ता में डिब्बे बनवाना आरम्भ किया। रेल का इंजन जो गलती से आस्ट्रेलिया भेज दिया गया था, 1854 में आस्ट्रेलिया होकर कलकत्ता पहुँचा। उसी वर्ष 28 जून को परीक्षार्थ वह इन्जन हावड़ा से पँडुआ तक चलाया गया। लाइन यातायात के लिए 15 अगस्त को हुगली तक, पहली सितम्बर 1854 को पंडुआ तक और प्रारम्भिक योजना के अनुसार 3 फरवरी 1855 को शनिवार के दिन रानीगंज तक खोली गयी।

1853 में कलकत्ता और हावड़ा के बीच आने-जाने का रास्ता केवल नाव से था। किन्तु कुछ वर्ष बाद जब हावड़ा का पुल बना, तो हावड़ा और कलकत्ता के बीच यातायात में बड़ी सुविधा हो गयी। उस समय हावड़ा एक छोटा सा स्थान था। आज जहाँ हावड़ा का रेलवे स्टेशन है, वहां उस समय रेल के गोदाम और कारखाने थे। स्टेशन की वर्तमान इमारत के स्थान पर एक 'शेड' बना हुआ था जिसकी एक खिड़की 'टिकटघर' का काम देती थी। सभी दर्जे के टिकट यहीं से दिये जाते थे।

हुगली यात्रा

हावड़ा और हुगली के बीच चलने वाली गाड़ी में यात्रा करने के लिए तीन हजार प्रार्थना-पत्र आये, किन्तु स्थान की कमी के कारण केवल कुछ सैकड़े यात्री उससे यात्रा कर सके। 15 अगस्त 1854 को पहली रेलगाड़ी हावड़ा से हुगली चली; गाड़ी के सभी स्थान भरे हुए थे। कुछ कारणवश इस लाइन का सरकारी उद्घाटन एक वर्ष बाद हुआ, फिर भी पहली गाड़ी को देखने के लिए जनता में बड़ा उत्साह था, और कई हजार दर्शकों ने हर्षध्वनि से इसका स्वागत किया। गाड़ी हावड़ा से सबेरे साढ़े आठ बजे चली और 91 मिनट में हुगली पहुँची। गार्ड के डिब्बे को छोड़ कर इसमें तीन पहले दर्जे, दो दूसरे दर्जे और तीन तीसरे दर्जे के डिब्बे थे। ये सब डिब्बे हमारे देश में ही बनाये गये थे। पहले दर्जे का किराया तीन रुपये और तीसरे दर्जे का सात आने था।

इस रेलवे का सरकारी उद्घाटन 3 फ़रवरी 1855 को हुआ। उद्घाटन-समारोह बर्दवान में मनाया गया। गवर्नर-जनरल, लार्ड डलहौज़ी 'अस्वस्थ होने के कारण' उद्घाटन के लिए बर्दवान न जा सके। उन्होंने हावड़ा स्टेशन पर चर्च की एक प्रार्थना सभा में भाग लिया। इस अवसर पर लगभग एक हजार मेहमान निमंत्रित किये गये थे जो उद्घाटन के बाद दो गाड़ियों में बर्दवान के लिए रवाना हुए। यह यात्रा 2 घण्टे 50 मिनट की थी।

दक्षिण भारत में मद्रास रेलवे कम्पनी ने पहली जुलाई 1856 को वयासरपाडी से वालाजा रोड तक पहली लाइन निकाली। यह लाइन 63 मील लम्बी थी। उत्तर भारत

में 3 मार्च 1859 को सबसे पहले इलाहाबाद और कानपुर के बीच 119 मील लम्बी रेल की लाइन बनायी गयी। तीन साल बाद अमृतसर-लाहौर के बीच अमृतसर अटारी का भाग यातायात के लिए खुला। इसी समय हमारे देश के उस भाग में भी रेल की लाइनें निकलनी आरम्भ हुई जो आज पूर्वोत्तर रेलवे में सम्मिलित है। हाथरस रोड और मथुरा छावनी के बीच 19 अक्टूबर 1875 में और कानपुर—फर्रुखाबाद के बीच 1880-81 में रेल चलने लगी। 15 अगस्त 1882 में आसाम में डिबरूगढ़ टाउन और दिनजन के बीच रेल की लाइन बनी। बी. एन. डब्ल्यू. रेलवे की सबसे पहली लाइन पहली फरवरी 1883 को दरभंगा और झंझारपुर के बीच निकली। तीन महीने बाद इसी लाइन की बछवारा-बरौनी और बरौनी-सेमरियाघाट उपशाखाएं भी बनकर तैयार हो गयीं।

इस प्रकार आरम्भ में छोटे छोटे पैमाने पर रेल की लाइनें निकाली गयीं जो थोड़े ही दिनों में विकसित होकर सारे देश में फैल गयीं। 1880 तक हमारे देश में कुल 9000 मील लम्बी रेल की लाइन बन चुकी थी।

संसार की पहली रेलगाड़ी

संसार की पहली रेलगाड़ी के ठीक 28 वर्ष बाद भारत में रेल का चलना आरंभ हो गया। रेल के इंजन का आविष्कार इंगलैण्ड में हुआ था, इसलिए संसार की पहली गाड़ी चलाने का श्रेय इसी देश को है। 1825 में स्टाक्टन और डार्लिंगटन के बीच जो गाड़ी चली, वही संसार की पहली गाड़ी थी। इसमें कुल 38 डिब्बे थे जो यात्रियों और माल से भरे थे। वास्तव में रेल-इंजन के आविष्कर्ता, जार्ज स्टीफेन्सन ने लाइन पर काम 1821 में ही आरम्भ कर दिया था, किन्तु इसके पूरा होने में चार साल लगे।

फ्रान्स में पहली रेलगाड़ी 1829, जर्मनी में 1835, हालैण्ड और इटली में 1839 और स्पेन में 1848 में चली। रूस में सेन्टपिटर्सबर्ग (जिसका नाम अब लेनिनग्राड है) से पवलोवस्क तक रेल की लाइन 1837 में एक प्राइवेट कम्पनी ने बनायी। संयुक्त राज्य अमेरिका में बाल्टीमोर और ओहियो के बीच 15 मील लम्बी लाइन मई 1830 में तैयार हुई। आरंभ में इस लाइन पर गाड़ियाँ घोड़ों द्वारा चलायी गयीं, बाद में इंजन का प्रयोग होने लगा।

रेल का विरोध

प्राय: ऐसा देखा जाता है कि जब कोई नया आविष्कार होता है, तो लोग उसका विरोध करते हैं। यही बात रेल के साथ भी घटी। प्रारम्भ में लोगों ने रेल का बड़ा विरोध किया। जिस समय रेलें चलीं, उस समय जन-साधारण को यह विश्वास दिलाना कठिन था कि रेल-यात्रा घोड़े-गाड़ी की यात्रा से अधिक सुरक्षित है। एक जर्मन डाक्टर के बारे में बड़ी मनोरंजक बात बतलायी जाती है। उसने कहा कि 'दौड़ती रेलगाड़ी को देखकर लोगों का पागल हो जाना अनिवार्य है और यदि पटरे लगाकर पर्दा न किया गया, तो गाय का दूध बिगड़ जायगा।'

कुछ समय तक रेल कितनी डरावनी वस्तु समझी जाती थी, इसका अनुमान नीचे दिये गये कुछ उद्धरणों से लगाया जा सकता है। पहली रेलगाड़ी चलने के 17 वर्ष बाद रानी विक्टोरिया ने एक बार मंत्रियों की सलाह से रेल द्वारा यात्रा करना सुरक्षित समझा। किन्तु विक्टोरिया की स्वामिभक्त प्रजा में कुछ लोग ऐसे थे जिन्होंने रानी द्वारा रेल की यात्रा को खतरे से खाली न समझा। एक समाचार पत्र ने रानी के साहस की प्रशंसा की परन्तु सलाह दी कि रानी रेल से यात्रा न करें।

फ्रान्स के बादशाह लुई फिलिप को 1848 में उनके मंत्रियों ने रेल से यात्रा करने से रोक दिया। "ली कामर्स" नाम के एक पत्र ने इस घटना का विवरण इस प्रकार दिया है :

'बादशाह ने राज-परिवार के साथ अपने बिजी-स्थित निवासस्थान जाने के लिए रोयन तक स्पेशल रेलगाड़ी से जाने का विचार प्रकट किया और उनके आदेशानुसार कार्य-क्रम तैयार हुआ। लेकिन बादशाह के कार्यक्रम की सूचना जब मंत्रियों को मिली, तो मंत्रि-मण्डल की बैठक बुलायी गयी और मन्त्रिगण इस निश्चय पर पहुँचे कि अभी रेल-यात्रा इतनी सुरक्षित नहीं है कि बादशाह उससे यात्रा करें। इस निश्चय के फलस्वरूप बादशाह ने बिजी-यात्रा घोड़े-गाड़ी से की।

1835 में इंगलैण्ड के "जानबुल" नाम के समाचार पत्र ने रेल की भर्त्सना की और उसे देश और समाज के लिए अहितकर बतलाया। उसने लिखा कि "यदि रेल सफल हुई, तो उससे समाज को अप्राकृतिक बढ़ावा मिलेगा, मनुष्य और मनुष्य के बीच सारे सम्बन्ध नष्ट हो जायेंगे, व्यवसाय के नियम समाप्त हो जायेंगे, बड़े-बड़े नगरों के बाजारों पर बुरा प्रभाव पड़ेगा, प्रान्तों के साधन छिन जायेंगे और तरह तरह की अव्यवस्था और संकट उत्पन्न होंगे जिससे मानव-जीवन संकट में पड़ जायेगा।"

इसी लेख में इस पत्र ने यह भी लिखा कि "कोई भी समझदार आदमी रेल की पटरी के सहारे हवा में उड़ाये जाने पर सहमत न होगा क्योंकि उस गाड़ी का भरोसा क्या है जो पटरी पर एक पत्थर के टुकड़े से भी लुढ़क कर गिर सकती है ?.........हम रेल की निन्दा इसलिए करते हैं क्योंकि यह देश के लिए सब प्रकार से घातक है। इससे हमारे देश और घाटियों की शोभा बिगड़ जायेगी, भाप के इन्जिन की आवाज और दुर्गन्ध से अमीर-गरीब सबकी शान्ति भंग हो जायेगी और रेल की लाइन के निकटवर्ती क्षेत्र में बैल, भेड़ और सुअर रेल के डर से रात भर चिल्लाते रहेंगे और इस तरह वहाँ बराबर शोर मचता रहेगा।"

आरम्भ में योरप के लोगों ने रेल का जिस प्रकार विरोध किया उसे देखते हुए हमें आश्चर्य नहीं होता कि भारत में भी पहले पहल रेल का विरोध हुआ। कुछ लोगों ने इसे "खतरनाक" और कुछ ने "असामयिक और खर्चीली" योजना बतलाया। इंगलैण्ड और भारत में बहुत से लोग इस राय के थे कि यदि भारत में रेल किसी तरह चल भी सकी, तो उसमें यात्रा करने वाले कठिनाई से मिलेंगे। इस बात पर भी सन्देह किया गया कि क्या

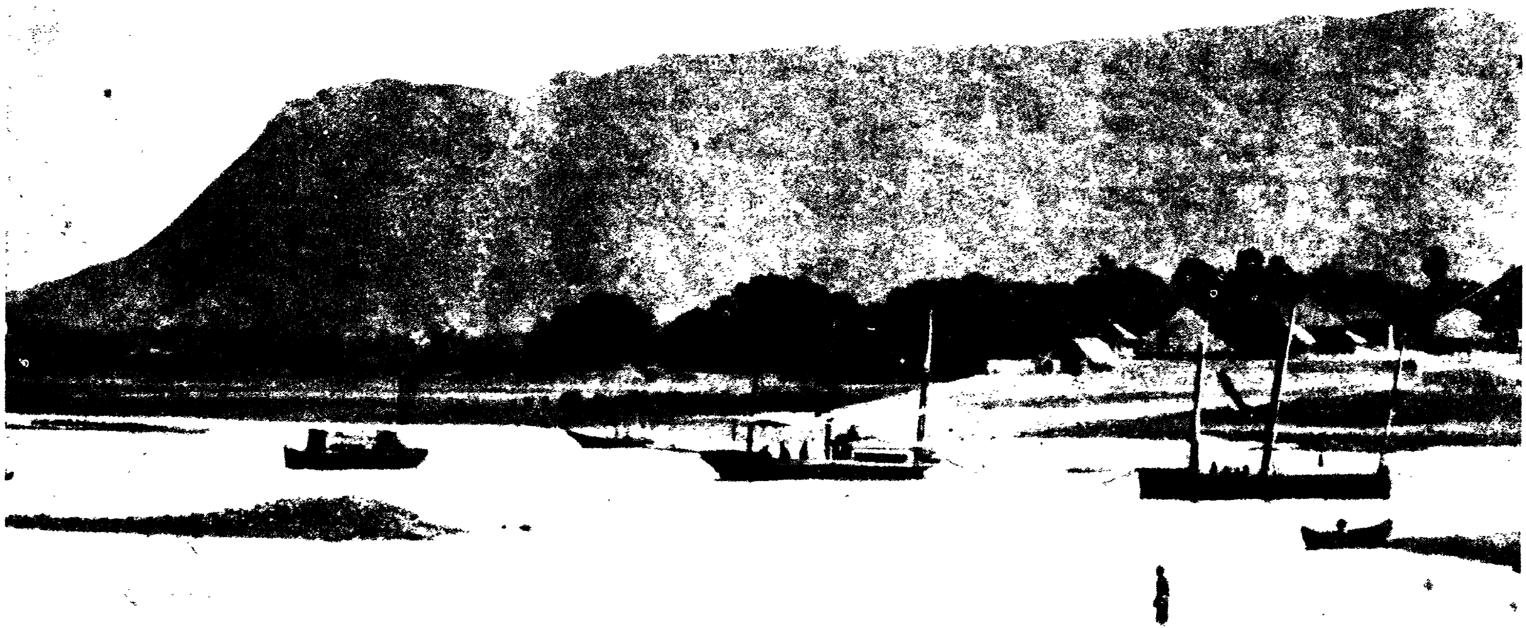
बैलगाड़ी को छोड़कर लोग रेल की ओर आकर्षित होंगे और साधू, फ़कीर, खेतिहर-मजदूर और दूसरे निर्धन लोग जिनके पास 'एक आना भी नहीं है', क्या वे रेल का भाड़ा दे सकेंगे ? उनकी आर्थिक स्थिति देखते हुए यह अनुमान लगाया गया कि पैदल चलने में चाहे कितना भी समय क्यों न लगे, ये लोग पैदल ही चलना अच्छा समझेंगे। हमारे देश के प्रसिद्ध अर्थ-शास्त्री, श्री रमेशचन्द्र दत्त भी उन लोगों में से थे जो रेल पर किये गये व्यय को निरर्थक समझते थे। उनका मत था कि हमारे देश की पहली आवश्यकता सड़कें और नहरें हैं, रेल का स्थान बाद में आता है। श्री दत्त ने लिखा कि अंगरेज अपने देश में नहरों की अपेक्षा रेलों से अधिक परिचित हैं, इसलिए उन्होंने भारतीयों की आवश्यकताओं को समझने में गलती की है।

कुछ समय बाद, कावेरी और गोदावरी की प्रसिद्ध नहरों के निर्माता, सर आर्थर काटन ने भी श्री रमेशचन्द्र दत्त के विचारों का समर्थन किया। पार्लियामेंट की एक समिति में बयान देते हुए उन्होंने कहा कि "भारत को जल-परिवहन की आवश्यकता है। यहाँ रेल पूर्णरूप से असफल सिद्ध हुई है। रेल के भाड़े की दर ऊँची है और जितना माल ढोने के लिए मिलता है उसे रेलें नहीं ढो पातीं। इनके संचालन के लिए हर साल तीस लाख रुपये लगते हैं और आगे चलकर इन पर उससे भी अधिक खर्च करना पड़ेगा।"

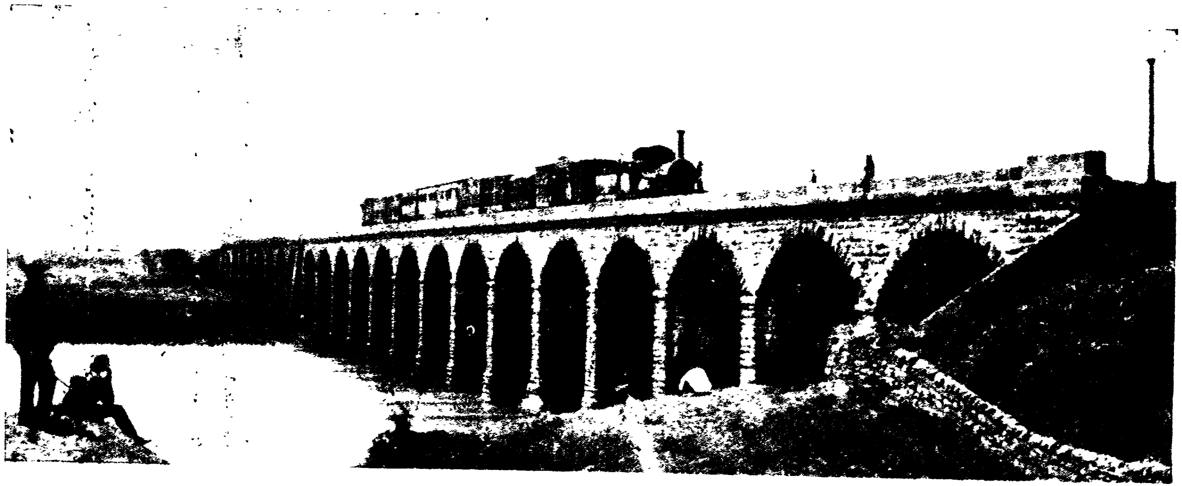
लार्ड लारेन्स, जो कभी भारत के गवर्नर जनरल रह चुके थे, इस मत के थे कि भारत में सिंचाई के लिए और अधिक नहरें बनायी जायें। उनका विश्वास था कि इस देश के लिए नहरें रेल से कहीं अधिक आवश्यक हैं। कुछ विशेषज्ञों का मत था कि इस देश के जलवायु के कारण रेल के विकास में भारी बाधा उत्पन्न होगी। बरसात, आँधी और तेज गर्मी का बुरा प्रभाव पड़ेगा। इन कठिनाइयों के अतिरिक्त यह भी कहा गया कि कीड़े-मकोड़े लाइन के किनारों और लकड़ी की पटरियों को बर्बाद कर देंगे। उष्णकटिबन्ध के पेड़-पौदों का प्रभाव भी बुरा ही होगा। साथ ही यह आशंका प्रकट की गयी कि रेल बनाने और चलाने के लिए भारत में योग्य इन्जीनियर और कर्मचारी मिलने में कठिनाई होगी।

भौगोलिक कठिनाइयाँ

इन कठिनाइयों के अतिरिक्त प्राकृतिक और भौगोलिक बाधाएं भी थीं जिनको वश में करना कुछ सरल न था। भारत रूस की तरह समतलदेश न था जहाँ जार निकोलस देश के नक्शे पर एक पटरी से मास्को और सेन्टपिटर्सबर्ग के बीच दो सीधी लाइनें खींच कर कहते कि "इसी रास्ते से होकर रेल निकलनी चाहिये।" इंगलैण्ड की तरह भारत कोई छोटा देश भी नहीं था। एक विशाल देश होने के अतिरिक्त, भौगोलिक स्थिति के कारण भी यहाँ बहुत सी कठिनाइयाँ थीं। किन्तु सिम्स, राबर्ट स्टीफेन्सन आदि विशेषज्ञ, जो भारत भेजे गये, बहुत कुछ जाँच-पड़ताल के बाद अन्त में इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि भारत में रेल बनाने के सम्बन्ध में जो कठिनाइयाँ बतलायी जाती हैं, उन कठिनाइयों के होते हुए भी इस देश के विभिन्न भागों को रेल से मिलाना संभव है और देश की वर्तमान स्थिति में रेलें चलायी जा सकती हैं और उनसे लाभ भी हो सकता है।



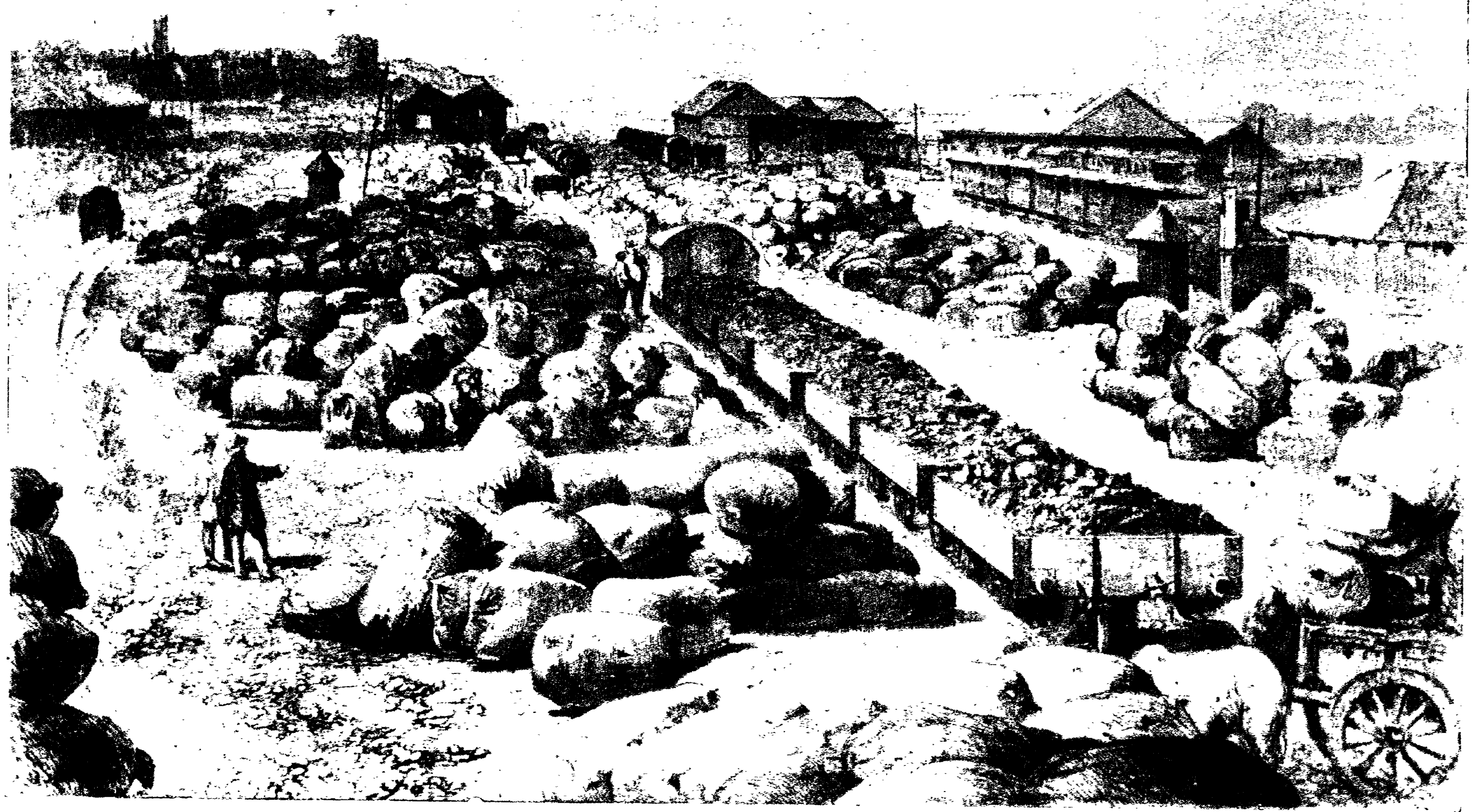
1853 में थाना बन्दरगाह् का एक दृश्य



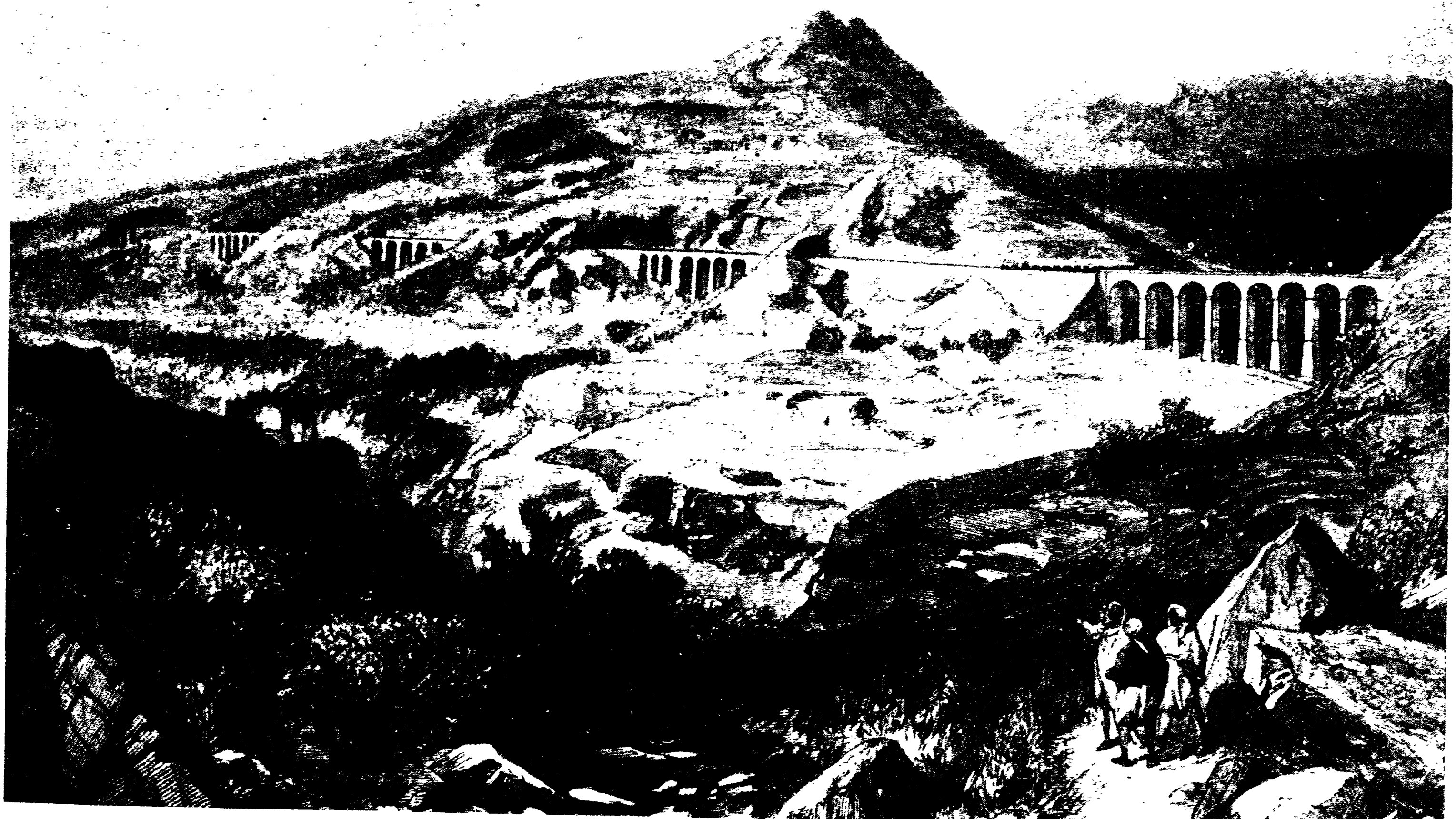
थाना रेलवे-पुल पर जाती हुई पहली रेलगाड़ी



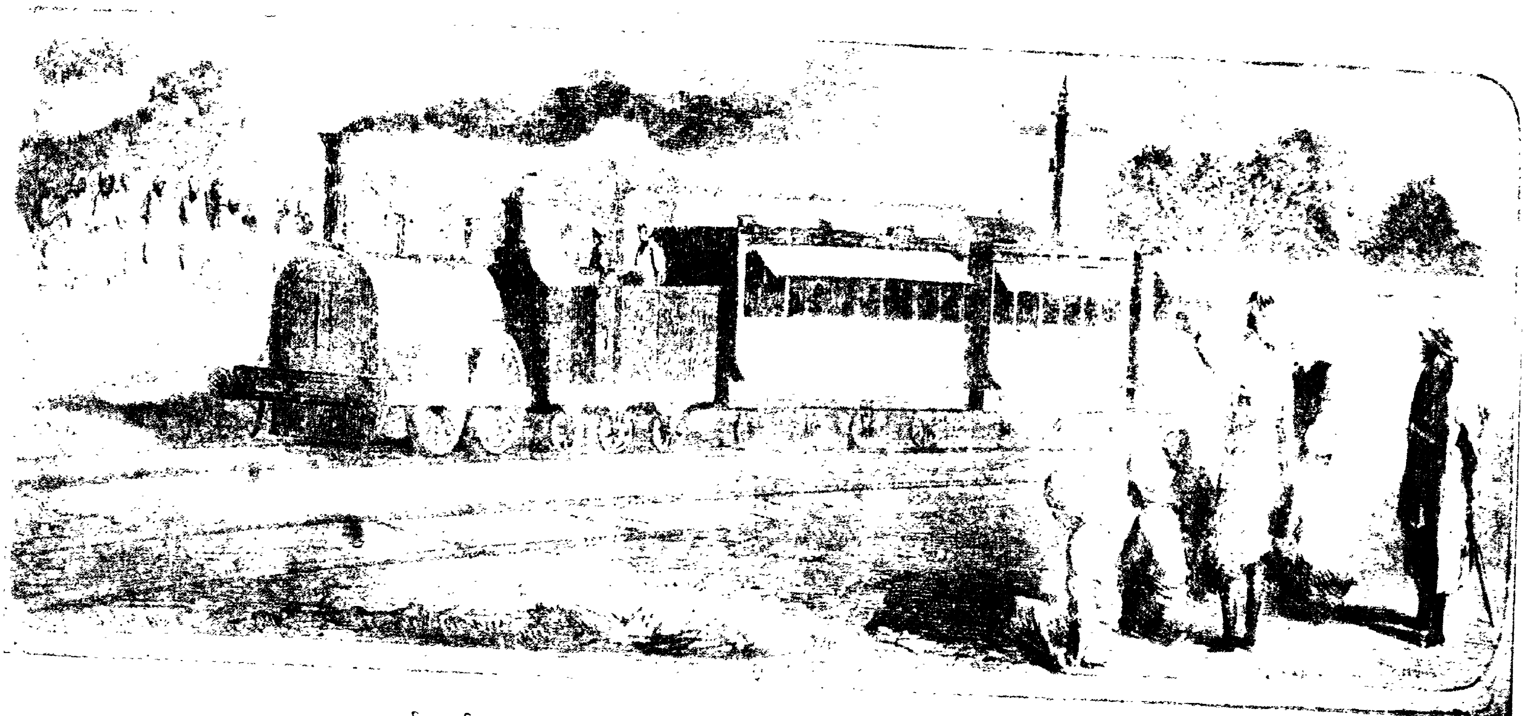
1854 में बाईकुला स्टेशन पर गाड़ी की प्रतीक्षा में अलग-अलग भेष-भूषा के मुसाफिरों का दल ('दी इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज' के सौजन्य से)



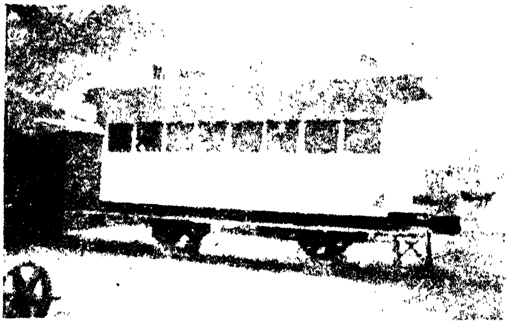
लन्दन जाने के लिए जी. म्राई. पी. रेलवे के बम्बई टरमिनस पर पड़ी हुई रूई की गाँठें, 1862 (दी इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज़ के सौजन्य से)



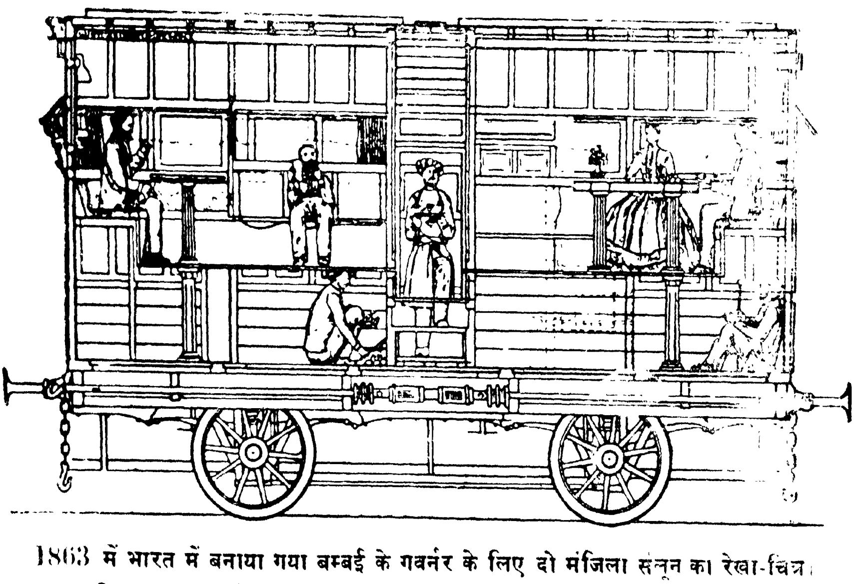
भोर घाट की ढलान पर रेल की लाइन, पुल और सुरंगों का मनोहर दृश्य (जी. जी. भाई के संग्रह में)



ई. आई. आर. पर पहली रेलगाड़ी। ('दी इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज' के सौजन्य से।)



सन् 1876 में प्रिन्स आफ वेल्स (स्वर्गीय राजा एडवर्ड सप्तम) के भारत में आने पर उनके लिए बनाया गया चार पहियों का सैलून।



1863 में भारत में बनाया गया बम्बई के गवर्नर के लिए दो मंजिला सैलून का रेखा-चित्र। जिस समय यह सैलून बना इसके निर्माताओं और इंजीनियरों का इस पर गर्व करना ठीक ही था।



भारतीय रेल के बहुत पुराने पहले दर्जे की गाड़ी का भीतरी दृश्य। ('दी इलस्ट्रटेड लन्दन न्यूज़' के सौजन्य से)



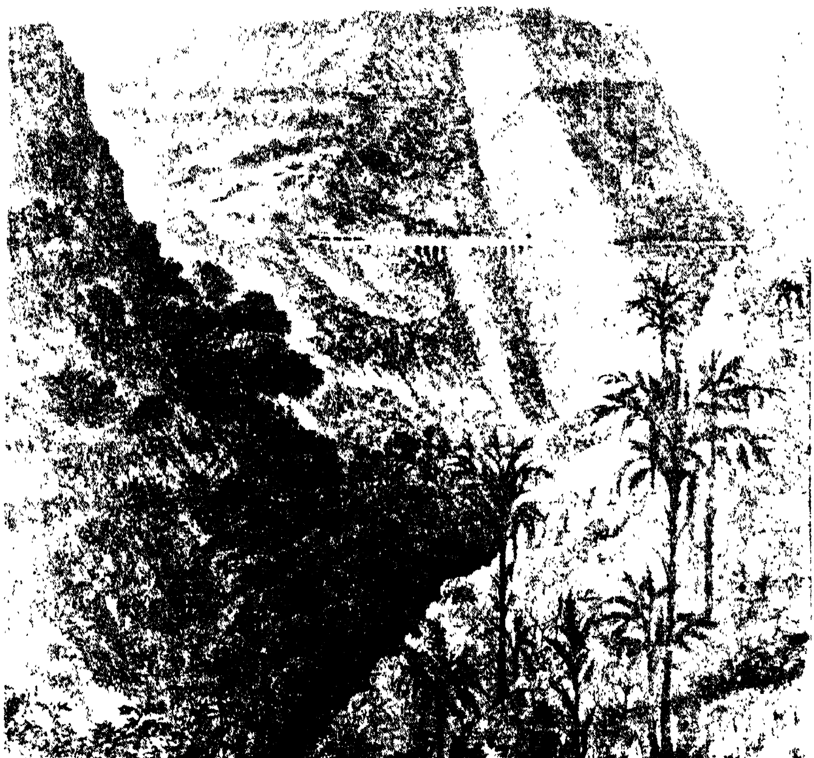
पूर्वी सुरंग में प्रवेश करती हुई जी. आई. पी. रेलवे की पहली गाड़ी
(जी. जी. भाई के संग्रह से)



खण्डला का एक मनोहारी दृश्य (जी. जी. भाई के संग्रह से)



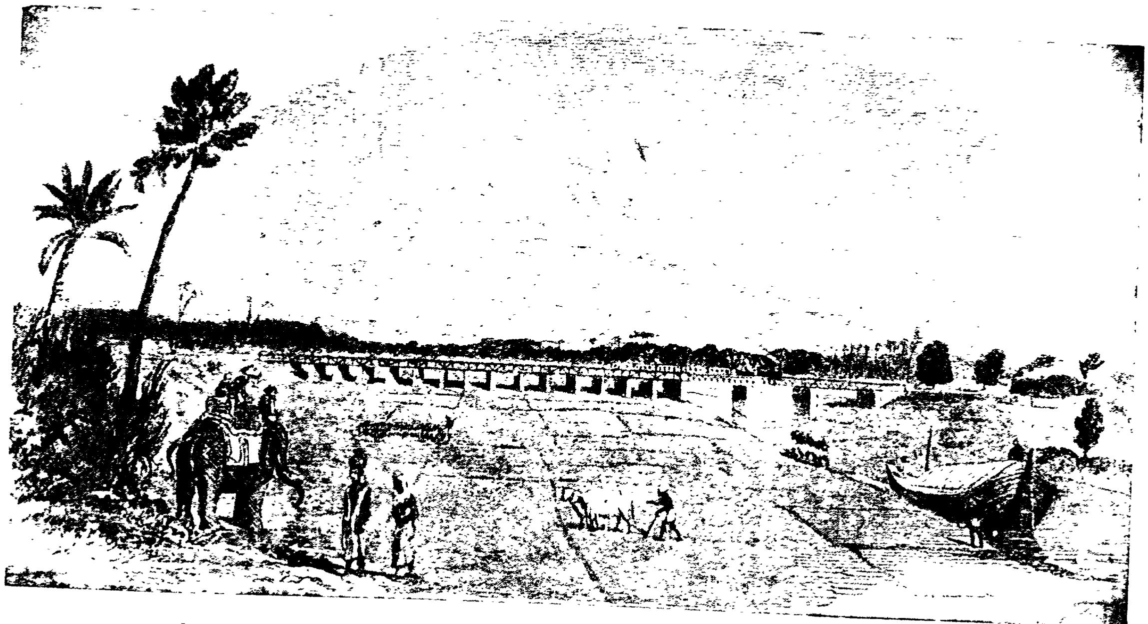
भोर घाट ढलान पर 'ड्यूकन नोज' (जी. जी. भाई के संग्रह)



खण्डला के निकट घाटों का दृश्य (जी. जी. भाई के संग्रह से)



अचानक खतरा—इंजीनियर संकट में ('दी इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज़' के सौजन्य से)



1853 का हुगली के पास सरस्वती पुल (बंगाल पास्ट एण्ड प्रेज़ेण्ट' के अनुग्रह से)

भारत में रेल बनाने का बहुत कुछ श्रेय लार्ड डलहौज़ी को है। जुलाई 1850 के एक महत्वपूर्ण लेख में उन्होंने लिखा यद्यपि अन्य सभी लोगों की तरह उन्हें भी सन्देह था कि क्या भारत में रेल से लाभ हो सकता है; फिर भी वह इस बात के लिए व्यग्र थे कि कलकत्ता और राजमहल के बीच परीक्षण के रूप में जो लाइन बनायी जा रही है, उसे सफलता मिले। उन्होंने लिखा कि लाइन बनाने का उद्देश्य यह सिद्ध करना है कि भारत में रेल की लाइनें बनायी जा सकती हैं और उनके बन जाने पर उनसे लाभ भी हो सकता है।

लार्ड डलहौज़ी के इस लेख को तीन वर्ष भी पूरे न हो पाये थे कि बम्बई और थाना के बीच रेलगाड़ी चल पड़ी। इस प्रकार एक सौ वर्ष पहले भारत में रेल की नींव पड़ी जो बढ़कर आज एक विशाल उपक्रम के रूप में हमारे सामने है। यह उन थोड़े से दूरदर्शी व्यक्तियों के प्रयास का फल है जिन्होंने समझ लिया था कि रेल के निर्माण में इस देश की प्रगति का स्रोत छिपा हुआ है और जो अपने निश्चय को कार्यरूप में परिणत करने में निरन्तर लगे रहे।

2. नयी लाइनों का जाल

भारत की बड़ी-बड़ी सड़कें, दिल्ली, लाहौर, इलाहाबाद, आगरा आदि भीतरी केन्द्रों से समुद्रतट की ओर जाती हैं। रेलों के सम्बन्ध में यह क्रम बदल गया। देश में पहली रेल की लाइनें, उत्तर को छोड़ कर, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास, तीन बड़े बन्दरगाहों से निकलीं और धीरे-धीरे देश के भीतरी भाग में फैल गयीं। नगर या बन्दरगाह के रूप में, ईस्ट इण्डिया कम्पनी के आने से पहले, बम्बई, कलकत्ता और मद्रास की गणना न थी।

भारत में रेल बनाने की योजना सबसे पहले 1843-44 में सर मेकडानेल्ड स्टीफ़ेन्सन ने ईस्ट इण्डिया रेलवे कम्पनी की ओर से रखी। इसी समय बम्बई और मद्रास से रेल निकालने के प्रस्ताव सामने आये और तीनों रास्तों की जाँच-पड़ताल साथ-साथ आरंभ हुई।

पहाड़ियाँ

इस काम को जिन लोगों ने पहले शुरू किया उन्हें बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। पहले तो उनके रास्ते में भौगोलिक बाधाएं थीं। कल्याण के आगे पच्छिमी रास्ते पर थाल और भोरघाट के पहाड़ थे। इन पहाड़ों में बहुत दूर तक अटूट चट्टानों का सिलसिला था। कहीं-कहीं तो ये पहाड़ अचानक दो से चार हज़ार फुट ऊँचे हो जाते थे। पगडण्डियों और एक ऊबड़-खाबड़ सड़क, जो कुछ ही महीने चालू रह सकती थी, को छोड़ कर सारा पहाड़, बीहड़ जंगलों से भरा था, जिनमें जंगली जानवर और नाना प्रकार के विषधर साँप भरे पड़े थे। यहाँ के जलवायु में कोई रह नहीं सकता था। घाटों के आगे, कुछ सौ मील अन्दर चलकर विन्ध्याचल पर्वत मिलता था, जो एक ओर से उत्तर और पूर्व का तथा दूसरी ओर से दक्षिण का रास्ता रोके हुए था।

नदियाँ

पूर्वी रास्ते की भौगोलिक कठिनाइयां कुछ दूसरी तरह की थीं। कलकत्ता से दिल्ली तक का सिन्ध-गंगा का मैदान, छोटा नागपुर की कुछ पहाड़ी टुकड़ियों को छोड़कर, बिलकुल चौरस था। इधर-उधर बड़े-बड़े दलदल और जंगल थे जिन्हें लाइन निकालने से पहले साफ़ करना आवश्यक था। किन्तु इस क्षेत्र की सबसे बड़ी अड़चन नदियाँ थीं। हुगली, ब्रह्मपुत्र, पद्मा, गंगा, जमुना, महानदी, नर्मदा, गोदावरी और उनकी अनेक सहायक नदियों और बड़े-बड़े मौसमी नालों के बेरोक बहाव पर पुल बांधने के लिए चतुर इंजीनियर, भारी संख्या में कीमती सामान और बहुत से कुशल मज़दूरों की आवश्यकता थी। मामूली झरनों की तरह बहनेवाली ये नदियां बाढ़ के समय भयंकर रूप धारण कर लेती थीं।

उत्तर में, दिल्ली को पश्चिमोत्तर सीमा से मिलानेवाली लाइन पर न केवल बहुत सी नदियाँ और पहाड़ी नाले पड़ते थे, बल्कि सैकड़ों मील की बड़ी-बड़ी घाटियों और कगारों से कटी हुई, हिमालय के साथ-साथ खत्म होनेवाली ऊँची-नीची ज़मीन का सामना भी करना था। राजपूताना और सिन्ध में बालू के मैदान और मीलों तक पानी के अभाव ने दूसरी तरह की अड़चन सामने खड़ी कर दी।

इन प्राकृतिक कठिनाइयों के साथ-साथ बड़े-बड़े इंजीनियरी के कामों के लिए विशेषज्ञों और कुशल मज़दूरों के मिलने का भी सवाल सामने था।

आज़ादी की लड़ाई

पहली लाइनों के चालू हो जाने के बाद देश में रेलों के विकास का विरोध अपने आप कम पड़ गया और लोग उससे अधिक से अधिक लाभ उठाने की कोशिश में लग गये। फिर भी, एक कारण और था जिससे रेलों का विकास कुछ वर्षों के लिए रुक गया। इसका प्राकृतिक अड़चनों या पूँजी और कुशल मज़दूरों की कमी से कोई सम्बन्ध न था। 1856 तक बहुत सी बातों के कारण देश में राजनैतिक अशान्ति पैदा हो गयी जिसने 1857 में गदर का रूप धारण कर लिया और जिसे इतिहासकारों ने आज़ादी की लड़ाई या "महाविप्लव" का नाम दिया। रेल-सम्बन्धी सभी काम इस अशान्ति काल में बन्द रहे। 1858 में, भारत का राजनैतिक नियंत्रण ईस्ट इण्डिया कम्पनी से निकल कर सम्राट के अधीन आ जाने पर देश की राजनैतिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ और रेलों के विस्तार का काम फिर चालू हुआ।

घाट

जी. आई. पी. रेलवे कम्पनी ने थाल और भोर घाटों की जाँच-पड़ताल के बाद 1856 में कल्याण से पूना और भुसावल तक पटरी बिछाना शुरू किया। पहले रास्ते से बम्बई का दक्षिण भारत से और दूसरे रास्ते से दिल्ली और कलकत्ता से सम्बन्ध कायम हुआ। इन दोनों घाटों के ऊपर लाइन बनाने का काम उतना ही कठिन और खर्चीला था जितना दुनियाँ में कहीं भी इंजीनियरों के सामने आया होगा। बहुत सी बातों में यह रेल के विस्तार की विचित्र सफलता थी। 1861 में थालघाट के नीचे कसारा तक लाइन चालू हो गयी और सालभर बाद 21 अप्रैल 1863 को भोरघाट का रास्ता चालू हो गया। थालघाट का पूरा रास्ता 1865 में बनकर तैयार हो गया।

इधर थाल और भोरघाट की अटूट और अभेद्य पहाड़ियों को काटकर बीहड़ जंगलों से रास्ता निकालने में इंजीनियर और मज़दूर दिन-रात काम पर लगे हुए थे, उधर इन पहाड़ियों के आगे के ज़िलों में भी बड़ी तेज़ी से लाइनें बिछायी जा रही थीं। इसके फलस्वरूप, 1861 के अन्त तक उत्तर में शिवगाँव और दक्षिण में शोलापुर तक लाइनें बिछ गयीं। नागपुर में ख़त्म होनेवाले, बम्बई से 519 मील, रायचूर से 422 मील और जबलपुर से 615 मील के, तीनों रास्ते क्रमशः 10 फ़रवरी 1867, 1 मई 1871 और 7 मार्च 1870 को बनकर चालू हो गये। जबलपुर के काम में इंजीनियरों को बड़ी-बड़ी कठिनाइयों

का सामना करना पड़ा, विशेषकर भुसावल से जबलपुर तक 339 मील के हिस्से में जहाँ मीलों जमीन ऊँची-नीची थी और जिसके जंगलों में हिंसक जन्तु भरे पड़े थे। इधर-उधर दलदल भी थे, जहाँ मलेरिया के विषैले मच्छर पनप रहे थे। इसके अलावा, नर्मदा और उसकी सहायक नदियों के ऊपर पुल बनाने का भी सवाल सामने था।

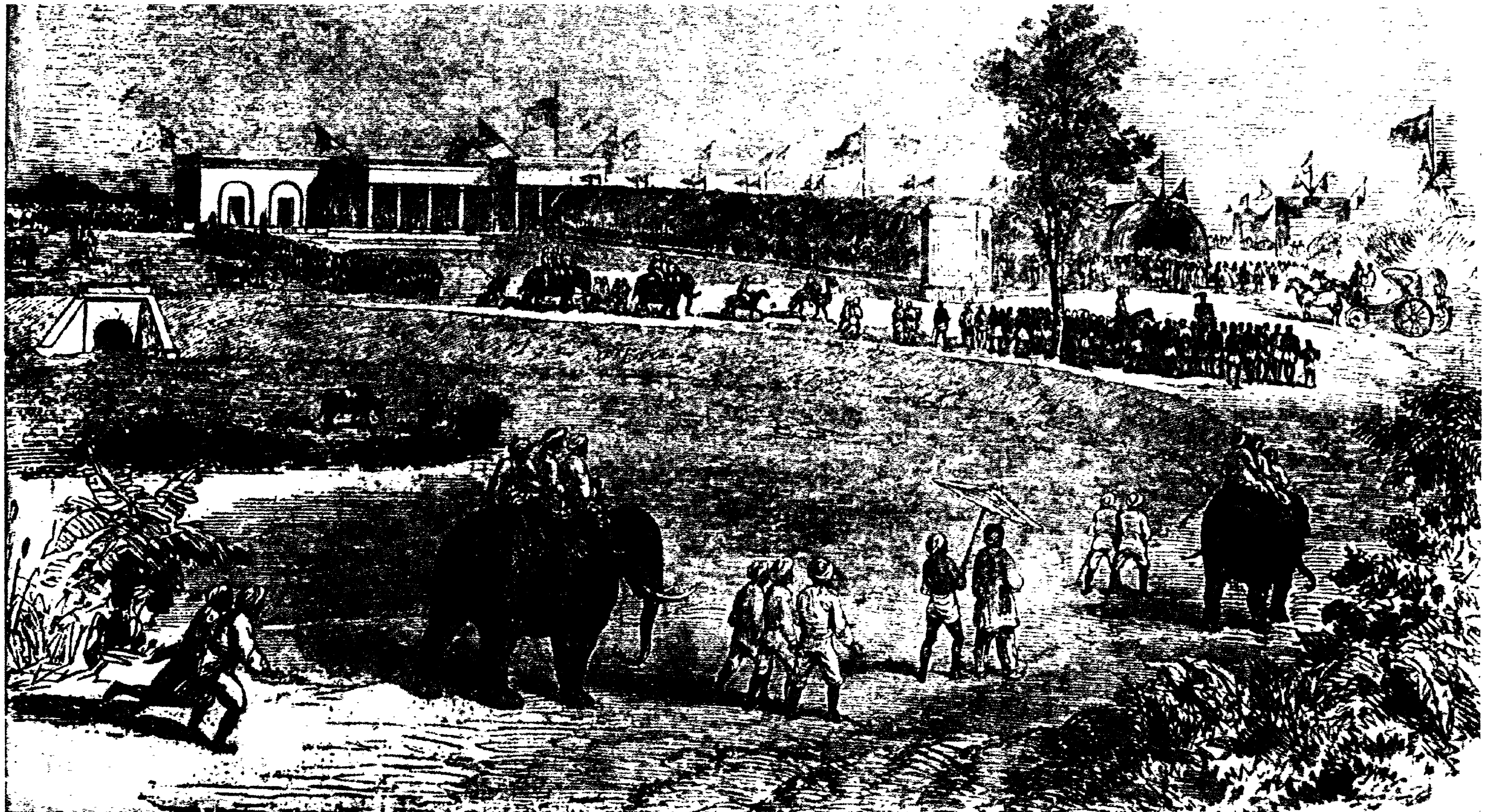
पूरब में लाइनों का जाल

इन्हीं दिनों, 1860 तक ईस्ट इण्डियन रेलवे ने अपनी लाइन पंडुआ से बढ़ाकर राजमहल तक बना ली, जो बाद में साहेबगंज लूप कहलायी। इस लूप लाइन को जमालपुर होकर किऊल तक बनाने में दो साल और लग गये। 1862 के अन्त में यह मुगलसराय तक मिला दी गयी। 1858 में इलाहाबाद-अलीगढ़ लाइन पर भी काम चालू हो गया। कानपुर तक तो 1859 में काम पूरा हो गया था किन्तु आगे इटावा तक का 87 मील का रास्ता 1860 में चालू हुआ। 1862 के शुरू में कम्पनी के पश्चिमोत्तर प्रान्त में $243\frac{3}{4}$ मील और बंगाल में $359\frac{1}{2}$ मील की लाइनें बनायी जा चुकी थीं। इनके बीच में बड़ी-बड़ी नदियाँ थीं। 1863 के फरवरी महीने में, उस समय के वायसराय, लार्ड एलगिन ने कलकत्ता से बनारस तक रेल-यात्रा की। 7 फरवरी 1863 के सरकारी गजट के नीचे लिखे अंश से उस समय तक की ईस्ट इण्डियन रेलवे की प्रगति का कुछ पता चलता है :

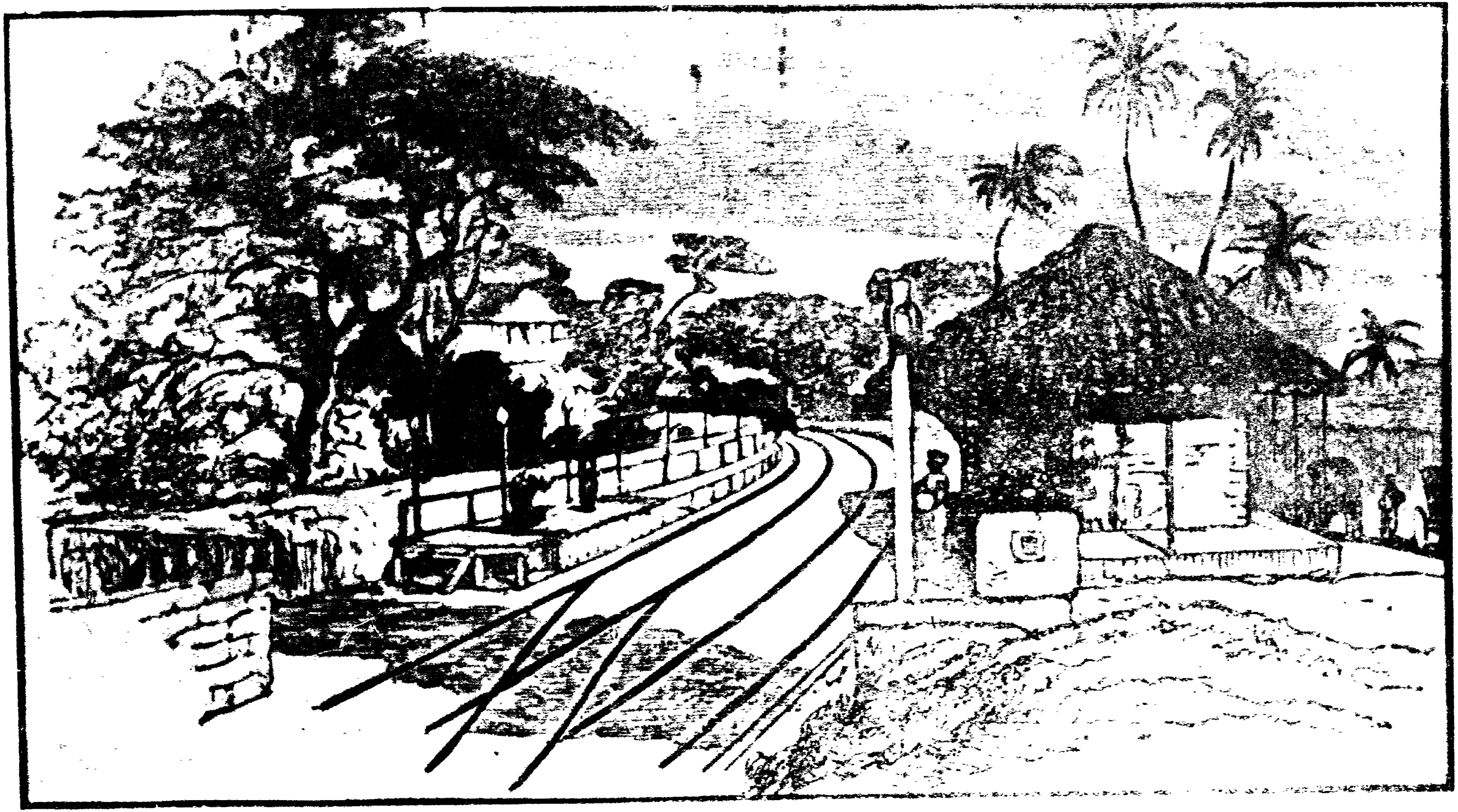
"कलकत्ता से बनारस तक रेल का रास्ता 541 मील है। इस पर 1851 में काम चालू हुआ। फ़रवरी 1855 में बर्दवान; अक्टूबर 1858 में अजाई; अक्टूबर 1859 में राजमहल; 1861 में भागलपुर; फरवरी 1862 में मुंगेर और दिसम्बर 1862 में दूसरी ओर बनारस तक रेल चालू हो गयी। इस तरह दस वर्ष में, शाखा-लाइनों को लेकर 601 मील का लम्बा रास्ता तैयार हो गया, जिसका औसत साल में 60 मील आता है। इसमें पश्चिमोत्तर प्रान्त की तैयार इलाहाबाद-आगरा लाइन तथा कुछ ही हफ्तों में पूरा हो जानेवाला आगरा-अलीगढ़ खण्ड शामिल नहीं है। इन दोनों को मिलाकर ईस्ट इण्डियन रेलवे ने साल में ६० मील के हिसाब से रेलें बनायीं।"

कलकत्ता से दिल्ली

1863 तक, मुख्य लाइन के दूसरे भागों में काम पूरा हो चुका था, किन्तु दिल्ली में जमुना नदी के किनारे तक ईस्ट इण्डियन रेलवे पहली अगस्त 1864 से पहले चालू न हो सकी। यह देर मुख्य लाइन के रास्ते को निर्धारित करने में लगी। जिस समय दिल्ली में जमुना नदी का विशाल पुल तेजी से बनाया जा रहा था, तभी भारत सरकार ने प्रस्ताव किया कि कलकत्ता से निकली हुई मुख्य लाइन दिल्ली और फ़ीरोज़पुर के रास्ते के बजाय मेरठ और सहारनपुर होकर लाहौर तक बनायी जाय। इस प्रस्ताव के कारण जमुना के पुल का काम रोक दिया गया क्योंकि नयी योजना के अनुसार यह विचार हुआ कि इसे रेल-पुल की जगह दिल्ली शहर तक सड़क-पुल बना देना अधिक उचित होगा। बहुत दिनों की लम्बी बहस के बाद यह तय हुआ कि ईस्ट इण्डियन रेलवे दिल्ली तक



ईस्ट इण्डियन रेलवे के रानीगंज तक बढ़ाये जाने पर 1855 में बर्दवान में जो उत्सव मनाया गया, उसकी एक दर्शनीय झांकी ('दी इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज़' के सौजन्य से)



1854 में बाईकुला रेलवे स्टेशन (दी इलस्ट्रेटेड लन्दन न्यूज़ के सौजन्य से)

पूरी कर दी जाय और मेरठ, सहारनपुर होकर पंजाब की लाइन अलग बनायी जाय। इसे दिल्ली से गाजियाबाद तक 12 मील का छोटा टुकड़ा बनाकर जोड़ दिया जाय।"

ईस्ट इण्डियन रेलवे कम्पनी के संचालक-बोर्ड के प्रधान, श्री क्राफर्ड ने अप्रैल 1864 में हिस्सेदारों के सामने एलान किया कि 'मुझे यह कहते हुए बड़ी प्रसन्नता होती है कि इलाहाबाद में जमुना के पुल को छोड़कर कलकत्ता से दिल्ली की लाइन अब चालू हो गयी है। अब हम कलकत्ता से दिल्ली तक 1020 मील दूर मुसाफिरों को पहुँचा और वापस ला सकते हैं।' एक साल बाद, 15 अगस्त 1865 को इलाहाबाद में जमुना का पुल बनकर तैयार हो गया। इसके बनाने में करीब आठ साल लग गये और उस समय पूरब में पुल बनाने का यह काम प्रशंसनीय समझा जाता था। 1866 में दिल्ली में जमुना का पुल चालू हुआ। यह हावड़ा से दिल्ली के रेल मार्ग का आखिरी बड़ा पुल था। अब यात्री हावड़ा से चढ़कर उसी गाड़ी में सीधे दिल्ली तक जा सकते थे।

बम्बई-कलकत्ता लिंक

इसी समय ईस्ट इण्डियन रेलवे पश्चिम की ओर भी बढ़ रही थी। ईस्ट इण्डियन रेलवे को बम्बई से जबलपुर तक बन जाने वाली जी० आई० पी० रेलवे की लाइन से मिलाने के लिए इलाहाबाद होकर जबलपुर जानेवाली लाइन पर काम चालू था। इलाहाबाद-जबलपुर लाइन 1867 में पूरी हुई और उसी साल पहली जून को चालू हो गयी। इससे कलकत्ता से बम्बई का सीधा यातायात कायम हो गया। कलकत्ता, इलाहाबाद, जबलपुर और बम्बई को मिलानेवाले रास्ते का नियमित उद्घाटन 7 मार्च 1870 को हुआ। भारतीय रेलों के प्रारम्भिक विकास का यह बड़ा ऐतिहासिक और दर्शनीय समारोह था।

वायसराय लार्ड मेयो ने इसका उद्घाटन किया। ड्यूक आफ एडिनबरा इस उत्सव के प्रधान अतिथि थे। इसमें बम्बई के गवर्नर, सर सेमूर फ़िजगेरल्ड, बंगाल के गवर्नर, कई राजे-महाराजे और उनके मंत्री तथा देश के सभी भागों से बहुत बड़ी संख्या में आये हुए विशेष लोग भी शामिल हुए।

इस ऐतिहासिक अवसर पर लार्ड मेयो ने अपने भाषण में भारत में रेल बनाने वालों की महान सफलता तथा आगे की विकास-योजनाओं की रूप-रेखा बतायी। 'देश की कलकत्ता और बम्बई के बीच की' 1300 मील लम्बी लाइन का उद्घाटन करते हुए उन्होंने बताया कि भारत की रेलों पर अभी तक 2 करोड़ 20 लाख पोण्ड की पूंजी लग चुकी है जिसमें केवल थाल और भोरघाट के रास्ते पर 20 लाख पौण्ड खर्च हुए हैं। मद्रास, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली और लाहौर को मिलानेवाली देशभर की 4000 मील की लाइनें प्राय: बन चुकी हैं। इनपर लगभग 17000 पौण्ड प्रति मील की लागत आयी है। अन्त में लार्ड मेयो ने कहा "यदि सम्भव हो, तो सारे देश में एक ही तरह की लाइनों का जाल बिछा दिया जाय। इस पूरी योजना की लाइनों की कुल लम्बाई 15000 मील से

अधिक होगी। इसमें 4000 मील लाइनें इस समय चालू हैं, 1000 मील लाइनें बन रही हैं और 900 मील पर जल्दी ही काम शुरू होनेवाला है।" 15000 मील का लक्ष्य बहुत बाद में पूरा हुआ। 1892 के अन्त में, जबलपुर समारोह के 22 वर्ष बाद, लाइनों की कुल मील-संख्या 18000 से अधिक न हो सकी। फिर भी, 1850 से 1892 के बीच 430 मील प्रति वर्ष के हिसाब से नयी लाइनें बनायी गयीं जिसमें सब मिलाकर सालाना खर्च का औसत लगभग 557 लाख रुपये था। संसार के दूसरे देशों से तुलना करने पर यह प्रगति बहुत सन्तोषजनक रही। श्री रमेशचन्द्र दत्त ने इसकी आलोचना करते हुए भी कहा था कि भारतीय रेल-व्यवस्था के "फैलाव की मील-संख्या योरप और अमेरिका से बहुत अधिक थी और कई देशों से बढ़-चढ़ कर थी।"

रेलों का विकास

1870 के बाद रेलों का विकास बड़ी तेज़ी से हुआ। बम्बई, बड़ौदा एण्ड सेन्ट्रल इण्डिया रेलवे ने अपनी लाइनें पश्चिमी भारत की ओर बढ़ायीं। 1861 तक मद्रास रेलवे कम्पनी ने मद्रास से काड़ालण्डी तक लाइन बना ली और उसे 1871 में मद्रास-बम्बई मार्ग के रायचूर जंकशन से मिला दिया। बंगाल नागपुर रेलवे 1863 में चलने लगी और 3 मार्च 1891 को उसकी 600 मील लम्बी-बड़ी लाइन यातायात के लिए खोल दी गयी।

बम्बई, बड़ौदा एण्ड सेन्ट्रल इण्डिया रेलवे की स्थापना 1860 में हुई। कुछ अपनी लाइनें बनाकर और कुछ देशी राज्यों की लाइनें लेकर या उनके सहयोग से बनाकर, इस कम्पनी ने दिल्ली के दो नये सीधे रास्ते चालू किये। एक सूरत, बड़ौदा और रतलाम होकर और दूसरा अहमदाबाद और राजपूताना से अजमेर होकर। यह दूसरा रास्ता अहमदाबाद से दिल्ली को मीटर गेज की लाइन पर बना। आरम्भ में 1870 में सरकारी राजपूताना-मालवा मीटर गेज की लाइनें इस कम्पनी को 1885 में पट्टे पर दे दी गयीं। काठियावाड़, इण्डियन स्टेट्स रेलवे, जो भावनगर स्टेट रेलवे, गोण्डल रेलवे, बड़ौदा स्टेट रेलवे, जामनगर द्वारका रेलवे, जूनागढ़ स्टेट रेलवे, और मोरवी रेलवे को मिलाकर बनायी गयी थी, काठियावाड़ प्रान्त में, जिसे अब सौराष्ट्र कहते हैं, जाल की तरह फैली हुई थी और बम्बई, बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे की सहायक रेलों के रूप में थीं।

नार्थ वेस्टर्न रेलवे ने 1892 तक अपनी मुख्य लाइन पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त तक बना ली थी और उत्तर के बढ़िया खेतिहर ज़िलों को सुविधा देने के लिए 2000 मील तक की शाखा और सहायक लाइनें भी बना ली गयी थीं। दक्षिण में सदर्न मराठा रेलवे की लम्बाई 1000 मील से ऊपर हो रही थी तथा कुछ देशी राज्यों द्वारा संचालित राजपूताना-मालवा लाइन 1700 मील से ऊपर फैली हुई थी।

निज़ाम स्टेट रेलवे, 1870 में चालू हुई, इसका वाडी-सिकन्दराबाद का पहला भाग 9 अक्टूबर 1874 को खुला। चार साल तक इस भाग को जी० आई० पी० रेलवे ने चलाया, बाद में 1884 तक हैदराबाद स्टेट रेलवे एजेन्सी ने इसे चलाया। फिर, 27 दिसम्बर 1883 के इक़रारनामे से निज़ाम गारन्टीड स्टेट रेलवे कम्पनी बनी जिसने इस

रेल को अपने हाथ में ले लिया। 1890 तक कम्पनी के पास करीब 320 मील लम्बी रेल हो गयी जो देशी राज्यों में सबसे बड़ी थी।

1937 में अलग होने के समय तक बर्मा भारत का अंग था और बर्मा की रेलों का विकास भारतीय रेलों के साथ-साथ चलता रहा। बर्मा स्टेट रेलवे, जो इरावदी खण्ड की पहली लाइन थी, रंगून से प्रोम की 167 मील की दूरी तक पहली मई 1877 को चालू हुई। 1896 में, चालू लाइनों को अपने हाथ में लेने और दूसरी लाइनों, खासकर माण्डले से कुनलंग की लाइन बनाने के लिए बर्मा रेलवे कम्पनी की स्थापना हुई।

इस समय व बाद में वर्षों तक मुख्य लाइनों पर रेल चलाने के अतिरिक्त तिरहुत की स्टट एजेन्सी, ग्वालियर, बीकानेर और जोधपुर राज्यों और बंगाल नार्थ वेस्टर्न रेलवे व आसाम बंगाल रेलवे आदि महाजनी कम्पनियों ने नयी लाइनें बनाने का काम चालू रखा। मार्च 1922 के अन्त तक भारत में 37,266 मील रेल की लाइन चालू थी जो 1938-39 में बढ़कर 41,153. 76 मील हो गयी। लड़ाई के दिनों में कुछ लाइनें उखाड़ दी गयीं जिसके फलस्वरूप स्वतंत्रता से कुछ पहले भारत में केवल 40,524 मील रेलें रह गयीं। 1947 के बँटवारे में कुछ हिस्से पूर्वी और पश्चिमी पाकिस्तान में चले गये : बाद में कुछ लाइनें और बढ़ायी गयीं। आज भारतीय रेलों की कुल मील-संख्या 34000 है जो संसार की सबसे लम्बी तीसरी रेल-व्यवस्था है।

3. कम्पनियों की वृद्धि

1951-52 में केन्द्रीय सरकार की कुल वार्षिक आमदनी 497.67 करोड़ रुपये थी। इस वर्ष रेलों की कुल आमदनी 294 करोड़ रुपये थी जो भारत सरकार की कुल आमदनी का $\frac{3}{5}$ थी। इसी तरह इस वर्ष केन्द्रीय सरकार और रेलों का व्यय क्रमश 405.06 तथा 228 करोड़ रुपये था। रेलों में कितनी बड़ी पूंजी लगी हुई है इसका अनुमान इन आँकड़ों से लगाया जा सकता है। कुछ लाइट रेलों को छोड़कर आजकल समस्त रेल-प्रणाली के संचालन आदि पर जो व्यय होता है उस पर भारत सरकार का नियंत्रण है। इसलिए, भारतीय रेल-व्यवस्था को यदि संसार का सबसे बड़ा राष्ट्रीयकृत व्यवसाय कहा जाय, तो अतिशयोक्ति न होगी।

भारत में बड़ी लाइन की सभी और छोटी लाइन की अधिकांश रेलें पहले प्राइवेट कम्पनियों द्वारा चलायी गयी थीं। इस धन्धे में लगा हुआ धन ब्रिटेन के हिस्सेदारों का था। भारत की देशी रियासतों ने भी कुछ रेल की लाइनें बनायी थीं। सबसे पहले भारत में रेल बनाने का प्रस्ताव 1843 में रखा गया। इस प्रस्ताव के फलस्वरूप इंगलैण्ड-निवासियों में रेल-उन्माद सा छा गया और हर मध्यम श्रेणी के परिवार में रेल का हिस्सा खरीदने की चर्चा होने लगी। इंगलैण्ड के धनीमानी लोगों ने अपने देश की रेलों पर जो पूंजी लगायी थी उससे उन्हें बड़ा लाभ हुआ था। अब उनकी लालसा थी कि संसार के दूसरे भागों में भी धन लगाकर उसी प्रकार लाभ उठायें।

ब्रिटिश पूँजीपति

सिरिल ब्रुइन एन्ड्रयूज लिखते हैं कि 1839 और 1841 के बीच रेल के हिस्से खरीदने की मांग इतनी बढ़ी कि शेयर बाजार से रुपया प्रायः लुप्त सा हो गया, परन्तु 1843-44 तक बाजार में रुपया आने लगा और उसका मूल्य बहुत गिर गया। वैसे इसका मुख्य कारण यह था कि इंगलैण्ड में रेलों पर जो धन लगा था उस पर बहुत लाभ होने के कारण धनी लोगों में रेल की लाइन बनाने की उत्कण्ठा बराबर बढ़ती गयी। उन्हें तो अपनी पूंजी पर उत्तरोत्तर लाभ लेना था चाहे रेलें अपने देश में बनायी जायें या विदेश में। इस-लिए, रुपया धड़ाधड़ आने लगा; धनी लोग और सट्टावाले रेल का हिस्सा खरीदने के लिए टूट पड़े। ब्रिटिश लोकसभा द्वारा तैयार की गयी सूची से पता चलता है कि रुपया लगाने वालों में प्रायः सभी वर्गों के लोग थे।

रेल के हिस्से खरीदने के इस उन्माद का वर्णन करते हुए एक ब्रिटिश समाचार-पत्र ने यह लिखा कि "छोटे-बड़े, धनी-निर्धन, सन्तुष्ट-भूखे, सधवा-विधवा, स्वामी-सेवक सबको एक ही धुन थी और वह थी बैंकों के बीजक लेने की। उनकी लोलुप आँखों में एक अजेय किन्तु डरावनी चमक थी और उनकी हथेली मानो हिस्से खरीदने के लिए खुजला रही थी। उनके हृदय में केवल यही एक अभिलाषा थी।" सन् 1845 के आरम्भ में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालक-मण्डल के सामने एक नियमावली तैयार करके रखी गयी जिसमें कलकत्ता से इलाहाबाद की ओर 140 मील लम्बी रेल की पटरी बनाने के लिए 10 लाख पौण्ड एकत्रित करने के प्रस्ताव को कार्यान्वित करने का उल्लेख था।

ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने आरम्भ मे ही लगायी हुई अपनी पूंजी पर तीन प्रतिशत लाभ देने की गारंटी माँगी थी। बाद मे उसने रेल-योजना को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से इस मांग को घटाकर 30,000 पौण्ड प्रतिवर्ष लाभांश के रूप में लेना स्वीकार कर लिया। वर्ष के भीतर बम्बई से दिल्ली, कलकत्ता और मद्रास की ओर रेल की लाइन बनाने के उद्देश्य से जी. आई. पी. रेलवे कम्पनी बनायी गयी।

इस बीच भारत सरकार भी इस पत्र पर गंभीरता से सोच-विचार करने लगी। विचारणीय समस्याएं ये थीं—(1) क्या परिस्थितियां रेल बनाने के अनुकूल है ? (2) क्या यह व्यवसाय लाभप्रद होगा ? (3) इस कार्य को सरकार स्वयं करे अथवा किसी गैर-सरकारी संस्था को सौंपे ? (4) यदि सरकार इस कार्य को अपने हाथ मे न ले, तो उस गैर-सरकारी संस्था को किस रूप में सहायता दे ?

ग्रेट ब्रिटेन में तो रेल-व्यवसाय बड़ी तेजी से बढ़ा क्योंकि पार्लियामेंट और सरकार ने कार्यकर्ताओं का पथ-प्रदर्शन करना ही पर्याप्त समझा। वहाँ के लोगों ने रेल का स्वागत किया जिससे यह यातायात का एक सस्ता और लोकप्रिय साधन बन गया, किन्तु भारत में परिस्थिति इससे भिन्न थी। इस देश के बारे में लोगों की धारणा थी कि रेलों को चाहे माल-यातायात कुछ मिल भी जाय, यात्री-यातायात प्रायः नहीं के बराबर होगा।

संचालक-मण्डल ने बहुत सोच विचार के बाद 7 मई 1845 को गवर्नर जनरल के नाम एक निर्देश पत्र जारी किया जिसे रेल-व्यवस्था के सम्बन्ध में पहला सरकारी दस्तावेज कहा जा सकता है। इसमे भारत मे रेल बनाने के सम्बन्ध मे आवश्यक साधनों की खोज करने का निर्देश था। इस निर्देश-पत्र को भेजने के कुछ ही समय बाद संचालक-मण्डल ने श्री एफ० डब्ल्यू० सिम्स नाम के एक अनुभवी रेलवे इंजीनियर को भारत भेजा। वह सितम्बर 1845 में भारत आये। 6 फरवरी 1846 को उन्होंने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को एक पत्र में लिखा कि भारत में रेल निकालना उतना ही सुगम तथा सुरक्षित है जितना यौरप के किसी भाग में।

आरंभिक प्रस्ताव

श्री सिम्स ने भारत में रेल की लाइनें बनाने के लिए ब्रिटिश पूंजीपतियों के सामने कई प्रस्ताव रखे। इनमें से एक था कि नियत समय के लिए यह काम किसी कम्पनी को

पट्टे पर दे दिया जाय। साथ ही उन्होंने ये सुझाव भी रखे थे कि रेल की लाइन बनाने के लिए मुफ्त जमीन दी जाय; जब तक रेलें बनती रहें उन पर किसी प्रकार का कर न लगाया जाय; कम्पनी आवश्यक जाँच के बाद एक योजना तैयार करे और सरकार से उसकी स्वीकृति ले; कम्पनी निश्चित कार्यक्रम के अनुसार रेल की लाइन बनावे और जब तक पट्टे की अवधि पूरी न हो, रेल-मार्ग तथा अन्य सामग्री को सुव्यवस्थित रखे; पट्टे की अवधि पूरी होने के बाद सब सम्पत्ति बिना मूल्य सरकार के हवाले कर दी जाय; यदि किसी दिन एक गाड़ी लाइन के एक सिरे से दूसरे सिरे तक न चली, तो मान लिया जायगा कि रेल ने काम करना बन्द कर दिया है। सभी भारतीय रेलें एक ही नमूने पर बनायी जायेंगी, एक ही पद्धति से काम करेंगी और एक ही किस्म का सामान पायेंगी। श्री सिम्स ने आगे चल कर यह भी सुझाव रखा कि इन बातों के अलावा, सरकार "इन कामों में लगी हुई पूँजी पर कुछ प्रतिशत लाभ का आश्वासन दे सकती है। यह आश्वासन रेल के चालू होने तक नहीं लागू होगा और लाइन के बराबर और सन्तोषजनक ढंग से काम न करने पर खत्म हो जायगा।"

संचालकों के सन्देश के जवाब में, इंजीनियरों की रिपोर्ट और श्री सिम्स के सुझावों पर राय देते हुए, लार्ड हार्डिज के अधीन भारत सरकार ने बताया कि मुफ्त जमीन देने का प्रस्ताव "उचित और वाजिब" है। यह छूट बाद की रेलें बनानेवाली सभी महाजनी कम्पनियों को दे दी गयी। यह न केवल बड़ी और उदारतापूर्ण रियायत थी, बल्कि इससे वह अड़चन भी दूर हो गयी जिसने इंगलैण्ड के रेल-विकास में बड़ी रुकावट डाली थी। इंगलैण्ड में रेलों को सरकार से मुफ्त जमीन नहीं मिली थी; उन्हें इसके लिए वर्षों तक लड़ना पड़ा था। तब कहीं, 1825 में पार्लियामेंट ने एक कानून बनाया जिससे रेलवे लाइन के लिए लोगों को मजबूरन जमीन बेचनी पड़ी। लोगों ने इस बिल का इतना विरोध किया कि आरंभ में इस बिल को हाउस आफ कामन्स ने बहुमत से रद्द कर दिया। इसे लागू करने के लिए दूसरी बार पेश करना पड़ा।

भारत सरकार ने भारतीय रेलों को अन्तिम रूप में अपनी सम्पत्ति बना लेने का अधिकार सुरक्षित रखने का फ़ैसला किया। बाद के सभी इकरारनामों की यह खास शर्त हो गयी। किसी तरह की सहायता या व्याज का आश्वासन अनुचित समझा गया और यह दलील दी गयी कि "सरकार का मुफ्त जमीन देना ही इस बात का प्रमाण है कि वह इन योजनाओं के पूरा होने में सक्रिय सहयोग दे रही है।" भारत सरकार ने जमीन का दाम 200 पौण्ड प्रति मील निश्चित किया।

भारत सरकार के विचारों का समर्थन करते हुए गवर्नर-जनरल लार्ड हार्डिज ने अपने अलग के निजी सम्मति-पत्र में जोर देकर लिखा था कि व्यापारिक और सामाजिक लाभ के साथ-साथ रेलों से फ़ौजी सुविधायें भी बहुत बढ़ जायेंगी। अन्त में, उन्होंने सिफ़ारिश की कि कलकत्ता और दिल्ली के बीच बनी हुई रेल को 5 लाख रुपये (उस समय के 50 हजार पौण्ड) सालाना या 10 लाख पौण्ड की सहायता दी जाय। संचालक-समिति ने भारत सरकार की राय नहीं मानी किन्तु लार्ड हार्डिज से सहमत हो गयी और महाजनी कम्पनियों

को प्रोत्साहित करने के लिए आश्वासन देना आवश्यक समझा। संचालक-समिति ने सिफ़ारिश की कि 15000 पौण्ड प्रति मील के हिसाब से खज़ाने में जमा होनेवाली एक निश्चित रकम पर चार प्रतिशत लाभ का आश्वासन दिया जाय। 19 दिसम्बर 1846 को नियंत्रण-बोर्ड ने संचालक-समिति को बताया कि उन्होंने महाजनी कम्पनियों द्वारा रेल बनाने का प्रस्ताव मंजूर कर लिया है और अन्तिम रूप से ख़रीदने की शर्तों मे सुधार कर दिये हैं; किन्तु आश्वासन का वे घोर विरोध करते हैं। केवल पन्द्रह साल के लिए कोई आश्वासन दिया जाय और सो भी तब तक नहीं जब तक ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालक पूरी तरह यह न मानलें कि आश्वासन दिये बिना पूँजी इकट्ठी नहीं हो सकती। ये शर्तें योजनाएँ चालू करनेवालों को मंजूर न थीं लेकिन नियंत्रण-बोर्ड भी झुकने को राजी नहीं हुआ।

यह वही समय था जब इंग्लैण्ड में "रेल की सनक" बदलकर "नौ दिन का आश्चर्य" हो गयी। शेयर बजार मे भारी मन्दी आयी, महाजनों को रेल के हिस्सों में बहुत नुकसान हुआ और रेल के लिए पूँजी गायब हो गयी। रेल के हिस्सों के लिए मध्यम श्रेणी के महाजनों के विचारों का कुछ पता लन्दन के "रेलवे गजट" से चलता है। उसने लिखा :—

"हम लड़ चुके है और लड़ते रहेंगे, स्टाक बाजार की बेजा हरकतों और बुराइयों के साथ। हम असलियत सामने रखेंगे, हम जालसाजी की धज्जियां उड़ायेंगे। हम जाँच की माँग और न्याय की प्रार्थना करते हैं। जो भी हमारी कार्यवाहियों पर बिगड़ता है, वह या तो गुण्डों का हमदर्द है या खुद गुण्डागीरी करता है जिसकी हम खुलकर निन्दा करते हैं। हमारा कहना हैं कि हवाई किले बनाकर और चीजों के अनाप-शनाप दाम बढ़ाकर जनता को दिन-दहाड़े लूटने के लिए जिसने भी स्टाक एक्सचेज के तिजारती तरीके को बिगाड़ा है और जिन्होंने इस डाकाज़नी के लिए लम्बी लम्बी रकम डकार ली हैं, उन सबको तुरन्त कानून के पंजे में जकड़ दिया जाय। अगर यह न हो सके तो उन्हें स्टाक एक्सचेज से फ़ौरन बाहर निकाल दिया जाय।"

पाँच प्रतिशत का आश्वासन

1847 में नियंत्रण-बोर्ड ने अनमने होकर, उस समय की बाज़ार की हालत देखते हुए, आश्वासित ब्याज की दर, 25 साल के लिए चार से बढ़ाकर पांच प्रतिशत कर दी। बाद में, 17 अगस्त 1849 को, नियंत्रण-बोर्ड के कहने पर, संचालक-समिति ने बिना कोई मियाद बांधे हुए पाँच प्रतिशत का आश्वासन देना मंजूर कर लिया। आश्वासन और नियंत्रण की इस प्रणाली के अन्तर्गत भारत की बड़ी-बड़ी मुख्य लाइनें बनायी गयीं। ईस्ट इण्डियन, ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला, मद्रास, बम्बई, बड़ौदा एण्ड सेन्ट्रल इण्डिया, सिन्ध, पंजाब और दिल्ली आदि की मुख्य लाइनें।

भारतीय कर-दाताओं को नुकसान पहुँचाकर अँग्रेज पूँजीपतियों को इस प्रकार बेजा छूट देने की भारत तथा विलायत के, सरकारी और गैर सरकारी, सभी तरह के लोगों ने कड़ी आलोचना की।

युद्ध और अकाल

मुख्य ट्रंक लाइनों के अतिरिक्त, 1872 और 1890 के बीच बहुत सी शाखा और सहायक लाइनें व्यापार, रक्षा और लड़ाई के कामों के लिए बनीं। 1874-79 के पांच वर्षों में भारत में कई अकाल पड़ गये जिनमें बहुत बड़ी संख्या में लोग मर गये। मद्रास, बम्बई और मैसूर में अकाल का प्रकोप सबसे अधिक था जहाँ सरकारी आँकड़ों के अनुसार 40 लाख से अधिक लोग मर गये। अकाल से होनेवाली भीषण हानियों और कष्टों का चित्रण सर थियोडोर होप के उस लेख में मिलता है जो उन्होंने लन्दन की सोसायटी आफ़ आर्ट् स के सामने 1890 में पढ़ा था। उन्होंने बताया, 'ये आंकड़े लोगों की तकलीफों का अधूरा संकेत देते हैं। इनमें लोगों की सालों की कमाई साफ़ हो गयी। बहुत बड़ी तादाद में उनके जानवर मर गये। उनकी दीन और दुर्बल दशा ने अकाल के बाद भी प्राणघातक बीमारियों का उन्हें शिकार बना दिया और उनकी प्रजनन शक्ति वर्षों तक सुधर न सकी।'

इन आपत्तियों से बचने के लिए दो तरह से रोक-थाम करने की जरूरत थी। एक ओर सिंचाई की योजनाएं तैयार करना और दूसरी ओर संचार के साधनों का विस्तार। ये दो बातें अत्यन्त आवश्यक थीं जिससे अकालग्रस्त क्षेत्रों में बचत के भागों से तुरन्त माल भेजा जा सके। 1880 के अकाल कमीशन ने अकाल रोकने के लिए रेलों के महत्व पर बड़ा जोर दिया। कमीशन की धारणा थी कि "5000 मील लम्बी लाइनों की आवश्यकता है। जब तक भारत में 20000 मील रेल की लाइनें चालू न हो जायं तब तक भविष्य में भी देश को इन विपत्तियों से बचाया नहीं जा सकता।"

अफ़गान युद्ध ने उस समय की सरकार को दूसरी दिशा में रेलों का विकास करने पर बाध्य किया, अर्थात्, उसकी जरूरत के हिसाब से युद्ध में काम देने वाली नयी लाइनों का चालू करना। अफ़गान युद्ध के बन्द होने पर लार्ड रिपन की सरकार ने युद्ध-सम्बन्धी लाइनों को खोलने और अकाल कमीशन की सिफ़ारिशों को कार्यान्वित करने के प्रश्न पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया। पिछले अनुभव से मालूम हो चुका था कि भारत में राज्य सरकार ही बढ़िया और सस्ते ढंग पर रेल बना सकती है। भारत और इंगलैण्ड के राज्य अधिकारियों ने लम्बी लिखा-पढ़ी के बाद निश्चय किया कि सरकार अपनी योजनाओं पर अमल करने के लिए उधार या दूसरे तरीकों से भी पूरी रकम इकट्ठा नहीं कर सकती। इसलिए, यह आवश्यक था कि नयी शर्तों पर भी महाजनी कम्पनियों का सहयोग प्राप्त किया जाय। अंत में यह तय हुआ कि लाभ देने वाली लाइनें व्यापारिक कम्पनियों को पूरे तौर से सौंप दी जायँ और जिन्हें वे न बना सकें या जिनमें किसी कारणवश लाभ होने की संभावना न हो, उन्हें सरकार बनावे।

इस प्रकार 1880-90 के बीच कम्पनियों और राज्य दोनों ने लाइनों का निर्माण और संचालन आरंभ किया। पहले यह आशा थी कि जिन लाइनों से लाभ हो सकता है उन्हें कम्पनियाँ बिना आश्वासन या सीमित अवधि के आश्वासन के साथ अपने हाथ में ले लेंगी।

1882 के शुरू में सदर्न मराठा रेलवे कम्पनी बनी। अन्य बातों में राज्य की सम्पत्ति होने पर भी कम्पनी को पूंजी और संचालन का प्रबन्ध करना था। पूंजी पर पहले सात वर्षों के लिए चार प्रतिशत और बाद में साढ़े तीन प्रतिशत लाभ का आश्वासन दिया गया और शेष लाभ में चौथाई भाग भी दिया गया। उसी साल कुछ महीने बाद दूसरी कम्पनी, बंगाल एण्ड नार्थ वेस्टर्न बनी। इसे कोई आश्वाशन नहीं मिला। इसमें केवल 6 प्रतिशत से ऊपर का लाभ सरकार के लिए सुरक्षित कर दिया गया।

1885-87 में दो मुख्य कम्पनियाँ बंगाल-नागपुर और इण्डियन मिड लैण्ड, बनीं। इनकी शर्तें सदर्न मराठा कम्पनी के समान थीं किन्तु इनको सरकार ने चार प्रतिशत और अतिरिक्त लाभ का एक चौथाई देने का स्थापित आश्वासन दिया। इस व्यवस्था ने वास्तव में लार्ड डलहौजी की नीति को उलट दिया। इस बार पाँच प्रतिशत की जगह चार प्रतिशत ब्याज दिया गया। आश्वासित रकम के बाद के लाभ का अधिकांश राज्य ने स्वयं लेना तय किया और दोनों लाइनें, आरम्भ से ही, राज्य की सम्पत्ति समझी गयीं।

सेना और सुरक्षा की दृष्टि से आवश्यक लाइनों का बनाना सरकार ने पूरे तौर से अपने हाथ में रखा। 1853 के प्रसिद्ध लेख में, भारत की रेल-सम्बन्धी नीति बताते हुए, लार्ड डलहौजी ने रेलों के फौजी कामों के महत्व पर विचार किया है। किन्तु, 1878 के अन्त तक, अफ़गान यद्ध छिड़ने के पहले, इस दिशा में कोई कार्यवाही नहीं हुई। अफगान युद्ध ने सिर्फ फौजों को सीमा तक जल्दी पहुंचने के उत्तम साधनों की जरूरत को ही स्पष्ट नहीं किया बल्कि उसने छावनियों से निकलने वाली चालू लाइनों की ढोने की शक्ति को बढ़ाने की जरूरत भी सामने रख दी। इस युद्ध मे रेलों के यातायात का महत्व 'बोलन' दर्रे तक जल्दी से बनायी गयी रेल से स्वयं स्पष्ट हो जाता है। सरकारी लेखानुसार, प्रतिदिन १६ घण्टे चल कर एक गाड़ी वह काम करती थी जो 2500 ऊँट पन्द्रह दिन में करते। लार्ड रिपन के समय मे युद्ध के कामों के लिए रेलें बनाने की निश्चित योजना बनायी गयी। इसमें पचास लाख पौण्ड से अधिक की लागत का अनुमान लगाया गया और यह निश्चय हुआ कि उधार रुपया लेकर इस योजना को चालू किया जाय।

इसके साथ लार्ड रिपन की सरकार ने नयी कम्पनियों को आश्वासन-प्रथा पर चलाने का विरोध किया। उसने इस बात पर जोर दिया कि नये काम या तो इंगलैण्ड से रुपया उधार लेकर राज्य स्वयं चालू करे या फिर कम्पनियों को बिना कोई आश्वासन दिये हुए सौंप दिये जायँ। उन्हें सिर्फ मुफ्त जमीन की छूट दे दी जाय। 1887 के प्रेषण में अपने विचारों की रूप-रेखा देते हुये भारत सरकार ने लिखा: —

'भारत में रेलें चलानेवाली निजी कम्पनियों को, भारत सरकार की राय में, सिर्फ मुफ्त जमीन मिलनी चाहिए। किन्तु वह ऐसी कम्पनियां भी बनाने को राजी थी, जिनका अपने नाम के फर्मो में नाम-मात्र का हिस्सा हो, जो ठोस जमानत के काम में भी, बहुत ऊँचे ब्याज पर, केवल थोड़ी पूंजी लगावें और जो बाकी पूंजी के लिए सरकारी खजाने से रुपया

खत्म हो रहे थे। 1917 में ही भारत सचिव ने ईस्ट इण्डियन रेलवे कम्पनी को ठेका खत्म कर देने की सूचना दे दी थी, लेकिन सरकार अभी यह निश्चय न कर सकी थी कि इस रेल तथा दूसरी रेलों का नियंत्रण वह अपने हाथ में ले या जब ठेके खत्म हो जायँ, तो कम्पनियों के हवाले कर दे।

भारतीय जनमत ने इम्पीरियल लेजिसलेटिव कौंसिल के प्रतिनिधियों द्वारा, एकमत होकर 1914, 1915, 1917, 1918 में बारबार प्रस्ताव किया कि राज्य-प्रबन्ध की आवश्यकता की जांच करने के लिए एक कमेटी बनायी जानी चाहिए। इस पर रेल की वित्तीय और शासन सम्बन्धी नीति की पूरी जांच करने के लिए, नवम्बर 1920 में, सर विलियम एकवर्थ की अध्यक्षता में, ईस्ट इण्डिया रेलवे कमेटी (1920-21) नियुक्त हुई। इसका काम था प्रबन्ध के उत्तम तरीके बताना, रेलवे बोर्ड के काम, पद और विधान की जाँच करना, रेल-शासन के ऊपर सरकार के नियंत्रण का तरीका कैसा हो, भारतीय रेलों में पूंजी का क्या प्रबन्ध किया जाय तथा अन्य ऐसे सुझाव देना जो जांच करने पर जरूरी मालूम हों।'

4. राष्ट्रीयकरण की ओर

एकवर्थ कमेटी की सिफारिशों के फलस्वरूप भारतीय रेलों में राज्य-संचालन और राज्य-नियंत्रण की नींव पड़ी। इसने केन्द्रीय रेलवे बोर्ड के विधान की रूप-रेखा तैयार की और अर्थ और व्यवसाय के स्वीकृत सिद्धान्तों के अनुसार, रेल की वित्तीय प्रणाली को नियमित कर दिया। इस कमेटी की सिफारिशें बाद के भारतीय रेल-विकास की जड़ सुदृढ़ होगयी।

एकवर्थ कमेटी में दस सदस्य थे, जिनमें से तीन भारतीय थे। भारतीय सदस्यों के नाम ये हैं:—

उस समय की कौंसिल ग्राफ़ स्टेट के सदस्य, श्री वी. एस. श्री निवास शास्त्री, भारतीय व्यापारी हितों के प्रतिनिधि, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास और कलकत्ता के विख्यात व्यवसायी, सर राजेन्द्र नाथ मुकर्जी। रेलों को राज्य के नियंत्रण में रखने के मूल प्रश्न पर कमेटी एकमत न हो सकी। कमेटी के पांच सदस्यों ने जिनमें भारतीय सदस्य सर आर. एन. मुकर्जी भी थे, अध्यक्ष और उनके चार सहयोगियों के राज्य-नियंत्रण और राज्य-संचालन के पक्ष का घोर विरोध किया था। कमेटी इस बात में जरूर एकमत थी कि अंग्रेजी कम्पनियां खत्म कर दी जायें क्योंकि उनसे काम नहीं चलाया जा सकता और उनके प्रबन्ध मे दी गयी सम्पत्ति उनकी नहीं है तथा उनका इन कामों में बहुत कम पैसा लगता है। कमेटी ने बताया कि बहुत से भारतीय राज्य-प्रबन्ध की प्रणाली का समर्थन करते हैं क्योंकि उनका विश्वास है कि कम्पनी के प्रबन्ध में देशी उद्योग-धन्धों की उन्नति को प्रोत्साहन नहीं मिलता। कम्पनियाँ माल के आयात और निर्यात पर अधिक ध्यान देती हैं। उनकी चालू प्रबन्ध-प्रणाली मे अंग्रेजों को अधिक लाभ होता है और अभी तक कम्पनियों ने 'कुछ थोड़ी सी जगहों को छोड़कर' भारतीयों को अच्छी जगहों पर नहीं रखा है और न उनको उचित शिक्षा-दीक्षा देने की कोई सुविधा दी है। सदस्यों ने कहा कि राष्ट्रीय जागृति के कारण भी लोगों का यह विचार पक्का होता जा रहा है कि भारतीयों के हाथ में अपने देश की रेलों का अधिक नियंत्रण होना चाहिए। कम्पनी-प्रबन्ध के भारतीय विरोध का यह सही निष्कर्ष था, फिर भी कुछ सदस्यों की राय थी कि भारत में बसकर काम करनेवाली कम्पनियों का दूसरा तरीका भारतीय अधिक पसन्द करेंगे।

दूसरे देशों के अनुभव

कमेटी के सामने जिन लोगों ने सबूत दिये उनकी राय के अनुसार, अमेरिका को छोड़ कर, जहां राज्य द्वारा शुरू में बनायी हुई रेलें भी बाद में महाजनी कम्पनियों को सौंप

दी गयीं, प्रायः सभी देशों का अनुभव सिद्ध करता है कि राज्य-स्वामित्व और राज्य-संचालन ही रेलों के चलाने और फैलाने का सबसे अच्छा तरीका है। 1930 के पहले, रीचबान 53,700 किलोमीटर लाइनों का संचालन करती थी और महाजनी कम्पनियों के हाथ सिर्फ 4700 किलोमीटर लाइनें थीं। वाइमर विधान ने जर्मनी की सारी रेलों को राज्य के नियंत्रण में कर दिया। जापान में, जहाँ बड़ी तेजी से रेलें बन चुकी थीं, राज्य ने 1905 में रेलों के बहुत बड़े भाग को महाजनी कम्पनियों से खरीद लिया था और 1932 में राज्य के अधीन 15000 किलोमीटर और महाजनी कम्पनियों के अधीन 7100 किलोमीटर लाइनें थीं। रूस में, शुरू में 1875–80 में चालू हुई 53 महाजनी कम्पनियों ने रेलों का विस्तार किया, किन्तु रूस की रेलों का बहुत बड़ा भाग धीरे-धीरे राज्य के नियंत्रण में आ गया, यहाँ तक कि पहले विश्वयुद्ध के बाद वहाँ की सभी रेलें राष्ट्र की सम्पत्ति हो गयी थीं। कनाडा, आस्ट्रेलिया व दूसरे ब्रिटिश उपनिवेशों में भी रेलों का संचालन राज्य की ओर से होता था।

अध्यक्ष और उनके चार सहयोगियों ने सम्मति देते हुए अलग से लिखा था, "इस बात को हम बड़ा महत्व देते हैं कि भारतीय जनमत कम्पनी के प्रबन्ध का विरोधी है और यह केवल इसलिए नहीं कि ऐसे महत्वपूर्ण सवाल पर भारतीय मत का आदर होना चाहिए, बल्कि इसका दूसरा भी महत्वपूर्ण कारण है। यहाँ की लगभग सभी रेलें भारतीय पैसे से बनी हैं। भारत की जनता रेलों का उपयोग करती है और उसका भाड़ा और महसूल चुकाती है। दिल्ली की विधान-सभा नये विधान के अन्तर्गत, रेल के बजट की रकम को मंजूर करती है। यह बहुत जरूरी बात है कि भारतीय जनमत किसी तरह रेल-प्रबन्ध के विरुद्ध न होने पावे। अन्त में उन्होंने बताया कि भारत की जो दशा है, उसमें कम्पनी-प्रबन्ध को चालू रखते हुए हमें इस समस्या के हल करने का कोई उपाय नहीं सूझता। इसलिए, हमें यह सुझाव रखते हुये कोई भी झिझक नहीं है, यद्यपि हममें से बहुतों ने महाजनी कम्पनियों का पक्ष मन में रखकर इस सवाल पर विचार किया है कि भारत में अपनी रेलों का संचालन राज्य स्वयं करे।"

राज्य-नियंत्रण

अध्यक्ष और उनके चार सहयोगियों के राज्य-प्रबन्ध के पक्ष में निर्णय देने के बाद कमेटी को यह तय करना था कि नियंत्रण अकेले केन्द्रीय अधिकार के हाथ रहे या कई स्वायत्तशासी अधिकारों में बांट दिया जाय। उस समय इंगलैण्ड और भारत में बहुत से लोग थे, जिनमें सुविख्यात और सुयोग्य इंजीनियर, सर एम. विस्वेस्वरैया भी थे, जिन्होंने जोर दिया था कि रेल-प्रबन्ध के टुकड़े करके कई प्रान्तों के नियंत्रण में दे दिया जाय। कमेटी को यह भी समझाया गया कि इतने बड़े देश की 37000 मील लम्बी रेलों का संचालन दिल्ली से नहीं हो सकता। कमेटी इन दलीलों से प्रभावित नहीं हुई। कमेटी ने लिखा कि यदि कोई भी बात रेलों के इतिहास से सीखी जा सकती है तो यह कि केन्द्र की ओर बढ़ने वाली शक्तियाँ केन्द्र से दूर जाने वाली शक्तियों से अधिक शक्तिशाली होती

हैं। बड़ी-बड़ी इकाइयों के बनाने से कार्य-कुशलता और बचत बढ़ती है। इसके समर्थन में कमेटी ने ग्रेट ब्रिटेन का उदाहरण सामने रखा जहाँ रेलों को चार टुकड़ों में बाँट दिया गया था। फ्रांस में रेलों के एकीकरण का बिल पेश हो चुका था और जर्मनी में राज्य की सब रेलों का नियंत्रण केन्द्रीय सरकार के अधीन करके उन्हें एक सूत्र में बाँधने का फैसला कर लिया गया था। मील-संख्या के बारे में कमेटी ने बताया कि संयुक्त जर्मनी की रेलों की मील-संख्या भारतीय रेलों की तुलना में कहीं अधिक थी और उनका यातायात भी बढ़ा-चढ़ा था। उन्होंने कैनेडियन पेसिफिक रेलवे का उदाहरण दिया जो महा प्रदेश के आर-पार तक फैली हुई थी और कैनेडियन नेशनल रेलवे जो अटलाण्टिक से पेसिफिक तक जाती थी। इन दोनों का संचालन एक ही केन्द्र, अर्थात्, मानट्रियल और टोरन्टो से होता था। इसीलिए, कमेटी ने सिफ़ारिश की कि दैनिक कार्य-प्रणाली को कई भागों में बाँटकर, रेलों का अन्तिम नियंत्रण एक केन्द्रीय अधिकार में रखा जाय।"

राज्य-प्रबन्ध और केन्द्रीय अधिकार के पक्ष में निर्णय कर लेने के बाद यह जरूरी था कि केन्द्रीय अधिकार का ढाँचा बनाया जाय, उसका राज्य से सम्बन्ध निश्चित किया जाय और रेलों की नयी योजनाओं के विस्तार और पुनर्वास में पूँजी लगाने के उपाय और साधनों की रूप-रेखा निश्चित की जाय।

रेलों की केन्द्रीय सत्ता

उस समय शासन की स्थिति इस प्रकार थी :

भारत सचिव हाउस आफ कामन्स के प्रतिनिधि होने के कारण भारतीय शासन के सर्वोच्च अधिकारी थे। उन्होंने गवर्नर-जनरल सहित कार्यकारिणी को कुछ अधिकार दे दिये थे, बाकी अपने पास रख छोड़े थे। भारत सरकार ने अपनी ओर से इनमें से कुछ अधिकार रेलवे बोर्ड को दे दिये थे। इनके अन्दर रेलवे बोर्ड को काम करने की पूरी आज़ादी थी, किन्तु वित्त विभाग की स्वीकृति सदा आवश्यक थी। रेलवे बोर्ड में उस समय तीन सदस्य थे। उनके अध्यक्ष को सरकार के विभागीय सचिव के समस्त अधिकार और जिम्मेदारी मिली हुई थीं। कुछ बातों में अध्यक्ष सर्वोच्च अधिकारी भी था और उसीका निर्णय वास्तव में बोर्ड का निर्णय माना जाता था किन्तु साधारण मामलों में बोर्ड मिल जुलकर काम करता था और बहुमत से फैसले करता था। किन्तु हर सदस्य को किसी प्रश्न पर कारण सहित अलग राय देने का अधिकार था। कमेटी ने इस प्रकार की पद्धति को बहुत गलत समझा। कमेटी ने बताया कि रेलवे बोर्ड असल में सौतेले बेटे के समान है और बहुतेरे ऐसे बेटों की तरह, उसके साथ भी दूसरे बच्चों की अपेक्षा बहुत कम अच्छा बर्ताव होता है। हम निश्चित रूप से कह सकते हैं कि जब तक वाइसराय की कार्यकारिणी में कोई ऐसा सदस्य न हो जो रेलों की दैनिक कार्य-प्रणाली के सम्पर्क में रहे, तब तक भारतीय रेलें कभी भी अपने नाम को सार्थक नहीं कर सकतीं। वे जितना चाहिये उतना कमा नहीं सकतीं और जनता की उचित सेवा नहीं कर सकतीं।

उनका विचार था कि कार्यकारिणी में रेलों के लिए एक अलग सदस्य रखा जाय, किन्तु भारत सरकार ने अन्त में रेलों की देखभाल का काम अपनी कार्यकारिणी के वाणिज्य सदस्य को दे दिया।

कमेटी का यह मत था कि रेलवे बोर्ड के पद, उसके अधिकार और कर्तव्यों में पूरे सुधार की जरूरत है। यह ध्यान रखने की जरूरत थी कि सरकारी रेलें उस समय सरकार की एक तिहाई आमदनी कमाकर दे रही थीं। उनके चलाने में कुल सरकारी खर्च का करीब एक चौथाई भाग लग रहा था। उनकी बची हुई आमदनी से न केवल रेलों में लगायी गयी सरकारी पूंजी का व्याज चुका दिया जाता था और पर्याप्त रुपया ऋण परिशोधन कोष (सिंकिंग फण्ड) में जमा हो जाता था, बल्कि इससे कर-दाताओं को भी काफी छूट मिल रही थी। इतनी बड़ी-बड़ी रकमों के लेन-देन का हिसाब रखने के अलावा, रेलवे बोर्ड को सौंपे गये काम का थोड़ा अनुमान इससे भी हो जाता है कि केवल एक साल में 71000 सूचनाएं' बोर्ड के कार्यालय से गयीं या वहां आयीं। कमेटी की राय में, बोर्ड के मुख्य कार्यालय के दैनिक काम के लिए तीन से अधिक सदस्यों की आवश्यकता थी। देश के विभिन्न भागों से कमेटी के पास शिकायतें आयी थीं कि रेलवे बोर्ड के सदस्य उनके यहां बहुत कम या कभी नहीं जाते। कमेटी का विचार था कि रेलवे बोर्ड को शासन के व्यौरे में नहीं जाना चाहिए। दिन प्रतिदिन के शासन से उसको कोई सरोकार नहीं रखना चाहिए, उसे केवल नीति निर्धारित करनी चाहिए और ऊपर से देख-भाल के साथ-साथ योजनाएं बनानी चाहिए। इसलिए कमेटी ने सुझाव दिया कि वाइसराय की कार्यकारिणी के संचार-सदस्य के नीचे एक बोर्ड बनाया जाय, जिसका प्रधान चीफ कमिश्नर हो, जिसमें चार सहायक कमिश्नर, एक वित्तीय कमिश्नर, और तीन रेलवे कमिश्नर हों जो पश्चिमी, पूर्वी और दक्षिणी भागों के प्रधान हों। बोर्ड के नीचे छः संचालक हों जो लेखा, सिविल इंजीनियरिंग, मेकेनिकल इंजीनियरिंग, सवारी और माल-यातायात, अन्तर्देशीय नौ परिवहन और सड़क-यातायात की देखभाल रखें रेलवे बोर्ड का एक मुख्य सचिव हो और उसका आंकिकी विभाग अलग कायम किया जाय।

स्वायत्त शासन और नियंत्रण

कमेटी चाहती थी कि रेल की नयी केन्द्रीय सत्ता बहुत कुछ स्वायत्तशाली हो। वह अपना कार्यक्रम स्वयं बनावे और बजट के अन्दर खर्च की योजनाएं बनाकर भारत-सरकार और भारत सचिव के अनुमोदन से, विधान सभा की स्वीकृति लेकर, उन्हें कार्यान्वित करे। दूसरे शब्दों में, 'सरकारी यंत्र का अभिन्न अंग रहते हुए, नीति और वित्त की मोटी-मोटी बातों में सरकारी नियंत्रण मे रहकर, वह स्वतंत्रता पूर्वक रेल का शासन चलावे।'

विभिन्न रेल-प्रबन्धों से चाहे वह राज्य-प्रबन्ध या कम्पनी-प्रबन्ध में हो, उसके सम्बन्धों के बारे में सिफ़ारिश की गयी कि विवरण और व्यौरे का नियंत्रण जहाँ तक

सम्भव हो ढीला कर दिया जाय, और रेलों के अध्यक्षों को दिन प्रति दिन के खर्च और कर्मचारियों के मामलों में बहुत कुछ स्वतंत्रता दे दी जाय।

केवल शासन-क्षेत्र में ही कमटी ने अधिक स्वतंत्रता की सिफारिश नहीं की। वित्त के मामले में भी कमेटी ने रेलों के व्यापारिक स्वरूप और उन्हें व्यापारिक सिद्धान्तों के अनुसार चलाने पर काफी जोर दिया। कमेटी की राय थी कि भारतीय रेल-प्रणाली की बहुत सी त्रुटियों और बुराइयों का कारण यह था कि रेलों को सरकार से पर्याप्त आर्थिक सहायता नहीं मिल पाती थी। रेलें अपने विकास और विस्तार के कामों में काफी खर्च नहीं कर पाती थीं। उन्हें संचालन, सामान की बदली और मरम्मत आदि आवश्यक कार्यों के लिए पर्याप्त धन न मिलता था। कमेटी की राय में वे ऐसी प्रणाली का स्वाभाविक परिणाम है जो आला दर्जे के व्यापारिक कामों की जरूरतों को पूरा करने के लिए अपनायी और लागू नहीं की गयी। जैसा कि उस समय के ईस्ट इण्डियन रेलवे के एजेण्ट मिस्टर (बाद में सर) क्लीमेन्ट हिण्डले ने कहा था कि रेलों में बड़ा घपला हुआ था, और भारतीयों ने एकमत होकर माँग की थी कि 'रेलवे बजट को देश के मुख्य बजट से, आमदनी और खर्च दोनों के लिए, बिलकुल अलग कर दिया जाय।' बजट बनाने की चालू पद्धति में रेलों की कमाई केन्द्रीय आमदनी का भाग हो जाती थी। आमदनी की दूसरी मदों के विपरीत, रेलों की कमाई में साल दर साल काफी उतार-चढ़ाव आते रहे। 1907 में मेकी कमेटी ने सिारिश की थी कि सरकार को समय-समय पर खर्च का एक स्तर निश्चित कर देना चाहिए जिसे वह यथाशक्ति तंगी के समय में भी पूरा करे। इस पर वास्तव में कोई अमल नहीं हुआ। इसकी जगह होता यह था कि कमजोर फसल और गिरे व्यापार के जमाने में वित्त मंत्री, मुख्य केन्द्रीय बजट बनाने की कोशिश में, शासन के चालू खर्च को पूरा करने में अपने को असमर्थ मानकर, रेलों को, बदली, विभागीय कार्यों, जरूरी विस्तार और विकास के लिए दी गयी रकम में बुरी तरह कमी कर देते थे। ऐसा करने से चाहे उनके काम अधूरे ही क्यों न पड़े रहजायें। कमेटी ने लिखा था कि इस तरह दी गयी रकम में कमी कर देने की मनमानी नीति का असर साल व साल के उतार-चढ़ाव के अलावा, किसी भी समय खराब हो सकता था, किन्तु उस समय तो हालत और बदतर हो जाती थी जब चालू साल की दी हुई रकम बीच में ही अचानक काट दी जाती थी और ऐसा प्रायः होता था। इससे बनते हुए काम रुक जाते थे, क्षण भर में नौकरों को जवाब मिल जाता था और इमारती सामान बेहिसाब पड़ा रह जाता थे। इतनी ही खराबी उस समय पैदा हो जाती थी जब साल के आखिरी भाग में, देश की वित्तीय हालत में अचानक सुधार हो जाने पर, वित्त-मंत्री अपना हाथ खींच कर, रेलों को अधिक खुलकर खर्च करने को कह देते थे।

इटारसी-नागपुर रेलवे का इतिहास इस नीति का खास नमूना था। 238 मील लम्बी लाइन का जिसमें कोई खास अड़चन न थी, 1908 में बनना शुरू हुआ किन्तु वह 1925 तक पूरी न हो सकी।

पृथक रेल-बजट

कमेटी की राय में रेलों ने इतना रुपया पिछले बीस वर्षों में कमा लिया था कि अगर रेल का बजट केन्द्रीय बजट से अलग रखा जाता तो उसके रोज के कामों तथा वृद्धि और विकास की योजनाओं के लिए काफी पैसा होता। भविष्य को ध्यान में रख कर योजनाएं न बनाने की नीति के अलावा यात्रियों की रोज की साधारण मांगों पर ध्यान न देने के कारण भारत के आर्थिक विकास को कितना धक्का लगा—कमेटी के लिए यह बताना असंभव था। कमेटी ने अन्त में लिखा 'हमारी समझ में यह बात नहीं आती कि विश्वयुद्ध भी भारतीय रेलों की पिछले कुछ साल की आमदनी के घपलेबाजी का कारण हो सकता है। इसलिए कमेटी ने सिफारिश की कि आगे रेलों का अलग बजट होना चाहिए और वे अपनी कमाई और खर्च की खुद जिम्मेदार बनें। चालू खर्चों को काटकर सबसे पहले इस आमदनी से रेलों के लिए उधार ली गयी सरकारी पूंजी का ब्याज चुकाया जाय। इसे देने के बाद, सामान्य सरकारी नियंत्रण में, वे बाकी बची हुई रकम को विभिन्न भागों में खपाने का प्रबन्ध खुद करें। उन्हें नये कामों में रुपया लगाने या सुरक्षित कर देने या किराया घटाने या कर्मचारियों की उन्नति के कामों में खर्च करने की आजादी मिलनी चाहिए। 1899 में ही, लार्ड कर्जन के समय में रेलवे राजस्व को केन्द्रीय सरकार के सामान्य राजस्व से अलग कर देने के कई प्रस्ताव सामने रखे गये थे लेकिन वे लागू नहीं हुए। इस तरह, कमेटी की यह सिफारिश नयी नहीं काफी पुरानी थी जिसको कार्यान्वित करने में 20 वर्ष लग गये।

प्रस्तावित योजना में कोई विशेष बात भी नहीं थी। जब बिसमार्क ने प्रशा में 1878 के आसपास रेलों का राष्ट्रीयकरण किया, उस समय की मूल योजना में पृथक रेलवे बजट की बात रखी गयी थी। 1908 में स्विस लोगों ने रेल का राष्ट्रीयकरण करना इसी शर्त पर मंजूर किया कि ऐक्ट में बिल्कुल साफ कह दिया जायगा कि 'रेलों का लेखा केन्द्रीय संघ के दूसरे लेखों से अलग रहेगा। इससे रेलों की वित्तीय स्थिति सदा मालूम होती रहेगी और रेलों की कमाई सिर्फ रेल के कामों में खर्च हुआ करेगी। जापान में रेलवे बजट सामान्य केन्द्रीय बजट से 1919 में अलग कर दिया गया था। फ्रांस में, जहाँ रेलें राज्य-संचालन में थीं, रेलों का बजट सामान्य बजट के साथ जुड़ा हुआ माना जाता था। इटली में हमेशा रेलों का अस्तित्व अलग रहा।

अर्थ व्यवस्था और आयोजन

एकवर्थ कमेटी की सिफारिशों के मोटे सिद्धान्तों को सरकार ने मान लिया था और इन्हें कार्यान्वित करने के लिए दो और कमेटियाँ बनायी गयीं। ये थीं रेलवे फाइनेन्स कमेटी जिसके सभापति सर मलकम (बाद में लार्ड) हेली थे, और इण्डियन रिट्रेंचमेन्ट कमेटी, जिसके प्रधान लार्ड इंचकेप नियुक्त हुए। रेलवे फाइनेन्स कमेटी को रेलवे बजट से अलग कर देने के सवाल पर विचार करना था और रेलों की जरूरतों के लिए अगले दस वर्षों

में पूँजी की लागत की योजना बनानी थी। इन्चकेप कमेटी रेलों के खर्च में बचत और रेलों की आमदनी बढ़ाने के लिए 1922 में बनायी गयी थी।

रेलवे फाइनेन्स कमेटी ने सिफारिश की कि लाइनों के तात्कालिक सुधार और उन्नति तथा चालू कामों को पूरा करने में अधिक रुपया लगाया जाय। उन्होंने आगे चलकर बताया कि पंच-वर्षीय योजनाओं के आधार पर कार्यक्रम तैयार किया जाय। हर पांच साल के लिये चालू अवधि के दो साल पहले प्रबन्ध कर लिया जाय। उन्होंने यह भी सुझाव दिया कि किसी साल की मंजूर रकम यदि साल भर में खर्च न हो पाये तो जब्त न की जाय, बल्कि अगले साल रेलों के लेखे में जमा कर दी जाय। कमेटी ने हिसाब लगाया कि 'रेलों के पुनर्वास और पूरा करने में अगले पांच वर्षों में 150 करोड़ रुपये खर्च होने चाहिए।'

इन्चकेप कमेटी ने, हेली कमेटी के पांच साल में 150 करोड़ रुपये खर्च करने के प्रस्ताव का, पैसे की तंगी के कारण, विरोध किया। उन्होंने यह तय किया कि 'अब अधिक रुपया तभी खर्च हो सकता है जब यह पूरी तरह समझा दिया जाय कि इस खर्च से रेलों को इतनी बचत होने लगेगी जिससे अतिरिक्त व्याज चुकाया जा सकेगा।' कमेटी ने कहा कि यह देश रेलों की रुपये से मदद नहीं करता। इसलिए ऐसे उपाय करने चाहिए कि रेलों के खर्च जहाँ तक हो सके, कम हो जायँ और वे स्वावलम्बी बन जायँ, ताकि राज्य की भारी लागत पर काफी मुनाफा होने लगे। कमेटी की राय थी कि पूँजी की लागत पर साढ़े पांच प्रतिशत का नफा 'अधिक न माना जाय'। इंचकेप कमेटी ने यह भी सुझाव रखा कि मूल्य ह्रास निधि बनायी जाय, नियंत्रण को अधिक भागों में बांट दिया जाय और रेलों के लेखा-प्रणाली की पूरी जाँच हो। इंचकेप कमेटी ने एकवर्थ कमेटी के शासन के पुनर्गठन के कुछ सुझावों का समर्थन किया।

यद्यपि इन तीनों कमेटियों की मोटी मोटी सिफारिशों को लागू करने में समय लग गया, फिर भी इन कमेटियों ने रेलों के शासन, प्रबन्ध और विकास के विभिन्न अंग और पहलुओं की न केवल बहुत उपयोगी जाँच-पड़ताल के बाद उचित विश्लेषण किया, बल्कि उन्होंने ऐसे सुझाव भी दिये जिनसे राज्य-प्रबन्ध में, शासन और वित्त की काफी छूट के साथ, रेलों के विस्तार की नींव पड़ी।

कार्यान्वित करना

1922 में रेलवे बोर्ड का पुनर्निर्माण हुआ और सर क्लीमेन्ट हिण्डले उसके पहले चीफ कमिश्नर बने। फिर एक वित्तीय कमिश्नर बोर्ड में नियुक्त हुआ। बोर्ड में दो और कार्य-वाहक सदस्य थे। रेलवे राजस्व केन्द्रीय सरकार के सामान्य राजस्व से सितम्बर 1924 तक अलग न किया जा सका। इस समय सरकार ने धारासभा के उस प्रस्ताव को मान लिया जिसमें कार्यकारिणी सहित गवर्नर-जनरल से रेलवे राजस्व को सामान्य राजस्व से अलग कर देने और रेलों की बचत से केन्द्रीय कोष में हर साल एक निश्चित रकम देते रहने की सिफारिश की गयी थी। कमेटी ने यह भी सुझाव रखा कि इस रकम को चुका

देने के बाद तीन करोड़ रुपये सालाना तक की बचत रेल के आरक्षित कोष (रिजर्व फण्ड) को दे देनी होगी और तीन करोड़ से ऊपर की बचत का एक तिहाई भाग केन्द्रीय राजस्व में जमा कर दिया जायगा। केन्द्रीय राजस्व में जमा करने के साथ-साथ रेलों की आरक्षित पूंजी से छीज-बट्टा और पूंजी का घाटा पूरा किया जायगा। इस प्रकार रेलों की वित्तीय स्थिति को सुदृढ़ किया जायगा जिससे वे कम किराये में जनता की अधिक सेवा कर सकें।

विधान सभा ने, फ़रवरी 1923 में सुझाव रखा कि ईस्ट इण्डियन और ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला रेलवे कम्पनियों को, जिनके ठेके खत्म हो रहे थे, राज्य अपने प्रबन्ध में ले ले और इस प्रकार उसने, कम्पनी-प्रबन्ध के विरुद्ध राज्य-प्रबन्ध के पक्ष में, अपनी प्रबल इच्छा प्रकट की। पहली जनवरी 1925 को ईस्ट इण्डियन रेलवे और 30 जून 1925 को ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला रेलवे कम्पनियों का प्रबन्ध राज्य के हाथ में आगया। रेलवे बजट के सामान्य बजट से 1924 में अलग होने और अपनी रेलों का स्वयं प्रबन्ध करने के सिद्धान्त को 1925 में राज्य द्वारा मान लिये जाने पर नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, जिनसे रेलों को वित्तीय और शासन सम्बन्धी मामलों में बहुत कुछ स्वतंत्रता मिल गयी और वे अपने भावी कार्यक्रम को सुदृढ़ व्यापारिक सिद्धान्तों पर चलाने लगीं।

5. राज्य-नियंत्रण

1922 में रेलों के विकास का नया दौर शुरू हुआ जो भारत की आजादी से पहले परिवर्तन का अन्तिम दौर था। इस दौर में कुछ लाइट रेलों को छोड़कर, देश की समूची रेल-व्यवस्था का प्रबन्ध सरकार ने अपने हाथ में ले लिया। बीच के समय में, सरकार ने कम्पनियों द्वारा संचालित रेलों को, उनका ठेका खत्म होते ही अपने अधिकार में लेने का काम बराबर जारी रखा। साथ ही, कम्पनियों ने, दखल या मदद के लिए, भारत-सचिव की ओर देखना बन्द कर दिया। वे अब विधान-सभा और जनता की आवाज को अधिक सुनने लगीं। अब रेलों के शासन और विशेष कर, उनकी नीति की, विधान सभा और जनता में विशेष छान-बीन और आलोचना होने लगी। विधान-सभा के अधिकार निःसंदेह सीमित थे; इन अधिकारों को मिथ्या भी कहा जा सकता है। किन्तु उसकी गैर-सरकारी सीटों पर बैठनेवाले सदस्यों का बौद्धिक स्तर इतना ऊंचा था और जनता में उनका इतना अधिक प्रभाव था कि जिस किसी नीति की आलोचना उनमें से अधिकांश गैर-सरकारी सदस्य करते थे उसकी अवहेलना करना सरकार और रेलवे-अधिकारियों–दोनों में से किसी के लिए संभव नहीं था। विधान सभा में, रेलवे बजट के हर अधिवेशन में सवालों और अनेक कमेटियों द्वारा, रेल की नीति और उसकी कार्य-प्रणाली के हर पहलू पर बहस होती रही। साथ ही मजदूर-संगठन का भी प्रभाव बढ़ रहा था और राष्ट्रीय स्वाभिमान की नव जागृत भावना यात्रियों और सर्व साधारण में दिखायी पड़ने लगी थी।

तीन अवस्थाएं

इन वर्षों में रेल-विकास की तीन स्पष्ट अवस्थाएं आयीं। 1930 तक असाधारण उन्नति और वृद्धि का समय, जिसके बाद ही मन्दी का दौर और फिर दूसरा विश्वयुद्ध शुरु हो गया। 1924 में रेलों की कुल मील-संख्या 38,039 थी। यह 1908 में मेकी कमेटी द्वारा निर्धारित 100,000 मील के लक्ष्य से बहुत कम थी। उस समय की कार्यकारिणी के रेल-सदस्य, सर चार्ल्स इन्स, ने केन्द्रीय विधान सभा में एक पंच वर्षीय कार्यक्रम रखा था, जिसमें चालू सामान के पूर्ण सुधार और बदलाव के साथ-साथ हर साल कम से कम 1000 मील लाइन बनाने की योजना थी। रेलवे बोर्ड द्वारा स्वीकृत या जांच की हुई योजनाओं की कुल मील-संख्या मार्च 1926 के अन्त तक 6000 और 7000 के बीच थी। 1928-29 में 1000 मील प्रतिवर्ष का लक्ष्य पार हो गया और 1282 मील लम्बी लाइन चालू हो गयी। फिर भी प्रचुरता और समृद्धि के आठ सालों में (1924-32) केवल 5,360 मील

लाइनें और बनीं। अगले वर्षों में युद्ध तक, कोई विशेष विकास नहीं हुआ। लड़ाई के दिनों में तो कुछ चालू लाइनें उखाड़कर फौजी कामों के लिए बाहर भेज दी गयीं। 1924-32 तक की नयी रेलों में कुल 44.90 करोड़ रुपया खर्च हुआ। इन आठ सालों में 122.89 करोड़ रुपया चालू लाइनों के काम पर खर्च हुआ, जो रेलों पर किये गये कुल पूंजीगत खर्च का 73 प्रतिशत था। 75.29 करोड़ रुपया मरम्मत और सामान के बदलाव में खर्च हुआ।

चालू लाइनों पर पूंजीगत खर्च दो तरह के थे। पहला स्थिर सामान पर और दूसरा चलते-फिरते सामान पर। स्थिर सामान से सड़कों की जमीन, स्टेशन, सिगनल, इमारतें आदि और चलते-फिरते सामान से इंजिन, सवारी-डिब्बे और माल-डिब्बे आदि से तात्पर्य है। फिर भी खर्च के ये दोनों मद एक दूसरे से बहुत कुछ सम्बन्धित हैं। बड़े-बड़े इंजन अधिक माल ढोनेवाले डिब्बे और गाड़ियों की तेज रफतार के लिए यह आवश्यक था कि रेल की पटरियाँ सुधारी जायँ, स्टेशनों पर अधिक सुविधाएं दी जायँ, पुल मजबूत किये जायँ और यार्डों और रेल के कारखानों का विस्तार किया जाय। स्थिर सामान पर 1924-32 में 85.67 करोड़ या कुल खर्च का 70 प्रतिशत रुपया खर्च हुआ। चलते-फिरते सामान पर 37.22 करोड़ रुपया खर्च हुआ।

ये आंकड़े महत्वपूर्ण हैं। लागत की बड़ी रकमों से प्रकट होता है कि राष्ट्र और रेलों के विकास के इन आठ वर्षों में कई महत्वपूर्ण काम हुए।

इस समय भारत में बिजली की रेल का प्रारम्भ एक विशेष घटना है। भारत के रेल-विकास के इतिहास में 3 फरवरी 1925 अमिट तिथि है। इसी दिन, उस समय के बम्बई के गवर्नर, सर लेसली विलसन, ने ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला रेलवे की हार्बर शाखा की पहली बिजली की रेल विक्टोरिया टरमिनस से कुरला तक चालू की। इसके तुरन्त बाद ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला रेलवे की कल्यान तक की उपनगरीय लाइन और भोर तथा थाल घाट के ऊपर से पूना और इगत पुरी की मुख्य लाइन पर बिजली की गाड़ियाँ चलने लगीं। बम्बई, बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया की उपनगरीय लाइन बाद में बोरिवली और बिरार तक बढ़ा दी गयी। मद्रास की उपनगरीय रेल पर 1928 में काम चालू हुआ और 1931 में पूरा हुआ। इन सब कामों में बहुत बड़ी पूंजी लगी।

इस समय बहुत सी लाइनों को दोहरी और चौहरी करने, कुछ पुलों को मजबूत और कुछ को फिर से बनाने, स्टेशन यार्डों के सुधार, रेलवे-कारखानों के पुनर्संगठन, प्लेट-फार्मों पर छाया की व्यवस्था या उन्हें फिर से बनाने, अतिरिक्त जलपान गृह, प्रतीक्षालय, सण्डास और सफाई के प्रबन्ध आदि के काम में बहुत अधिक रुपया खर्च किया गया। कई स्टेशनों के बनाने, सुधारने और बढ़ाने में भी काफी रुपया लगा। इनमें उपनगरीय शाखा का अन्तिम स्टेशन चर्चगेट और बम्बई में बी. बी. एण्ड सी. आई. रेलवे का अन्तिम स्टेशन-बम्बई सेन्ट्रल स्टेशन की इमारतें विशेषरूप से उल्लेखनीय हैं। बम्बई सेन्ट्रल स्टेशन की इमारत पर 1·5 करोड़ रुपये की लागत आयी। विक्टोरिया टरमिनस को फिर से सुधारा गया

और बहुत बड़ी लागत पर इसका विस्तार किया गया। इस समय के दूसरे उल्लेखनीय स्टेशनों में हावड़ा, कानपुर, लखनऊ, त्रिचनापली और ईरोद के रेलवे स्टेशन थे।

इस जमाने में रेलों का विकास इतनी तेजी से हो रहा था कि सर चार्ल्स इन्स ने 1926–27 के बजट-भाषण में शिकायत की कि 'अब हमारे सामने बड़ी कठिनाई यह है कि हम रुपया किस तरह खर्च करें, अर्थात्, स्वीकृत योजनाओं को किस प्रकार जल्दी से पूरा करें।' बहुत से मामलों में यह देखा गया कि रेल के एजेण्टों ने आवश्यकता से बहुत अधिक रुपया मांग लिया था। योजनाओं को अधिक तेजी से पूरा करने और अधिक से अधिक खर्च करने का प्रोत्साहन देने के लिए रेलवे बोर्ड ने फालतू रुपया देना शुरू किया। रेल के वित्त-कमिश्नर, मिस्टर सिम, की इस प्रथा के अनुसार, रेल-प्रशासनों द्वारा भेजे हुए अनुमानों में एक मुश्त कटौती कर दी जाती थी, किन्तु उन्हें बजट में मांगी गयी रकम को खर्च कर देने के लिए कह दिया जाता था। एजेण्टों को नयी योजनाएं चालू करने के लिए अतिरिक्त अधिकार भी मिले थे। कुछ मामलों में तो मूल योजना के बनने या अनुमान तैयार होने के पहले ही खर्च की रकम मंजूर हो गयी थी।

बहुत सी योजनाएं 'काल्पनिक अनुमान' पर मंजूर कर ली गयीं और उनपर मांगी हुई रकमों से बहुत अधिक खर्च हो गया। वेजवुड कमेटी ने कांगड़ा वैली रेलवे को मिसाल दी थी, जिसकी विधान-सभा में कड़ी आलोचना हुई थी। इस रेलवे लाइन के बनाने का मूल अनुमान 113.80 लाख रुपये था। दोहराया हुआ अन्तिम अनुमान 134 लाख रुपये का हुआ, किन्तु पहली अप्रैल 1929 को जब रेल बनकर चालू हुई तब उसमें 296 लाख रुपये खर्च हो चुके थे। बाली-पुल की मिसाल भी सामने थी। योजना रखने के समय वित्त-कमिश्नर ने कहा था, 'वित्तीय आधार पर बाली-पुल योजना को ठीक बताना बड़ा कठिन होगा।' फिर भी 5 दिसम्बर 1925 को बोर्ड ने इस योजना को स्वीकार कर लिया। उस समय इसकी लागत का अनुमान 179.90 लाख रुपया था। 1931 में बनकर तैयार होने पर इसमें कुल 320 लाख रुपये लग गये।

इस नीति के परिणाम पर अपनी राय देते हुये वेजवुड कमेटी ने 1937 ने लिखा था कि:—

'हमारे ध्यान से यह बात नहीं उतरती कि पिछले पन्द्रह वर्षों में स्टेशन, कारखाने और मारशलिंग यार्ड, अधिकतर रेल-कला के बढ़िया से बढ़िया नमूने पर बनाये गये हैं। उनमें न केवल सम्भावित आवश्यकताओं का पूरा पूरा विचार किया गया, बल्कि विवेक की जगह मर्यादा पर अधिक जोर दिया गया है। इन अत्याधिक योजनाओं का सबसे बुरा परिणाम यह है कि वे रेलों को भारी व्याज के बोझ से बराबर दबाये रहती हैं।' 1931-32 तक लागत की पूँजी तो केवल 25 प्रतिशत बढ़ी किन्तु व्याज 40 प्रतिशत तक बढ़ गया। संचालन-अनुपात, जो लड़ाई के बाद तक (1919-20) असाधारण स्थिति और सामान की महंगाई आदि के रहते हुए भी, 46 और 57 प्रतिशत के बीच था, घट-बढ़कर 65.02 और 76.22 के बीच पहुँच गया।

फिर भी, इस समय सरकार को रेलों में लगायी हुई पूंजी से, रेलों की बची हुई कमाई से ब्याज तथा दूसरी रकमें चुका देने के बाद, बहुत लाभ हुआ। 1900 के आंकड़ों के अनुसार सरकार को उस साल 11 लाख रुपये की बचत हुई। 1920 में खत्म होनेवाले पाँच वर्षों में, वास्तविक औसत 11.48 करोड़ रुपये का था। सेपरेशन कनवेंशन, अर्थात, 1924-32 के बाद के पहले 6 वर्षों में केन्द्र के सामान्य राजस्व को दी गयी रकम का औसत 5·90 करोड़ रुपये था, जब कि 2·79 करोड़ रुपये की अतिरिक्त रकम आरक्षित कोष को दे दी गयी थी। 1932 के बाद से खर्च तो एक-सा होता रहा किन्तु रेलों की कुल आमदनी बहुत तेजी से गिर गयी।

1926-27 में, रेलों के संचालन का खर्च 69·37 करोड़ और कुल आमदनी 114·75 करोड़ रुपये थी। 1931 और 1934 के बीच में, संचालन-खर्च का औसत 69 करोड़ रुपये के आसपास रहा, जबकि कुल आमदनी का औसत गिरकर करीब 97 करोड़ रुपये रह गया। इस प्रकार संचालन-अनुपात बढ़कर 71 प्रतिशत हो गया। 1930-37 की मंदी के जमाने में रेलों ने केवल मन्दी के पहले साल 1930-31 में एक बार 5·74 करोड़ रुपये केन्द्र के सामान्य राजस्व से दिये। अगर 1930-31 की यह रकम बाद के सात सालों में बांट दी जाय, तो सरकार के वार्षिक लाभ का औसत 80 लाख से कुछ ऊपर पड़ता था। ऐसे ही मौके पर, उस समय के रेल-सदस्य के शब्दों में, सरकार ने 'ऐसे सैकड़ों छेदों को, जिनसे बढ़ती के जमाने की रकम निकल सकती थी, बन्द करने के' उपायों पर विचार करना शुरू किया।

वेजवुड कमेटी

29 अक्टूबर 1936 को, सर राल्फ ई. वेजवुड की अध्यक्षता में भारतीय रेलवे जाँच समिति नियुक्त की गयी। इसका काम था, 'भारत की सरकारी रेलों की स्थिति की जाँच करना, कमाई की बचत को बढ़ाने के उपाय बताना और उचित अवधि के भीतर शीघ्र ही रेलों की वित्तीय स्थिति को मजबूत और लाभकारी बना देना।'

पहले विश्वयुद्ध के अन्त से रेलों के वित्तीय और संचालन-विकास का सविस्तार विवेचन करते हुए वेजवुड कमेटी ने खर्च में अधिक बचत और संचालन में क्षमता लाने के कई सुझाव दिये। उन्होंने, अन्य बातों के साथ-साथ मूल्यह्रास निधि का निर्धारण अधिक तर्कपूर्ण आधार पर करने को कहा। आमदनी बढ़ाने के लिए कमेटी ने रेलों के व्यापारिक विभाग के विकास और प्रचार तथा जन-सम्पर्क के लिए विभाग कायम करने का सुझाव दिया। गवर्नमेण्ट आफ़ इण्डिया एक्ट 1935 के अन्तर्गत, संघीय शासन के बनने पर, संघीय रेलवे प्राधिकार (फेडरेल रेलवे अथारिटी) कायम कर देने की व्यवस्था रखी गयी थी। संघीय रेलवे प्राधिकार से सम्बन्धित कमेटी के कुछ सुझाओं का केवल शास्त्रीय महत्व है क्योंकि 1935 के एक्ट के संघीय अंग लागू न हो सके। फिर भी, बाकी के कुछ सुझावों के आधार पर केन्द्रीय विधान-सभा ने एक एक्ट बनाया, जिससे रेलवे बोर्ड के अधिकार और बढ़ा दिये गये और उसका स्वायत्तशासी स्वरूप अधिक स्पष्ट कर दिया गया।

दूसरा विश्व-युद्ध

मन्दी के जमाने में, रेलों की आमदनी इतनी कम हो गयी थी कि केन्द्रीय कोष से लगायी गयी पूंजी का ब्याज भी उससे नहीं चुकाया जा सकता था। रेल-प्रशासनों ने आरक्षित कोष से भी काफी रकम निकाल ली थी वह प्रायः समाप्त हो चुका था और वे अब मूल्यह्रास निधि की तरफ भयानक निगाह से ताकने लगे थे। 1935-36 में ऋण-स्थगन की घोषणा करनी पड़ी और केन्द्रीय राजस्व में रुपया जाना रुक गया। पैसे की इस तंगी में, रेलों की देख-रेख व सम्भाल में कमी करनी पड़ी या साल-साल के लिए टालना पड़ा और सुरक्षा के लिए कम से कम सामान की बदली और मरम्मत की गयी। 1937 में हालत बहुत कुछ सुधरी किन्तु 1939 में, ज्यों ही सुधार और बदली के बकाये को पूरा करने के लिए रेलों ने काम शुरू किया, दूसरा विश्व-युद्ध छिड़ गया। विचित्र बात यह थी कि युद्ध से रेलों को लाभ हुआ। उन्होंने आरक्षित कोष पूरा कर दिया और अपने सामान को सुधारने के साथ-साथ केन्द्रीय राजस्व में भी अपना भाग दे डाला। फिर भी, लड़ाई से उनके साधनों पर बहुत बोझ पड़ा और उनका सामान बेमरम्मत और बरबादी की हालत में दिखाई देने लगा।

लड़ाई के दिनों में भारतीय रेलों को मध्यपूर्व के लिए इंजन, माल के डिब्बे और लाइनों के सामान देने पड़े। इस काम के लिए 26 शाखा लाइनें उखाड़ी गयीं। रेलवे के बहुत से कारखानों में गोला-बारूद बनाने के काम होने लगे। लड़ाई के अन्त में रेलवे के बहुत से सामान सुधारने और बदलने की जरूरत थी और रेल-व्यवस्था प्रायः अस्तव्यस्त हो चली थी।

लड़ाई के तुरन्त बाद देश स्वतन्त्र हुआ, इसके साथ ही देश का बंटवारा हुआ और भारत और पाकिस्तान के बीच रेलों की सम्पत्ति और मील-संख्या बाँट दी गयी। इससे नयी समस्याएं पैदा हो गयीं जिनसे रेलों की बिगड़ी हुई हालत पर और अधिक बोझा आ पड़ा। स्वतन्त्रता के बाद रेलों का समूचा प्रबन्ध राज्य के नियंत्रण में आया। युद्ध और बंटवारे की दुखद देन तथा बहुत सी अनहोनी कठिनाइयों के होते हुए भी रेलों ने अपने विकास के नये दौर में प्रवेश किया।

सौ वर्ष पहले रेलें कम्पनी प्रबन्ध में चालू हुई थीं। इसके बाद कम्पनी-प्रबन्ध और कम्पनी की खुद की रेलों का समय आया, साथ ही साथ सरकारी रेलें कम्पनी के प्रबन्ध में और राज्य-प्रबन्ध में चलती रहीं। दूसरे काल में, मुख्य-मुख्य लाइनों का प्रबन्ध और नियंत्रण राज्य के हाथ में आ गया किन्तु शासन का नियंत्रण पूर्ण रूप से ब्रिटिश पार्लियामेण्ट की सर्वोच्च सत्ता के अधीन रहा। अन्तिम काल में रेलों का नियंत्रण सरकार के हाथों में आया और उन पर पूर्णरूप से भारतीय जनता का आधिपत्य हो गया।

6. रेल-पथ

रेल मार्ग का अर्थ है 'समतल भूमि पर सख्त, चिकनी रेलों की दो समानान्तर लाइनें बिछाना जिन पर पहिये आसानी से लुढ़क सकें।' देखने में यह काम बहुत आसान मालूम होता है, किन्तु इसकी पूर्ति में कभी-कभी असाधारण कठिनाइयाँ आती हैं और बेहिसाब खर्च करना पड़ता है। ऊँची-नीची भूमि को समतल बनाना पड़ता है। निचले भाग और गहरी घाटियों को भर कर या मार्ग-पुल बनाकर उन्हें समतल करना पड़ता है। अगर ऊँचाई बहुत अधिक या खड़ी होती है, तो सुरंग बनाकर रास्ता निकाला जाता है। नदियों और जल मार्गों में, चाहे वे छोटे हों या बड़े, पुल बनाना आवश्यक हो जाता है। लाइनों को खड़ी घाटियों, बड़ी-बड़ी नदियों और समुद्र के टुकड़ों के ऊपर ले जाने के लिए ऊंचाइयों पर धीरे-धीरे चढ़ने वाले मार्ग-पुलों को दोनों ओर सावधानी से बनाना पड़ता है, जिससे गाड़ियाँ उन पर से निकल जायें। यह सब इसलिए किया जाता है कि समूचा रास्ता प्रायः समतल बन जाय जिससे आकर्षण-शक्ति के मुकाबले घसीटने वाली शक्ति सहज में चलती रहे।

जिन-जिन देशों में रेलें निकाली गयीं, उनमें भारत न केवल उन बड़े देशों में से एक था, वरन् यहाँ, संसार के सभी देशों की तरह, नाना प्रकार की भौगोलिक कठिनाइयां भी इंजीनियरों के सामने आयीं। भारत का जलवायु भी एकसा नहीं है। देश के कुछ भाग ऐसे हैं जहाँ लगातार बरफ पड़ती है और कुछ भाग ऐसे हैं जहाँ भीषण गर्मी पड़ती है। कहीं कहीं बालू के बड़े-बड़े रेगिस्तान हैं और कहीं पानी के खण्ड और दलदल भरे पड़े हैं। कहीं असाधारण सूखी गर्मी और कहीं लगातार वर्षा के बीच यहाँ का मौसम बदलता रहता है। देश का कुछ भाग इतना समतल है कि मीलों तक बराबर और चिकनी जमीन मिलती है। परन्तु यहाँ ऐसे क्षेत्र भी हैं जहाँ चट्टानों की हजारों फीट ऊँची चोटियाँ पायी जाती हैं। देश के कुछ हिस्सों में घने बीहड़ जंगल हैं जिनमें जंगली जानवर भरे पड़े हैं। इनके अलावा ऐसे स्वास्थ्यकर, उपजाऊ क्षेत्र भी हैं जो संसार के किसी भी भाग से अधिक घने बसे हुए हैं। देश में बहुत सी ऐसी नदियाँ हैं जो सूखने पर छोटे चश्मों के समान बहने लगती हैं किन्तु बाढ़ में वे भीषण रूप धारण कर लेती हैं।

दक्खिन

भारत का समुद्र तट 3600 मील लम्बा है; सबसे अधिक लम्बाई 1800 मील और सबसे अधिक चौड़ाई 1400 मील है। उत्तर की ओर गंगा के मुहाने से हिमालय के नीचे तक साधारण ऊँचाई का कछारी उपजाऊ मैदान फैला हुआ है। इस महाप्रदेश के

दक्षिणी विस्तार के बहुत बड़े भाग का दक्खिनी भाग विशेष प्रकार का उठा हुआ ऊँचा-नीचा पठार है। समूचे पच्छिमी समुद्र तट की ओर ताप्ती नदी के मुहाने से कन्या कुमारी तक पठार खड़ी चढ़ाई और ऊँची चट्टानों में अचानक समाप्त हो जाता है, जिसके पीछे समुद्र और पहाड़ियों के बीच का निचला समुद्री मैदान, जो कहीं भी 30 मील से अधिक चौड़ा नहीं है, छूट जाता है। ताप्ती के किनारे से कोयम्बटूर के आसपास पाल घाट तक फैली हुई पठार की कगार को पच्छिमी घाट कहते हैं। इसकी सामान्य ऊँचाई कहीं भी समुद्र तट से 3000 फीट से अधिक और 2200 फीट से कम नहीं है। फिर भी सबसे अधिक ऊँचाई 5000 फीट की महाबलेश्वर और 6000 फीट की कुर्ग पर है। दक्षिण में पूर्वी तट की ओर, मद्रास की दिशा में नीलगिरी पहाड़ियाँ फैली हुई हैं। यह घाट कन्याकुमारी के सबसे दक्षिणी स्थान तक फैला हुआ है। पश्चिमी घाट 10 से 49 मील तक चौड़ा है। पच्छिमी घाट की खड़ी पहाड़ियाँ दक्खिनी पठार के लिये दीवारों का काम देती हैं। पच्छिम की ओर से जैसे बम्बई से आने वाली गाड़ियों को, 30 मील से कुछ ऊपर चलकर 2000 से 3000 फ़ीट की खड़ी चढ़ाई पार करनी पड़ती है। इस चढ़ाई के बीच-बीच में गहरी दरारें और खाइयाँ हैं। पठार पच्छिमी घाटी की कगार से पूर्व की ओर ढालू है और बंगाल की खाड़ी से कुछ पहले ही पूर्वी घाट की श्रृंखला में समाप्त हो जाता है। यह पहाड़ी भाग पच्छिम की अपेक्षा सुडौल है।

दक्खिनी पठार की उत्तरी सीमा के पहाड़ों की तीन स्पष्ट श्रेणियाँ हैं—सबसे उत्तरी अर्थात् अरावली पहाड़ की श्रेणियां, मध्य अर्थात् मुख्य विन्ध्याचल पर्वत और दक्षिण में सतपुड़ा की पहाड़ियां। दक्खिनी पठार में मध्य प्रदेश, बम्बई राज्य का अधिकांश भाग हैदराबाद, मैसूर, और मद्रास के प्रान्त आते हैं। उत्तर में 1400 मील की समूची चौड़ाई में हिमालय की श्रृंखलाएं हैं जो कहीं-कहीं 450 मील गहरी है। इसकी चोटियाँ 29000 फीट से भी अधिक ऊँची हैं।

भारतीय नदियाँ

दूसरी कठिनाई भारत की नदियों के कारण थी जिन पर पुल, रास्ते और बाँध बनाने के लिये इंजीनियरों को अपनी पूरी कला, चतुराई और समझदारी से काम लेना पड़ा। पहले अविभाजित भारत में सिन्धु और गंगा प्रधान नदियां थीं, जो हिमालय के बीच से उसके बर्फ का जल लेकर निकलती थीं। पहली सामान्य रूप से उत्तर से दक्षिण, और दूसरी पच्छिम से पूर्व की ओर बहकर क्रमशः अरब सागर और बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। गंगा की तीन मुख्य सहायक नदियाँ, यमुना, घाघरा और सोन हैं। दक्खिन के उपरी पठार में बहुत सी नदियाँ हैं, जो पच्छिमी घाट से निकलकर सम्पूर्ण पठार में बहती हुई, पूर्वी घाट को पार करके बंगाल की खाड़ी में गिरती हैं। इनमें अरावली और विन्ध्याचल पहाड़ों के बीच की कृष्णा, गोदावरी और महानदी प्रधान नदियाँ हैं। चम्बल नदी उत्तर की ओर जमुना तक बहती है। विन्ध्याचल और सतपुड़ा पहाड़ियों के बीच में, विशाल नर्मदा नदी पच्छिम की ओर सम्पात की खाड़ी और अरब सागर तक

बहती है। इन मुख्य नदियों के अलावा, देश के विभिन्न भागों को काटती हुई, बहुत सी सहायक नदियां, देश में जल मार्गों का जाल बिछाती हुई बहती हैं।

शुरू के रेल-इंजीनियरों के हिसाब से, नदियों की सबसे बड़ी विशेषताएँ हैं : उनका बृहत आकार, समय समय पर बाढ़ के दिनों में उनकी अटूट जल राशि का बहाव और वेग, उनके बाढ़ का फैलाव तथा उनके, टढ़े-मेढ़े अनिश्चित रास्ते। पुल बनाने के काम में इन नदियों ने अत्यन्त कठिन समस्याएँ उपस्थित कर दीं।

सिन्ध और राजपूताना के रेगिस्तानों ने दूसरे प्रकार की कठिनाइयां सामने खड़ी कीं अर्थात्, बालू की खिसकती हुई अनिश्चित भूमि और काम करने के लिए मीलों तक पानी का अभाव।

निर्माण की समस्याएँ

इन भौगोलिक कठिनाइयों के होते हुए भारत के रेल इंजीनियरों की सफलताओं पर विचार कीजिए। यह न भूलिए कि सौ साल पहले बड़े-बड़े निर्माण कार्यों के सामान, औजार आदि आज के मुकाबिले बहुत साधारण और निम्न श्रेणी के थे। कर्मचारियों को विशेष प्रकार से भरती करना और सिखाना पड़ता था। बड़े बड़े सामान और औजारों को बैलगाड़ी व ऊँट गाड़ी और कभी कभी खच्चरों और गदहों पर ले जाना पड़ता था जहां सवारियाँ नहीं पहुँच पाती थीं। किन्हीं मौकों पर इंजीनियरों को सिर्फ आदमियों की मदद पर रहना पड़ता था। कुछ जगहें जंगली जानवरों से भरे बीहड़ जंगलों में थीं, जहाँ नाना प्रकार की बीमारियां हो जाती थीं या ऐसे सूखे रेगिस्तान में थीं जहां पानी का कहीं पता न था।

आरम्भ के निर्माता

यद्यपि यहां के लोग निर्माण-कला से अपरिचित न थे, फिर भी उनके लिए रेलों का काम नया था जिसमें विशेष प्रकार की कठिनाइयाँ थीं। जिस समय योरप तथा अन्य प्रदेशों के कुछ लोग आदिम जमाने के मामूली झोपड़ों में रहते थे, उस समय यहाँ के कारीगरों के परिश्रम और कुशलता से कुछ ऐसी दर्शनीय इमारतें बनीं जिनकी आज भी विशेष सराहना की जाती है। हरप्पा और मोहनजोदड़ो (3000 ई० पू०) जैसे नगरों में बहुत बढ़ी-चढ़ी संस्कृति और ऊंचे दर्जे की निर्माण-कला मिलती है। चौड़ी सड़कें, बड़े-बड़े कमरों के अच्छे मकान, उनके अन्दर के बढ़िया कुए और स्नान-घर, पानी के निकास का विस्तृत प्रबन्ध आदि दुनियाँ के अन्य देशों से बढ़ी-चढ़ी कार्य-कुशलता का प्रमाण है।

भारत का भ्रमण करने वाले को आज भी प्राचीन समय के मन्दिरों, महलों और स्तूपों तथा अपने समय के समृद्ध, सम्पन्न और विशाल नगरों के अवशेष देखने को मिलेंगे। इन इमारतों से प्राचीन समय के इंजीनियरों के निर्माण-ज्ञान, अद्भुत कौशल और असाधारण साधनोंका पता चलता है। इनमें से बहुत सी इमारतें तीन हजार वर्ष पुरानी हैं। कुछ में तो

ऐसी विलक्षण विशेषताएँ देखने को मिलती हैं जो योरप के इंजीनियरों के लिए पांच सौ वर्ष पहले तक बिलकुल नयी थीं।

सुरंगों का काम भी भारत के लिए नया न था। यह ठीक है कि कुछ बड़ी और कुछ लम्बी सुरंगें, जैसे दिल्ली से आगरा तक की, मुगल-काल में बनी थीं, किन्तु 400-300 वर्ष ईसा से पूर्व की ऐसी छोटी सुरंगों के अवशेष अब भी मिलते हैं जो किले से महल तक बनी थीं और जिनसे हाथी आसानी से निकल जाते थे। एलोरा, अजन्ता, एलीफेन्टा और खण्डगिरि की गुफाओं को देखने वाले प्रमाण के साथ कह सकते हैं कि 2000 से 2500 वर्ष पहले के भारतीय इंजीनियर सुरंग बनाने और चट्टानों में सुराख करने में विशेषज्ञ थे; उन्हें भूगर्भ विद्या का बहुत ऊँचा ज्ञान था और वे चट्टानों को काटकर ऐसी चीजें बनाते थे, जो आज भी मनुष्य को आश्चर्य में डाल देती हैं।

प्रारम्भिक राज-मार्ग

कई हजार वर्ष पहले के ऋगवेद में भारत के विभिन्न भागों के राज-मार्गों—महा-पथ—का वर्णन आता है। प्राचीन हरप्पा नगर (3500 वर्ष ई० पू०) के खोदे गये अव-शेषों में, तिकोनी छत की कोचवान की सीट सहित छोटे रूप की तांबे की दो पहिये की गाड़ी मिली है। यह शायद दुनियां की पहियेदार गाड़ियों में सबसे पुराने किस्म की है। पहले मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त (322 से 298 ई० पू०) के प्रधान मंत्री, कौटिल्य, ने विभिन्न प्रकार की सड़कों की चौड़ाई तथा नाना प्रकार की सवारियों के लिए, सड़कों का हिसाब बताया है, जैसे चार पहिये के रथ निकलनेवाली सड़कें, सम्राट की सड़कें, फौजी छावनियों तथा गांवों को जानेवाली सड़कें आदि। ब्रिटिश इतिहासकार, वी. ए. स्मिथ, के अनुसार सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने उत्तर-पच्छिम सीमा को राजधानी (आधुनिक पटना) से मिलाने के लिए 700 मील (10000 स्टेडिया) लम्बी पहली ग्राण्ड ट्रंक रोड बनवायी। 'प्राचीन भारत की सड़कों का वर्णन सम्राट अशोक (273-237 ई० पू०) के एक शिलालेख में भी मिलता है। उसमें लिखा है, 'सड़कों के किनारे-किनारे बट-वृक्ष लगाये गये थे, प्रति आधा कोस (5 फरलांग) पर कुए खुदे थे, विश्राम-गृह बने थे तथा जगह-जगह यात्रियों और जानवरों के आराम के लिए बहुत सी गौशालाएँ व हौज़ बने थे।' पांचवीं सदी के पहले चीनी यात्री, फाहियान ने सड़कों और नदियों से भारत का भ्रमण कर, अपने संस्मरण में बताया है कि राजमार्गों के किनारे-किनारे यात्रियों के लिए अनेक सुविधाओं सहित बहुत से विश्राम-गृह बने हुए थे।

शेरशाह (1530-45) ने देश के विभिन्न भागों में सड़कों की उन्नति और विकास के लिए बहुत काम किया। 'तारीख-ए-शेरशाही' में लिखा है कि उसने पंजाब से बंगाल के समुद्रतट के सोनार गांव नगर तक एक लम्बी सड़क बनवायी। उसने आगरा से दक्खिन राज्य के बुरहानपुर तक, आगरा से जोधपुर और चित्तौड़ तक तथा उत्तर भारत में लाहौर से मुलतान तक की सड़कें बनवायीं। 'चहार गुलशन' में लिखा है कि, दिल्ली को उत्तर में काबुल और कन्धार, पूर्व में बंगाल, दक्षिण-पच्छिम में औरंगाबाद और गोलकुण्डा तथा

पच्छिम में अजमेर, बीजापुर और अहमदाबाद से मिलाने के लिए 24 मुख्य राजमार्ग बनाये गये।

रेलों को बनाने के लिए भिन्न प्रकार के साधनों और कार्य-कौशल की जरूरत थी। उन्होंने ऐसी समस्याएँ खड़ी कर दीं जिनका सामना सड़कें बनाने में नहीं हुआ था। लाइन बिछाने में, देश की भौगोलिक स्थिति के कारण, रास्ता बनाने या मार्ग चुनने की बहुत कम छूट थी। अगर बम्बई को मद्रास या उत्तर और पूर्व के किसी स्टेशन से मिलाना हो तो पच्छिम घाट को तोड़ने और न केवल उसके ऊपर से बल्कि खानदेश और दक्खिन के ऊंचे-नीचे जंगलों के बीच से रास्ता बानने का उपाय करना जरूरी था। इसी तरह, कोई भी लाइन कलकत्ता को दिल्ली से या मध्य भारत को पूर्व से नहीं मिला सकती थी जब तक गंगा, जमुना, महानदी, सोन, नर्मदा, गोदावरी तथा उनकी अनेक सहायक नदियों के ऊपर जिनमें बाढ़ का पानी भरता था और जिनमें से कुछ को क़ाबू में करने की कोई कार्यवाही अभी तक नहीं हुई थी, पुल बनाने के उपाय और साधन न निकल आते।

7. घाटों का मोर्चा

बम्बई से कल्याण तक रेल की लाइन बनाने में बहुत बड़ी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस रास्ते में एक सुरंग और एक लम्बे पुल के अलावा कई जगह पहाड़ों को काट कर रास्ता निकाला गया। इस लाइन के बन कर तैयार होने में करीब चार साल लग गये। लेकिन घाटों से ऊपर रास्ता निकालने की तुलना में फिर भी यह बच्चों का खेल था। इसमें तो इतनी बड़ी कठिनाइयाँ सामने आयीं जितनी संसार में कहीं भी अबतक इंजीनियरों के सामने न आयीं थीं।

पच्छिमी घाट की कहानी बहुत सी बातों में भारतीय रेलों की कहानी है। उस समय के रेल इंजीनियरों के लिए उसमें बहुत बड़ी अड़चनें थी। सौ साल बाद, आधुनिक युग में काम करने वाले इंजीनियरों को भी इन समस्याओं को सुलझाने में अपनी कुशलता और पटुता का पूरा उपयोग करना पड़ता है। 1850-60 के इंजीनियरों की निर्माण सम्बन्धी सफलताएं उतनी ही महत्वपूर्ण थीं जितनी आज 1950-55 के इंजीनियरों की हैं।

घाट की समस्या

1850-60में एक ओर बम्बई को मद्रास से और दूसरी ओर पूर्वी भारत को उत्तरी भारत से मिलाने के लिए भोर और थाल घाट के ऊपर लाइन बिछाने का सबसे बड़ा सवाल सामने था। नयी रेलवे लाइन बिछाने के लिए सुरंगों को चौड़ा करना, नये रास्ते काटना और नये मार्ग-पुलों को बनाने की समस्या फिर सामने आया। इन सब कामों को दिन प्रतिदिन के भारी यातायात में छेड़-छाड़ किये बिना पूरा करना था।

कल्याण से उत्तर-पूर्व, थालघाट की ओर, कल्याण से कसारा तक रेलवे लाइन करीब 42 मील लम्बी है। इस लम्बाई पर लाइन धीरे-धीरे प्रति सौ फीट में एक फुट के खड़े चढ़ावों और 20 चेन (1 चेन की लम्बाई 6.6 फीट होती है) व्यासार्ध के कठिन घुमावों से होकर समुद्रतट से 948 फीट ऊपर कसारा तक बनायी गयी है। इस भाग पर बहुत ही महत्वपूर्ण काम किया गया है। यह रास्ता 5 लाख घन गज से अधिक लावा की कड़ी और काली चट्टानों को काट कर और 13 लाख घन गज से अधिक भराव को पाट कर बनाया गया है।

कसारा से इगतपुरी तक करीब साढ़े नौ मील लम्बा दूसरा भाग बाद में चालू किया गया। यह लाइन घाट के ऊँचे-नीचे भागों में से होकर गुजरती है। इसमें बड़े-बड़े घुमाव और खड़ी चट्टानें हैं। इसकी लगभग तीन-चौथाई लम्बाई में घुमाव ही घुमाव हैं। 17 चेन व्यासार्ध का सबसे टेढ़ा घुमाव 2170 फीट लम्बा है। 20 चेन का दूसरा घुमाव 3000

फीट लम्बा है। यह लाइन बहुत से नालों, दर्रों और कगारों तथा कई सुरंगों से निकलकर प्रति 37 फीट में 1 फुट की लगातार चढ़ाई के साथ साढ़े नौ मील लम्बी है। इसका रास्ता समुद्रतट से 948 फीट से लेकर 1918 फीट तक ऊँचा है। रास्ते की जमीन तैयार करने में 25 लाख घन गज से अधिक कड़ी चट्टानें काटकर लगायी गयीं। पहाड़ियों को काटने से जितना सामान निकला, लगभग उतना ही खाइयों को पाटने में भी लगा। कटाव की सबसे अधिक गहराई समुद्र के धरातल से 60 फीट और भराव की समुद्र तट से सबसे अधिक ऊँचाई 90 फीट है।

उल्लेखनीय सफलताएँ

इस लाइन के कुछ मार्ग-पुल और सुरंगें इंजीनियरिंग की महत्वपूर्ण सफलताएँ मानी जाती हैं और इनकी गिनती संसार के सर्वश्रेष्ठ कामों में की जाती है।

अहेगांव का मार्ग-पुल बहुत शानदार है, जो 750 फीट लम्बा और 182 फीट ऊँचा है। यह घोड़े की नाल के आकार की पहाड़ियों से घिरी हुई खड़ी घाटियों के बीच में है। लाइन दो सुरंगों से होकर घाटी तक आती है और फिर अहेगांव मार्ग-पुल होकर खड़ी चट्टानों को पार करती हुई निकल जाती है।

शुरू में इस मार्ग-पुल में कीलों पर सरकने वाले गाटरों के जाल नीचे की ओर तीन दर में लगे थे, और दोनों ओर पर प्रति 40 फीट की तीन चिनाई की डाटें थीं। जमीन पर गाटरों के इस जाल को कसा गया था, और 182 फीट की पूरी ऊँचाई तक मशीन से उठाया गया था। गाटरों के सिरों को खम्भों के खड़े खाँचों में डालकर मशीन से धीरे-धीरे ऊपर उठाया गया और नीचे के खांचों की चूना-पत्थर से चिनाई कर दी गयी। 1899 में इन गाटरों के जाल को हटाकर लाइन के नीचे रखे हुए गाटरों के हर जोड़े के बीच इकहरे गाटर रख दिये गये। नीचे का जाल बन जाने पर पुराने गाटर हटा दिये गये।

ये गाटर आधुनिक यातायात की आवश्यकताओं को पूरा करने में कमजोर साबित हुए और इन पर दस मील प्रति घंटा की चाल का प्रतिबंध कई वर्षों तक लगा रहा। 1949 में मार्ग-पुल की दोहरी लाइन हटाकर इकहरी लाइन बनायी गयी। लाइनों के बीच के तिरछे गाटरों को अधिक मजबूत करके चाल का प्रतिबन्ध हटा दिया गया। 1951 में रेल-पथ को चौड़ा करने के साथ-साथ बम्बई के यातायात को एक अलग मार्ग-पुल बनाकर दूसरी दिशा में घुमा दिया गया। इस लाइन में दो और बड़े मार्ग-पुल हैं जिनकी लम्बाई क्रमशः 450 फीट और 429 फीट और ऊँचाई 60 फीट और 84 फीट है। इस लाइन के छः ऊँचे-ऊँचे मार्ग-पुलों की कुल लम्बाई 2,230 फ़ीट है।

यह लाइन विभिन्न स्तर की चट्टानों में काटी गयी कई सुरंगों से होकर निकलती है। सबसे लम्बी दो सुरंगें 1461 फीट और 1271 फीट की हैं। इस लाइन की सब सुरंगों की कुल लम्बाई 7,966 फीट है।

भोर घाट

भोर घाट तक लाइन बिछाने का काम भी असाधारण रूप से कठिन था। भोर घाट के ऊपर लाइन पहाड़ों की एक ही तरह की बनावट और मिलती-जुलती भौगोलिक कठिनाइयों से होकर जाती है। दोनों घाटों की ऊँचाई भी लगभग एकसी है। भोरघाट की चोटी 2,027 फीट और थाल घाट की 1912 फीट है। दोनों का सबसे सीधा चढ़ाव भी एक है, अर्थात् 37 फीट में 1 फुट चढ़ना पड़ता है। सबसे टेढ़े घुमाव भी बिल्कुल मिलते-जुलते हैं। भोरघाट का व्यासार्ध 15 चेन और थाल घाट का 17 चेन है। भोरघाट में इंजीनियरों को अधिक समतल पहाड़ियाँ और साफ चट्टानें मिलीं। भोर घाट में 25 सुरंगें हैं जिनकी कुल लम्बाई 4000 गज है। इनमें बड़ी-बड़ी सुरंगों की लम्बाई क्रमशः 435 और 341 गज है। भोर घाट में आठ ऊँचे मार्ग पुल हैं, जिनकी कुल लम्बाई 2961 फीट है। सबसे बड़े दो मार्ग पुलों की लम्बाई 500 फीट से अधिक और सबसे अधिक ऊंचाई 160 और 163 फीट है। सात से तीस फीट लम्बी दर के 22 पुल हैं और विभिन्न आकार की 81 पुलियाँ हैं।

उस समय के इंजीनियरों की कठिनाइयों और परेशानियों का चित्रण 'मौकी मल्ली' मार्ग-पुल के वर्णन में मिलता है। भोर घाट का यह मार्ग-पुल 1856 में बनकर तैयार हो गया था। इसमें 50 फीट के आठ मेहराब थे। जमीन से रेल-मार्ग की सबसे अधिक ऊँचाई 135 फीट थी। मार्ग-पुल के बनते ही, इसके नीचे की घड़घड़ाहट से होने वाले शोर की नाना प्रकार की कहानियाँ लोगों में फैली, जिनसे गाँववालों में बड़ी घबड़ाहट मच गयी। उन्होंने कल्पित अन्धविश्वास के आधार पर अधिकारियों के पास बहुत से प्रार्थना-पत्र भेज-कर यह समझाने की भरसक कोशिश की कि इस मार्ग-पुल में कहीं बहुत बड़ी खराबी रह गयी है। मामूली दरारों का पता सबको था, किन्तु जाँच करने पर वे बढ़ती हुई नहीं मालूम हुई। गाँववालों के हो-हल्ला पर कोई ध्यान नहीं दिया गया। 19 जुलाई 1867 की भाग्य-निर्णायक तिथि से कुछ दिन पहले प्रधान इंजीनियर ने उप-सहायक इंजीनियर को साथ लेकर मार्ग-पुल की पूरी जांच की और चिन्ता करने की कोई बात नहीं पायी। 19 जुलाई 1867, शुक्रवार, को सुबह 6.30 बजे इस मार्ग-पुल पर अन्तिम गाड़ी निकली। एक प्लेट बिछानेवाले ने, जो लाइन की चाभियाँ कस रहा था, एकाएक अपने नीचे की जमीन को धँसते देखा। 'वह आँख बन्द करके पूरी ताकत से पुल के किनारे की ओर दौड़ा।' घूमकर देखते ही उसे मालूम हुआ कि पुल ढह गया।

'मौकी मल्ली' पर अब कोई मार्ग-पुल नहीं है। पूरी जगह भर दी गयी है और अब वहाँ एकसा भराव का रास्ता बन गया है।

विचित्र कठिनाइयाँ

भोर और थाल घाट पहाड़ियों की अनेक विचित्र कठिनाइयों के साथ-साथ वहाँ की गर्मी और बरसात स्वास्थ्य के लिए कम हानिकर न थीं। कहीं कहीं तो 200 इंच तक

बरसात होती थी। अनेक घातक बीमारियों के कारण मजदूर घबड़ाकर भाग जाते थे। ऊबड़-खाबड़ जमीन के कारण सामान एक जगह से दूसरी जगह पहुँचाने में कठिनाई पड़ती थी। अचानक लुढ़क पड़ने वाली घातक चट्टानें, लावा की बनी हुई चट्टानों की कठोरता, अनेक गहरे दर्रे और पानी के चश्मे, पानी की बेहद कमी और कभी बेहद बाढ़, जंगली जानवर और भयंकर साँप आदि बड़ी-बड़ी कठिनाइयों का सामना था। लार्ड एलफिन्सटन ने घाटों की इन अड़चनों के बारे में कहा था, 'मुझे भय है, कहीं से भी रेल मार्ग निकाला जाय, दुर्घटनाओं से हम नहीं बच सकेंगे। इस खतरे को कम करने के लिए सभी सम्भव साधन काम में लाये जायँ, किन्तु यह सोचना ही बेकार होगा कि डेन्यूब का मोर्चा बेदाग फतह हो जायगा, या भारत ऐसे देश की भौगोलिक कठिनाइयों में बिना जीवनबलि चढ़ाये रेल मार्ग पूरे हो जायेंगे।'

1859-60 की बरसात में हैजा के प्रकोप से बहुत से मजदूर मर गये और सारा काम ठप हो गया। इन कामों में 30000 और 40000 के बीच आदमी लगे हुए थे। इनमें तीस प्रतिशत दुर्घटनाओं के शिकार हो गये।

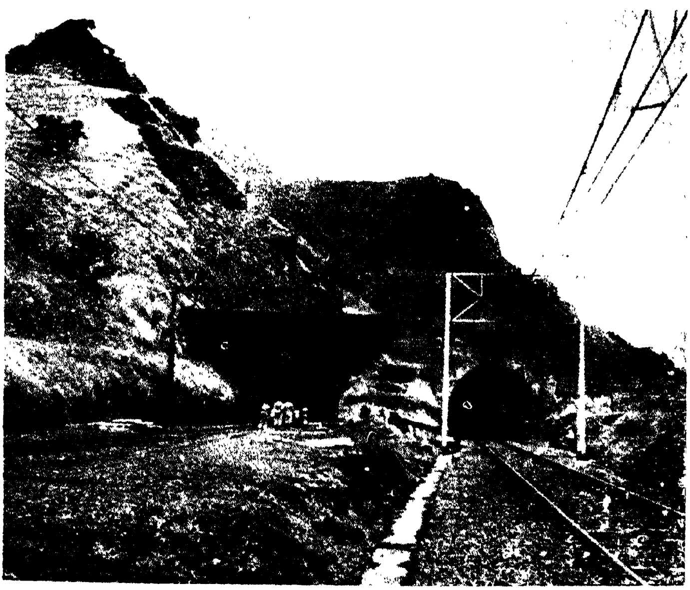
थाल और भोर घाट की खड़ी चढ़ाइयों पर घोड़ा या बैलगाड़ी के कई दिन के रास्ते को आज कुछ घण्टों में पूरा कर लेने वालों में ऐसे लोग कम ही होंगे जो उस जमाने की कठिनाइयों का ठीक-ठीक अनुमान कर सकें। कितने साहस और कौशल के साथ, रेल-निर्माण के प्रारम्भिक काल में इंजीनियरों ने पहाड़ी चट्टानों को काट-छाँटकर, बम्बई को भारत के दूसरे भागों से मिलानेवाली इस रेल-लाइन को बनाया था। इसका अनुमान लगाना कठिन है। कामों की भव्यता और कारीगरों के विलक्षण कौशल का थोड़ा बहुत पता तभी लगता है जब, पैदल या खुले ठेलों पर चलकर, ध्यानपूर्वक देखा जाय कि कितनी विलक्षण तरकीबों से खड़ी पहाड़ियों की प्राकृतिक असमानता को समतल क्रम में लाने के लिए ऊबड़खाबड़ जमीन को साफ़सुथरा बनाया गया और किस प्रकार गहरे और बड़े-बड़े गड्ढों को पाटकर, ऊँचे मार्ग-पुलों तक चिनाई के विशाल खम्भों को खड़ाकर रास्ते को एकसा किया गया। लगातार बड़ी-बड़ी और चौड़ी सुरंगें बनाकर खड़ी चट्टानों को काटकर ऊँचे पहाड़ों के अन्दर से रास्ते निकाले गये। इन सब उपायों से ऊँचे-नीचे चट्टानी और भयानक पहाड़ी क्षेत्र को साफ-सुथरा करके हर मौसम में माल और सवारी गाड़ियों के लिए सुरक्षित कर दिया गया। इन पर पिछले सौ वर्षों में भारत के अन्य भागों की अपेक्षा बहुत अधिक यातायात रहा है।

जमघट

जो रेलवे लाइन अपनी सुरंगों, पुलों और मार्ग-पुलों के कारण सौ वर्ष पहले संसार की सबसे उल्लेखनीय सफलताओं में गिनी जाती थी, जिसने उस समय देश के यातायात की सभी जरूरतों को पूरा किया था, वही लाइन कुछ पिछले सालों से भारतीय इंजीनियरों के लिए एक महान् समस्या बन गयी है। इस समय यातायात के बढ़ जाने से इसमें सुधार करना आवश्यक हो गया है। इसके लिए इंजीनियरों को पहले के इंजीनियरों से भी अधिक साहस



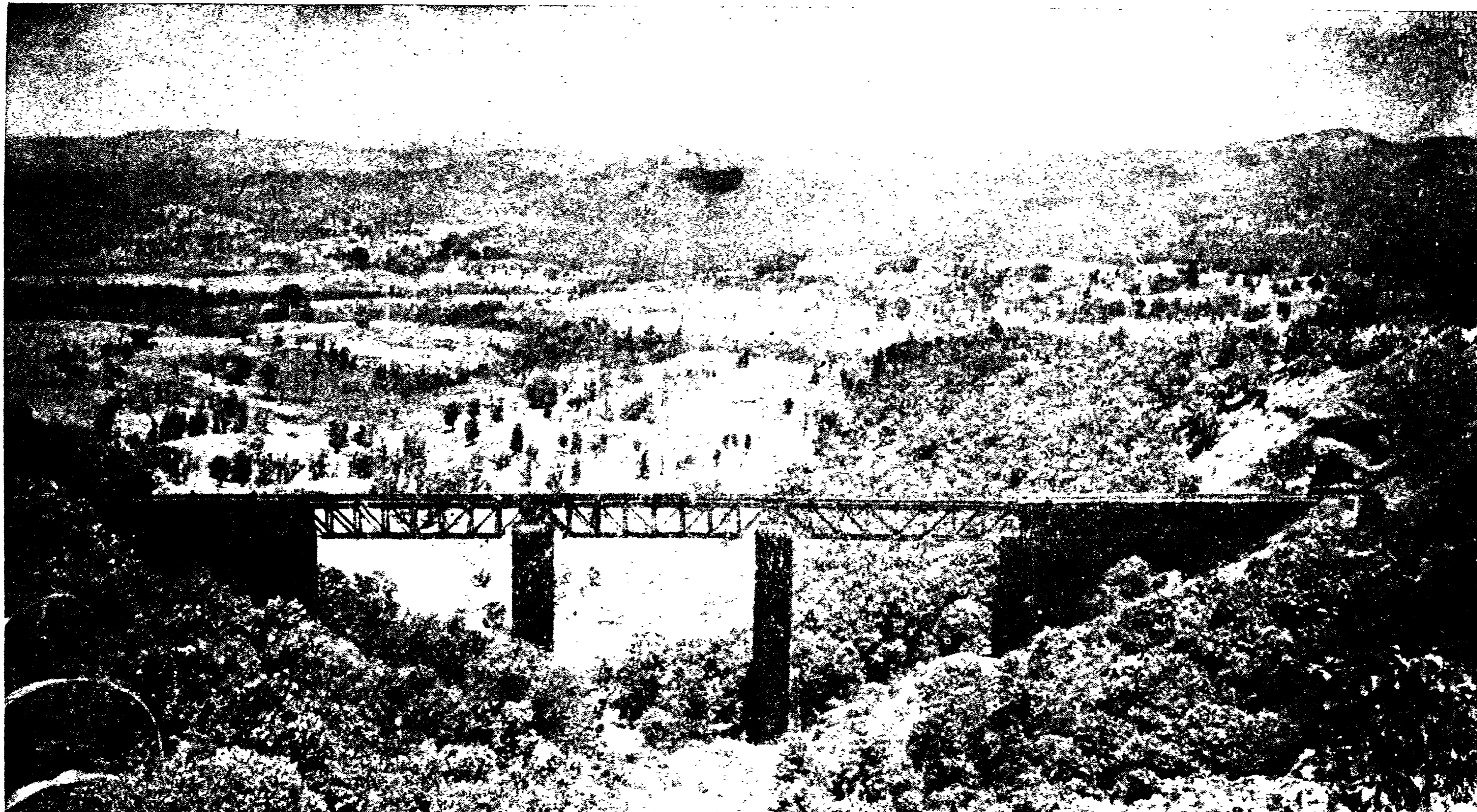
भोर घाट का घुमाव नं० 3 मणिजड़ित सुरंग नं० 7 अ। सौ साल पहले जब यहाँ खुदाई हो रही थी, कई प्रकार के सफेद धातु मिले। 1950 में जब सुरंग चौड़ी की जा रही थी, तो इस सफेद धातु के समाचार से लोगों में बड़ी सनसनी फैल गयी और कुछ लोग समझे कि इस सुरंग में हीरे हैं।



भोरघाट के घुमाव नं० 7 पर पहली सुरंग की बायीं ओर से बड़ी 2 चट्टानों के फटकर चिन्ह दिखलायी पड़ने पर वहाँ लोहे के खम्भे लगाये गये। दोहरी लाइन बिछाने के लिए दूसरी सुरंग बनायी गयी।



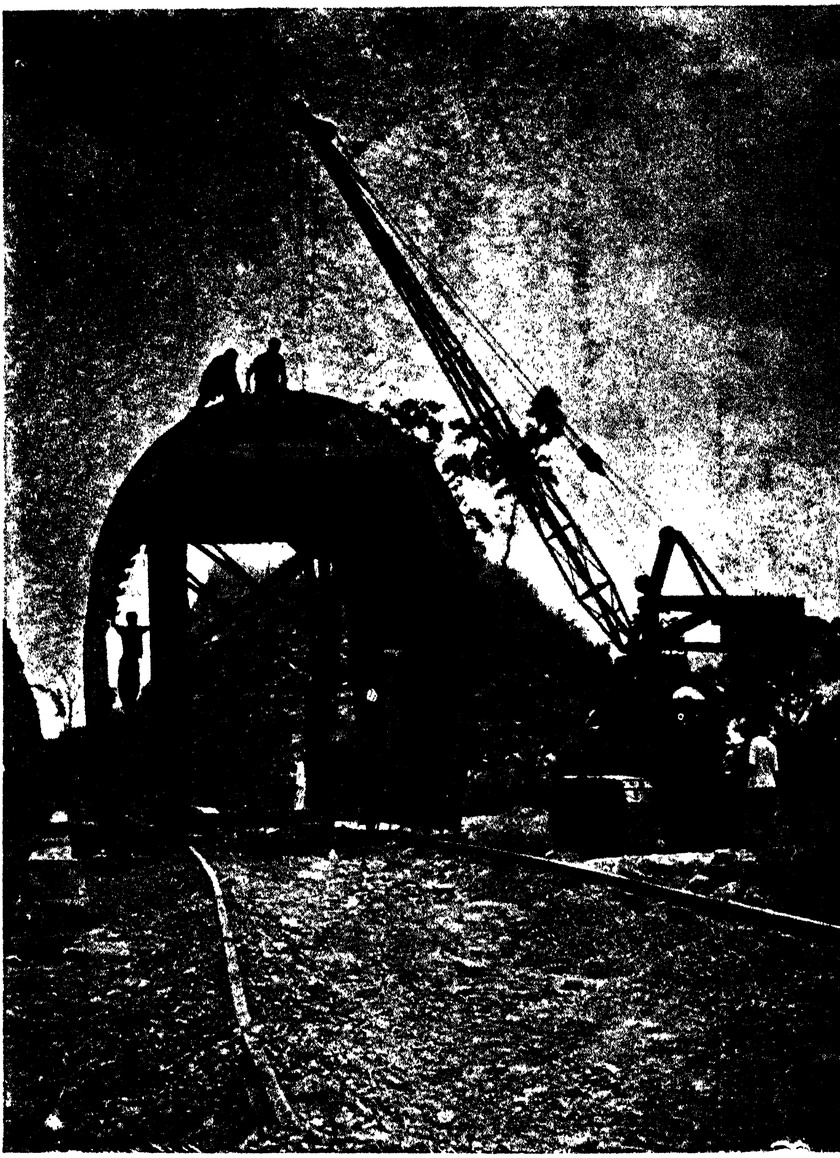
बदनी-बरखेड़ा के बीच दोहरी लाइन बिछाना। नयी डाउन मुख्य लाइन का निर्माण जहाँ से बम्बई की ओर चौका सुरंग का दृश्य दिखलायी पड़ रहा है।



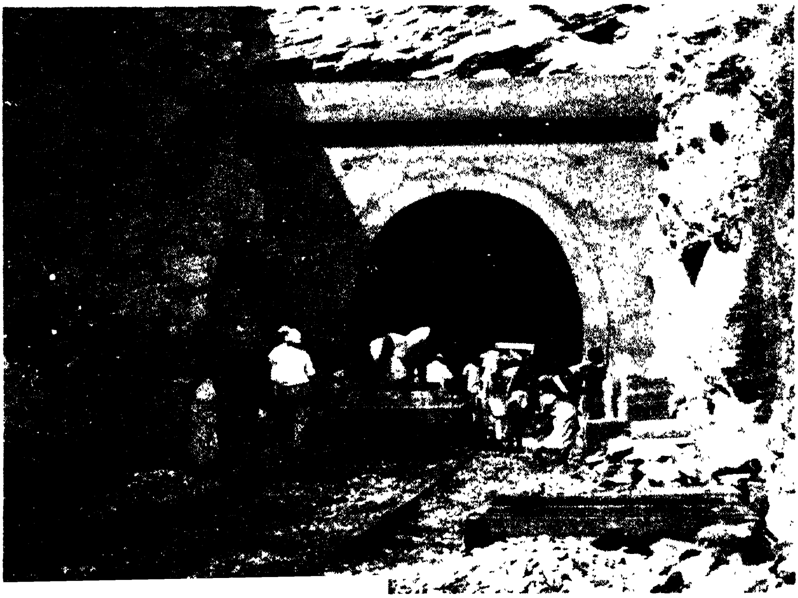
थाल घाट-इगतपुरी। इहेगांव-पुल का दृश्य जिसमें 140 फीट लम्बे गर्डर के तीन डेक टाइप टुकड़े दिखलाये गये हैं।



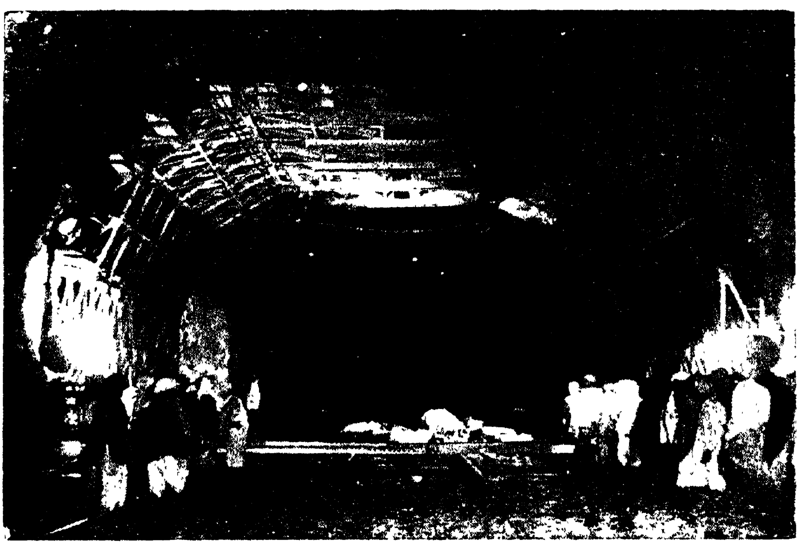
भोर घाट का पुराना रिवर्सिंग स्टेशन जिसे 1928 में दूसरी लाइन बिछाने के कारण तोड़ दिया गया



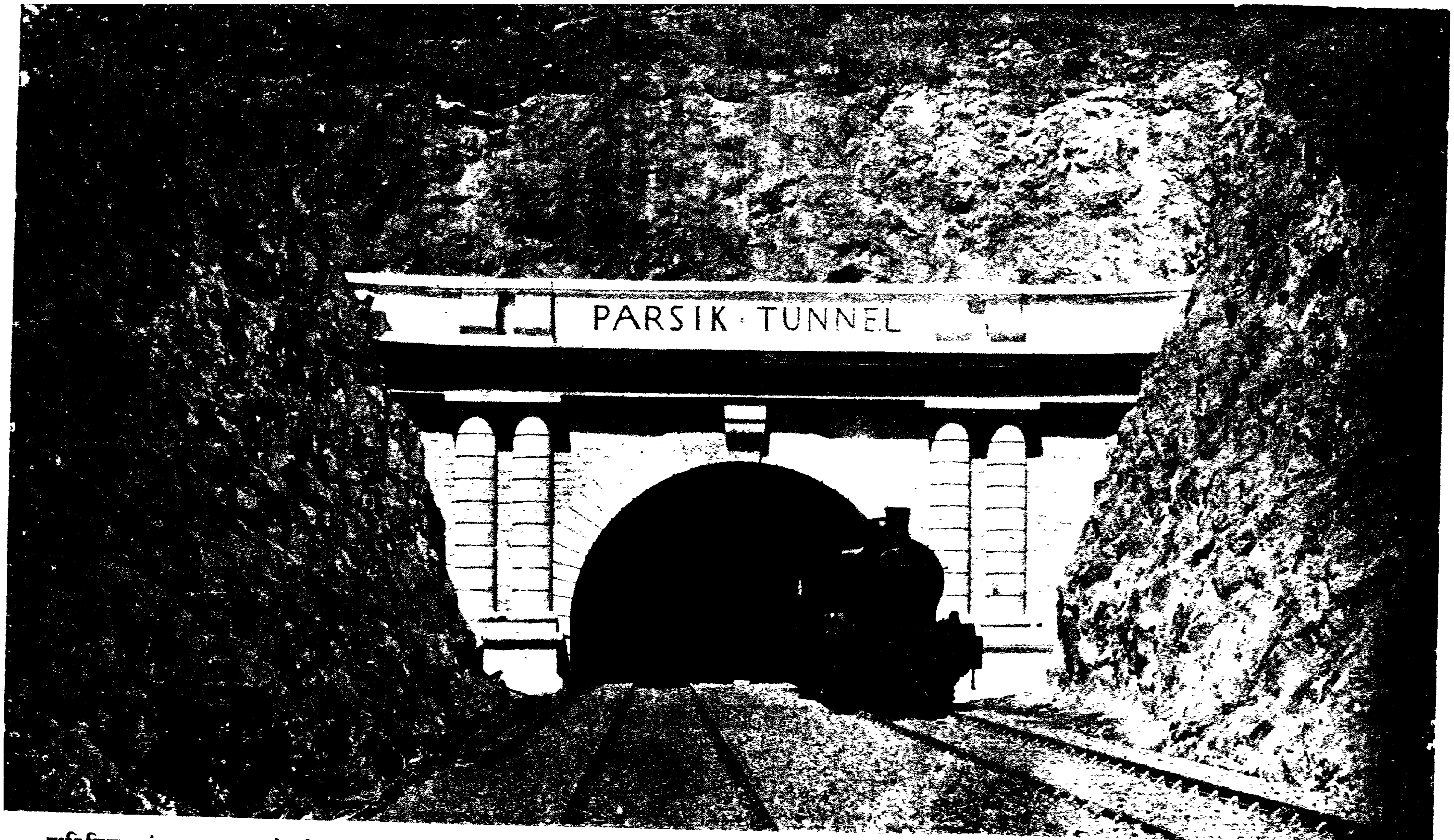
बुदनी-बरखेड़ा क्रेन। सुरंग में महराबदार लाइन बनाने के लिए लोहे के चक्करदार शहतीर



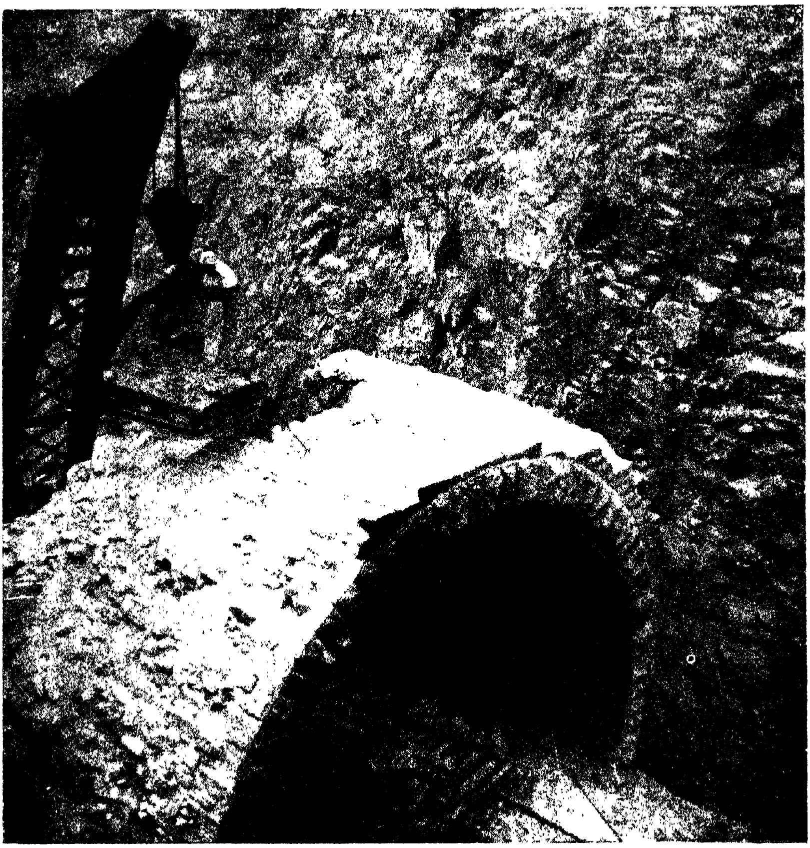
बुदनी-बरखेड़ा की शारन्दा सुरंग के बन जाने पर उसका दृश्य



चित्र में दिखलाया गया है कि एक ब्लाक में काम हो रहा है और
दूसरी ओर छत उड़ायी जा रही है। दोनों किनारों को
बांधने वाले अस्थायी बन्धनों को देखिये।



पारसिक सुरंग—यह मध्य रेलवे पर बम्बई और कल्यान के बीच 2.322 फीट लम्बी सुरंग है। भारत की इस सबसे लम्बी सुरंग का निर्माण 1913-16 में हुआ था



थाल घाट की 'डे-लाइटिंग' सुरंग नं० 8। चित्र में सुरंग के किनारे की चट्टानें तोड़ी जा रही हैं और क्रेन तथा क्रैडिल सिरे की चट्टानों को उठा रहे हैं।

और इंजीनियरिंग-कौशल दिखलाने की आवश्यकता है। तीस साल पहले ही यह मालूम था कि चालू रास्ते की दोहरी लाइनों के बहुत पास-पास होने के कारण केवल दुर्घटनाओं की सम्भावना ही नहीं है, बल्कि वे किसी भी समय शीघ्र यातायात के लिए अनुपयुक्त हो सकती हैं।

शुरू में भोर और थाल घाट की दोहरी लाइनें केन्द्र से 12 फीट की दूरी पर बिछायी गयीं, जिससे दोनों लाइनों के बीच ठीक 6 फीट का फासला रहा, जो अंग्रेजी प्रथा की नकल थी। आज के काम में आनेवाले अधिक चौड़े चलते-फिरते सामान को ले जाने के लिए, लाइनों के बीच की यह दूरी अब कम मालूम पड़ने लगी। इससे रास्तों को, केन्द्र से केन्द्र तक, 15 फीट 6 इंच की चालू नाप तक चौड़ा करने की जरूरत मालूम हुई।

लाइनों के पास-पास होने से भारी यातायात के लिए बड़ी रुकावट पड़ने लगी और इन घाटों से ऐसे सामान का आना-जाना रुक गया जो मार्ग की चौड़ाई से बड़ा होता था। इसलिए, पच्छिमी घाट के मार्ग-केन्द्रों (Track centres) को चौड़ा करना बहुत जरूरी हो गया और इन सीधे घाटों पर पहले पहल लाइन बनाने के अस्सी साल बाद, 1945 में, यह काम शुरू किया गया। दो करोड़ रुपये की लागत से यह काम 1951 में पूरा हुआ।

मैदान तथा सुरंगों में बारह फीट से पन्द्रह फीट छः इंच तक रास्ते के केन्द्रों को चौड़ा करते समय ये प्रश्न सामने आये :—

1. चालू रास्ते के बने हुए किनारों और कटावों को भूमि की सुविधानुसार, खुले स्थानों में चौड़ा करना।

2. भूमि और प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुसार यातायात को चालू रखते हुए सुरंगों को चौड़ा करना।

3. जहाँ (1) और (2) उपाय काम में न आ सकें, वहाँ सुरंगों के आसपास, हटा-कर या घुमाकर, इकहरी लाइन का नया रास्ता बनाना। पुराने रास्तों की लाइनों को कायम रखते हुए उन्हें मौजूदा सुरंगों के बीच में लाना, जिससे अगल-बगल काफी जगह छूट जाय।

4. कुछ सुरंगों को, जिनके ऊपर का बोझ हलका था, तोड़कर खोल देने में अधिक बचत दिखाई दी। इस काम को 'सुरंगों में सूरज' लाना कहते थे।

इन कामों को पूरा करने में निर्माण के आधुनिक उपायों और साधनों का प्रयोग किया गया और कुछ जगहों पर, यातायात को बाधा पहुँचाये बिना, बिलकुल नये और विचित्र उपाय काम में लाये गये। इनमें सबसे अधिक दिलचस्प 'सुरंगों को चौड़ा करने' और 'सुरंगों में सूरज लाने' की तरकीबें थीं।

विचित्र प्रयोग

चालू यातायात की सुरंगों को चौड़ा करने के लिए, सुरंग के अन्दर खास किस्म की

4. पुल

भारत में पुल बनाने का काम भी, सुरंग खोदने या पहाड़ी क्षेत्रों में लाइन बनाने और खानदेश व मध्य भारत के दलदली जंगलों से रास्ता निकालने की तरह, कठिन था। साल के कई महीनों में प्रायः बहुत से स्थानों का जलवायु अनुकूल नहीं रहता और कभी-कभी दुःखदायी भी बन जाता है। जलवायु की प्रतिकूलता के साथ-साथ कुछ दूसरी कठिनाइयाँ भी थीं जिनमें प्रमुख कठिनाई नदियों के धरातल की उपभूमि की अनिश्चित स्थिति और उनमें बहने वाली विशाल जलराशि के घटाव-बढ़ाव के कारण थी।

भारतीय नदियों की विशेषताओं का कुछ अनुमान हावड़ा और राजमहल के बीच के क्षेत्र के वर्णन से मिलता है, जो कलकत्ता से दिल्ली तक रेल बनाने में सबसे पहले चुना गया था।

जी. डब्ल्यू. मैकजार्ज ने, अपनी पुस्तक, 'वेज एण्ड वर्क्स इन इंडिया' में लिखा है कि हावड़ा से बर्दवान और उत्तर की ओर राजमहल और गंगा की घाटी तक, रेल का पहला भाग नदियों के निचले भाग की भूमि में फैला हुआ है जहाँ देश का अत्यधिक बाढ़ का पानी इकट्ठा होता है। इस पानी को निकालने की अत्यन्त जटिल समस्या असाधारण रूप में रेल-इंजीनियरों के सामने आयी। इस समतल भूमि के बहुत चौड़े मैदान में, अत्यधिक बरसात के कारण, गंगा और दूसरी बड़ी नदियों की बाढ़ का पानी मीलों तक फैल जाता है। इस जल राशि के कारण समूचा क्षेत्र समुद्र का रूप धारण कर लेता है और केवल ऊँचाई पर बसे हुए गाँव ही दिखलायी पड़ते हैं।

साधन और सामान

भारत के पुल-निर्माण की कुछ उल्लेखनीय सफलताओं का वर्णन करने से पहले, पुल बनानेवालों के कुछ उपायों और स्थानीय स्थिति के कारण प्रधान रूप से लगे हुए सामान को समझ लेना जरूरी है। पुल बनाने में दूसरे देशों की अपेक्षा भारत में शायद लोहे का प्रयोग अधिक हुआ है। यद्यपि चुनाई के कामों के लाभ पहले के कारीगरों को भली-भाँति मालूम थे और पिछले कुछ वर्षों में भी भारतीय इंजीनियरों ने दूसरे देशों के इंजीनियरों से सीमेण्ट आदि के मामलों में अधिक जानकारी दिखायी है, फिर भी हमारे देश के रेल-पुलों की विशाल बनावट में लोहा और इस्पात का बहुत अधिक प्रयोग हुआ है। ऐसा केवल उन्हीं जगहों पर नहीं हुआ जहाँ आकार की विशालता के कारण दूसरा सामान लगाना संभव न था, किन्तु ऐसी जगहों में भी लोहा और इस्पात लगाया गया जहाँ

दूसरे देशों में पत्थर या ईंट की डाट बनाकर काम लिया जाता था। भारत के बहुत भागों में किफायत से पत्थर अथवा अच्छी ईंट की मिट्टी मिलना कठिन था। कहीं-कहीं डाट बनाने के लिए नींव की भूमि की हालत अच्छी नहीं थी। मैकजार्ज ने लिखा है कि लोहे या इस्पात के बड़े-बड़े पुल देश की विशाल नदियों के कारण बने। इस प्रकार भारत में मुख्य रूप से रेल के बड़े-बड़े पुल मिलते हैं।

इन बड़े बड़े निर्माणों की नींव डालने में विचित्र कठिनाइयाँ सामने आयीं। बड़ी बड़ी नदियों की बालू की तह में बड़े पुलों के किनारों के आधार और खम्भों की प्रायः बेहिसाब गहरी नींव पुराने ज़माने में, अकसर सिलेण्डरों को गलाकर अथवा इकहरे या थोक चुनाई के कुएं बनाकर, डाली जाती थी, जिनपर खम्भों का विशाल आकार खड़ा कर दिया जाता था। समूचे खम्भे को चुनाई के अण्डाकार या दूसरे किस्म के खुले कुओं या कोठरियों में भी गला दिया जाता था। संसार के दूसरे देशों के लिए निर्माण की यह प्रथा अनोखी थी, किन्तु भारत के लिए सदियों पुरानी चालू प्रथा का केवल एक परिष्कृत रूप था। उत्तरी भारत के प्रायः सभी पुराने पुल नदियों की बालू की तह में ईंट के सिलेंडर गलाकर बनाये गये थे। इस पद्धति की उपयोगिता समझकर, रेलवे इंजीनियरों ने कुएं गलाकर नींव डालने की प्रथा की बड़ी उन्नति की। कुछ वर्षों में ही बड़ी बड़ी गहराइयों तक जल्दी से सिलेण्डर गलाने के लिये बहुत सी मशीनें और तरकीबें निकल आयीं। इनके विकास का सिद्धान्त वही है। इन कुओं की चुनाई लकड़ी, अधिकतर शुद्ध किये हुये लोहे या बहुत मजबूत इस्पात के पट्टे पर की जाती है। ये पट्टे चुनाई में जगह-जगह लगे हुए लोहे के छल्लों के अन्दर कसे हुए "टी-राडों" पर लटका दिये जाते हैं। गोल कुओं के अन्दर के व्यास की लम्बाई बाहरी व्यास की प्रायः आधी होती है जिससे ईंट की चुनाई की मोटाई कुल चौड़ाई की चौथाई रह जाती है। गलाने के समय कुएं के बीच की बालू और दूसरी चीजें धीरे धीरे खींच ली जाती हैं। नींव के ये कुएं अक्सर 80 से 100 फीट गहरे होते हैं, कभी कभी ये कुएं 140 फीट नीचे चले जाते हैं। गर्मियों में, विशेषकर उत्तर भारत में, नदियों में बहुत कम पानी रहने के कारण, ज्यादातर कुएं गलाये जाते हैं, और आड़ के पत्थर लगा दिये जाते हैं। आड़ का काम तो अक्सर कई मौसमों तक चलता रहता है।

सोन

आरम्भ के विख्यात और उल्लेखनीय पुलों में आरा के निकट सोन नदी का पुल है। इस पुल पर पहले-पहल 1856 में काम शुरू हुआ था। भारत में तत्कालीन गवर्नर-जनरल लार्ड एलगिन ने फरवरी 1863 में इसका उद्घाटन करते हुए कहा कि 'संसार का केवल एक पुल इस शानदार पुल से अधिक विशाल है।' यदि 1857 की राजनैतिक गड़बड़ी न हुई होती, तो पुल इससे भी पहले बनकर तैयार हो जाता।

सोन नदी मध्य भारत के ऊँचे जिलों से निकल कर, 23000 वर्गमील बहती हुई, पटना के पास गंगा नदी में मिलती है। कहा जाता है कि बाढ़ में इसका बहाव साढ़े सत्रह लाख घनफीट प्रति सेकण्ड तक हो जाता है (इस नदी की मुख्य विचित्रता इसके निचले

हुआ नर्मदा का एक पुल 1876 की बाढ़ में खतरे में आगया। उसकी पूरी मरम्मत और देख-रेख होती रही फिर भी तीन साल बाद वह बाढ़ में टूट गया। उसकी जगह 1881 में बिलकुल नया मार्ग-पुल बना जिसकी कुल लम्बाई 4,687 फीट 6 इंच थी। इसी नदी पर कुछ साल बाद बनाया गया 1,228 फीट लम्बा दूसरा पुल 1926 की बाढ़ में बह गया। 206 फीट लम्बा एक दर करीब आधा मील बह गया और नदी की तह से उसके गाटरों को निकालने और खम्भों पर जमाने में बड़ी चतुराई से काम लेना पड़ा।

महानदी

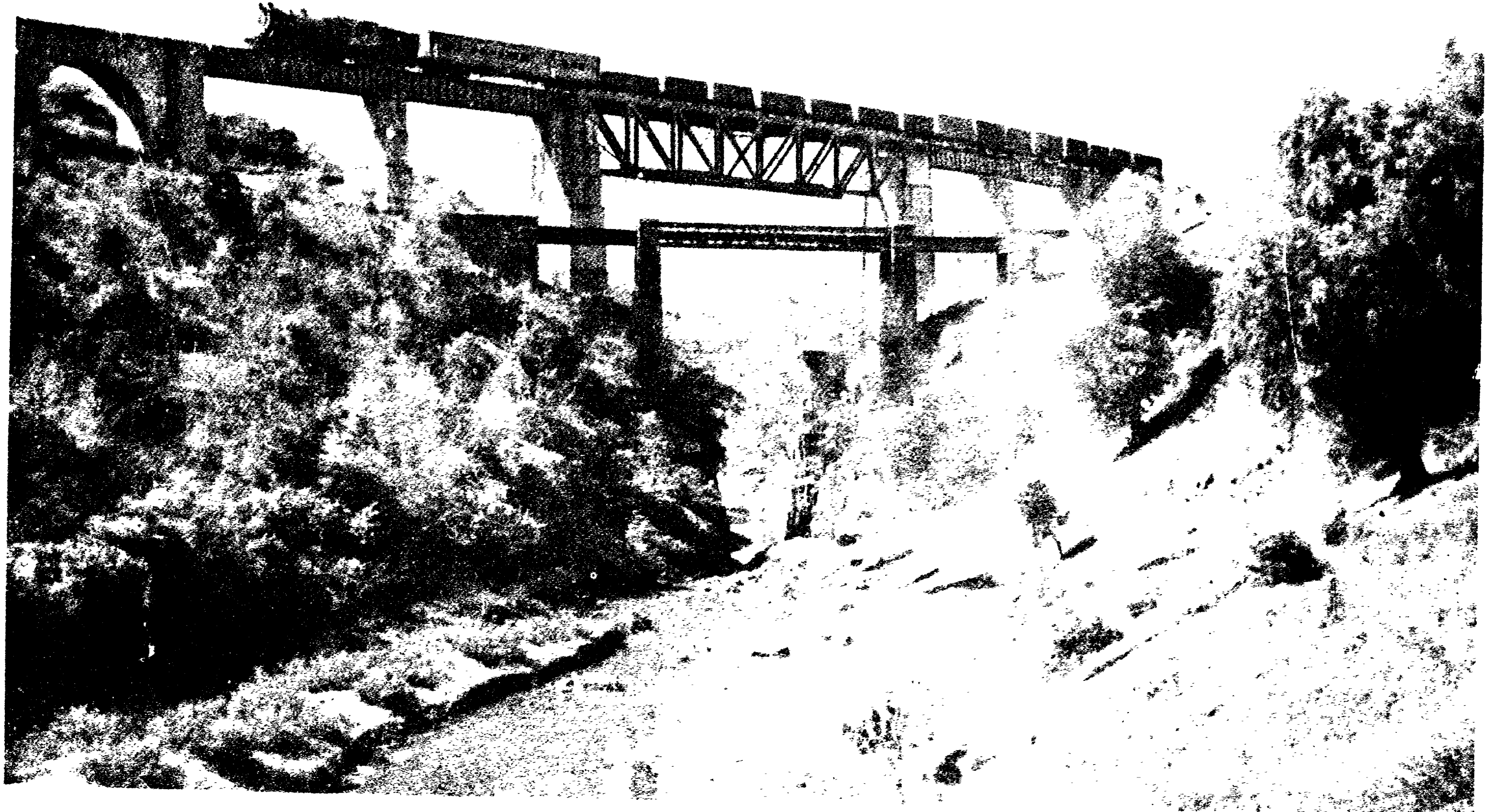
कलकत्ता से उड़ीसा और मद्रास की लाइन में दूसरे प्रकार की कठिनाइयाँ सामने आयीं। मार्ग में पड़ने वाली बड़ी नदियों और उनकी सहायक नदियों की संख्या बहुत अधिक थी। महानदी और उसकी अनेक सहायक नदियाँ : ब्राह्मणी, हस्थ, क्वारवी, बिरूपा, बैत-रनी, बोनन; वेणु गंगा और उसकी सहायक नदियाँ : गोदावरी, रूप नारायण और उसकी सहायक नदियाँ; कोसी और दामोदर, आगे पूर्व में सुवर्ण रेखा और लागुल्य आदि नदियों के टेढ़े-मेढ़े जल मार्गों के फैले हुए जाल और अनेक समस्याओं से पूर्ण भूमि पर कई पुल बनाने थे। रास्ते की कुल लम्बाई तथा निर्माण-सम्बन्धी अनेक प्रकार के कौशल में ये संसार में बेजोड़ हैं।

महानदी अपने 500 मील के समूचे रास्ते भर पहाड़ी तथा बाढ़ के क्षेत्रों से होकर बहती है। इसके 52,000 वर्गमील के निकास के हिसाब से इसका बहाव बहुत अधिक है। सम्बलपुर नगर में वह दक्षिण-पूर्व की ओर बहने लगती है और बाद के बीस मील के अन्दर केवल तीन उल्लेखनीय सहायक नदियाँ इसके दाहिने किनारे पर मिलती हैं। नरज-घाटी पर 2,800 फीट की तंग चौड़ाई से निकलकर यह मैदान में आ जाती है। यहाँ इसकी दो मुख्य शाखायें, बायीं ओर माह और दाहिनी ओर काटजूरी हो जाती हैं।

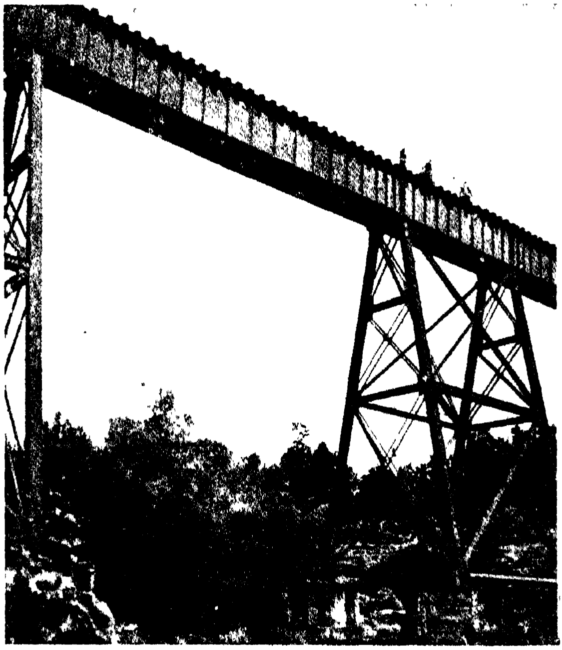
आरम्भ में पुल बनाने के विभिन्न रास्तों के कई तुलनात्मक सुझाव प्राप्त हुए थे। अन्त में नवम्बर 1896 में यह तै हुआ कि कटक के नीचे, बारंग, क्वारवी, काटजूरी, महा-नदी और बिरूपा में पाँच पुल बनाकर नदी को पार किया जाय।

क्वारवी पुल में प्रति 150 फीट के 20 दर हैं। काटजूरी पुल में 150 फीट गाटर के 18 दर हैं जो पानी की निचली सतह से 73 फीट नीचे की औसत गहराई से बने हुए 26 फीट 6 इंच व्यास के कुओं पर बनाये गये हैं। महानदी पुल जोबरा बांध से $\frac{1}{2}$ मील नीचे की ओर बना हुआ है। यह कटक में महानदी से मिलनेवाली और सारे क्षेत्र को सींचने के लिए बनायी गयी नहरों के मुख्य कार्य-केन्द्र का एक अंग है। बाँध के चढ़ाव की कुल लम्बाई 6,349 फीट है। इसलिए, यह निश्चित हुआ कि प्रति 100 फीट के 64 दर बनाकर, पानी के नीचे की सतह से 50 और 70 फीट की औसत गहराई तक बने हुए 19 फीट 6 इंच व्यास के कुओं पर खड़े किये जायँ।

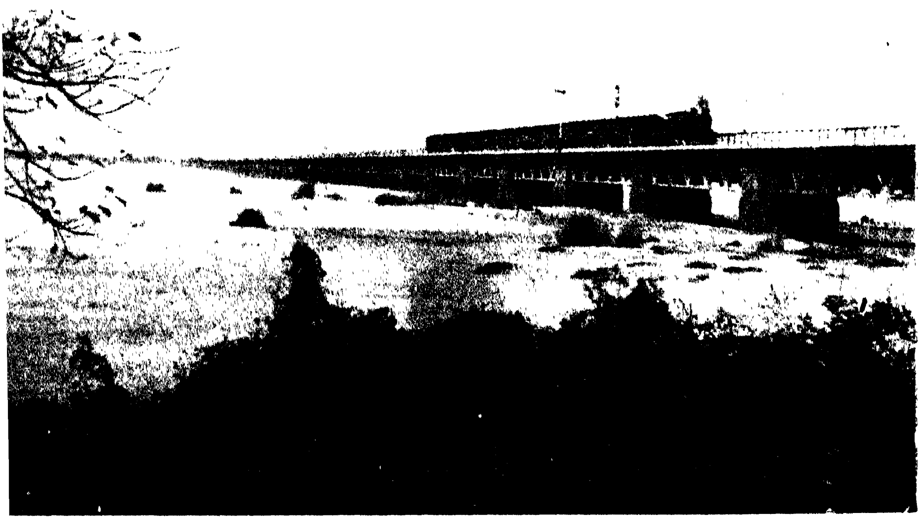
बिरुपा-पुल में, जो महानदी पर आखिरी पुल है, प्रति 100 फीट गाटर के 16 दर हैं जो महानदी पुल के समान ही खड़े किये गये हैं।



पूर्व रेलवे के रायपुर-विजयनगर खण्ड में रायघदा गोर्ज पर पुल। पुल की बनावट की असाधारण रूप रेखा को ध्यानपूर्वक देखिये।



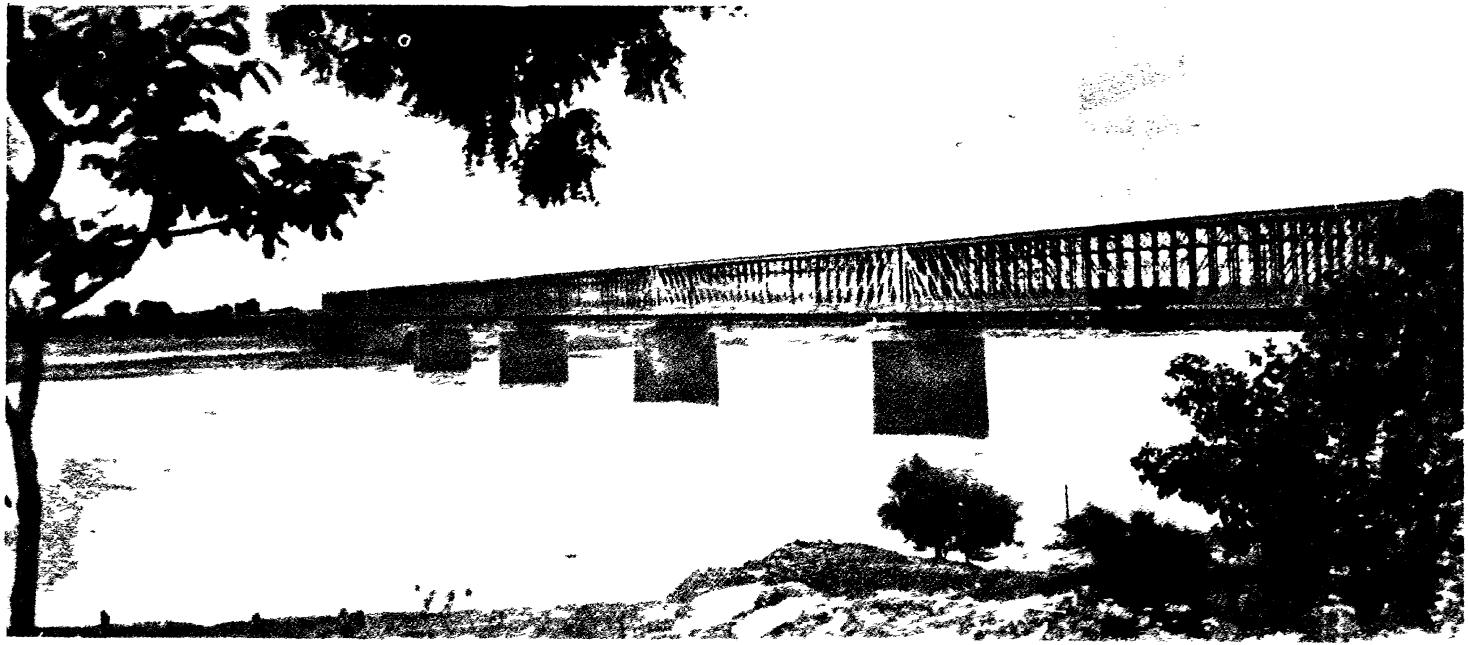
मध्य रेलवे पर कटनी के पास ट्रेस्टिल पुल



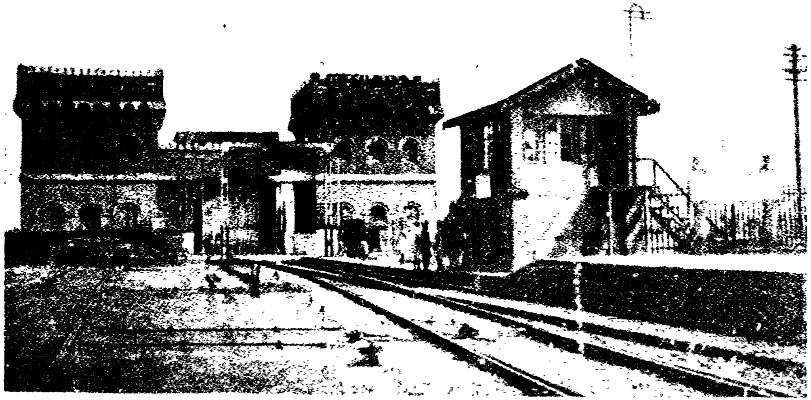
पूर्व रेलवे पर सोन नदी का अपर पुल। यह 10,052 फीट लम्बा है और 22 फरवरी 1900 को खोला गया था।



पूर्व रेलवे के खरगपुर-गोमो खण्ड में एवल्पान-पुल । यह 1 जनवरी 1907 को खोला गया था ।

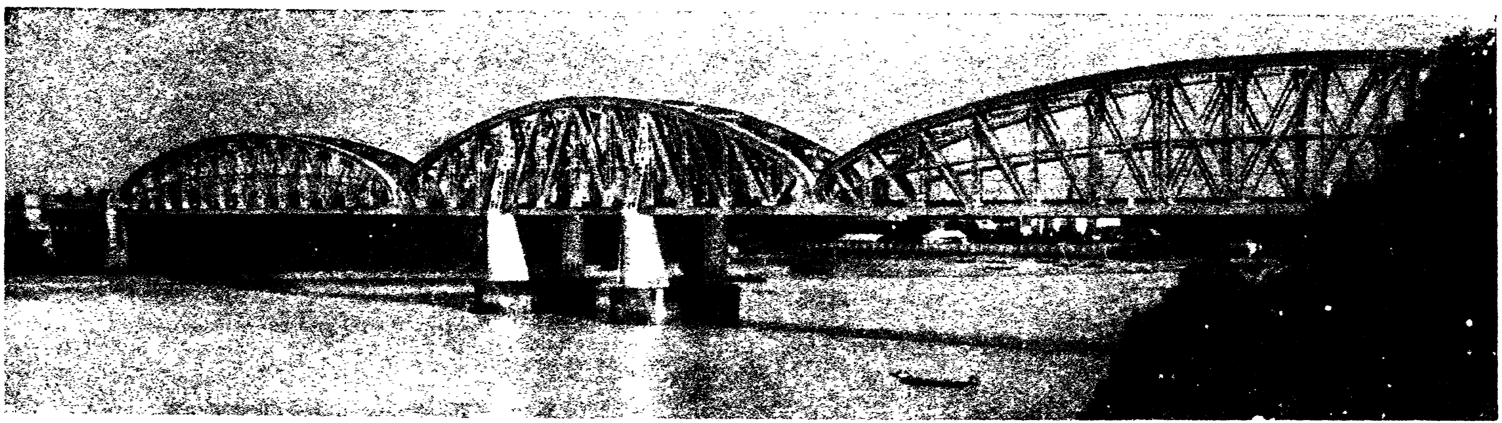


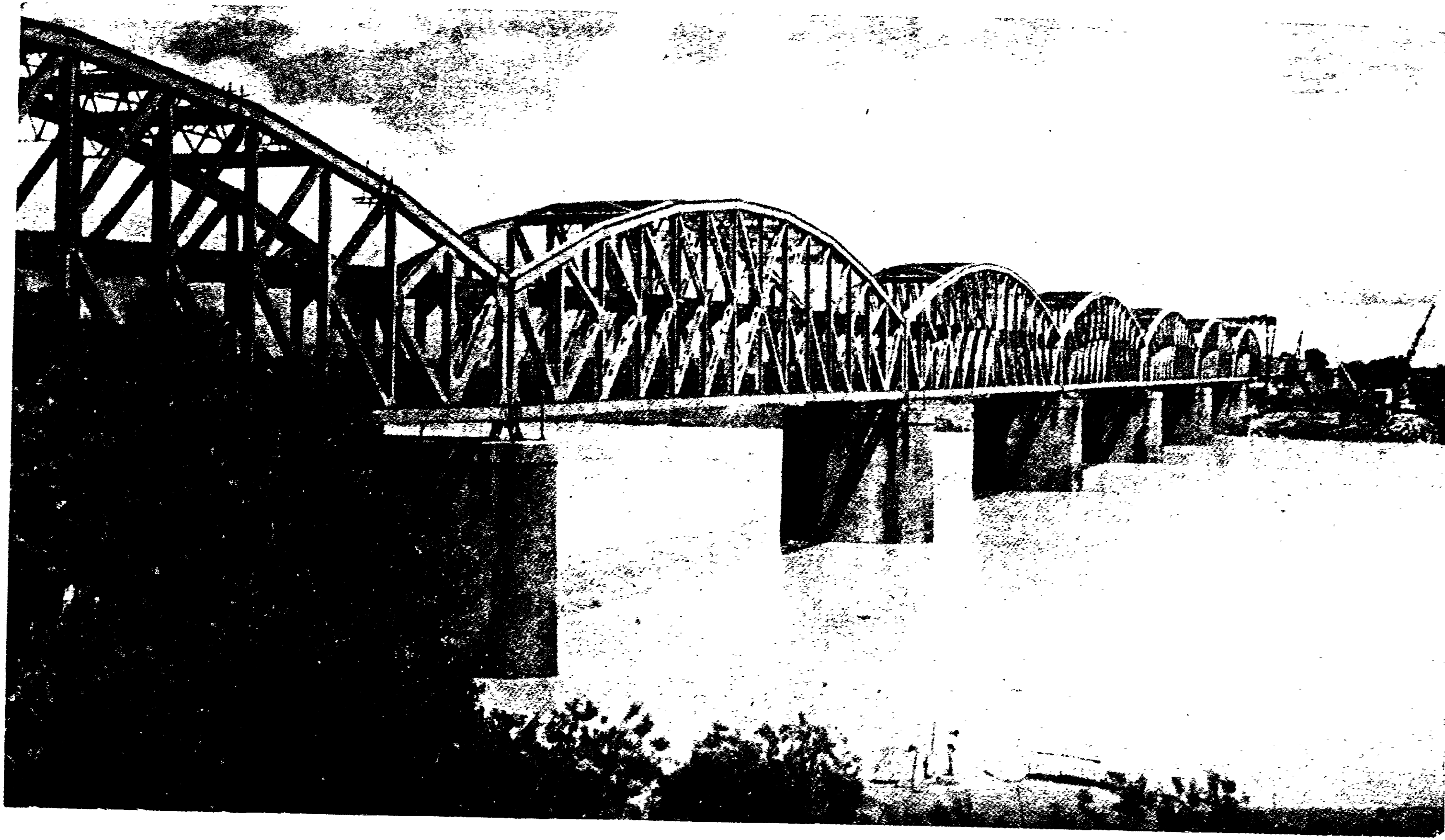
गंगा नदी पर डफरिन पुल का मनोहर दृश्य



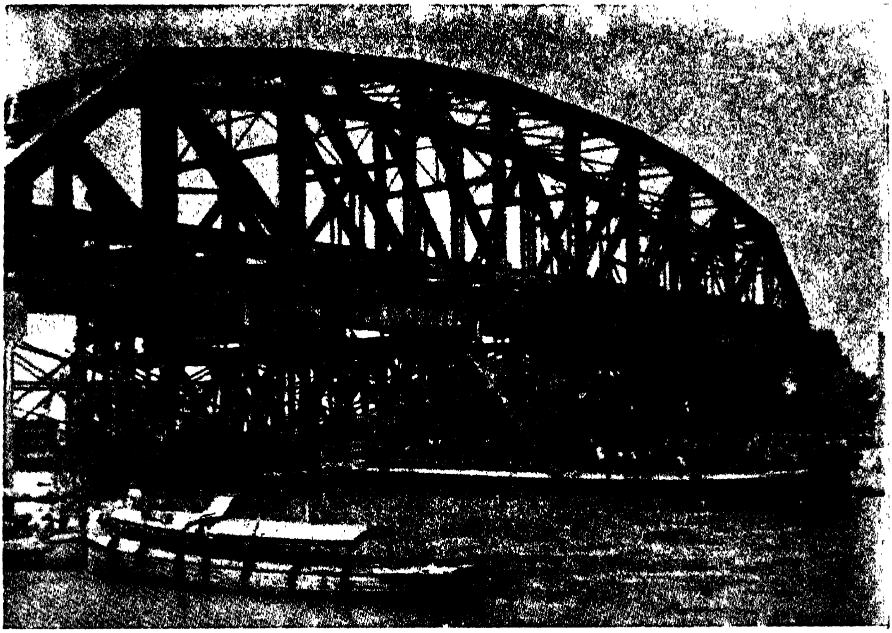
काशी (बनारस) में डफरिन पुल के सिरे पर बने हुए ब्लाक हाउसों का एक दृश्य। आगे काशी-स्टेशन के प्लेटफार्मों को देखिए

पूर्व रेलवे में बण्डेल के निकट जुबली पुल जो 15 मार्च 1887 को खोला गया।

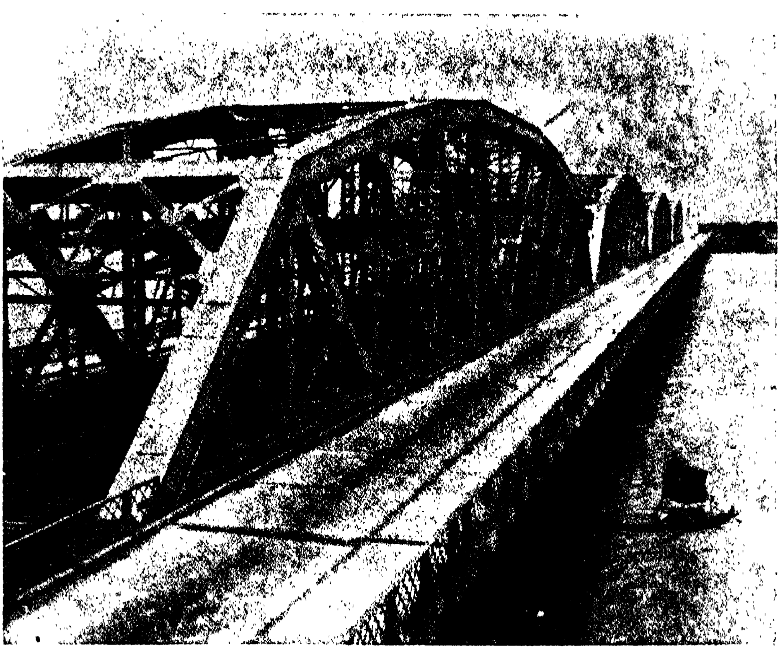




1947 में इस पुल के गर्डर बदले गये और इसका नाम मालवीय पुल रखा गया।



(पूर्व रेलवे पर वाली के निकट विलिंगडन पुल)
गर्डर-- स्पैन अपनी जगह पर रखा जा रहा है



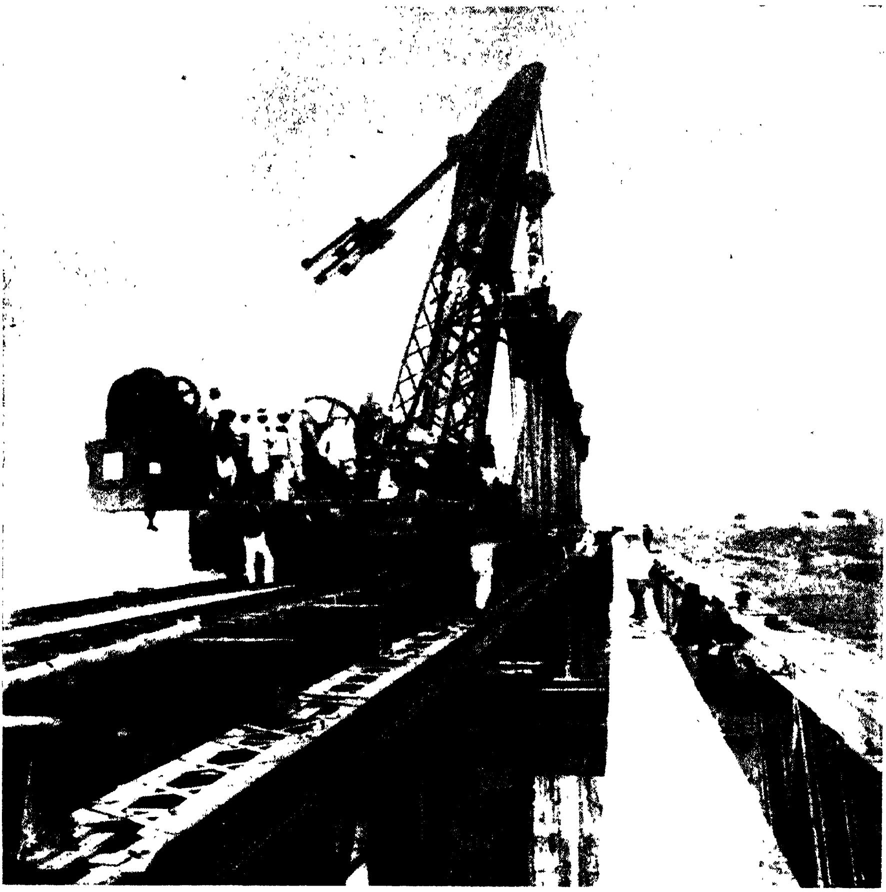
सड़क का एक दृश्य



बनने के बाद पुल का



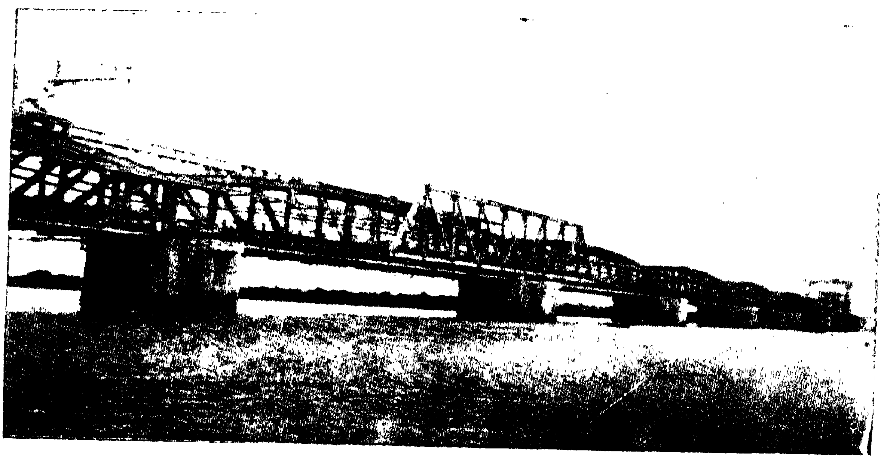
1871 में बनाया गया पश्चिम रेलवे पर ताप्ती नदी का पुल



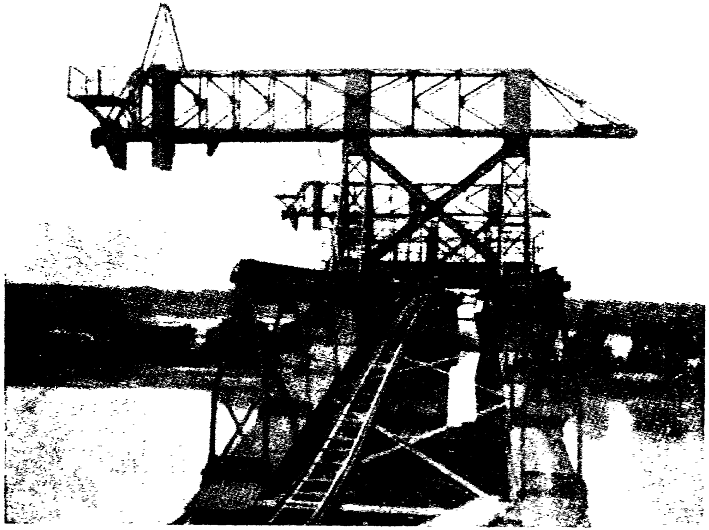
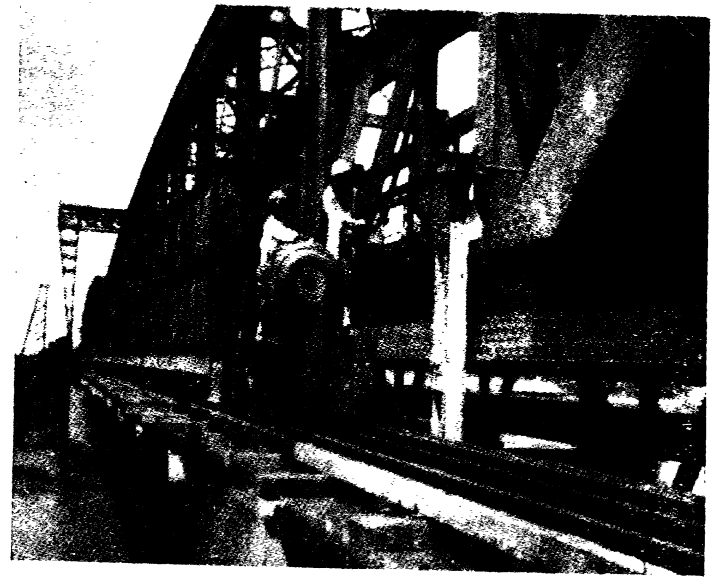
तापती नदी का पुल जिसमें फिर से गर्डर लगाये जा रहे है



पूर्व रेलवे पर रूपनारायन पुल



गर्डर बदलने के दो दृश्य

पुल में गर्डर बदलने के दो सन्निकट दृश्य

महानदी और उसकी सहायक नदियों की काली मिट्टी पर बनाये हुए कुएँ अकसर लटक जाते हैं। एक बार 30 फीट गहरी खुदाई के बाद कुआं हिलने लगा और बिना किसी नुकसान के 26 फीट गिर गया। दूसरी जगह, 1,200 टन बोझ चढ़ जाने के बाद हिलने लगा। इसके बाद रेलों के बोझ को बालू में फेंक कर कुआं 17 फीट 6 इंच गिर गया। ब्राह्मणी पुल बनाने में मिट्टी में गलाये गये कुएँ के आधार से 30 फीट से ज्यादा गहरा गड्ढा खोदा गया। इसमें बारूद का प्रयोग किया गया, फिर भी कुएँ में कोई हरकत नहीं हुई। खोल को बालू से भर दिया गया और आधार के नुकसान की देखभाल गोताखोरों से करायी गयी। उस समय कुछ नहीं मिला। खुदाई शुरू होने पर कुआं नीचे को हिलने लगा।

बेसीन

पच्छिमी भारत की बेसीन नदी के पुल भी उल्लेखनीय हैं। उत्तर और दक्षिण के बेसीन पुल मिलकर सवा मील लम्बे हैं और उनमें से भड़ौच के पास का पुल गहरे कुओं की नींव पर बना हुआ है और इकहरे पुलों में सबसे लम्बा है।

हुगली

रेलवे इंजीनियरों को हुगली के ऊपर पुल बनाने का पेचीदा सवाल वर्षों तक परेशान करता रहा। शुरू से हावड़ा को कलकत्ता से मिलाने के लिए रेल पुल बनाने की कई योजनाएं रखी गयीं। बहुत पहले 1845–50 में कलकत्ता के पास, गोविन्दपुर में हुगली पर पुल बनाने की कोशिश की गयी थी। दुर्भाग्यवश, पुल तैयार होने के तुरन्त बाद ही गिर गया। 1875 में, कलकत्ता और हावड़ा के बीच नाव का पुल बनकर तैयार हुआ, किन्तु यह केवल सवारी गाड़ियों के काम आता था। 1945 में नाव का पुल गिरा दिया गया और उसकी जगह इकहरे दर का झूलता हुआ केन्टी लिवर बनावट का पुल बनाया गया, जो इस समय संसार के सबसे बढ़िया पुलों में है।

1887 में हुगली नदी पर हावड़ा से 28 मील हटकर रेल का पहला पुल बना। इसका शानदार निर्माण-कार्य उस समय के रेल-इंजीनियरों की चतुरता, कार्य-पटुता और साधन-सम्पन्नता का साक्षी है। पुल 1883 में बनना शुरू हुआ। पुल के दोनों ओर चुनाई के 3,278 और 441 फीट के दो मार्ग-पुल हैं, जिनमें 10 से 48 फ़ीट चौड़े ईंटों के 141 दर हैं। पुल की कुल लम्बाई 1,213 फीट है। पूरे आकार की लम्बाई करीब एक मील है। रेल की दोहरी लाइन के लिए पहले पुल बनाया गया था, किन्तु आजकल की नाप की दोहरी लाइनें न पड़ सकने के कारण दोनों लाइनों को मिलाकर पुल पर गाड़ी निकलने की इकहरी लाइन बना दी गयी है। हुगली नदी पुल की जगह 1200 फीट चौड़ी है, जो कलकत्ता तक के कई मील के बहाव में सबसे तंग है। कई जगह जमीन समुद्री सतह के औसत से 66 फीट गहरी है और लहरों की ऊँचाई समुद्री सतह की औसत से कुछ कम और 20 फीट के बीच रहती है, तथा उनका अत्यधिक वेग साढ़े चार मील प्रति घण्टा

का होता है। नदी का उपयोग अधिकतर यातायात के लिए होता है, जिससे बड़ी-बड़ी देशी नावों, स्टीमरों और 500 से 600 टन तक माल ले जानेवाली चपटी नावों को पुल के नीचे से निकल जाने का प्रबन्ध करना पड़ा। इस पुल में प्रति 525 फीट के दो बड़े दर हैं और केन्द्र में दो पायों के बीच का छोटा दर 106 फीट 6 इंच का है। केन्द्र के इन दोनों पायों की मध्य रेखाओं के बीच की दूरी 120 फीट 6 इंच है। इन्हीं दोनों पायों के ऊपर बीच का 360 फीट लम्बा गाटर पायों के दोनों तरफ छज्जे की तरह निकाल कर रखा गया है। बीच के इस गाटर के निकले हुए सिरों पर साधकर नदी के दोनों किनारों पर बने हुए पायों तक प्रति 420 फीट लम्बे दो गाटर लगाये गये हैं। इस प्रकार किनारों के दो बड़े चौड़े दरों और बीच के एक छोटे दर को बनाने का विचित्र तरीका इसलिए अपनाया गया कि बीच के पाये उथले पानी में बनाये जा सकें और किनारों पर चौड़े से चौड़े स्टीमरों और जहाजों के आने-जाने की सुविधा बनी रहे।

इस पुल के बनाने में कुछ बहुत ही विचित्र प्रयोग किये गये; जैसे, किनारे के दरों के गाटर, दोनों ओर के मार्ग-पुलों की रेलों के ऊपर ही जोड़कर बनाये गये। फिर, 1000 टन वजन के दो जुड़े हुए गाटरों के इस समूचे जाल को रेलों पर चढ़ा कर स्टीम के यंत्रों द्वारा आगे की ओर सरकाया गया जब तक कि इन गाटरों का बाहरी सिरा किनारे के पायों से कुछ दूर आगे पानी के ऊपर लटकने न लगा। इसके बाद, उचित मचानों से युक्त दो बड़ी नावें गाटरों के निकले हुए सिरों के नीचे लायी गयीं। सिरों को फरियों के जरिये मचानों पर साध कर गाटरों का बोझ नावों पर कर दिया गया। फिर, नावें धीरे-धीरे बीच के पायों की तरफ ले जायी गयीं। इस तरह, इन गाटरों के सिरे बीच के गाटर के निकले हुए सिरों पर रख कर जोड़ दिये गये। इतने बड़े काम की असाधारण कठिनाइयों में इंजीनियरिंग के मूल सिद्धान्तों का पालन, निश्चित अनुमान और समय का ठीक हिसाब लगाने की बड़ी जरूरत थी। इस पुल पर किनारे के छोटे-छोटे दरों को मिलाकर लगभग 39 लाख रुपये की लागत आयी।

इसके बहुत बाद (1927-29) में बाली नामक स्थान पर हुगली के ऊपर 'विलिंगडन पुल' बना। भारत के रेल-पुलों में यह सबसे कठिन था और इसके बनाने में सबसे अधिक रुपया खर्च हुआ। इसकी कुल लागत 1,14,67,000 रुपया थी। जहाँ यह दर्शनीय पुल बना है उस जगह हुगली नदी 2,520 फीट चौड़ी है। मुख्य पुल के दोनों ओर 30-30 फीट लम्बे गाटरों के 22 छोटे दर हैं। इनके चुनाई के खम्भों की नींव में लोहे की छड़ों के साथ सीमेन्ट कंकरीट की बनी हुई 40 से 50 फीट लम्बी बल्लियाँ लगायी गयी हैं। पुल में प्रति 350 फीट के सात मुख्य दर हैं और प्रति 80 फीट के दो किनारे के दर हैं। नदी के बीच के आठ मुख्य खम्भे 70 × 37 फीट की अठपहलू इस्पात की कोठियों पर टिके हुए हैं। इन लोहे की कोठियों के बीच में प्रति 19 फीट व्यास के दो छेद हैं। कोठियों की नींव में कंकरीट भर कर हवा के दबाव से पानी में इन्हें तैरा कर निश्चित जगहों पर ले जाया गया। ज्वारभाटा के उतार में अवसर पाकर हवा को बाहर निकाल कर इन कोठियों

को अपनी-अपनी जगहों पर जमा दिया गया। गाटरों के बीच मेहराब बनाने में पुल बनाने की प्रचलित प्रथा के विपरीत काम किया गया। चालू प्रथा के अनुसार, गाटरों की निचली पट्टी को पहले ही मेहराब की तरह मोड़ देने के बजाय, इस पुल के गाटरों को पहले तिरछे गाटरों पर साध दिया गया और गाटरों के सिरे चार इंच झुका दिये गये। दूसरी असाधारण विशेषता, जिससे यह पुल संसार में अनोखा माना जाता है, यह है कि इसकी 70×37 फीट की लोहे की कोठियाँ 6 मील प्रति घण्टा तक की रफतार से बहने वाले 4 फीट गहरे पानी में गलायी गयी हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि हुगली नदी में थोड़ी-थोड़ी देर में ज्वारभाटा की खड़ी हिलोरें आती हैं, जो बड़ी-बड़ी नावों को उलट देती हैं, स्टीमरों को लंगरों से खोल देती हैं, और अपनी जगहों से तैरते हुए घाटों तक को हटा देती है। यह खड़ी हिलोरें हुगली नदी में पुल बांधने और आने-जाने वालों के लिए हौआ के समान रही हैं। इनसे रक्षा का प्रबन्ध करना भी बहुत जरूरी था।

टिस्टा

आसाम रेल लिंक म टिस्टा नदी का पुल, पुल निर्माण की कला का दूसरा श्रेष्ठ उदाहरण है। बर्फीली पहाड़ियों से निकलकर बर्फीले चश्मों का पानी लेती हुई टिस्टा नदी घाटी से होकर सिवोक में बने हुए पुल पर से ही मैदान में बहने लगती है।

पहले कई बार नदी ने अपना रास्ता बदला। 1948 में, नदी की जमीन बदलने के कारण पहले के बने हुए दरों का आकार बदलना पड़ा और यह तै किया गया कि 150 फीट के चार दर बनाये जायँ और बीच का दर 250 फीट का हो। कुएँ और खम्भे सख्त सीमेण्ट के बनाये गये। नदी के नीचे चार फीट व्यास तक के भारी-भारी पत्थर के ढेर भरे पड़े थे, इसलिए हवा के दबाव से पानी निकाल कर कुएँ गलाये गये। कुओं के गलाने और खम्भों के बनाने का काम बरसात से पहले पूरा हो चुका था।

फरवरी 1949 के अन्त तक 250 फीट गाटर के जुड़नेवाले खण्ड काम की जगह पहुँचा दिये गये थे। गाटर को एक सिरे से दूसरे सिरे पर खिसका कर नहीं चढ़ाया जा सकता था, इसलिए नदी की सतह में जगह बनाकर गाटर को जोड़ा गया और दरों की सीध में रख कर, मार्च के बाद की बाढ़ के पहले, खम्भों के ऊपर चढ़ा दिया गया। दोनों ओर बड़ी कठिनाइयां थीं, अर्थात् बाढ़ के पहले गाटर न चढ़ा देने से बह जाता और दूसरा लगाने में एक साल और लगता तथा 1949 की बरसात के पहले गाटर न चढ़ाने से जनवरी 1950 में पुल चालू न हो पाता। जोखिम उठा ली गयी और सबके अथक प्रयत्न से गाटर को जोड़ कर खम्भों के ऊपर बाढ़ आने से ठीक दो दिन पहले, रख दिया गया। 150 फीट के गाटर दाहिने किनारे पर जोड़े गये। जिस दर पर गाटर को पहुँचाना होता उसके पीछे 150 फीट का अस्थायी दर बनाकर उसी के सहारे गाटर को खिसकाया जाता। 25जून 1949 को पूरी बाढ़ के समय सभी गाटर चढ़ा दिये गये थे। नदी को पुल के नीचे से ले जाने के लिए बायें किनारे पर मोड़ के लिए बड़े-बड़े पत्थरों को जमा कर सीमेन्ट का बाँध बना दिया गया। माल-यातायात के लिये पुल 9 दिसम्बर 1949 को खोल दिया गया।

टिस्टा नदी में ढाई लाख घनफ़ीट प्रति सेकंड का बहाव अत्यधिक बरसात के कारण करीब 6 लाख घनफीट प्रति सेकंड हो गया। 12 जून 1950 की सुबह को बायें बाँध के ऊपर से बाढ़ का पानी बहने लगा, जिससे पूर्वी किनारे के आधार के पीछे 750 फीट और पूर्वी किनारे के पीछे 80 फीट का रास्ता बह गया। संचार की यह आवश्यक लाइन अनिश्चित समय तक टूटी नहीं रह सकती थी। आसाम रेल-लिंक के कर्मचारियों ने भारी बरसात और बाढ़ में दिन रात अथक परिश्रम करके लाइन को फिर 2 अगस्त 1950 को चालू कर दिया। पूरब की तरफ का खम्भों वाला पुल, स्थायी पुल की केन्द्र-लाइन से 30 फीट हटकर बनाया गया ताकि यदि स्थायी पुल को बढ़ाना पड़े, तो काम करने के लिए काफी जगह बनी रहे।

सेण्ट्रल वाटर पावर, इरीगेशन एण्ड नेवीगेशन कमीशन ने इस पुल के जलमार्ग की पूरी जाँच की और उसकी सिफारिश पर पूरब की तरफ 150 फीट के तीन दर जोड़कर पुल को बढ़ाया गया। अब इस पुल में 2×150 फीट, 1×250 फीट और 5×150 फीट के दर हैं। पुल के नीचे से पानी को निकालने के लिए पूर्वी किनारे पर एक बाँध बना दिया गया। इस पुल पर सवारी यातायात 24 फरवरी 1951 को चालू हुआ।

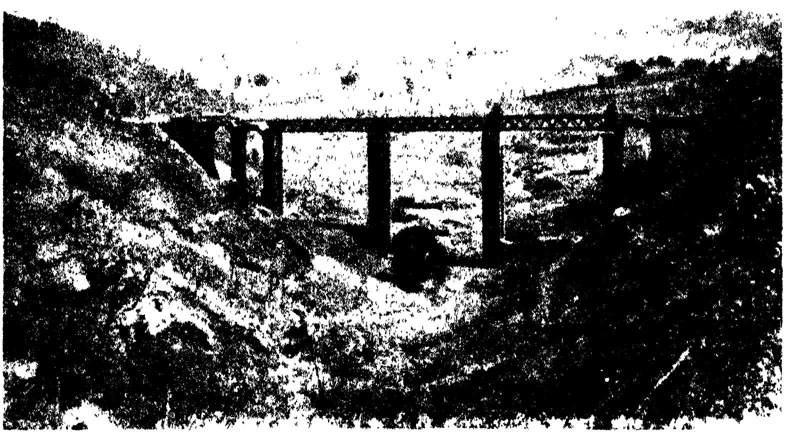
संक्षेप में रेलवे इंजीनियरों की ये कुछ विशेष सफलताएं हैं। उन्हें ऐसे अत्यन्त जटिल मार्गों पर रास्ते निकालने पड़े जहाँ अनिश्चित पाट की, खिसकने वाली मिट्टी पर विभिन्न प्रकार के ऊँचे-नीचे क्षेत्रों से बहने वाली नदियों ने नाना प्रकार की कठिनाइयाँ खड़ी कर दी थीं। पुलों की लम्बाई के हिसाब से इनकी सफलताएँ चाहे इतनी महत्वपूर्ण न हों, किन्तु सब बातों को देखते हुए ये निश्चय ही सुन्दर और सराहनीय थीं और कई बातों में तो संसार के रेल-निर्माण के इतिहास में अद्वितीय थीं।



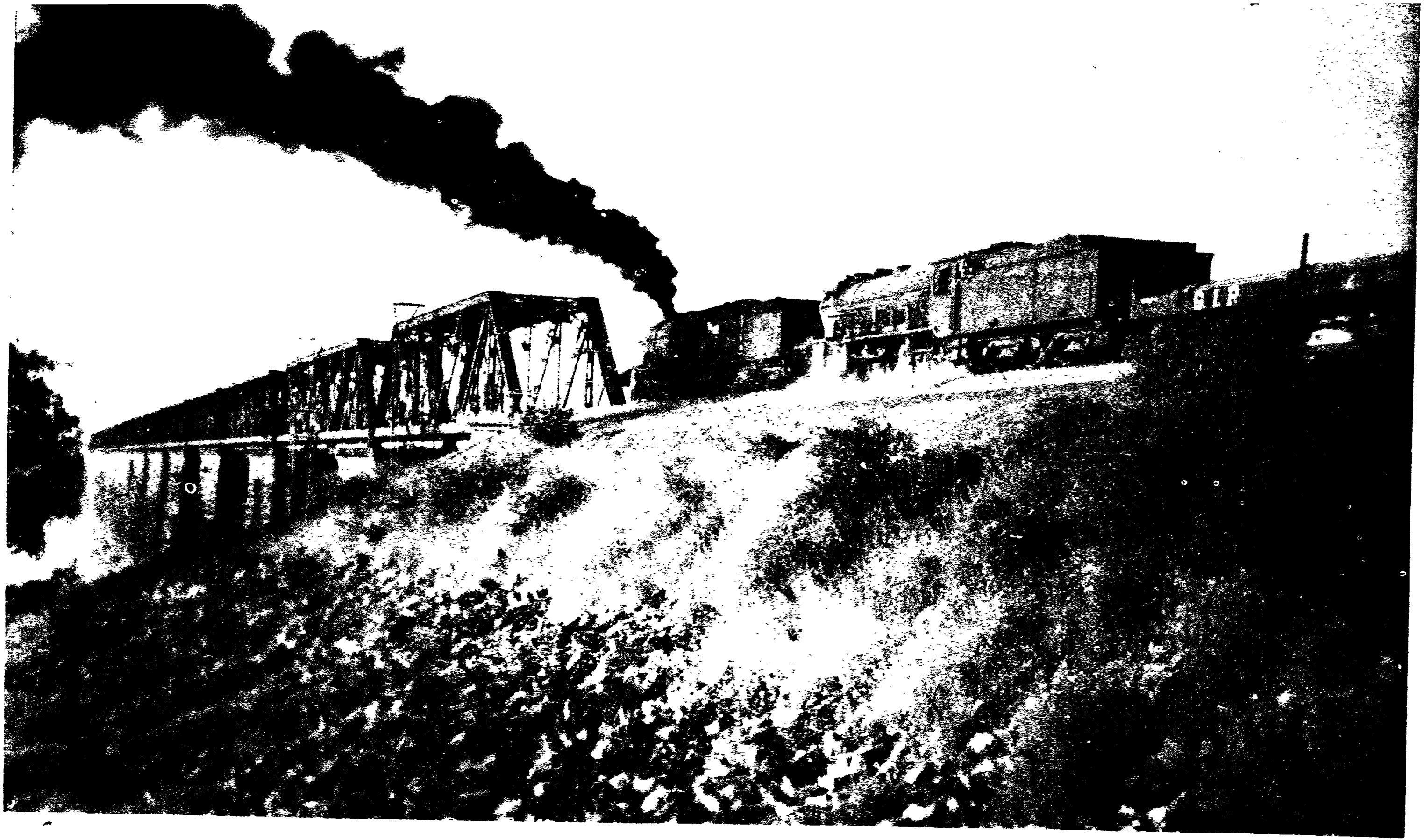
उत्तर रेलवे पर व्यास नदी का पुल जो 1869 में खुला



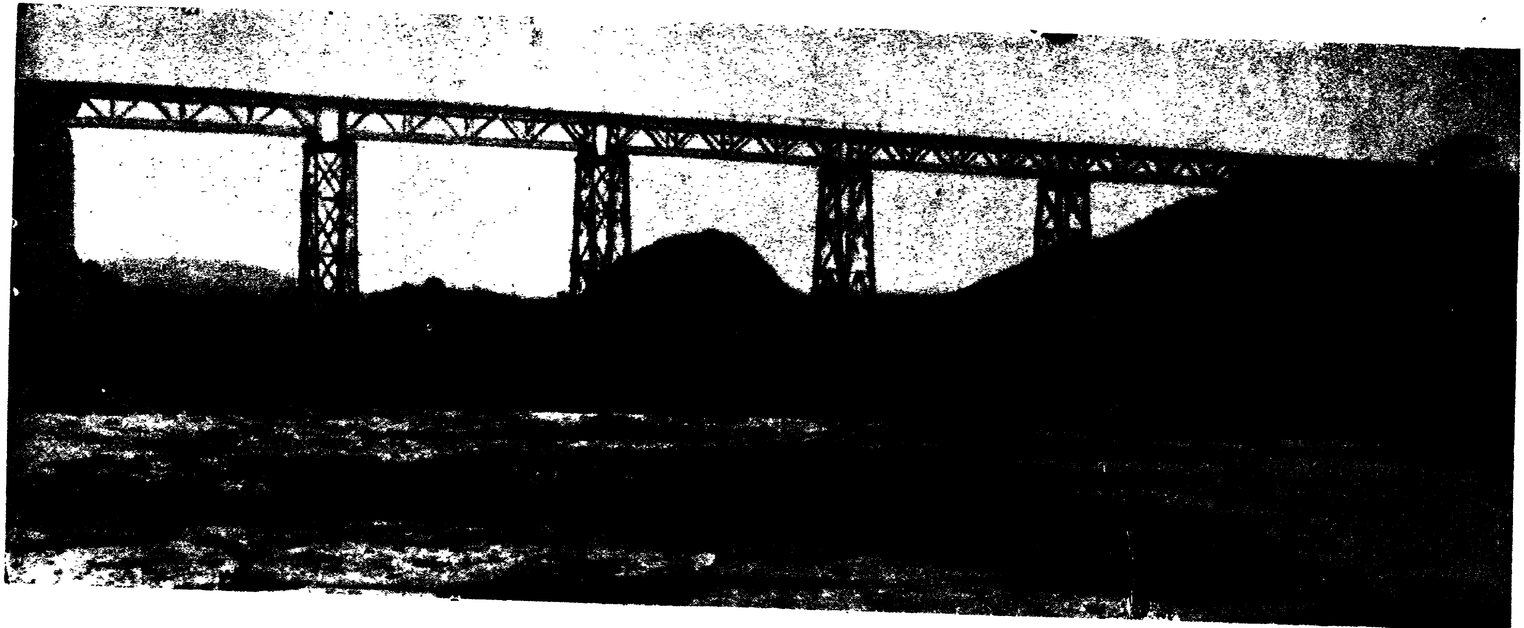
मध्य रेलवे पर धौलपुर के निकट चम्बल नदी का पुराना पुल



पश्चिमी घाट की गहरी खाई के ऊपर एहीगांव का मार्ग-पुल मध्य रेलवे

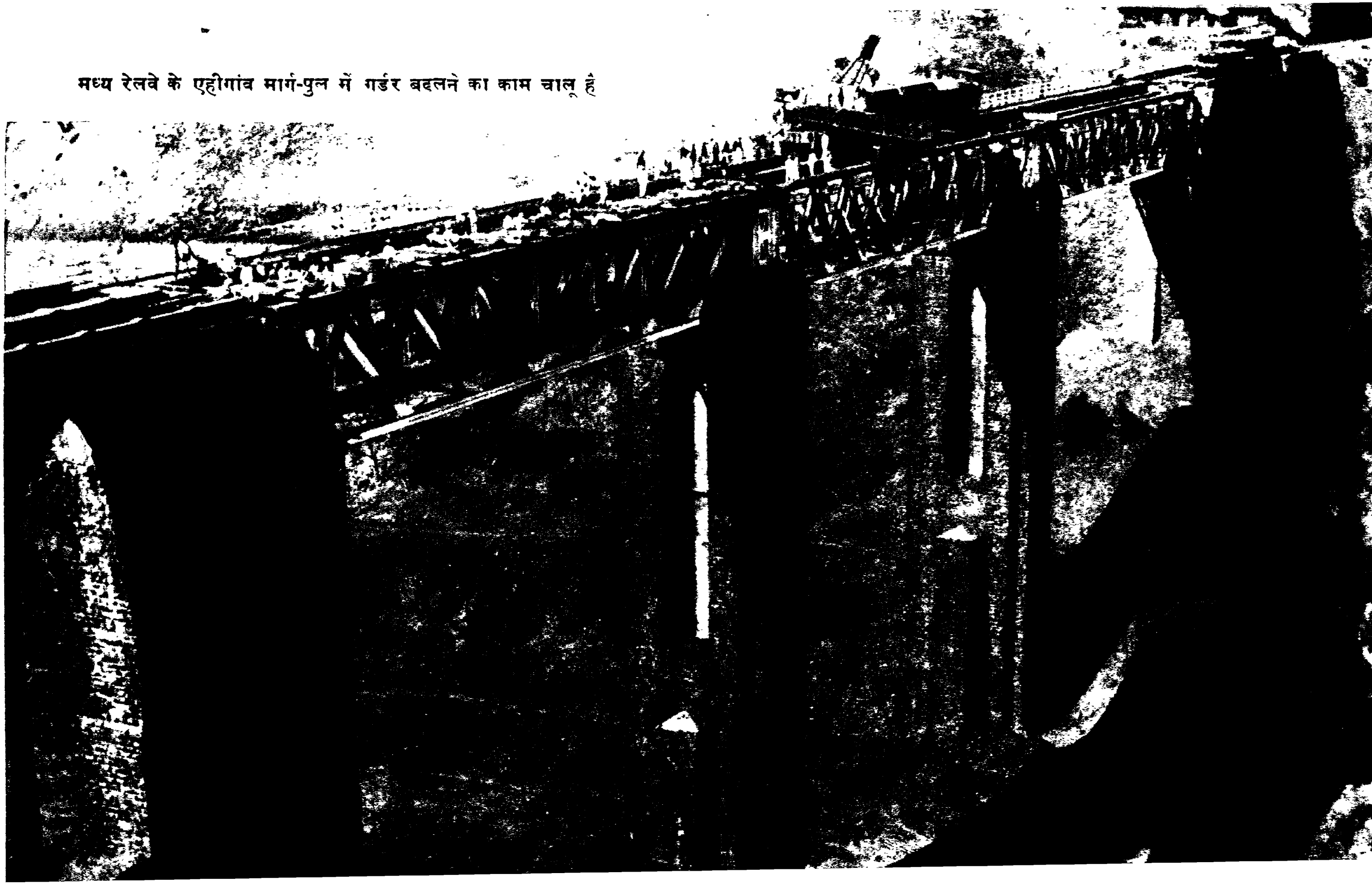


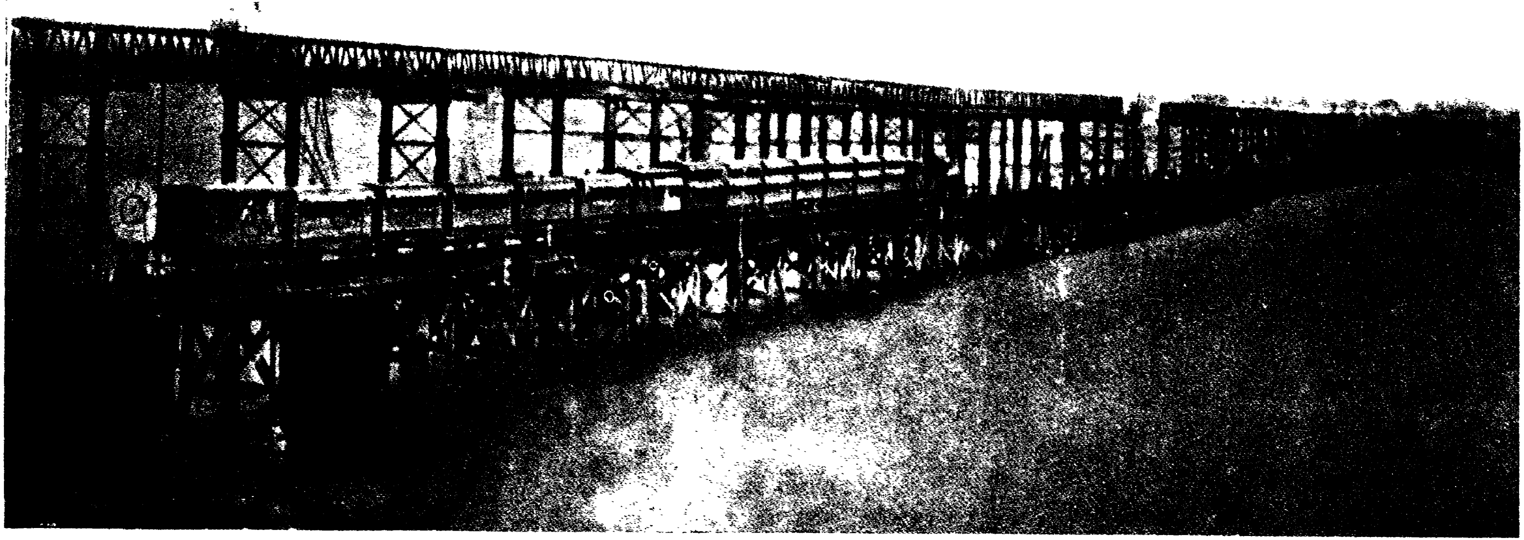
चम्बल नदी का नया पुल जिसके गर्डर 1934 में बदले गये



मध्य रेलवे के भोपाल-उज्जैन खण्ड पर काली-सिंध पुल के स्टील ट्रेस्टिल पायों को ध्यान से देखिये

मध्य रेलवे के एहीगांव मार्ग-पुल में गर्डर बदलने का काम चालू है

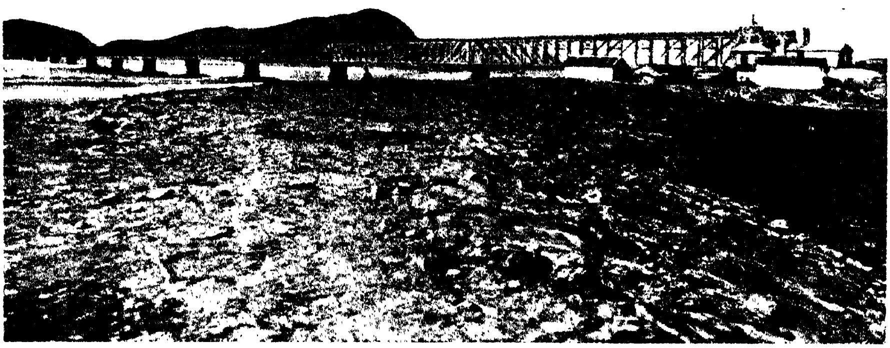




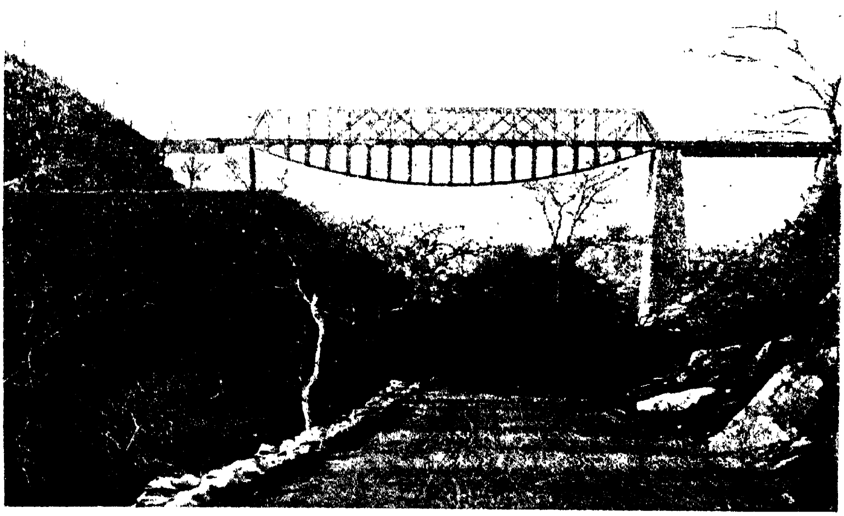
1876 में पश्चिम रेलवे के नर्वदा पुल पर एक घुमाव से गुज़रती हुई दो मंजिला गाड़ी



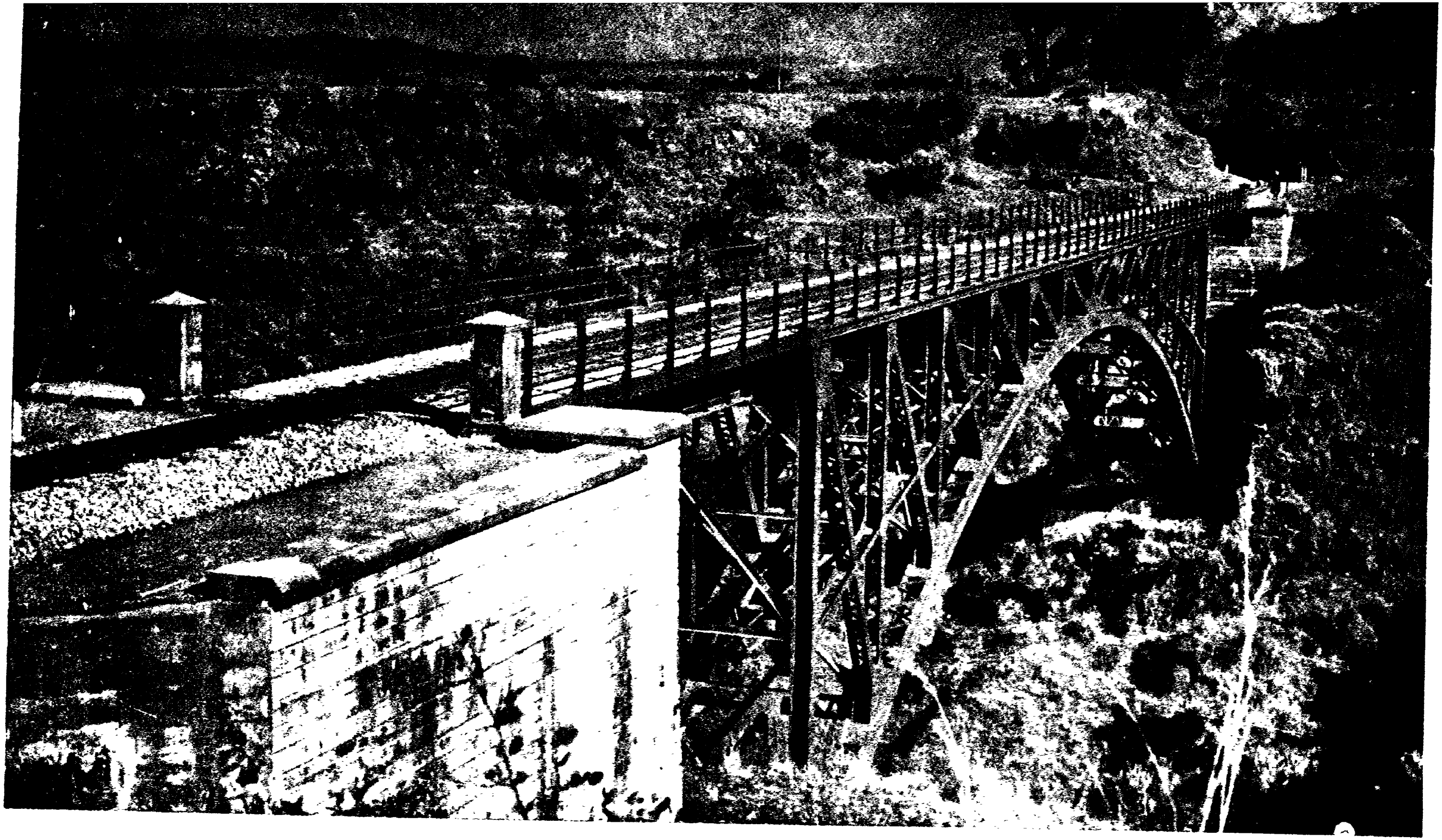
पश्चिम रेलवे के पुराने दक्षिणी-वसीन पुल पर जाती हुई एक गाड़ी का दृश्य। यह पुल 28 नवम्बर 1864 को खोला गया था



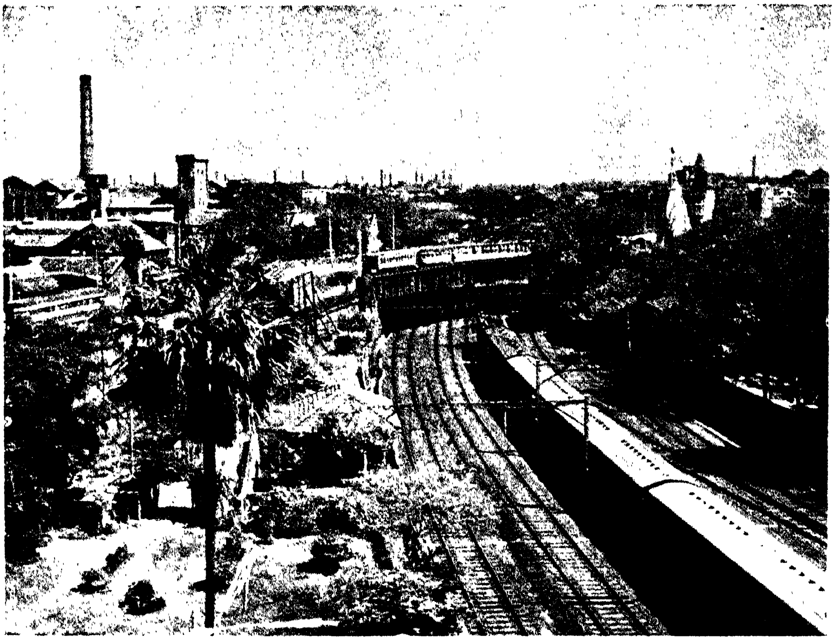
कृष्णा नदी का पुल, दक्षिण रेलवे



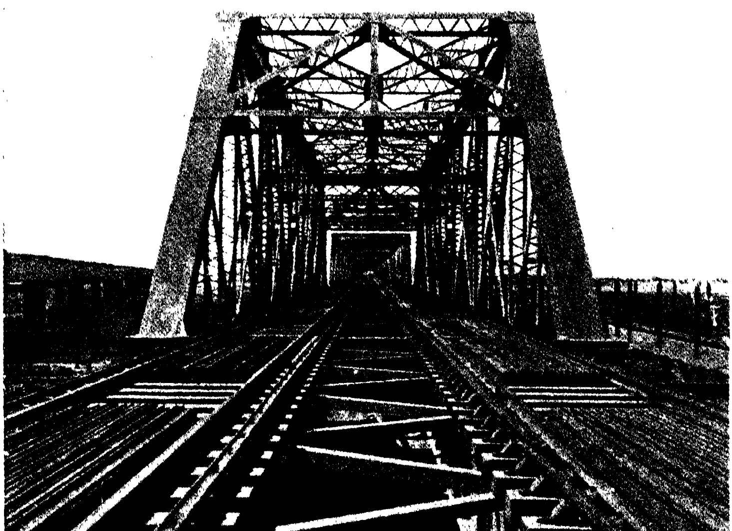
छेलमा में दोराभाई मार्ग-पुल के पश्चिमी भाग का दृश्य—दक्षिण रेलवे



उत्तर रेलवे के कांगड़ा घाटी खण्ड में रण्डपुल—भारत में एकमात्र महरावदार लोहे का पुल



बाइकुला पुल—बम्बई



पश्चिम रेलवे में नर्बदा नदी पर बड़ोच का सिलवर जुबली पुल

9. निर्माण का गर्व

आज रेलों के बड़े-बड़े स्टेशन देखने को मिलते हैं। लेकिन शुरू में अच्छे स्टेशन बनाने की ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता था। इंगलैण्ड, जर्मनी, अमेरिका और बहुत से देशों के बड़े-बड़े स्टेशन पहले गाड़ी ठहरने के मामूली बाड़े से अधिक अच्छे न थे। ये ढँके हुए अवश्य होते थे। ब्रिटेन में इस प्रकार के शुरू के स्टेशनों का एक नमूना 1937 तक सुरक्षित रहा। शुरू के स्टेशन कुछ बातों में समुद्रतट पर नावों के रुकने के स्थानों से मिलते-जुलते थे। 'आवश्यक होने पर भी ये बिलकुल कामचलाऊ ढंग के थे, जहाँ से यात्री जल्दी से जल्दी निकल भागने की कोशिश करते हैं।'

रेलों में शीघ्र ही सुधार की भावना जागृत हुई। 1840–50 में रेल के स्टेशनों में बहुत कुछ सुधार हो गया था और उन पर गर्व किया जा सकता था। सारे इंगलैण्ड में बड़ी-बड़ी और अच्छे ढंग की इमारतें बनीं। लन्दन में ग्रेशियन-लोनिक कला का यूस्टन, गोथिक कला की सैकड़ों सुसज्जित खिड़कियों सहित सेन्ट पेनक्रास, इटली और अरब की मिली जुली बनावट का, महल के समान, पेडिंगटन और पुनरुत्थान काल की बनावट का सादा किन्तु सुन्दर, चेरिंग क्रास, स्टेशन था। मिलान नगर में आज भी 103 एकड़ क्षेत्रफल का संसार का सबसे बड़ा रेल स्टेशन है। अमेरिका में रेलवे स्टेशनों को न केवल उपयोगिता काल के विलक्षण ढंग पर बनाया गया है, वे आधुनिक समय के भी बड़े विशाल और प्रतिभाशाली स्टेशन हैं। न्यूयार्क, शिकागो, फिलाडेलफिया, वाशिंगटन और सेन फ्रेनसिस्को जैसे नगरों के स्टेशन, जमीन के नीचे और ऊपर बनाये गये हैं। उनके सामने लम्बी-चौड़ी खुली जगहें हैं और उनमें बड़े-बड़े प्रतीक्षालय, जलपान-घर, मार्ग, सिनेमा, थियेटर, सीढ़ियाँ, बिजली के जीने और जमीन के नीचे जाल की तरह फैले हुए अनेक रास्ते हैं जो स्टेशन से बहुत दूर सड़क पर निकलते हैं। अनेक प्रकार की सुविधाओं के इतने साधन संसार में दूसरी जगह नहीं दिखायी देते।

भारत में स्टेशन की इमारतें भिन्न प्रकार की हैं। कुछ तो पुराने सवारी और माल डिब्बों को एक जगह रखकर ही बना दिये गये हैं, किन्तु कुछ स्टेशन निर्माण-कला की सुन्दरता, विशालता और यात्रियों की नाना प्रकार की सुविधाओं में संसार के किसी भी स्टेशन से टक्कर ले सकते हैं।

साधारणतः भारत के रेल-स्टेशन की इमारतें ईंटों की बनी हैं जिनमें कार्यालय और यात्रियों के लिए प्रतीक्षालय बने होते हैं। इसके साथ-साथ स्थान के महत्व और यात्रियों की भीड़ के हिसाब से विभिन्न श्रेणी के यात्रियों के लिए अलग-अलग प्रतीक्षालय जलपान और भोजन-गृह आदि भी बनाये जाते हैं। खुले या ढँके प्लेटफार्मों की संख्या और लम्बाई-चौड़ाई में भी फर्क होता है। माल-यातायात के लिए अधिकतर अलग प्लेटफार्म,

कार्यालय और शेड की व्यवस्था रहती है। ऊपरी पैदल-पुलों और कहीं-कहीं नीचे के उपमार्गों से यात्री एक प्लेटफार्म से दूसरे को जाते हैं।

प्लेटफार्म

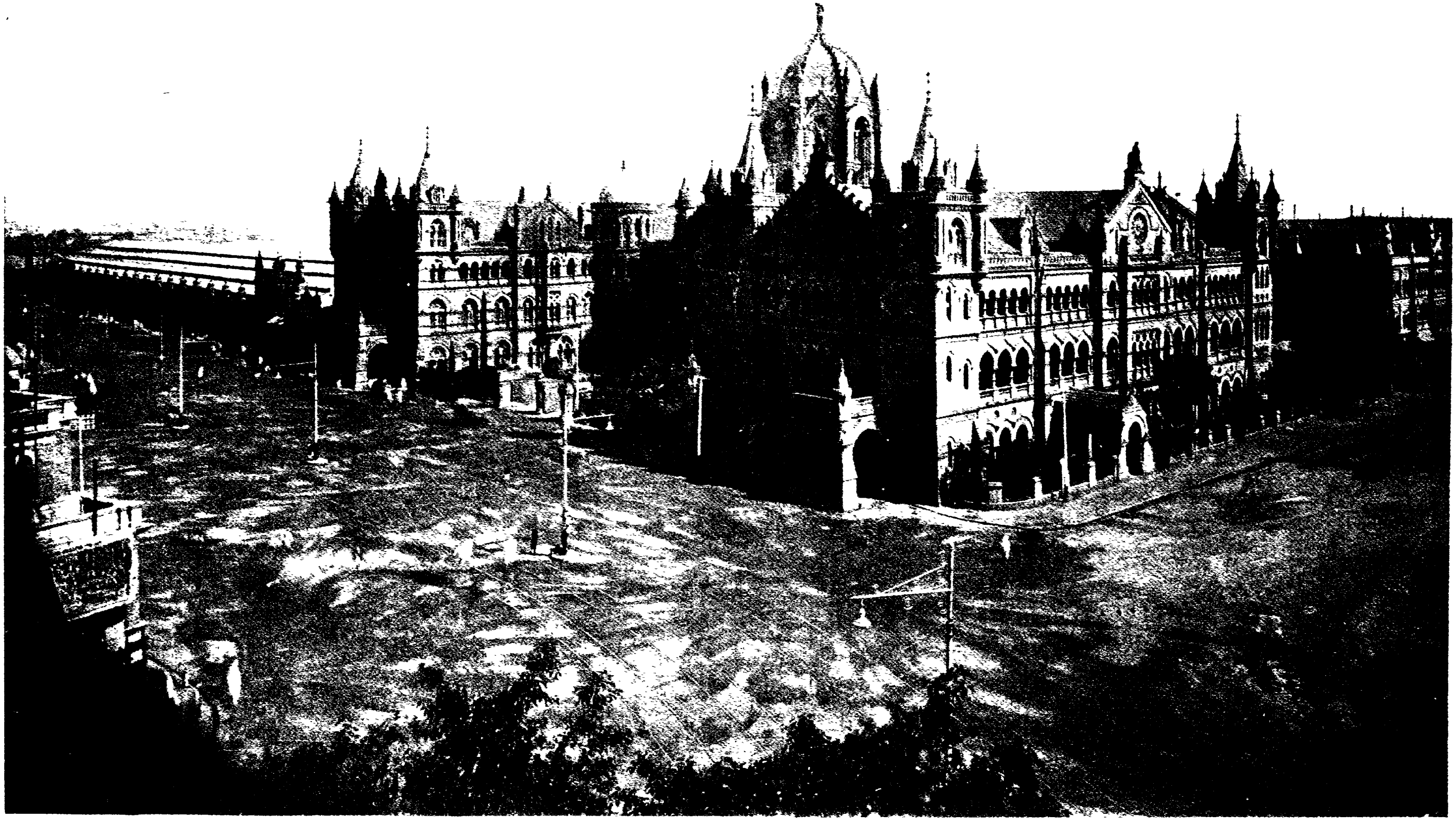
सारे देश में स्टेशनों की बनावट का यही आधार है किन्तु उनके आकार में बहुत कुछ अन्तर रहता है। बहुत से स्टेशनों खास कर जंकशन और बड़े-बड़े नगरों के स्टेशनों का क्षेत्रफल साथ की छतदार इमारतों और शेडों को मिलाकर चार से बारह एकड़ तक का है। कुछ तीर्थ स्थानों के स्टेशनों के खुले व ढँके हुए प्लेटफार्म, इमारत के काफी छोटे होने पर भी, आधा मील या उससे अधिक लम्बे होते हैं। संसार के सात सबसे लम्बे प्लेटफार्म के स्टेशनों में पाँच भारत में हैं। संसार का सबसे लम्बा सोनपुर का प्लेटफार्म 2415 फीट, खड़गपुर का 2350 फीट, लखनऊ का 2250 फीट, बेजबाड़ा का 2100 फीट, और झाँसी का 2025 फीट लम्बा है।

भारत के रेलवे स्टेशन प्रधानतः उपयोगिता के दृष्टि-कोण से बनाये गये हैं फिर भी कई स्टेशनों की बनावट, सुन्दरता और कला की दृष्टि से अच्छी है।

विक्टोरिया टरमिनस

सबसे अच्छा और पहले बने हुए स्टेशनों में बम्बई में बोरी बन्दर के पास विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन है। इसका नाम महारानी विक्टोरिया के नाम पर रखा गया क्योंकि 1887 में उनके जयन्ती-दिवस पर इसका उद्घाटन हुआ था। 1852 में, पहला घाट बनने के पहले बम्बई का बोरी बन्दर देशी नावों के सिर्फ रुकने की जगह थी। बोरी बन्दर का पहला स्टेशन 'लकड़ी की टूटी-फूटी इमारत थी।' ऊंचे दर्जे में चलने वाले बहुत से यात्री माइरवाला में चढ़ा करते थे जहाँ एक बहुत बड़ा प्लेटफार्म था और एक आकर्षक शेड बना हुआ था। पहले तो विक्टोरिया टरमिनस सिर्फ दफ्तर और मुख्य स्टेशन के लिए बनाया गया था। 1887 से आस-पास की जगहों पर और इमारतें बनना शुरू हुईं। बाद की बनी हुई इमारत, 1914–1918 के विश्वयुद्ध में अस्पताल का काम देती थी और अब उसमें दफ्तर हैं। मुख्य लाइन के यातायात के लिए स्टेशन की नयी इमारत 1929 में खोली गयी। बाद की इमारतें 1887 की शानदार इमारत से मेल खाती हुई बनायी गयी हैं जिससे सबको एक साथ देखने पर एकसा आकर्षक प्रभाव पड़ता है। नये और पुराने दोनों स्टेशन मिलकर संसार के सबसे लम्बे और चालू स्टेशनों में गिने जाते हैं।

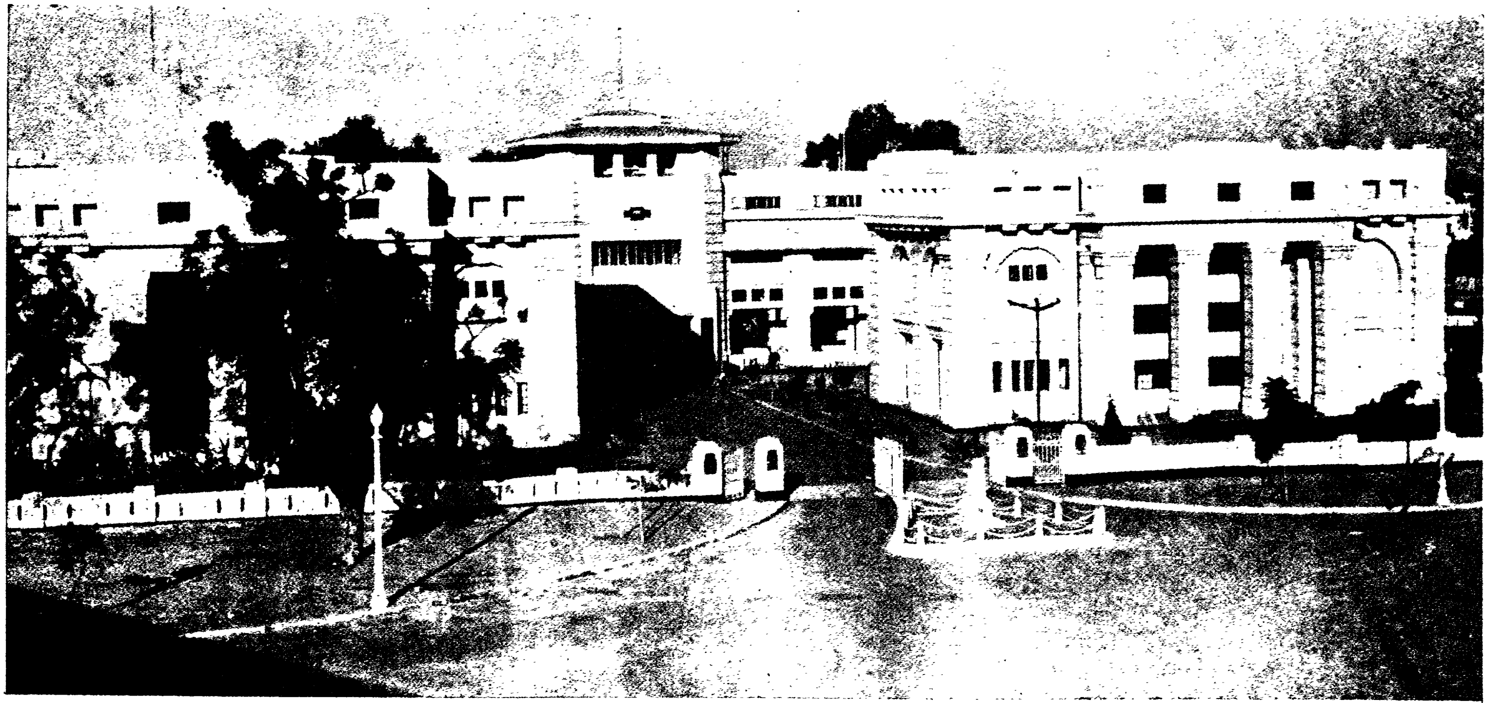
जिस जगह विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन बना है वह बड़ा ऐतिहासिक स्थान है क्योंकि उसका सम्बन्ध बम्बई नगर की उत्पत्ति से है। पुराने कागजों की हाल में छान-बीन करने पर मालूम हुआ कि बम्बई का नाम मुम्बा देवी या महा अम्बा के नाम पर रखा गया। उनको समर्पित किया गया सबसे पहला मन्दिर उसी स्थान पर था जहाँ 1887 में विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन बना। मुबारक शाह, जो कुतुबुद्दीन के नाम से प्रसिद्ध था, ने मूल मठ को नष्ट कर दिया और 1317 में वह फिर से बनाया गया। पुर्तगालियों ने 1760 में इसे फिर नष्ट कर दिया। मठ से मिला हुआ तालाब 1805 तक सुरक्षित रहा



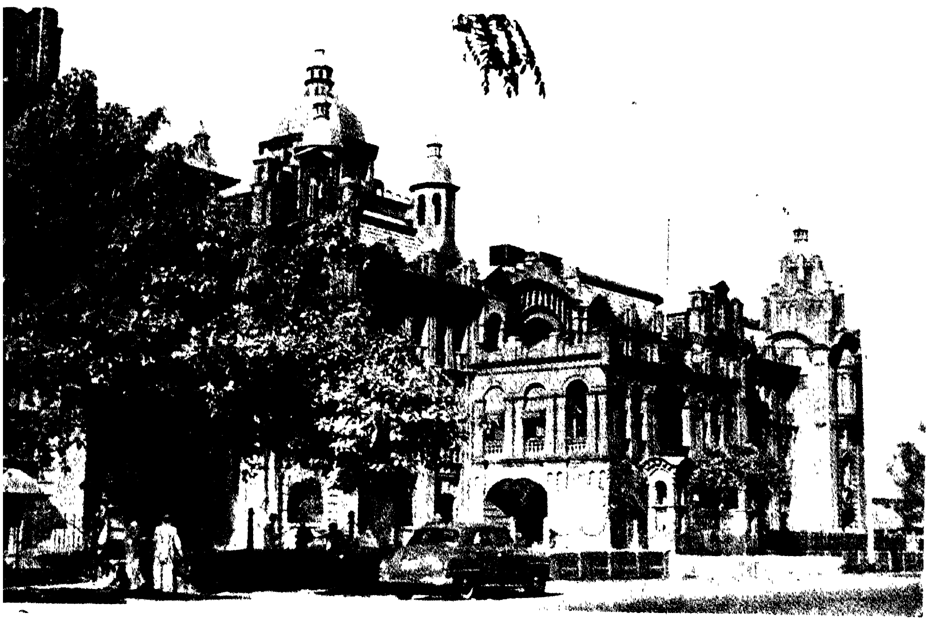
विक्टोरिया टरमिनस और मध्य रेलवे का प्रधान कार्यालय, बम्बई



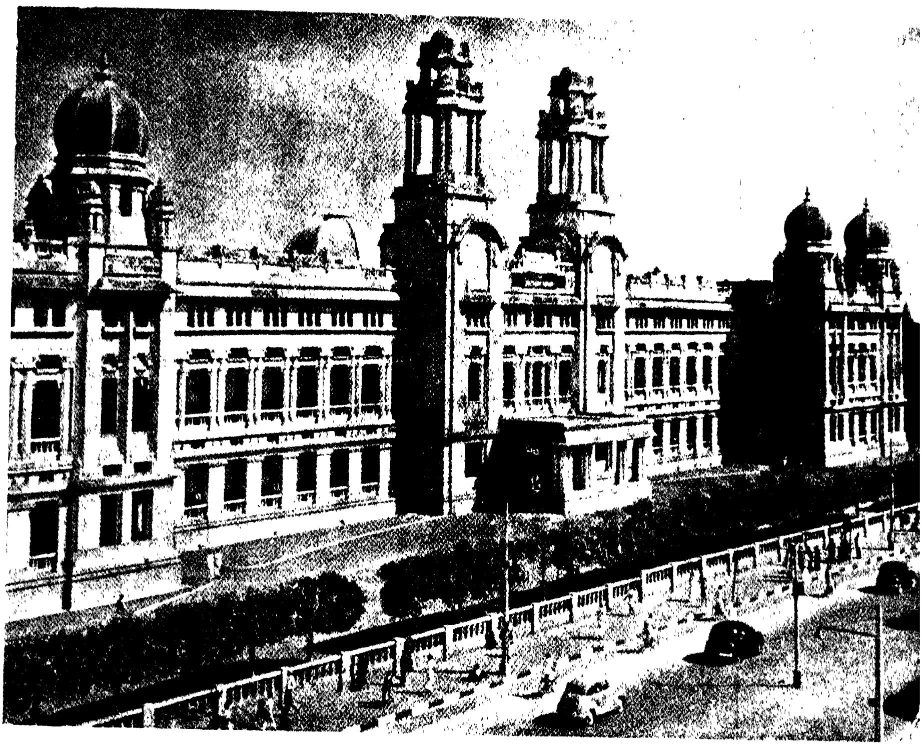
पश्चिम रेलवे का प्रधान कार्यालय, चर्चगेट, बम्बई



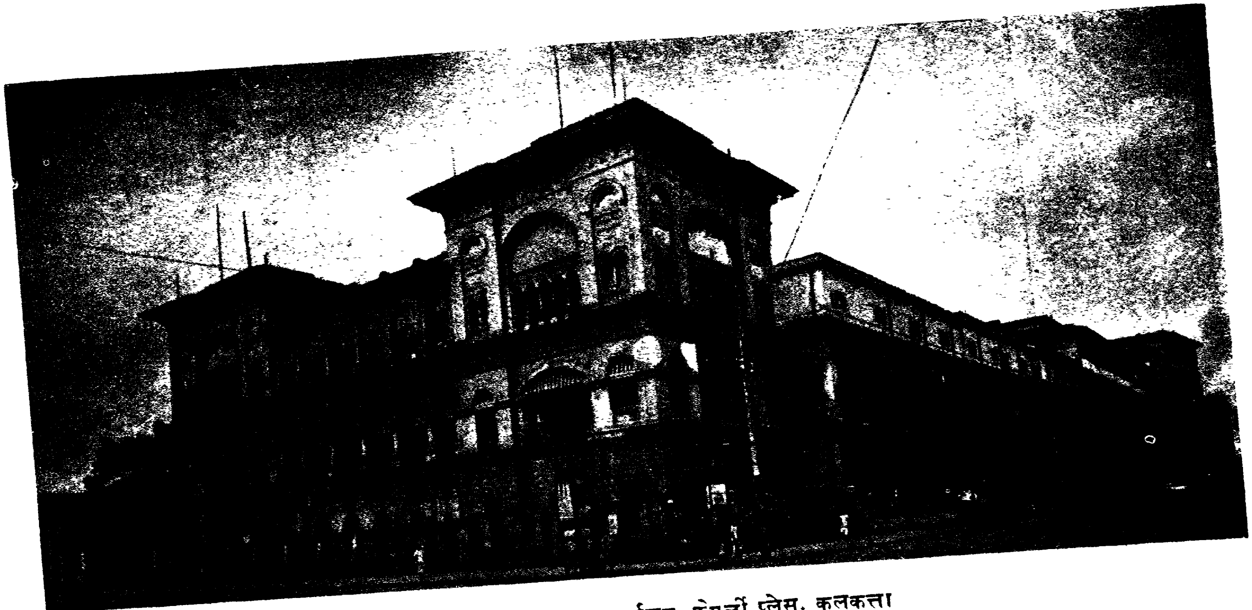
प्रधान कार्यालय, भूतपूर्व साउथ इण्डियन रेलवे, त्रिचिनापली



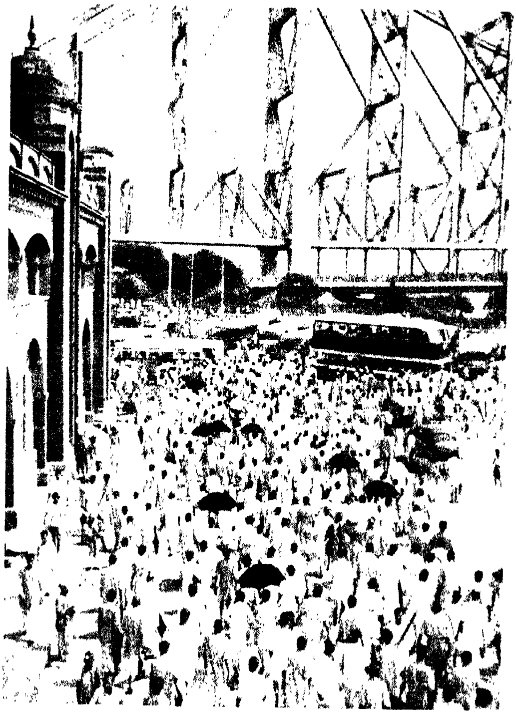
बंगाल-नागपुर रेलवे का प्रधान कार्यालय, गार्डन रीच, कलकत्ता



दक्षिण रेलवे का प्रधान कार्यालय, मद्रास



पूर्व रेलवे का प्रधान कार्यालय, फेयर्ली प्लेस, कलकत्ता

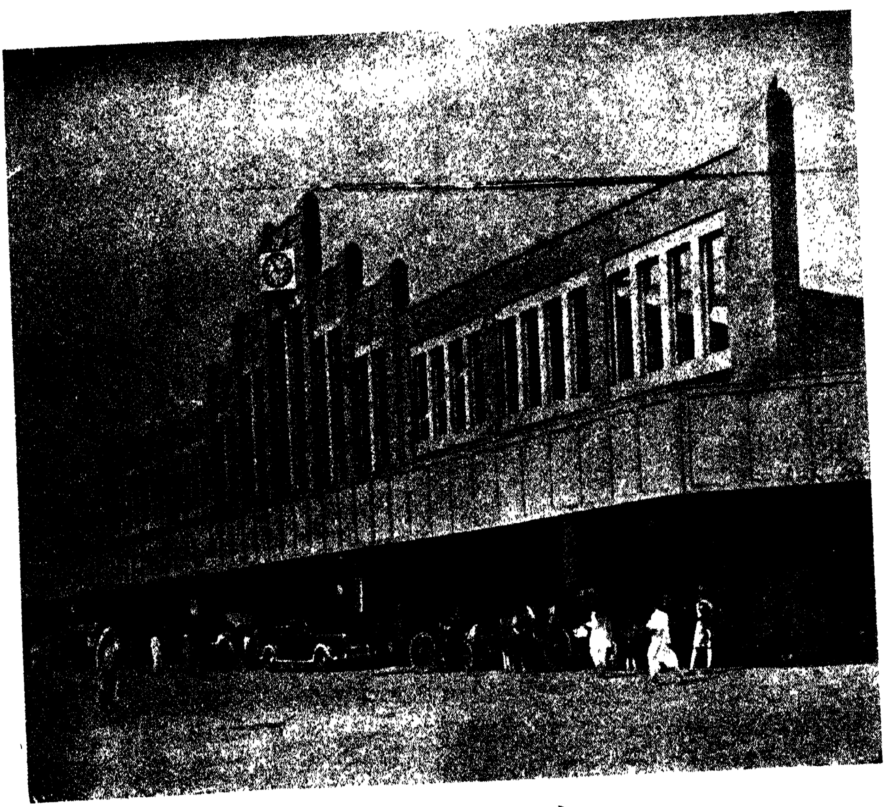




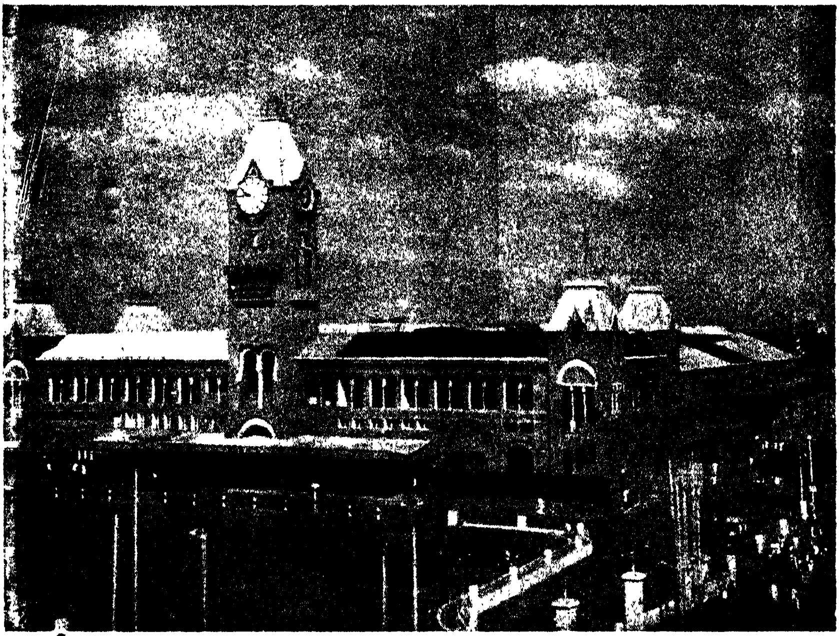
ऊपर और नीचे—हावड़ा स्टेशन के बाहर यातायात



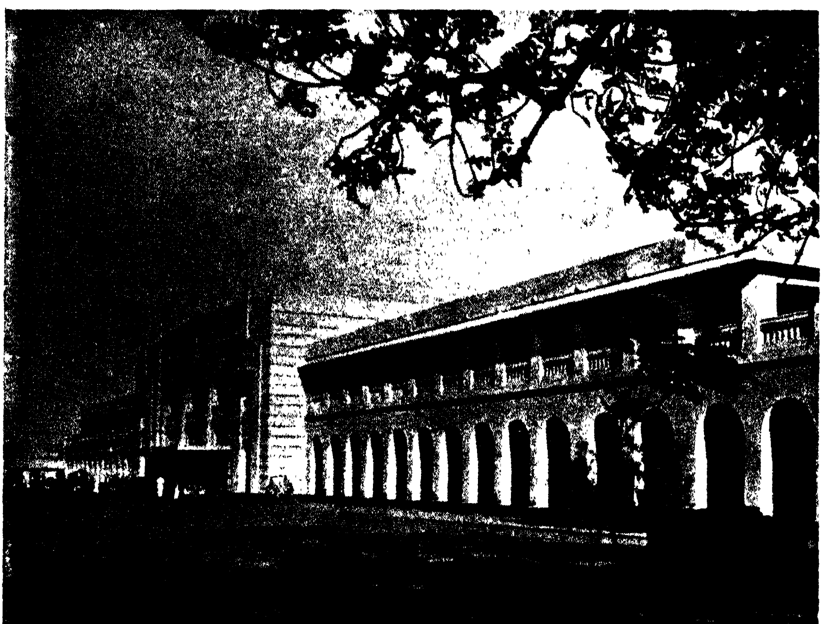
सियालदह का पुराना रेलवे स्टेशन—1862



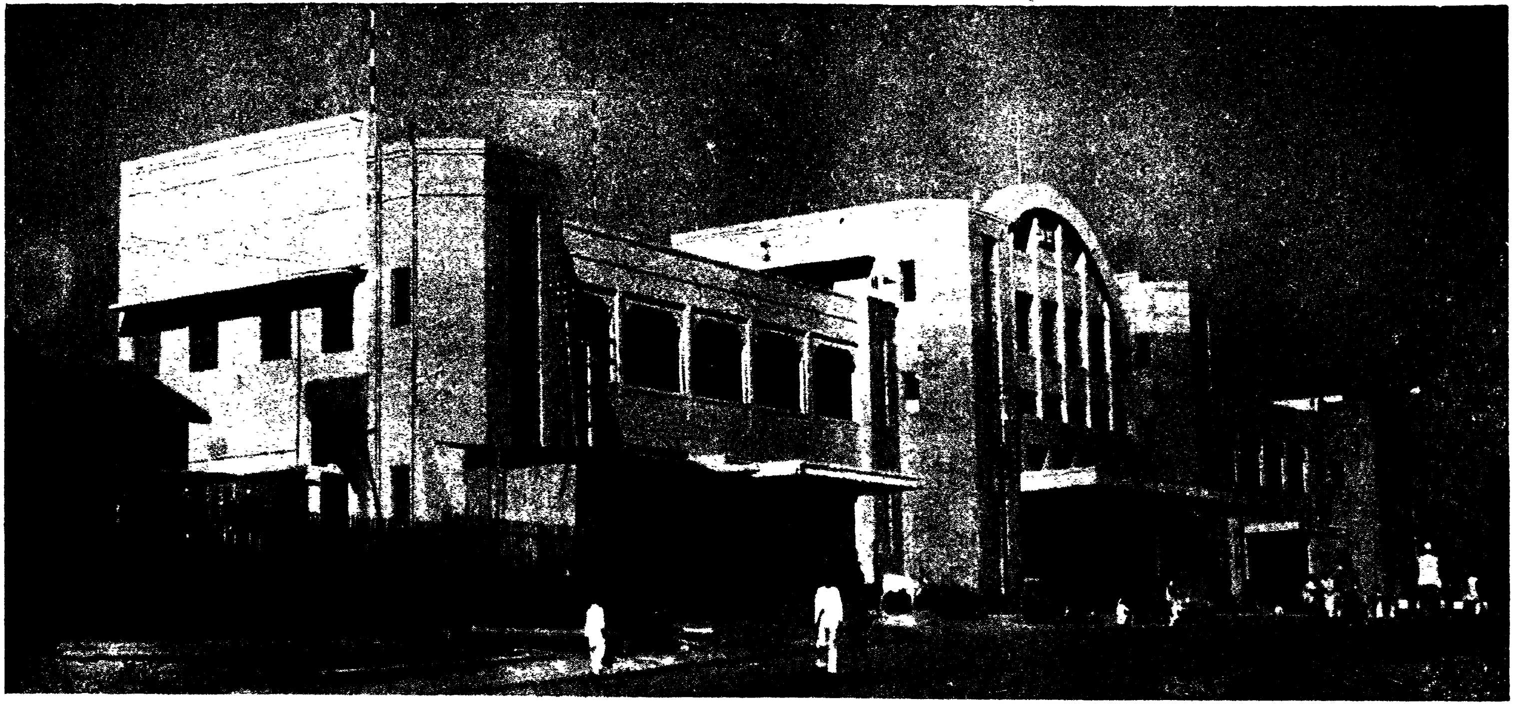
सियालदह का नया रेलवे स्टेशन



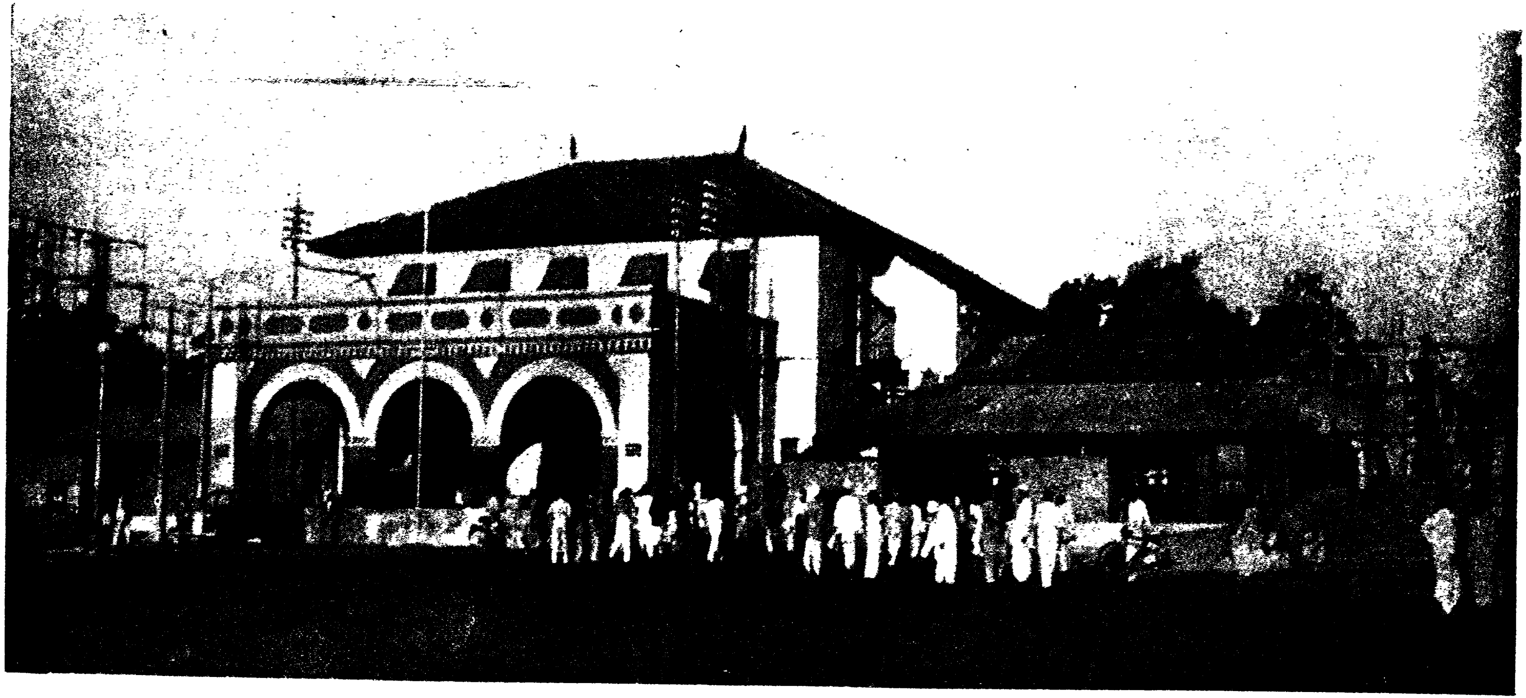
मद्रास का सेन्ट्रल स्टेशन



त्रिचिनापली जंकशन



बडौदा का नया रेलवे स्टेशन



बड़ौदा का पुराना रेलवे स्टेशन

पुर्तगालियों ने टैंक के पास एक फाँसी घर बनाया जिससे उस जगह और तालाब का नाम 'गिबेट पॉण्ड' (फाँसी का तालाब) पड़ गया।

प्रसिद्ध वास्तुकार एफ. डब्ल्यू. स्टीवेन्स ने 1887 में इसकी रूप-रेखा तैयार की और विक्टोरिया टरमिनस स्टेशन गाथिक-सारसेनिक शैली पर बनाया गया। इसमें बड़े सुन्दर ढंग से महीन खुदायी के सुसज्जित मेहराब रखे गये हैं, जिससे यह देखने में विशाल गिरजा घर मालम देता है। वेस्ट मिन्सटर एबे की याद दिलानेवाले केन्द्रीय गुम्बद के साथ साथ कई छोटे गुम्बदों और नुकीली मीनारों के कारण यह प्रभाव और भी अधिक स्पष्ट हो जाता है। गुम्बद तथा मीनारों की लम्बी, तंग और नुकीली खिड़कियों में नक्काशी के रंगीन शीशे लगे हुए हैं और समूची इमारत की तरह पत्थरों से काटकर, बढ़िया नक्काशी के पलस्तर लगाये गये हैं। केन्द्रीय गुम्बद की चोटी पर 'प्रगति' सूचक पत्थर की विशाल मूर्ति है। यह 16 फीट 6 इंच ऊंची है। छत और बाहरी दीवार के ढालू तिकोनों पर 'इंजीनियरिंग', 'कृषि', 'व्यवसाय', 'विज्ञान' और 'व्यापार' सूचक चौखटे खुदे हुए हैं। मेहराब और खिड़कियाँ वेनिस शैली की बनी हुई है और उनसे 1500 फीट तक का दृश्य दिखायी देता है। बरामदों की मेहराबों के दोहरे खम्भे संगमरमर के हैं। अन्दर की सजावट में इटली के कड़े पत्थर का अधिक प्रयोग किया गया है। पुराने स्टेशन में आठ प्लेटफार्म हैं और मुख्य लाइन के नये स्टेशन में, जो पुराने स्टेशन से एक चौड़ी सड़क द्वारा अलग हो गया है, यात्रियों के पाँच प्लेटफार्म हैं और एक प्लेटफार्म पार्सल यातायात के लिए है। दोनों स्टेशनों में प्रतीक्षालय, स्टेशन मास्टर के कार्यालय, टिकट-घर और किताब-घर हैं। इसके अलावा नये स्टेशन में डाक-तार-घर, पूछताछ और आरक्षण कार्यालय, विश्रामालय, जलपान घर और सामान-घर हैं। इमारत के कुछ भाग में सेण्ट्रल रेलवे का प्रशासन-कार्यालय है।

हावड़ा

हुगली नदी के किनारे, लाल ईंटों का बना हुआ, हावड़ा रेलवे स्टेशन है। 1906 से इसी तरह बना हुआ यह स्टेशन बनावट में विक्टोरिया टरमिनस की शान का चाहे न हो, किन्तु देखने में बड़ा भव्य और आकर्षक है। नाप में यह भारत का सबसे बड़ा स्टेशन है। जिस जगह वर्तमान हावड़ा रेलवे स्टेशन बना हुआ है वहाँ पहले पुर्तगाली पादरियों का अनाथालय था जिसके बगल में एक छोटा गिरजाघर था। 19 वीं सदी के आरम्भ में, महामारी के कारण, यह अनाथालय हटाकर कलकत्ता में कर दिया गया और जगह बाद में ईस्ट इण्डियन रेलवे को बेच दी गयी।

सजधज की अपेक्षा उपयोगिता की दृष्टि से बने हावड़ा स्टेशन में यात्रियों के लिए एक बड़ी छतदार जगह है जिसमें एक ओर प्लेटफार्म और बाकी सब ओर दफ्तर, विश्रामालय और प्रतीक्षालय हैं। हावड़ा स्टेशन के यातायात की विभिन्नता और सरलता ही उसकी मुख्य विशेषता है। संसार में दूसरा कोई स्टेशन नहीं है जहाँ विभिन्न प्रकार की इतनी सवारियाँ—बस, ट्राम, मोटर-गाड़ी, घोड़ा-गाड़ी, बैल-गाड़ी, रिक्शा और बाइसिकलें दिन रात आया-जाया करती हों।

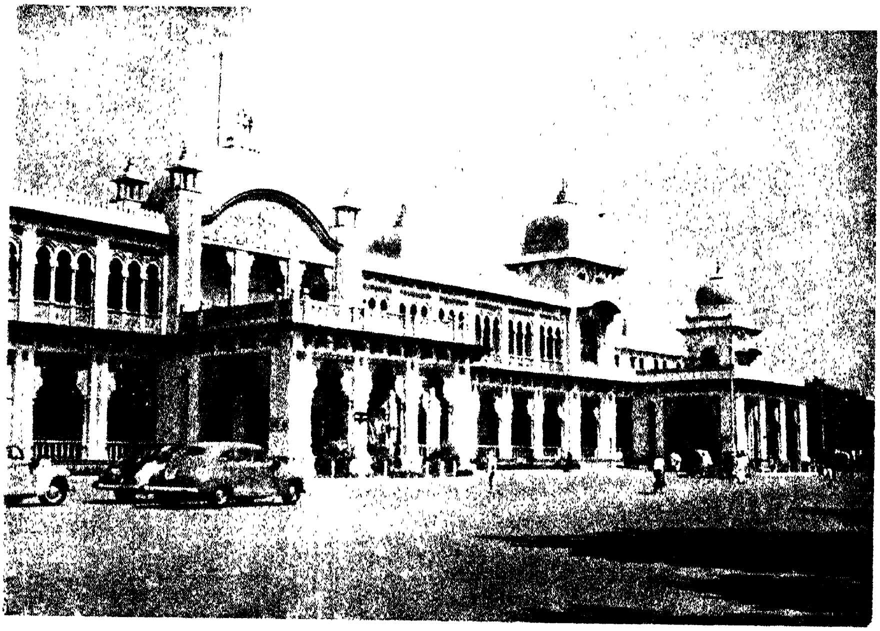
हावड़ा के विभागीय-कार्यालय भवन में आज भी एक कांस-पत्र रखा है जिसमें शून्य अंक खुदा हुआ है। यह मूल में हुगली की बड़ी लाइन का पहला मीलचिन्ह था। आज का तीन खंड का विभागीय कार्यालय उस समय लाल ईंटों की साधारण इमारत थी जिसकी छत टीन की थी। पहले यही हावड़ा स्टेशन था। इमारत के दोनों तरफ, हुगली नदी पर लम्ब बनाते हुए, दो प्लेटफार्म हैं। एक प्लेटफार्म के सामने लाइन बनी है, दूसरा माल उतारने चढ़ाने के काम आता है। पहले प्लेटफार्म में अब सिर्फ पार्सल गाड़ियाँ आती हैं और वह 12 नम्बर प्लेटफार्म कहलाता है। इसके अलावा ग्यारह और प्लेटफार्म हैं। जिनपर प्रतिदिन हावड़ा स्टेशन की 60 गाड़ियाँ आती और जाती हैं।

सियालदह

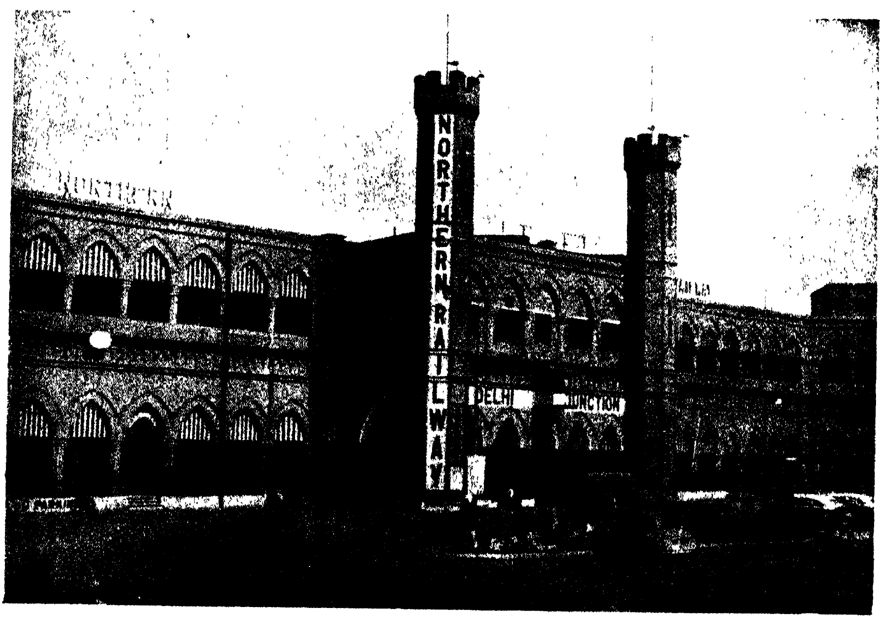
इतना बड़ा तो नहीं, किन्तु निर्माण की सुन्दर विशेषताओं से सम्पन्न सियालदह स्टेशन हुगली के दूसरे किनारे पर, हावड़ा से कुछ दूर, कलकत्ता के बीच में बना हुआ है। इटली की स्पष्ट शैली में पूर्वीय कला की पुट के साथ, बना हुआ सियालदह स्टेशन देखने में भव्य और बनावट में बड़ा उपयोगी है। इसमें शायद सबसे लम्बे ढँके हुए प्लेटफार्म हैं, जिनमें से दो की लम्बाई प्रति 1000 फीट से कुछ कम और चौड़ाई 28 फीट से अधिक है। उनके ढँके हुए शेड 550 फीट लम्बे और रेलों की छः लाइनों के ऊपर फैले हुए हैं। इस शानदार इमारत की छत विलक्षण देशी ढंग से बनायी गयी है, जो निर्माण-कला की दृष्टि से, असाधारण महत्व की है। यह छत 'खोआ छत' कहलाती है। 'खोआ छत', मोटी-पतली सभी आकार की रोड़ी सिलहट के चूना में मिलाकर, कई परतों में बिछायी जाती है। सबसे महीन परतें सबसे ऊपरी भाग में होती हैं। छत को काफी पानी डालकर लकड़ी की मुँगरी से समतल किया जाता है। इस इमारत की नींव, खोदे हुए गहरे पानी के तालाबों के कारण, कई जगह जमीन से 45 फीट नीची है और इस सतह पर कुछ दीवारें आठ से दस फीट मोटी हैं। गाड़ियों को ठीक ऊँचाई पर लाने के लिए 6 मील का मिट्टी का ऊँचा रास्ता बनाना पड़ा। प्लेटफार्म से आधा मील दूर, वृत्ताकार नहर के ऊपर प्रति 110 फीट के तीन दर का गाटर का सुन्दर पुल है। स्टेशन के सामने का बाड़ा 200 फीट लम्बा, 40 फीट ऊँचा और 40 फीट चौड़ा है। इमारत में हवा और रोशनी के कई उत्तम साधन हैं और इमारत को भारी बरसात की बाढ़ से बचाने का भी प्रबन्ध है।

स्थानीय छाप

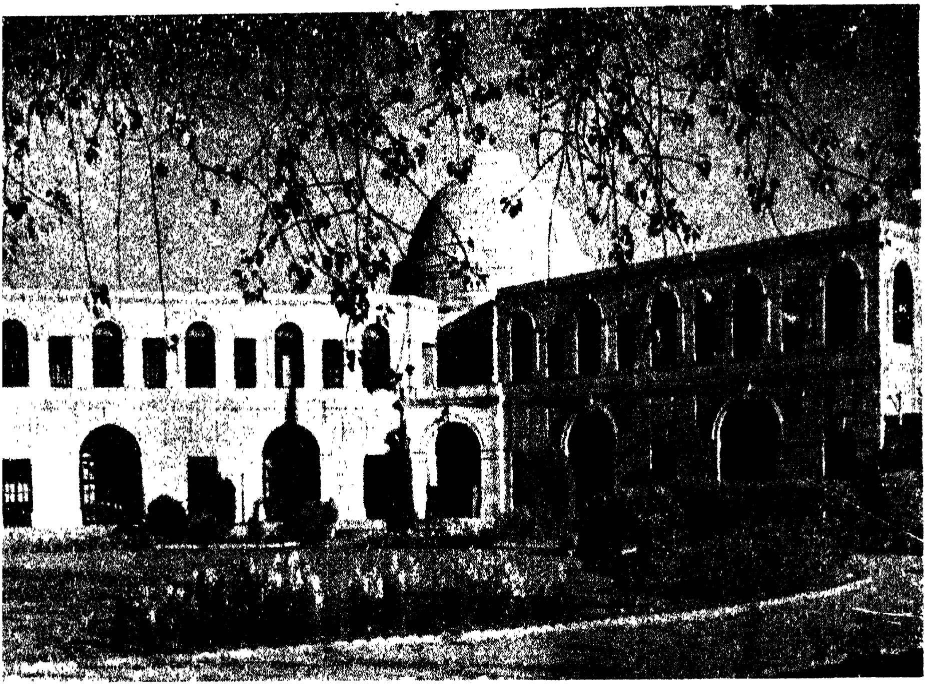
1926 में लखनऊ और 1928 में कानपुर के स्टेशन बने जिनमें आधुनिकता के साथ-साथ देशी कला की भी स्पष्ट छाप है। उनकी बहुत सी गुम्बदें और मीनारें अवध के नवाबों की बनायी हुई लखनऊ की कुछ ऐतिहासिक इमारतों के साथ मेल खाने के लिए भारतीय-मुसलमानी (इण्डो-सारसेन) शैली की बनायी गयी हैं। लाल ईंटों की इन इमारतों के सामने मुगल मेहराबों के लम्बे-चौड़े बरामदे हैं। बीच की बरसाती से होकर खुला हुआ गलियारा है, जिसके दोनों तरफ दोनों मंजिलों में प्रशासन-कार्यालय, जलपान गृह, प्रतीक्षालय और विश्रामघर हैं। स्टेशन की लम्बाई की सीध में, पुलों से होकर और नीचे के रास्तों से, आने-जाने वाले यात्रियों के लिये कई बड़े-बड़े प्लेटफार्म हैं।



एगमोर रेलवे स्टेशन मद्रास

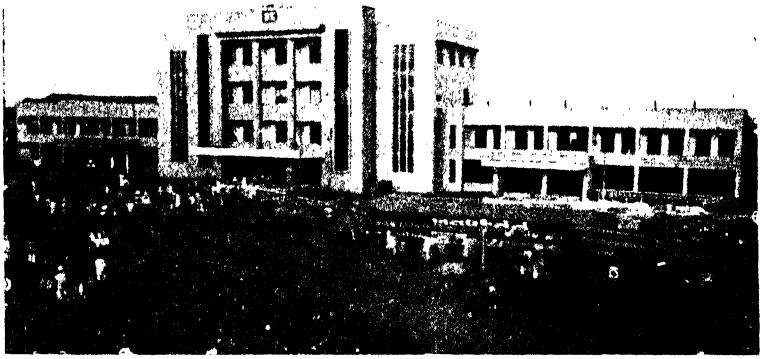


दिल्ली रेलवे स्टेशन

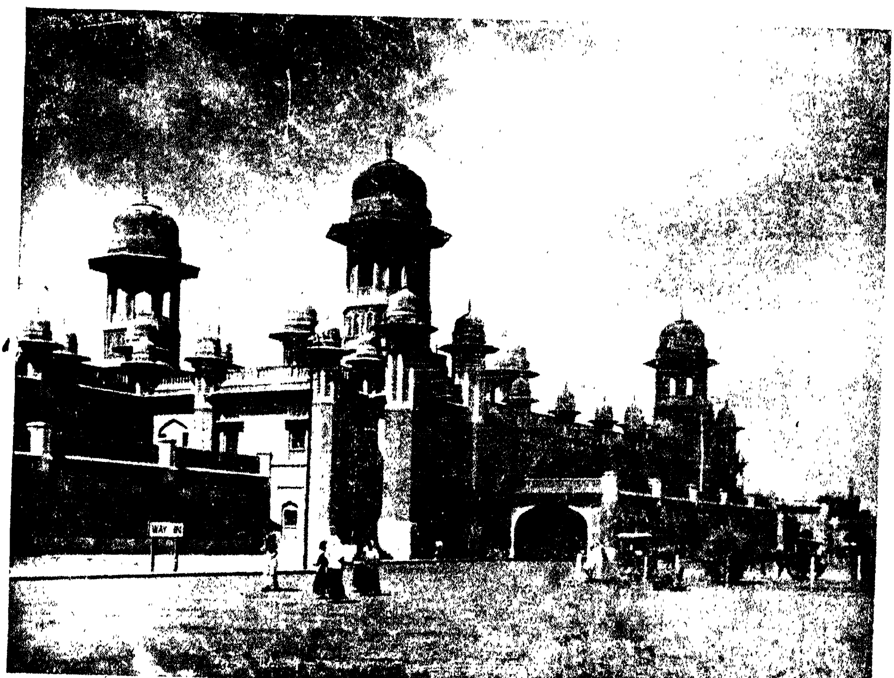


उत्तर रेलवे का प्रधान कार्यालय, बड़ौदा हाउस नयी दिल्ली ।

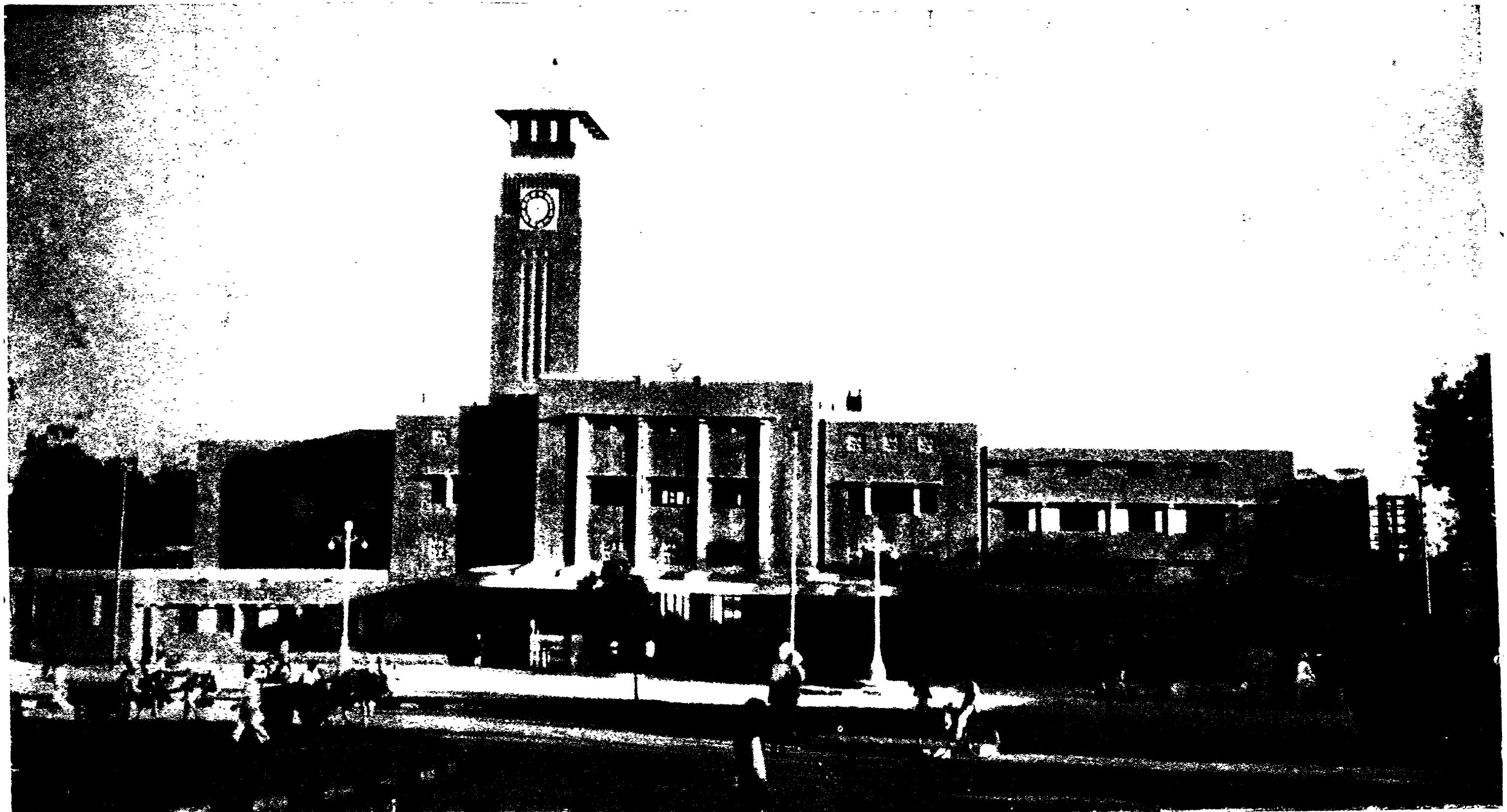
सूरत के पुराने रेलवे स्टेशन का एक दृश्य



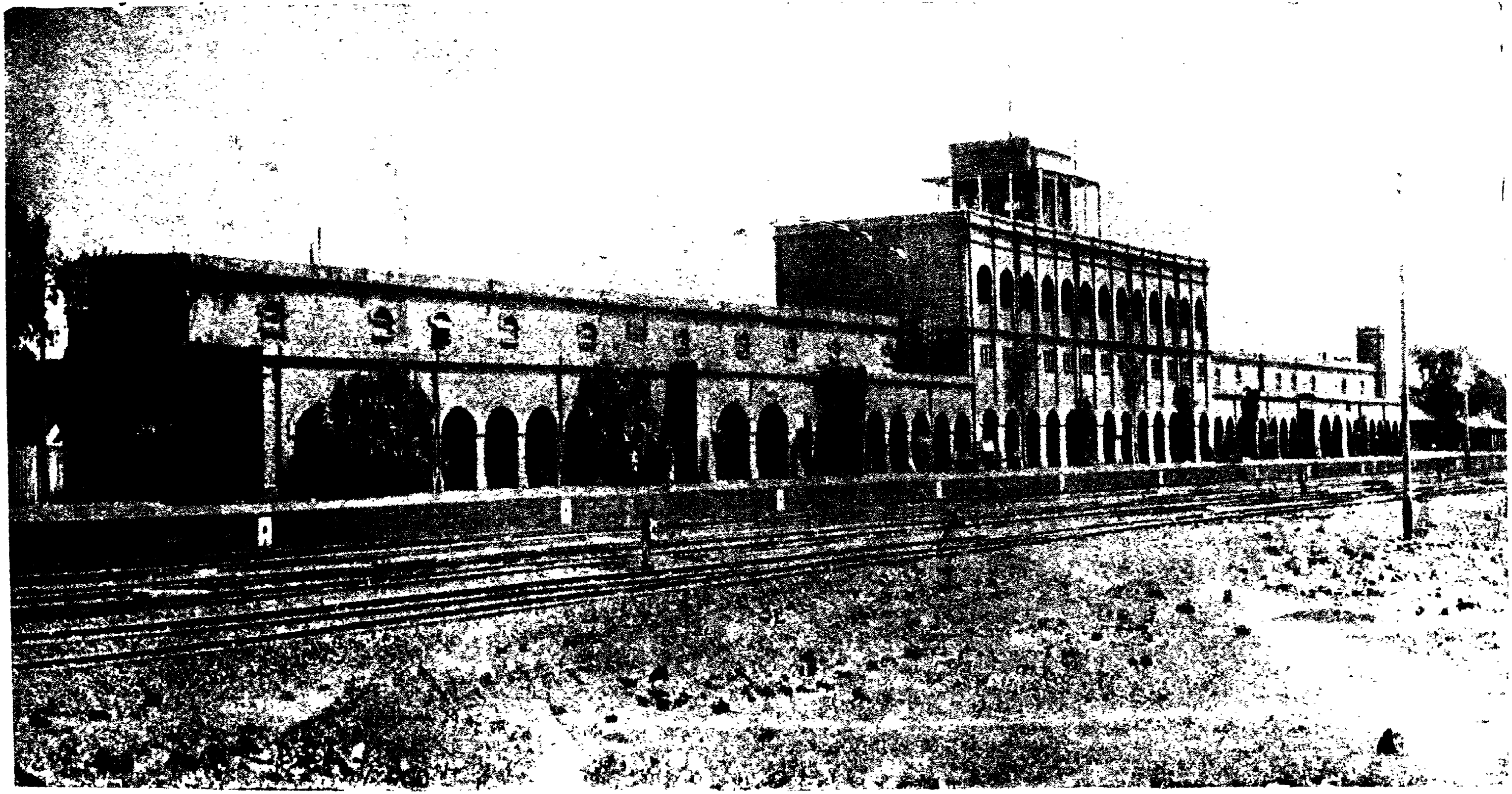
सूरत रेलवे स्टेशन के सामने का ऊंचा मैदान (1952)



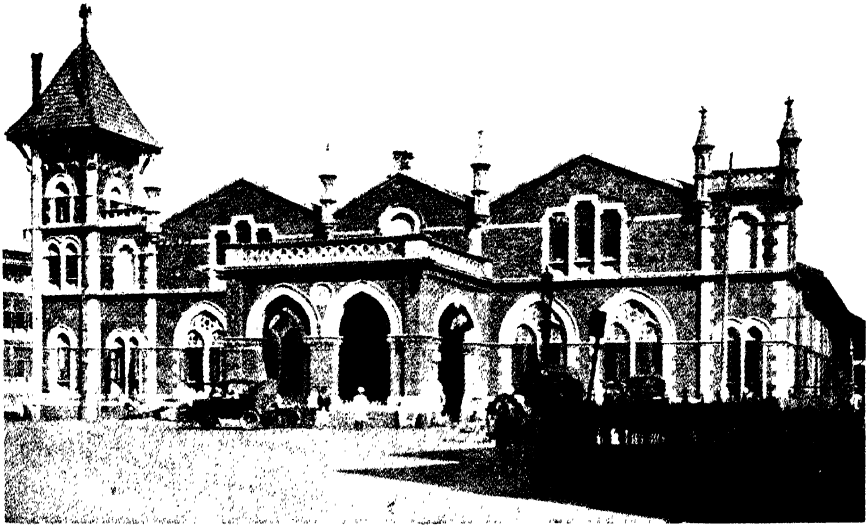
लखनऊ रेलवे स्टेशन



धपुर रेलवे स्टे.



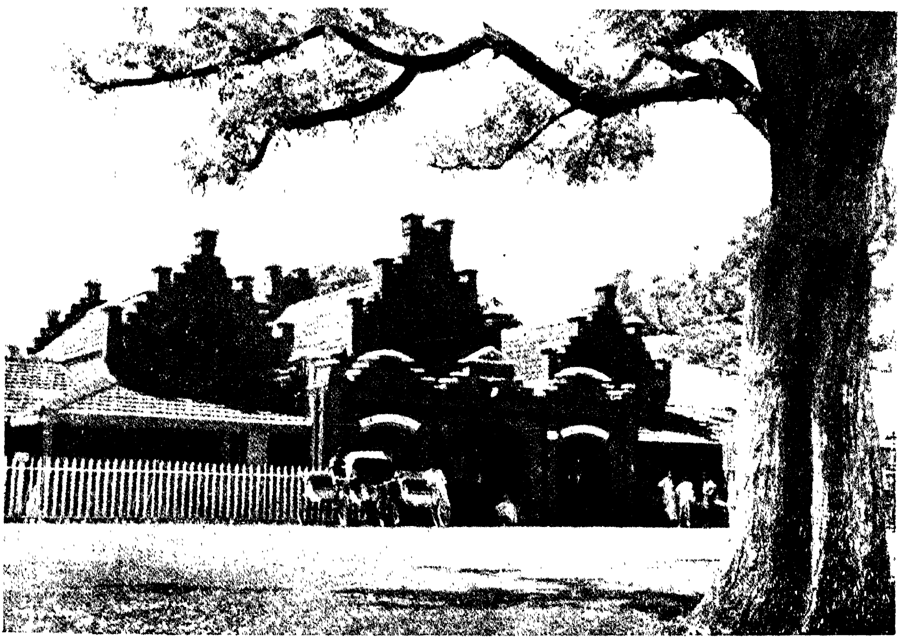
खरगपुर रेलवे स्टेशन



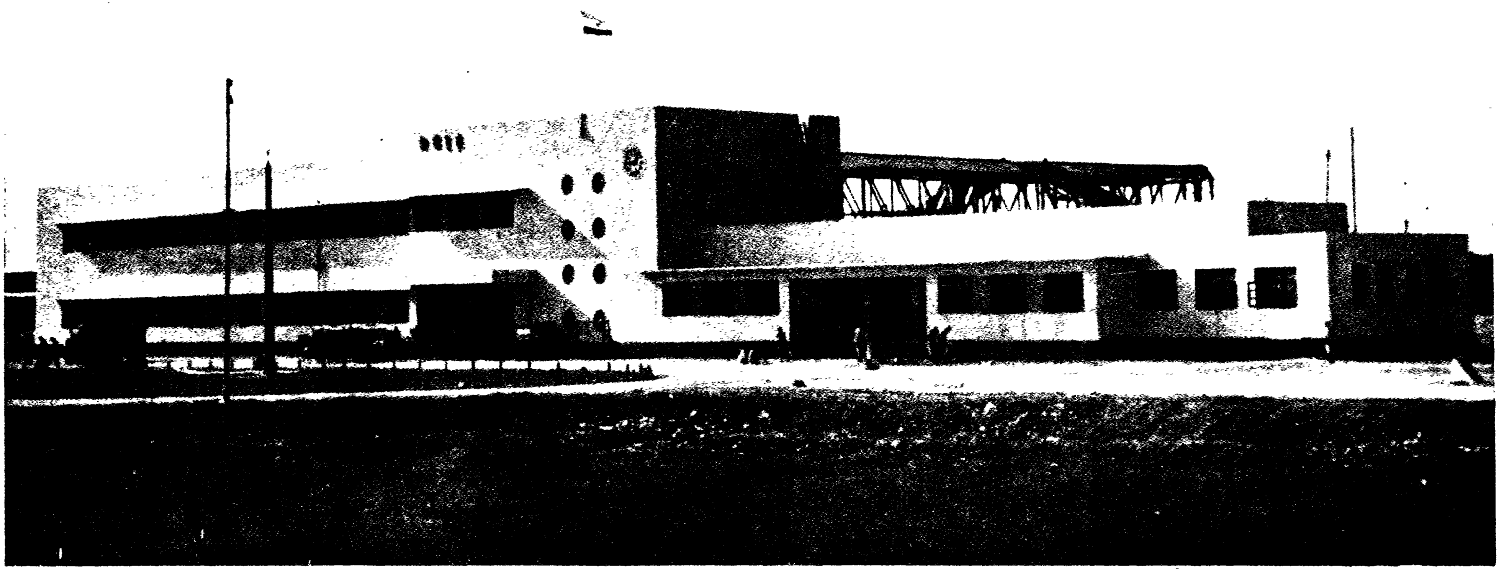
कोलाबा स्टेशन, 18 दिसम्बर 1930 मे बम्बई सेण्ट्रल के चालू होने से पहले, यह स्टेशन बम्बई बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे का पुराना टरमिनस था क्योंकि नया टरमिनस स्टेशन 1893 मे बना।



1928 में ढांचा बदलने से पहले पुराना चर्चगेट स्टेशन। यह स्टेशन 1876 में बनाया गया था।



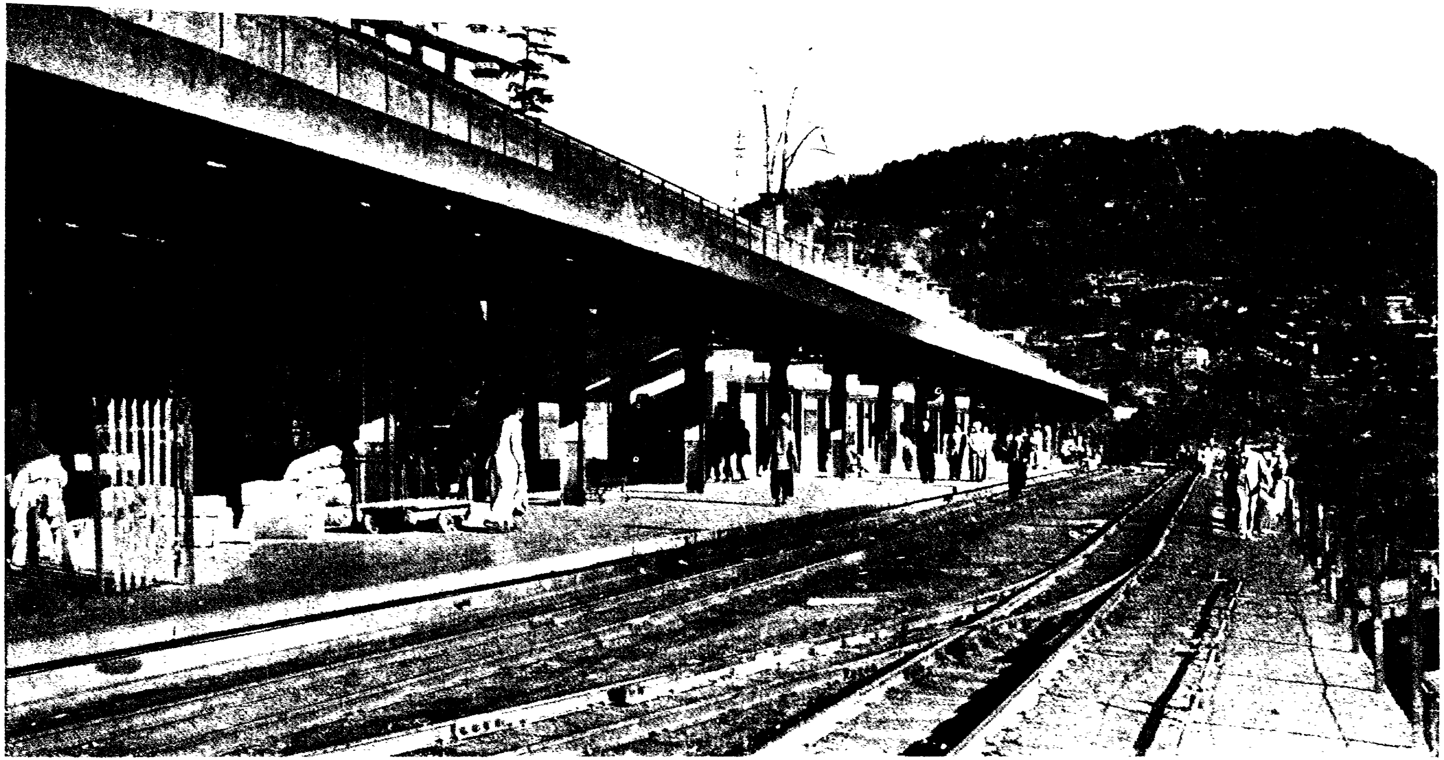
राँची रेलवे स्टेशन



सिलीगुरी रेलवे स्टेशन



बेलासपुर रेलवे स्टेशन



शिमला रेलवे स्टेशन

राजपूताना के जैपुर, जोधपुर, अजमेर, रतलाम, उदयपुर आदि स्टेशनों में राजपूत कला की प्रधानता है। इसी प्रकार, हैदराबाद और सिकन्दराबाद के स्टेशनों में स्पष्ट दक्खिनीपन है। दिल्ली, अमृतसर, पटना, गया, बनारस, इलाहाबाद, नागपुर, मद्रास, इरोद, त्रिचनापली आदि स्टेशनों की बनावट शैली का निदान करना कठिन है किन्तु उनकी उपयोगी बनावट में अनेक प्रकार की शैलियाँ देखने को मिलती हैं। पहाड़ों में बने हुए स्टेशनों का रूप-रंग विदेशी है और वे पहाड़ों की सादगी से मेल खाते हैं। शिमला, सोलन, धरमपुर, ऊटकमण्ड, कुरसियांग आदि के स्टेशन, ढालू छतों के कारण, आल्स के पर्वतीय क्षेत्र की कुटियों के समान मालूम होते हैं।

बम्बई सेण्ट्रल

डेढ़ करोड़ की लागत से 1930 में बनाया गया बम्बई सेण्ट्रल, हाल की बनी इमारतों में, उपयोगी युग का शायद सबसे मिलता-जुलता नमूना है। यह अपने किस्म का, यदि समूचे पूर्वीय भूभाग का नहीं, तो भारत का सबसे आधुनिक स्टेशन है। सड़क से काफी दूर, चौड़े रास्तों से, इसका सामना मिलता है, जहाँ 65 फीट का भव्य मेहराब और इतना ही लम्बी बरसाती है। चारों ओर से खुली हुई यातायात की मुख्य जगह 260 फीट लम्बी और 120 फीट चौड़ी है। इसकी छत के आधार, न्यूयार्क के पेनसिल-वेनिया टरमिनल स्टेशन की तरह, नक्काशी की जालीवाले खम्भों पर रखे हुए हैं। इसका क्षेत्रफल, दूसरी यातायात की जगह को मिलाकर, करीब 74,000 वर्ग फीट है। इसकी फर्श से छत की ऊँचाई 70 फीट है। उत्तर और दक्षिण दोनों ओर की ढालू छत में काट-कर बनायी गयी दस खिड़कियों द्वारा रोशनी का प्रबन्ध किया गया है। मुख्य इमारत के बाहरी भाग में गढ़ हुए पत्थरों की सीमेण्ट के साथ चुनाई की गयी है। दक्षिणी भाग के करीब 12000 वर्गफीट में स्टेशन मास्टर का दफ्तर, प्रतीक्षालय आदि हैं। मुख्य प्रवेश द्वार के ऊपर, दूसरे खण्ड के करीब 7000 वर्गफीट में, शौच तथा स्नान-घर सहित सभी सुविधाओं से युक्त कई विश्राम-घर हैं। गाड़ी के दोनों शेडों का ढका हुआ क्षेत्रफल करीब 1,50,000 वर्गफीट है और सबसे लम्बा प्लेटफार्म 1000 फीट से अधिक लम्बा है।

10. रेल-पथ और सिगनल

यह बात हम सब की समझ में जल्दी नहीं आ सकती कि रेल-युग से पहले गाड़ियाँ लकड़ी या पत्थर की समानान्तर लाइनों पर चलायी जाती थीं और पटरियों पर भारी गाड़ियों के चलने के सिद्धान्त ने रेल के विकास में भाप के इंजिन की अपेक्षा अधिक महत्व-पूर्ण काम किया है। वास्तव में, जैसा नाम से ही प्रकट हो जाता है, जब से गाड़ियों और ठेलों के पहिये लकड़ी या पत्थर की समानान्तर लाइनों पर चलने लगे, तभी से 'रेल' का अस्तित्व समझना चाहिए। सब से पहले रोमवालों ने यह सिद्धान्त लागू किया। प्राचीन रोम की कुछ ऐसी सड़कों के अवशेष अब भी मिलते हैं जिनमें इंटों के दो समानान्तर रास्तों पर जानवरों द्वारा खींची गयी गाड़ियों के पहिये आसानी से दौड़ते थे।

१५ वीं सदी के आरम्भ से इंगलैण्ड और योरुप के कुछ देशों में घोड़ों से ठेले खींचने के लिए लकड़ी की रेलों का प्रयोग होने लगा। इन ठेलों को इंगलैण्ड में 'ट्रामवेज' कहते थे क्योंकि उस समय लकड़ी का एक बोझ 'ट्राम' कहलाता था। 1660 में न्यूका-सिल-आन-टीन के आस-पास और टिन साइड में भी इन ट्राम मार्गों के होने के लेख मिलते हैं। प्राप्त लेखों के आधार पर, 1767 में लकड़ी की रेल की जगह ढली हुई लोहे की रेल के प्रयोग का प्रमाण मिलता है।

19 वीं सदी के आरम्भ में घोड़ों द्वारा ठेलों और गाड़ियों के ये रेल-पथ साधा-रणतः इंगलैण्ड के कई हिस्सों और योरुप में कहीं-कहीं दिखायी पड़ने लगे। 1801 में इंगलैण्ड में वेन्ड्सवर्थ और कायडीन के बीच घोड़ों की एक छोटी रेल–सड़क चालू हुई।

1804 में, ट्रेवेथिक को पता चला कि 'चिकनी रेल की पटरी पर चिकने पहियों की गाड़ियाँ' अधिक आसानी से चल सकेंगी। शायद दूसरी बातों से बढ़ कर इसी खोज ने भाप के इंजन को पीछे की गाड़ियों और डिब्बों को घसीटने के लिए प्रयोग करने की प्रेरणा दी। आज इंजन का गाड़ियों को सुविधा और सरलता से जल्दी-जल्दी घसीटना बिलकुल स्वाभाविक और साधारण लगता है। किन्तु आरम्भ में रेल की पटरी पर पहियों के लुढ़कने के सिद्धान्त और भाप की ढकेलने की शक्ति को समझने पर भी, तेज चलने वाली गाड़ियों के लिये रेल और रास्ता बनाना, लाईनों के बीच की समानान्तर दूरी निश्चित करना और उन्हें मजबूती से कस कर स्थिर रखना आदि काम कुछ आसान न थे। इन बातों की छान-बीन आज भी जारी है। वास्तव में आरम्भ में लोगों को यह विश्वास होना बहुत कठिन था कि तेज भागने वाली रेल गाड़ियाँ पटरी पर दौड़ती रहेंगी

और लाइन से उतर कर आस पास के लोगों के जीवन और सम्पत्ति को खतरे में न डाल देंगी। यह भय इतना व्यापक था कि कुछ क्षेत्रों के लोगों ने अपने यहाँ से रेल मार्ग निकालने का घोर विरोध किया। पटरी से गाड़ी उतरने के भय को दूर करने के लिए कई प्रकार के आविष्कारों का प्रयोग किया गया जो, पिछले सौ साल के अनुभव के बाद, आज विचित्र और हास्यास्पद जान पड़ेंगे।

इंगलैण्ड में, लेबिल नामक आविष्कारक ने अपने समय की हवाई दबाव प्रणाली (एटमासफेरिक सिस्टम) कहलाने वाली पद्धति का प्रयोग आरम्भ किया। इसका सामान्य सिद्धान्त यह था कि रास्ते में जगह-जगह पर लगे हुए इंजनों द्वारा सिलेण्डर के अन्दर की हवा को बाहर खींच कर हवा के दबाव से पिस्टन को सिलेण्डर के अन्दर आगे-पीछे घुमाया जाय जिससे गाड़ी आगे बढ़े। यह केवल सूझ मात्र न थी। कई जगहों पर इसका प्रयोग भी किया गया। पार्लियामेण्ट ने भी क्रायडन से एपसम तक इसी प्रकार की हवा के दबाव द्वारा संचालित रेल बनाने का एक अधिनियम बनाया। पार्किंस नाम के दूसरे आविष्कारक ने एक ऐसा यंत्र बनाया जिससे गाड़ी में लगे हुये एक बड़े पहिये के चारों ओर लिपटी हुई रस्सी को एक स्थायी इंजिन द्वारा खींचकर गाड़ी चलायी जाती थी। इसी समय 'काल मैन' इंजिन और गाड़ियों का आविष्कार हुआ। इनके पहियों में बाट नहीं होती थी, फिर भी ये घूमते हुए इंगलों से जुड़े हुए, बीच की तीसरी पटरी पर भागनेवाले, पट पहियों के कारण पटरियों पर टिके रहते थे।

1840-50 के बीच का जब भारत में रेल के विकास की कई योजनाएं विचाराधीन थीं, बम्बई इंजीनियर्स के करनल ग्राण्ट ने एक पुस्तक लिखी जिसने बहुत से लोगों का ध्यान अपनी ओर आकर्षित किया। ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों, दुर्गम नदियों, जंगलों और समूचे देश में घूमते-फिरते जानवरों के कारण उनका विचार था कि जमीन पर रेल की पटरियाँ बिछाकर रास्ता बनाना, देश की स्थिति के कारण अव्यावहारिक होगा। उन्होंने सुझाव रखा कि प्रत्येक भारतीय रेलवे अपनी समूची लम्बाई तक झूलती हुई जंजीरों पर जमीन की सतह से कम से कम 8 फीट की ऊँचाई पर, लटकायी जाय। यह ऊंचाई उनके विचार से जानवरों की पहुँच के बाहर थी और इससे आसानी से एक सा रास्ता बन सकता था। इस विचित्र पद्धति की रेलों के भारी लागत के नमूने भी बनाये और दिखाये गये। इसी प्रकार की बहुत सी विचित्र और अनिश्चित प्रकार की योजनाएं उस समय तक बनती और बिगड़ती रहीं जब तक वह पद्धति लागू न हुई जिसमें विशेष प्रकार के रोड़ी के रास्ते पर लकड़ी या लोहे के स्लीपरों में रेल की पटरियों को समानान्तर दूरी से कसकर रेल-पथ बनाये जाते हैं।

स्लीपर

भारत में पटरियों के समकोण पर निश्चित दूरी से स्लीपर डाले गये हैं। कुछ दूसरे देशों में स्लीपर रेल की पटरियों के नीचे उनकी सीध में एक लाइन में कस दिये जाते हैं। सीध में कसे हुए स्लीपर आज भी बड़ी लाइनों के लिए, जैसे रूस के कुछ भागों में सुरक्षित

ग्रौर सस्ते समझे जाते हैं । कुछ विशेषज्ञों का मत है कि इस प्रकार के स्लीपर के रेल-पथ बहुत अच्छे ग्रौर ग्रारामदेह होते हैं । यह प्रणाली बहुत से देशों में ग्रव्यावहारिक कह कर ठुकरा दी गयी है । भारत में लकड़ी ग्रौर ढले हुए लोहे के कड़ाही जैसे स्लीपरों का, जिन्हें 'पॉट स्लीपर' कहते हैं, बहुतायत से प्रयोग होता है ।

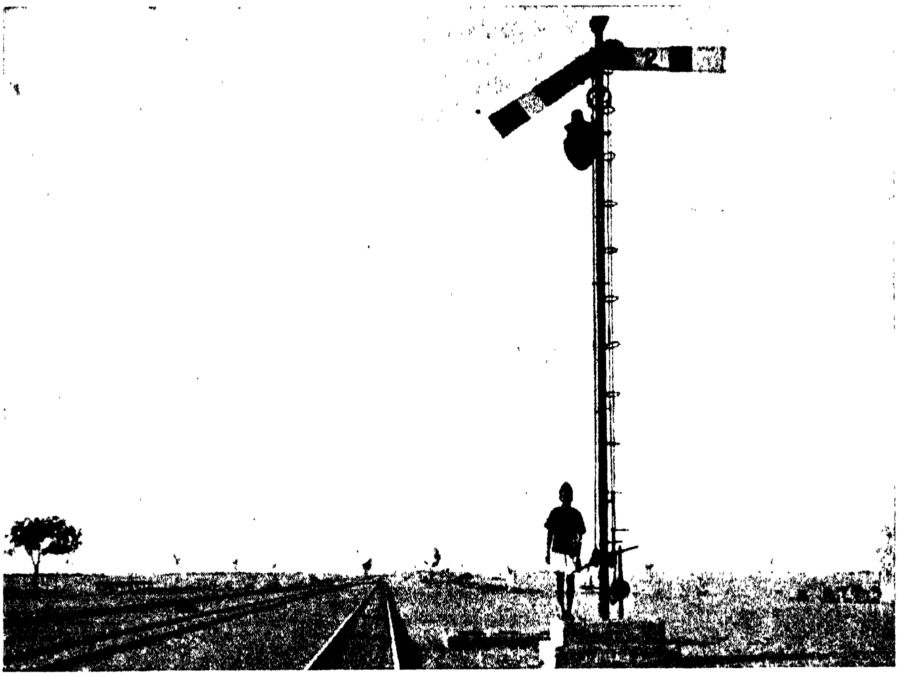
जिस सरल लगनेवाली समस्या ने किसी समय भारी मतभेद ग्रौर वाद-विवाद खड़ा कर दिया था वह थी दो समानान्तर लाइनों के बीच की दूरी निश्चित करने की समस्या। विभिन्न देशों की ग्रौर एक ही देश की विभिन्न लाइनों के बीच की दूरी में विभिन्नता है। इस दूरी को रेल का 'गेज' कहते हैं ।

गेज (ग्रामान)

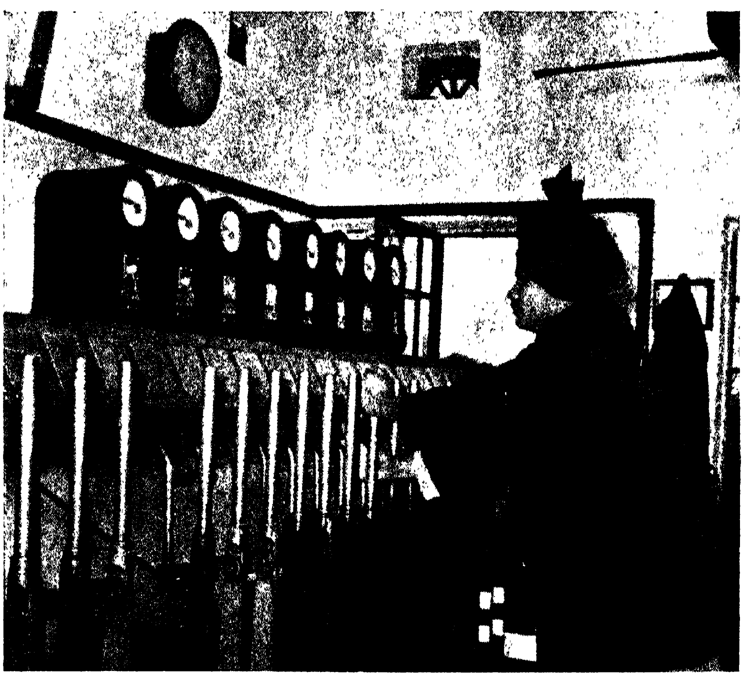
स्पेन, पुर्तगाल, ब्राजील ग्रौर चिली की तरह भारत में भी पहले की सभी मुख्य-मुख्य लाइनों के लिए 5 फीट 6 इंच का गेज रखा गया ग्रौर कम जरूरी मुख्य लाइनों ग्रौर सहायक लाइनों के लिए 3 फीट $3\frac{3}{8}$ इंच मीटर गेज रखा गया। इंगलैण्ड का सामान्य गेज 4 फीट $8\frac{1}{2}$ इंच चौड़ा है किन्तु वेल्स के पहाड़ी क्षेत्र में कुछ कम चौड़ी लाइनें बनी हुई हैं । ग्रारम्भ में ब्रिटेन की ग्रेट वेस्टर्न रेलवे की लाइन 7 फीट चौड़ी थी किन्तु ग्रन्त में प्रचलित दूरी ग्रपना ली गयी। ग्रमेरिका में 4 फीट $8\frac{1}{2}$ इंच ग्रौर 3 फीट के बीच के गेज हैं जिनमें ब्रिटेन का सर्वमान्य गेज (4 फीट $8\frac{1}{2}$ इंच) सबसे ग्रधिक प्रचलित है। ग्रास्ट्रेलिया, जापान, टैसमेनिया ग्रौर नार्वे के बहुत बड़े भाग में ग्रलग-ग्रलग गेज हैं फिर भी, $3\frac{1}{2}$ फीट का गेज पर्याप्तरूप से प्रचलित है ।

भारत के उस समय के गवर्नर-जनरल, लार्ड डलहौजी ने, देश की रेलों के कई इंजीनियरों ग्रौर विशेषज्ञों की रिपोर्ट ग्रौर सम्मति के ग्राधार पर ग्रपने प्रसिद्ध लेख में 1853 के शुरू में सिफ़ारिश की थी कि पटरियों के बीच की दूरी 5 फीट 6 इंच रखी जाय। यही ग्रामान मुख्य लाइनों के लिए मान लिया गया। फिर भी, लार्ड मेयो ने गवर्नर-जनरल की हैसियत से 1870 में बचत को ध्यान में रखकर उतनी ही मजबूत दलीलों के साथ ग्राग्रह किया कि कुछ नयी शाखा ग्रौर सहायक लाइनें 3 फीट $3\frac{3}{8}$ इंच की बनायी जायँ जिसे बाद में 'मीटर' लाइन का नाम दे दिया गया। इस लाइन ने कम ग्राबादी के पिछड़े हुए जिलों में संचार सम्पर्क बढ़ाने में बड़ी सहायता की क्योंकि यह बड़ी लाइन की ग्रपेक्षा कम खर्च में तैयार होती थी। तब से, भारत में यातायात ग्रौर स्थिति के ग्रनुसार कई ग्रामान चालू हो गये हैं। ग्राज भारत में, करीब 16000 मील की बड़ी लाइन, 15000 मील की मीटर लाइन ग्रौर 3000 मील की छोटी लाइन है।

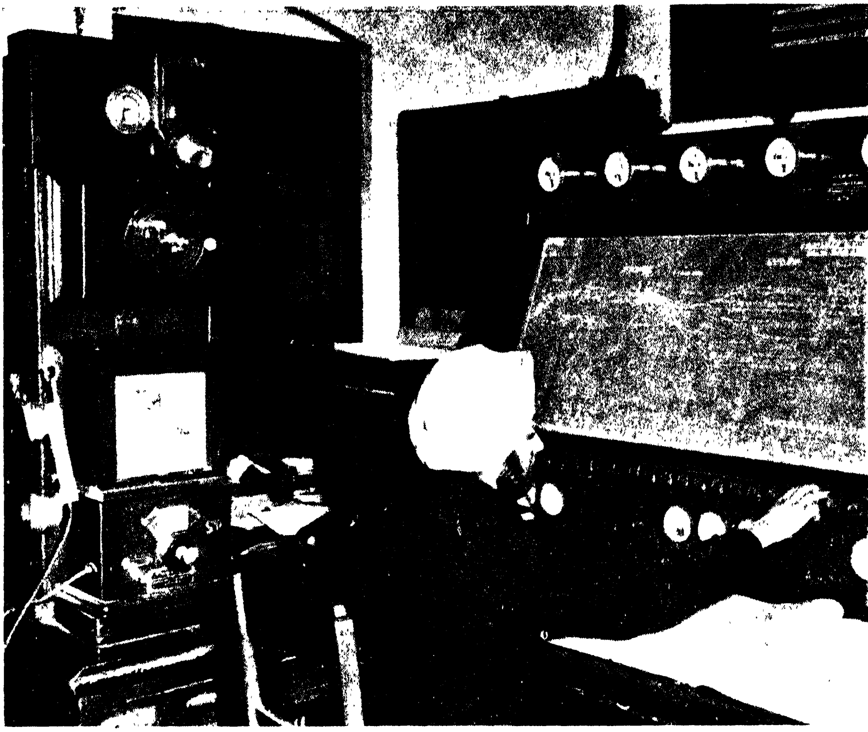
यह कहना कठिन है कि ग्रागे चल कर कभी इस देश में सब लाइनें एक ही गेज की हो जायेंगी। इस समय विभिन्न गेजों की जितनी मील-संख्या है, उससे यही मालूम होता है कि दो ही प्रधान ग्रामान चालू रहेंगे—5 फीट 6 इंच की बड़ी लाइन, ग्रौर 3 फीट $3\frac{3}{8}$ इंच की मीटर लाइन तथा कालका-शिमला, दार्जिलिंग-हिमालयन ग्रौर नीलगिरि ग्रादि पहाड़ी रेलों की छोटी लाइनें। इससे, इंजनों, गाड़ियों डिब्बों के ग्राकार ग्रौर बना-



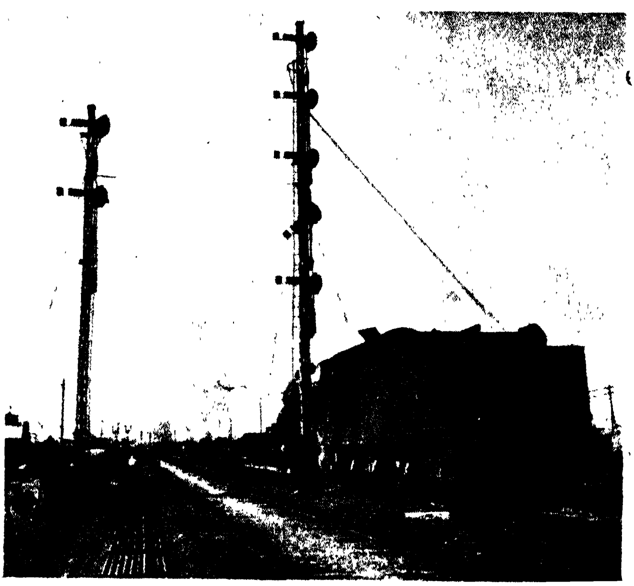
क्रासिंग स्टेशन पर मुख्य सिगनल। इस तरह के सिगनलों का प्रयोग पहले किया जाता था



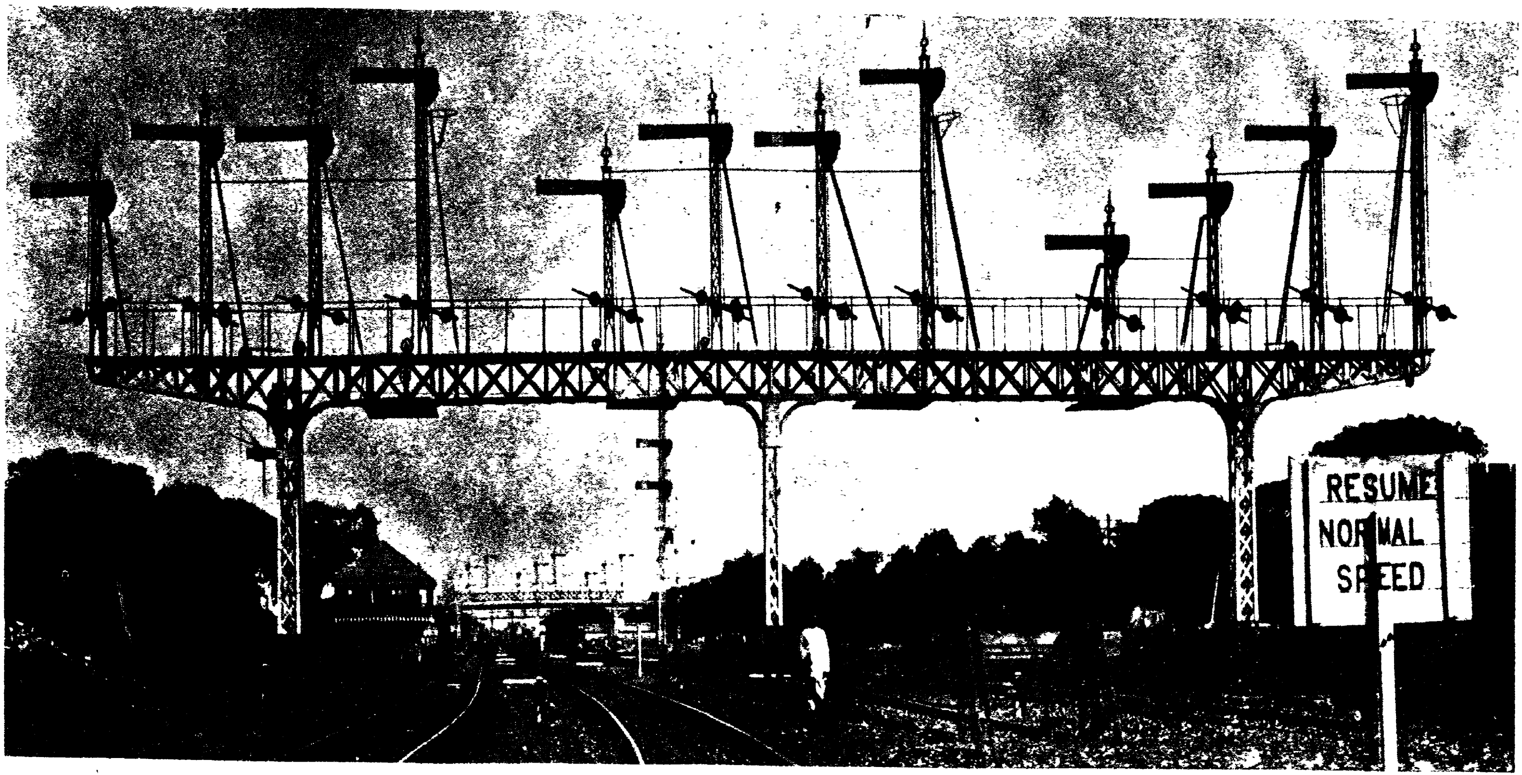
भारतीय रेलों के केबिन इन्टरलॉकड विभाग में केबिन लिवर फ्रेम तैयार किये गये



उत्तरी-रेलवे पर भीड़ वाले जंक्शनों पर ट्रेन प्रेषक सिनल नियन्त्रण करते हुए ट्रेन प्रेषक को बाईं ओर ब्लाक इन्स्ट्रुमेन्ट दोहरी लाइन पर ट्रेन का नियन्त्रण करने के लिए है।



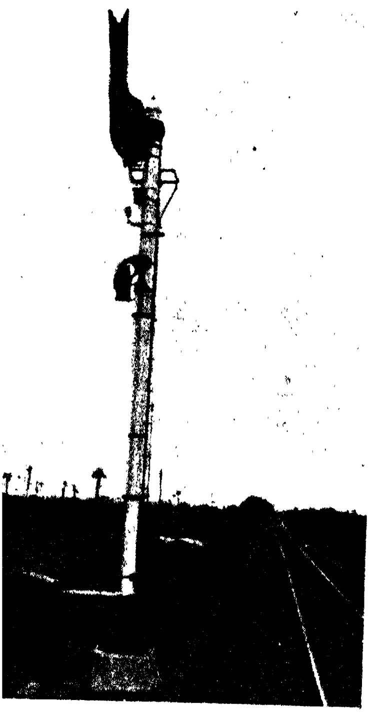
एक सिगनल इंजन के शेड को वापस आने के लिए नीचा किया गया



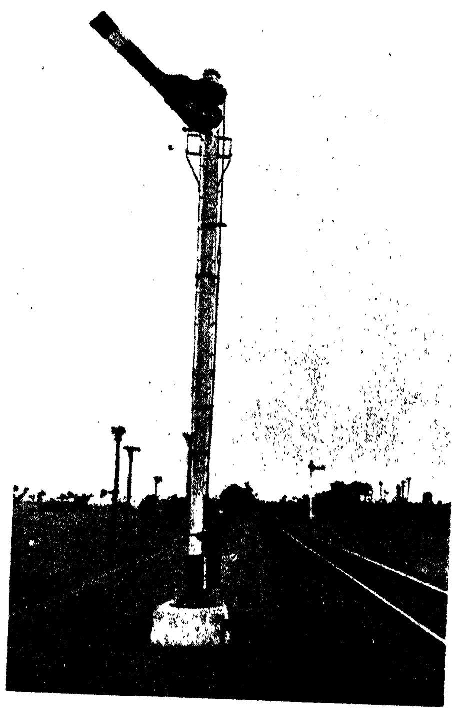
पूर्वी रेलवे, अन्द्रा जंक्शन पर स्वागत सिगनल का दृश्य



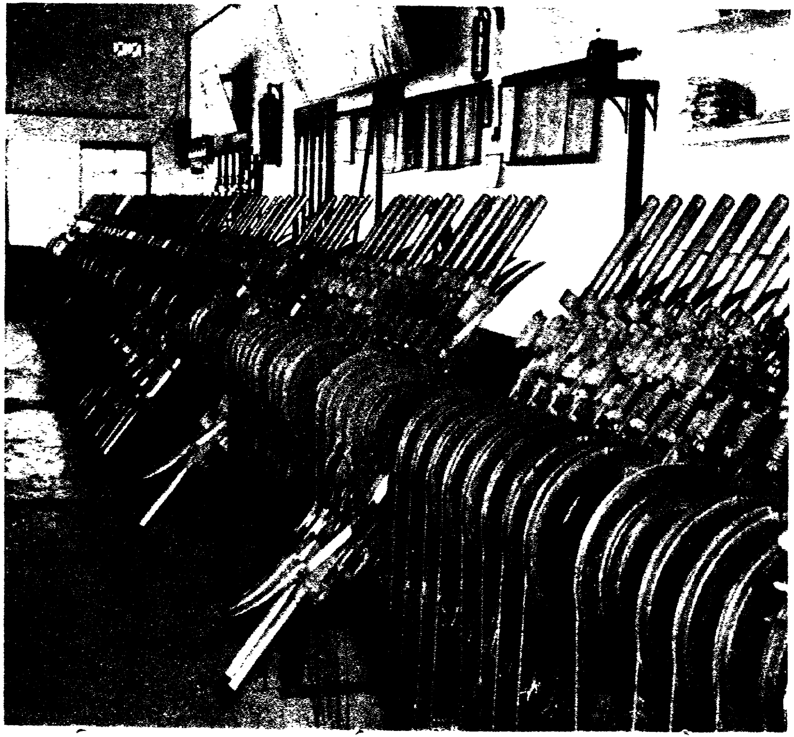
दोहरी तार द्वारा सह-क्रिया कर्ता संचालन सिगनल चालू रूप में



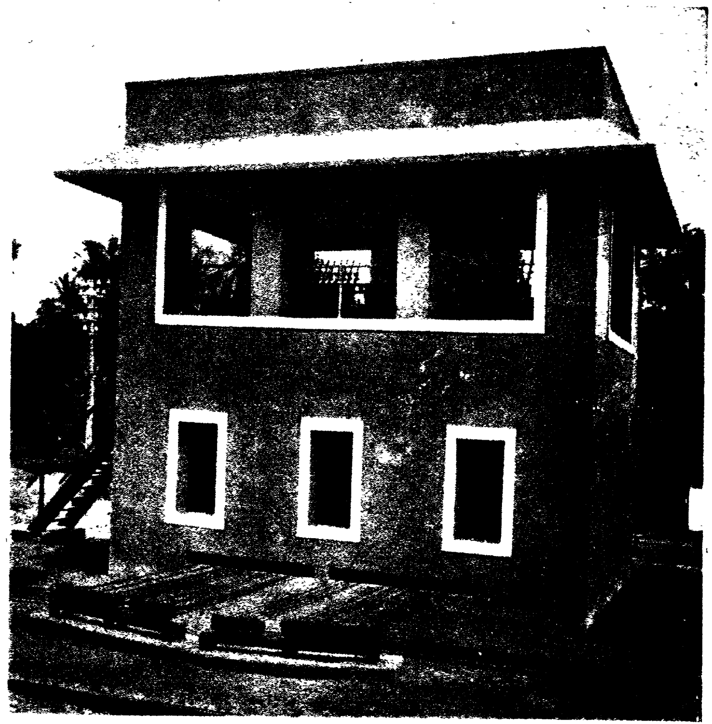
तार द्वारा चाल किये गये अप्पर क्वाड़ असपैक्ट सिगनल। स्टाप सिगनल सावधान अवस्था में है।



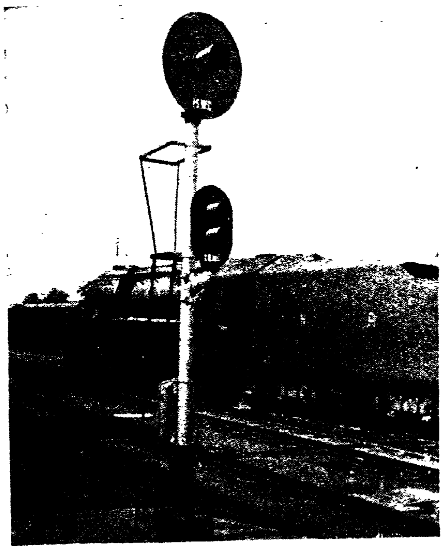
दो तारों से संचालित अपर क्वाड्रेण्ट थ्री एसपेक्ट सिगनल। रोकने का सिगनल सावधान की स्थिति में है।



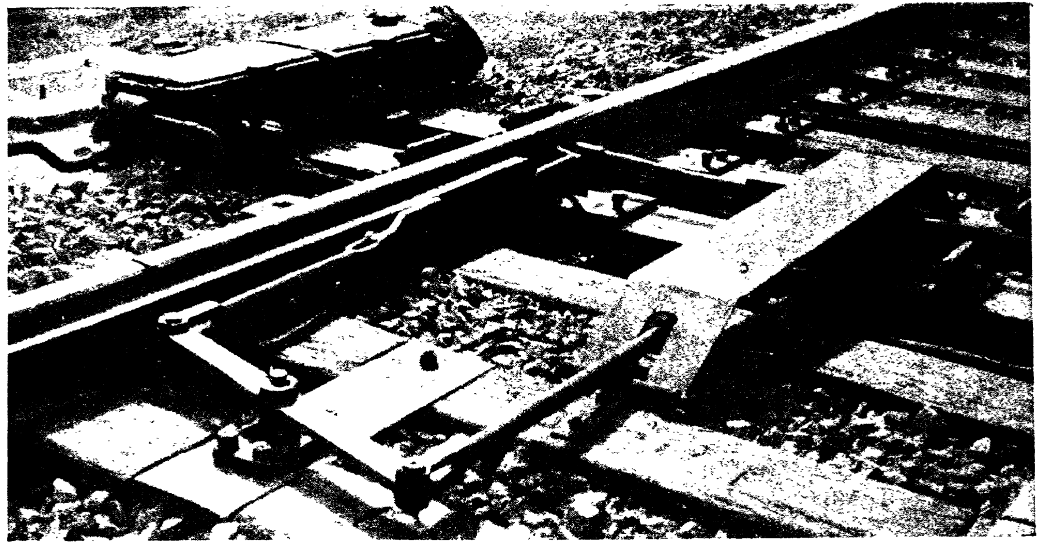
पूर्व रेलवे के ग्रोण्डल स्टेशन पर दो तारों वाले "लीवर" का ढांचा



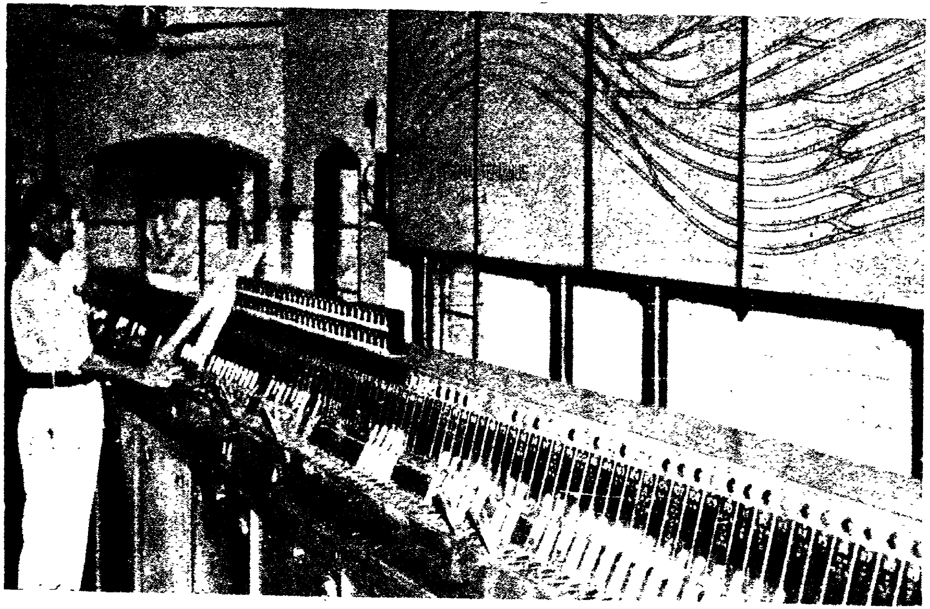
उत्तर रेलवे पर ग्राधुनिक कैबिन का दृश्य



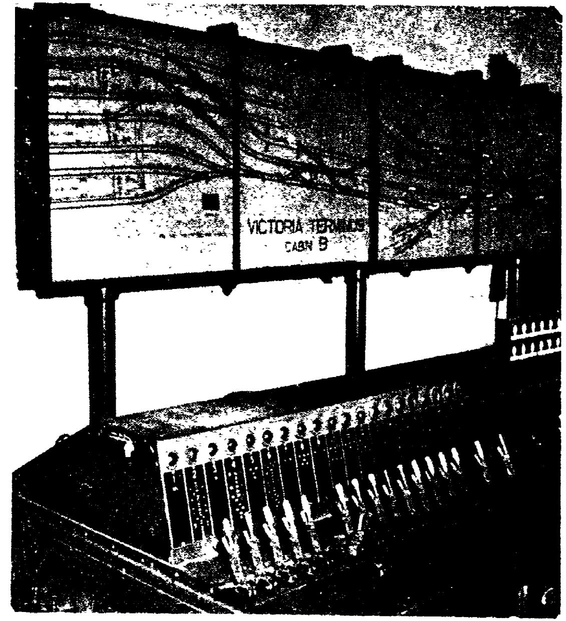
उत्तर रेलवे के दिल्ली स्टेशन पर रंगीन रोशनी के सिगनलों का दृश्य



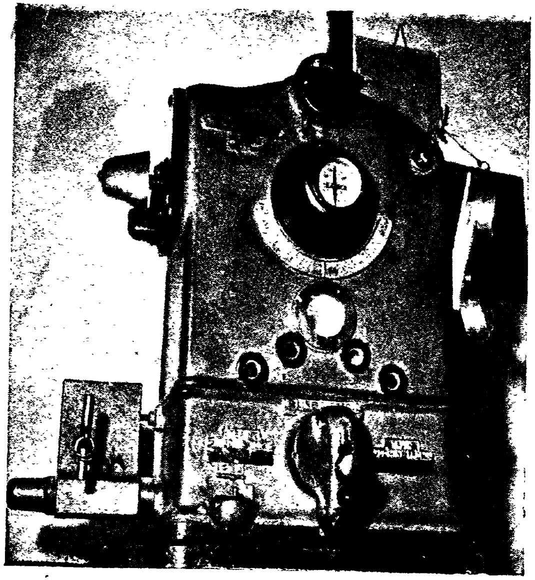
बिजली की कांटा मशीन द्वारा संचालित सम्मुख कांटे। यह मशीन किसी भी दूरी के सम्मुख कांटों का संचालन सरलतापूर्वक कर सकती है।



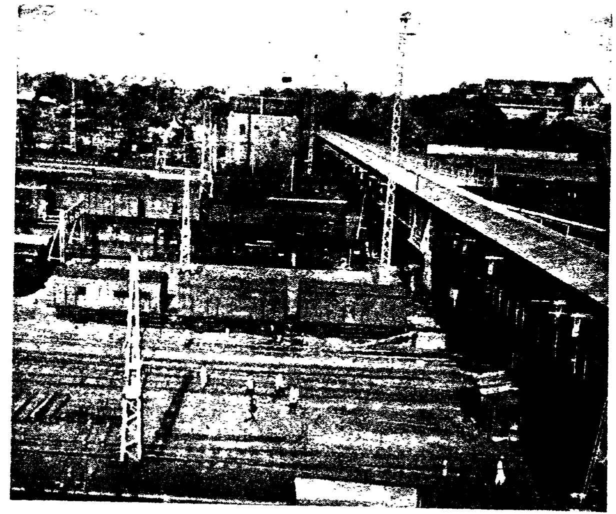
बम्बई वी० टी० के 'पावर फ्रेम' का एक दृश्य



बम्बई वी० टी० के 'पावर फ्रेम' का दूसरा दृश्य



'स्नील टोकन ब्लाक इन्स्ट्रूमेन्ट' इसका भीड़ वाले एक लाइन के खण्डों पर अधिक प्रयोग किया जाता है



विक्टोरिया टरमिनस का रेलवे यार्ड



हावड़ा यार्ड



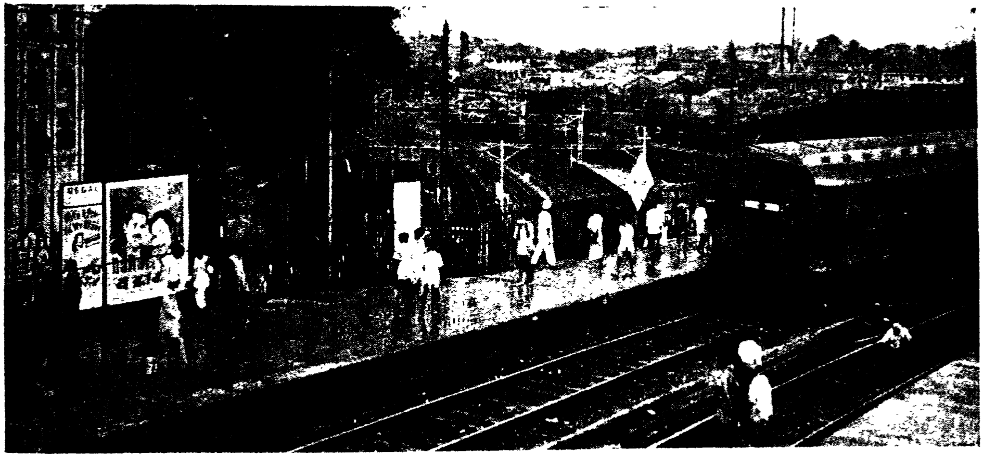
थाना यार्ड

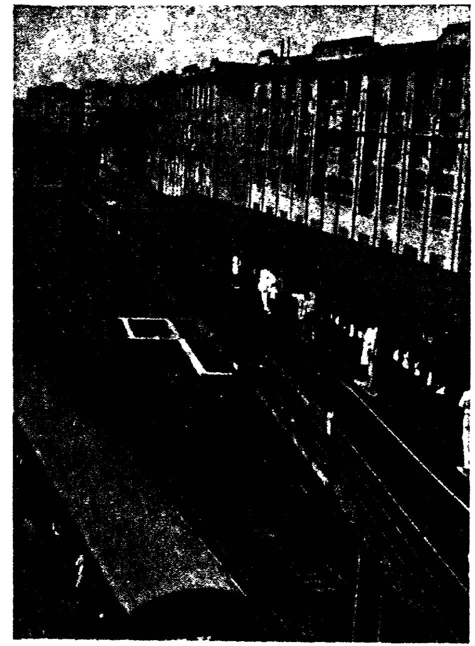




ऊपर—बंगाल नार्थ रेलवे पर आदरा यार्ड का एक दृश्य

नीचे—हबड़ा यार्ड का एक दृश्य





सॅन्धर्स्ट रोड का चढ़ाव-उतार (दोनों चित्र)

बट की विभिन्नता के कारण कई स्टेशनों पर, गेज के अन्तर के कारण, माल और सवारियों की गाड़ी बदलने की परेशानी बन्द हो जायगी।

रेल की पटरी

पटरी की माप प्रति गज के पौण्डों के वज़न से की जाती है। बड़ी लाइन की पटरी 90 पौण्ड और मीटर लाइन की 50 से 60 पौण्ड की होती है। भारत की चालू रेल-पटरियाँ साधारणतः नीचे चपटी होती हैं, यद्यपि अब भी पुराने किस्म की ऊपर की अपेक्षा नीचे कम मोटी और दो-मुंहीं पटरियाँ कई मील तक बिछी हुई हैं।

पटरियों की लम्बाई, शाखा-लाइनों में 30 फीट से लेकर मुख्य लाइन में 42 फीट तक होती है। दो प्लेटों को, जिन्हें 'फ़िश प्लेट' (फ़िश अंग्रेजी में नाविक भाषा का शब्द है) कहते हैं, पटरियों के सिरों के दोनों ओर रखकर, पटरियों और इन प्लेटों के छेदों के बीच से बोलटू कसकर, पटरियाँ जोड़ दी जाती हैं। दोनों सिरों के बीच, गर्मी के हिसाब से, पटरियों के बढ़ने-घटने के लिए थोड़ी जगह छोड़ दी जाती है।

तोड़-फोड़ करनेवाले, फ़िश प्लेटों को हटाकर, पटरियों को जरा तिरछा करके, रास्ता काट देते हैं, जिससे जान-माल की भारी हानि हो जाती है। इस खतरे को दूर करने के लिए कई उपाय बरते गये हैं। आजकल इन फ़िश प्लेटों के बदले मुख्य-मुख्य स्थानों पर, ख़ासकर बड़े-बड़े पुलों पर, पटरियों के जोड़ों की ढलाई कर दी जाती है।

आरम्भ के सिगनल

कुछ वर्षों से सिगनल और केंचियों की कार्य-प्रणाली में पर्याप्त सुधार हो गया है और आज वे ही गाड़ियों के सुरक्षित और सुन्दर संचालन की कुंजी हैं।

डार्लिंगटन से स्टाकटन को जानेवाली पहली गाड़ी के समय सिगनल की व्यवस्था न थी। उसके आगे-आगे पुलिस के कुछ घुड़सवार रास्ता साफ़ करने के लिए चले थे। कुछ साल बाद, धीमी चलनेवाली गाड़ियों का प्रबन्ध करने के लिए, पुलिस के सिपाही, बढ़िया वर्दी पहनकर, कुछ दूर खड़े होने लगे। सिगनल का हत्था यातायात-संचालक सिपाही की भुजा का केवल चिन्ह-मात्र है।

कहा जाता है कि संसार का पहला गड़ा हुआ सिगनल इंगलैण्ड के हार्ट लपूल स्टेशन के स्टेशन मास्टर की मेज़ पर मोमबत्ती लगाकर बनाया गया था। इसके बाद ही तश्तरी जैसे गोल सिगनल चालू हुए। भारत में जब रेलें बनने लगीं तब तश्तरी जैसे घूमते हुए या अलग-अलग शीशों की रोशनी के हाथोंवाले सिगनल काम में लाये गये। उस समय कई चित्रों और सिगनलों का आपसी फँसाव अधिक न था। रास्ते के छोटे स्टेशनों पर प्रायः एक मुख्य सिगनल स्टेशन मास्टर के दफ्तर के सामने और एक-एक बाहरी सिगनल दोनों दिशा में लगे रहते थे। जिनका कई चित्रों से कोई फसाव नहीं होता था। बाद में, हत्थों के साथ ही रंगीन शीशों के सिगनल चालू हुए और स्टेशन के चित्रों में ताला लगाकर, चाभियाँ स्टेशन मास्टर के पास भेजी जाने लगीं।

1892 तक भारत में कोई व्यवस्थित सिगनल प्रणाली न थी। इस साल, मिस्टर जी० एच० लिस्टन ने नार्थ वेस्टर्न रेलवे की छः इकहरी लाइन के क्रासिंग स्टेशनों पर अपना सादा यंत्र लगाकर, भारतीय कैंची-सिगनल के आपसी फँसाव का महत्वपूर्ण काम आरम्भ किया। यह यंत्र स्टेशन पर पूरी चाल से चलने वाली गाड़ियोंके फेसिंग प्वाइण्ड की रक्षा का डिटेक्टर लाकिंग यंत्र बन गया। 1894 तक, मिस्टर ए० मोर्स के सहयोग से, उन्होंने, अपने यंत्र में पर्याप्त सुधार करके, 'लिस्ट और मोर्स' की प्रणाली के नाम से, लाहौर और गाजियाबाद के बीच 28-28 इकहरी लाइन के क्रासिंग स्टेशनों पर, यंत्र लगाये। यद्यपि यह यंत्र अब काम में नहीं आते हैं, फिर भी 'लिस्ट और मोर्स' की प्रणाली अभी भारतीय रेलों के कई स्टेशनों पर चालू है, और 'लिस्ट और मोर्स' ने अपने लिए भारत की सिगनल प्रणाली के 'जनक' का पद प्राप्त कर लिया है।

1904 तक, कैंची-सिगनल को आपस में फँसा देनेवाली हाथ से भेजी जाती थीं। इससे यातायात में रुकावट होती थी। इस देरी को दूर करने के लिए, मेजर (बाद में सर लालेस) हेपर ने, जो भूतपूर्व नार्थ वेस्टर्न रेलवे के सिगनल इंजीनियर थे और बाद में भूतपूर्व जी० आई० पी० रेलवे के जनरल मैनेजर बने, बिजली से कैंची सिगनल फँसाने की चाभियों का आविष्कार किया। इन बिजली की चाभियों का जिन्हें लोग 'हेपर्स की ट्रांसमिटर्स' कहते हैं, भारतीय रेलों में बहुत अधिक प्रयोग हुआ है।

बीसवीं सदी के आरम्भ तक, सिगनल प्रणाली संचालन इंजीनियरिंग विभाग के अधीन था। सब से पहले भूतपूर्व ईस्ट इण्डियन रेलवे के सिगनल इंजीनियर के विशेष पद पर मिस्टर एस० टी० डटन को, 1889 में, नियुक्त किया गया। जी० आई० पी० दूसरी रेल थी जिसने मिस्टर आई० डब्ल्यू० स्टोक्स को 1903 में नियुक्त किया और इसके बाद दूसरी रेलों नें भी इस प्रकार की नियुक्तियां की गयीं। आगे चल कर, यातायात के बढ़ने पर, जान सेक्सबी की निकाली हुई और ब्रिटिश रेलों में प्रचलित, 'केबिन इण्टर-लाकिंग' प्रथा अपनायी गयी। इनकी कुछ योजनाएँ तो मेसर्स सेक्सबी और फारमर (इण्डिया) ने 1893 में ही तैयार कर ली थीं। जैसे-जैसे गाड़ियों की चाल और यातायात बढ़ता गया, यातायात की गति बढ़ाने और उसे सुरक्षित रखने के लिए सिगनल-कैंचो के फैलाव की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। भूतपूर्व जी० आई० पी० रेलवे में पहले बम्बई दिल्ली मार्ग में बहुत बड़े पैमाने पर केबिन इण्टर-लाकिंग लगाये गये। यह व्यवस्था 1912 में पूरी होकर चालू हुई। बाद में, इसी प्रकार का 'केबिन इण्टर-लाकिंग' दूसरी रेलों ने भी अपने मुख्य मार्गों पर चालू किये।

बाद की उन्नति

पिछले तीस वर्षों में सिगनल, कैंची सिगनल के आपसी फँसाव तथा तार व टेलीफोन द्वारा सन्देश-संचार की प्रणालियों में काफी तेजी से उन्नति हुई। भारतीय रेलों ने समय की गति के साथ ही उन्नति की है और रास्तों को तार से घेरने, बिजली की शक्ति से और अपने आप चलनेवाले सिगनल, कैंचियों और सिगनलों के दोहरे तार के संचालन, गाड़ियों

के स्वचालित नियंत्रण आदि व्यावस्था के लिए सब से आधुनिक प्रयोग चालू किये गये हैं। सिगनल प्रणाली को आधुनिक ढंग पर लाने के लिए जो कुछ भी किया गया है, उससे यातायात संचालन में बड़ा सुधार हुआ है। सब से कम लागत से कम से कम रास्तों पर अब ज्यादा गाड़ियाँ अधिक सुरक्षा और तेजी से जा सकती हैं।

बिना तार के सन्देश-संचार के महत्व का ठीक-ठीक पता लगने पर अब इस प्रणाली का हमारे देश में अधिक उपयोग हो रहा है। इस दिशा में बड़ी उन्नति हो चुकी है और टेलीफोन कण्ट्रोल टेलीप्रिन्टर तथा बेतार के तार आदि की व्यवस्था के लिए सबसे आधुनिक यंत्र और उपाय काम में लाये जा रहे हैं।

अभी हाल में, रेल-मंत्रालय ने सिगनल और बिना तार के संचार विभागों को एक में मिलाकर यातायात सम्बन्धी महत्वपूर्ण मामलों को एक विभाग के सीधे नियन्त्रण में करके, बड़ा महत्वपूर्ण काम किया है।

स्वचालित सिगनल प्रणाली

बीसवीं सदी के आरम्भ में रेल लाइन को बिजली द्वारा सिगनल से सम्बन्धित करने (ट्रेक सरकिटिंग) की प्रथा निकली और धीरे-धीरे भारत के कुछ बड़े स्टेशनों में चालू की गयी। ट्रेक सरकिटिंग से बिजली द्वारा यह मालूम हो जाता है कि रास्ते का कोई विशेष भाग भरा हुआ है या खाली है। यह कैंचियों और सिगनलों के संचालन को नियंत्रित करने के भी काम आता है। किसी रास्ते को काम मे लाने या खाली करने के लिए, बिना किसी आदमी की सहायता से कैंचियों और सिगनलों का संचालन किया जा सकता है। इस प्रकार गाड़ियों को अधिक हिफ़ाजत से चलाने की नयी प्रणाली मालूम हो गयी और कुछ बड़े २ स्टेशनों पर चालू कर दी गयी। बीसवीं सदी के शुरू में ही शक्ति संचालित सिगनल प्रणाली (पावर सिगनलिंग) निकाली गयी, जिससे बिजली या बिजली की हवा से एक जगह लगे हुए छोटे हत्थों को चलाकर कैंचियों और सिगनलों का संचालन आसान हो गया। शक्ति संचालित सिगनल को ट्रेक सरकिटिंग के साथ लगाने से भारी यातायात के संचालन में अधिक हिफ़ाजत और जल्दी हो जाती है। इस प्रणाली से बम्बई, कलकत्ता, मद्रास आदि बड़े शहरों और आसपास की जगहों में काम लिया जा रहा है।

क्षेत्रों के यातायात को बढ़ाने और बहुत सी दोहरी लाइनों पर एक के पीछे दूसरी गाड़ियों को चलाने के लिए स्वचालित सिगनल भी लगाये गये हैं। इनमें से कुछ लाइनों पर, भीड़ के समय दो या तीन मिनट के अन्तर से गाड़ियाँ छोड़ी जाती हैं। स्वचालित सिगनल के कारण बहुत सी चालू जगहों पर यातायात बढ़ गया है, जिससे अतिरिक्त रास्तों के बनाने में काफी बचत हो गयी है।

शक्ति संचालित और स्वचालित सिगनल की जगहों में अधिकतर रंगीन रोशनी के सिगनल लगाये गये हैं, जो आधुनिक और उत्तम होने के साथ २ गाड़ी चलानेवालों को रात-दिन ठीक-ठीक संकेत देते रहते हैं।

दोहरे तार की सिगनल प्रणाली

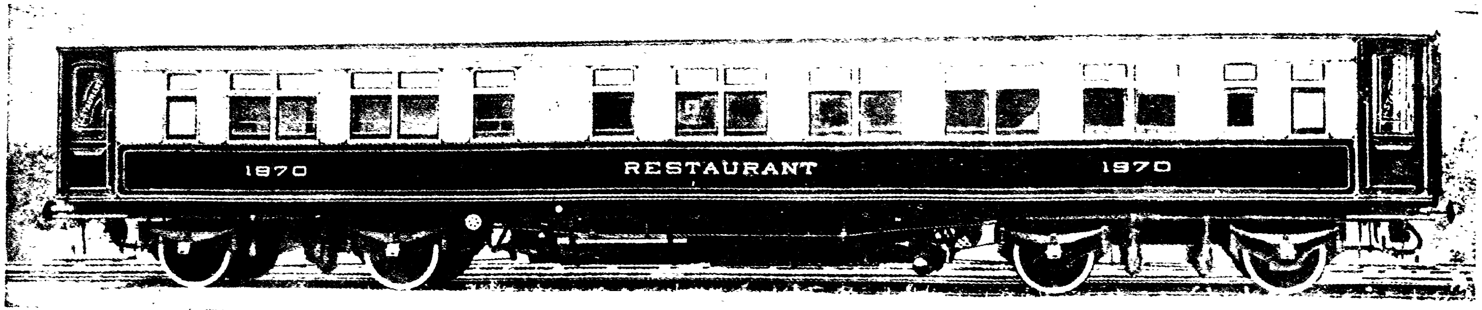
सिगनलों के इकहरे तार के संचालन की जगह-जगह कैंचियों और सिगनलों के दोहरे तार के संचालन की भारतीय रेलों में काफी तरक्की हुई है। इससे सिगनल के स्टील के तारों द्वारा कैंचियों और सिगनलों का संचालन होता है। इस प्रथा से सिगनलों का संचालन निश्चित और उत्तम हो जाता है और सिगनलों के आप से आप गिर जाने का खतरा कम हो जाता है। इससे अधिक दूर की कैंचियों का भी संचालन होता रहता है, जिससे दूर के स्टेशनों के संचालन का नियंत्रण सीधा केन्द्र से होता है। दोहरे तार के सिगनल दो या कई प्रकार के सिगनल चिन्हों का काम देते हैं। यह जरूरत के हिसाब से 'रुक जाओ', 'सावधान' 'खबरदार' या 'चले जाओ' का संकेत दे सकते हैं। इनसे तेज रफ्तार की जगहों पर बड़ी हिफाजत रहती। इसीलिए दोहरे तार से संचालित अनेक सांकेतिक सिगनल, जो ऊपर की ओर चक्कर करते हैं (डबल वायर मल्टी पिलएस पेवट अपर क्वाडरेण्ट) कई जगहों पर चालू किये गये हैं। इसका विकास पहले, भूतपूर्व आसाम-बंगाल रेलवे के सिगनल इंजीनियर, श्री ई० डब्लू. बेवार ने किया और दक्षिण तथा उत्तर-पूर्व की रेलों में बहुत सी जगहों पर दोहरे तार के सिगनल लगाये गये। अब दूसरी रेलों में भी बहुत सी जगहों पर यही लगाये जा रहे हैं।

ब्लाक प्रणाली

रेलों के आरम्भ काल में, स्टेशनों के बीच गाड़ियाँ 'पेपर लाइन क्लीयर' (कागज की रसीद देकर लाइन के साफ होने की सूचना देना) प्रथा से चलायी जाती थीं। किन्तु, पिछले तीस वर्षों में, मुख्य मुख्य सभी इकहरी और दोहरी लाइनों पर 'पेपर लाइन क्लीयर' की जगह धीरे धीरे ब्लाक यंत्र चालू किये गये।

इस प्रणाली में, जिसे 'एबसोल्यूट ब्लाक सिस्टम' कहते हैं, किसी भी स्टेशन से आगेवाले स्टेशन की आज्ञा बिना गाड़ी नहीं छोड़ी जाती। यह आज्ञा उस समय तक नहीं मिलती जब तक दो स्टेशनों के बीच का भाग, जिसे ब्लाक सेक्शन कहते हैं, साफ नहीं हो जाता। पहले तो यह आज्ञा मोर्स-तार यंत्र से मँगा ली जाती थी और गाड़ी चलानेवाले को 'पेपर का लाइन क्लीयर टिकट' पर लिखकर दे दी जाती थी। बाद में ब्लाक यंत्र निकाला गया जिसने स्टेशनों के बीच एक गाड़ी को एक समय में एक ही रास्ते से जाने की जरूरत को पूरा करके, गलतियों के मौकों को मिटाकर, यातायात को अधिक सुरक्षित किया। किसी भी अन्य दिशा की अपेक्षा इस दिशा की उन्नति ने ही गाड़ियों के यातायात को अधिक सुरक्षित किया है।

इकहरी लाइन पर, 'नील के बाल टोकेन' यंत्र बहुत काम आते हैं। इसका आविष्कार, भूतपूर्व जी. आई. पी. रेलवे के इंजीनियर, श्री नील ने किया था। इस यंत्र के अन्दर 'धातु के गेंद' जिन्हें 'टोकेन' कहते हैं, आमतौर से बन्द करके रखे जाते हैं। इस यंत्र से एक समय में केवल एक ही 'टोकेन', बिजली द्वारा कई यंत्रों को एक साथ चलाकर निकल सकता है। यह टोकेन गाड़ी चलानेवाले को ब्लाक खण्ड में प्रवेश करने का अधिकार देता है। इस प्रकार एक समय में एक ब्लाक सेक्शन पर केवल एक ही गाड़ी जा सकती है।



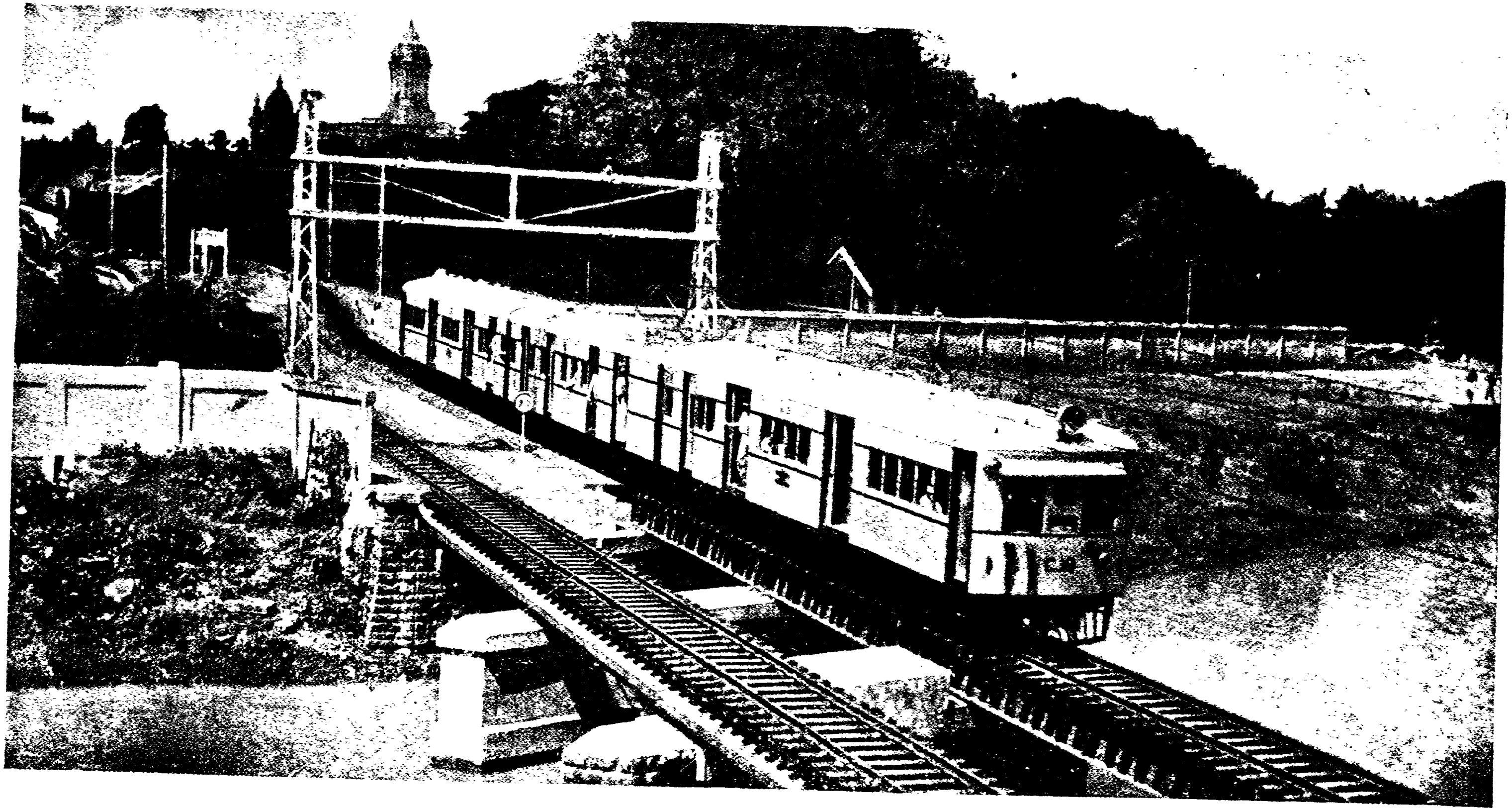
1907 का एक रेस्तोरां यान



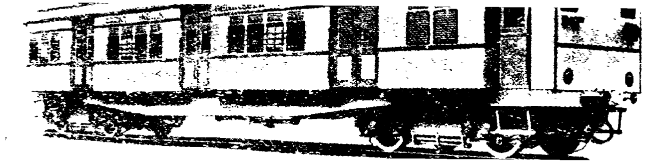
कलकत्ता और मद्रास के बीच चलने वाली गाड़ी के तीसरे दर्जे का एक सवारी डिब्बा—1913



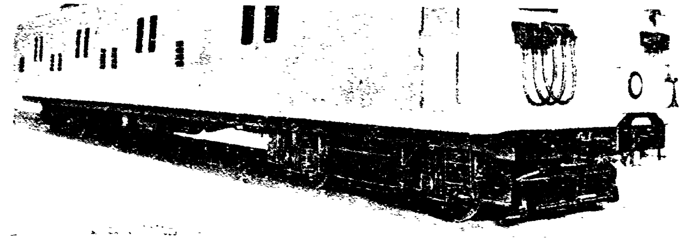
1912 के भोजन यान का भीतरी भाग



मद्रास उपनगरीय सर्विस की मीटर लाइन पर बिजली से चलने वाली गाड़ी—1928



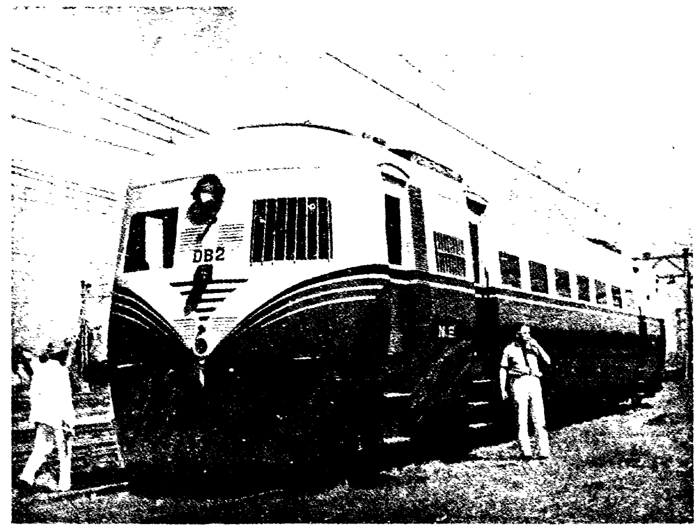
बम्बई उपनगरीय सर्विस के लिए एक मोटर-कोच—1922



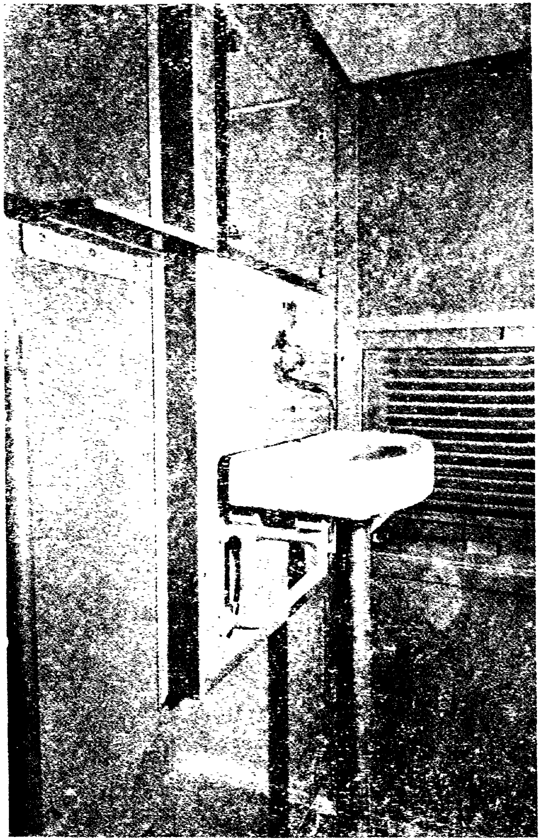
बम्बई उपनगरीय सर्विस के लिए नया मोटर-कोच 52



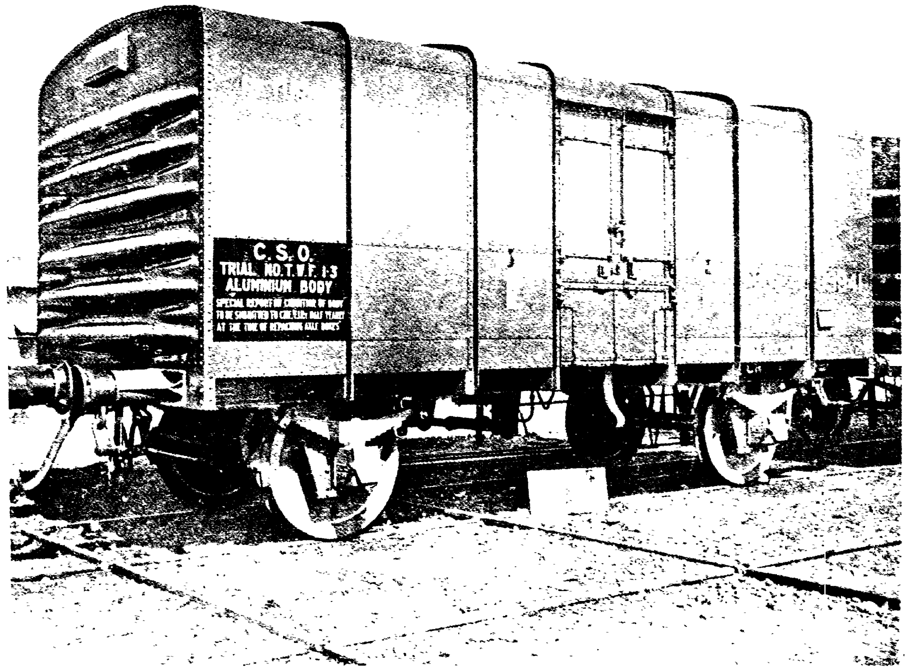
बम्बई उपनगरीय सर्विस के तीसरे दर्जे की नयी गाड़ी का भीतरी भाग



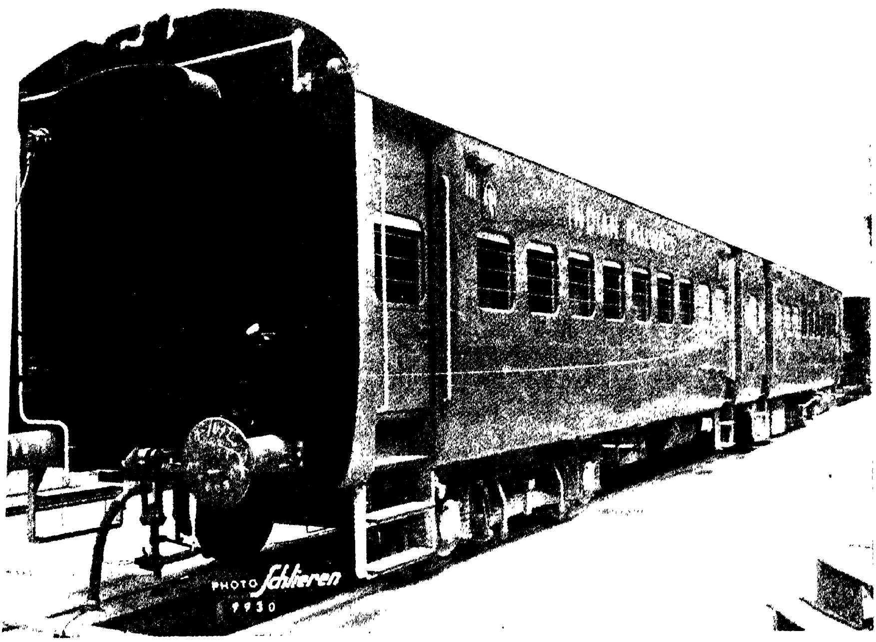
निजाम स्टेट रेलवे पर डीजल से चलने वाली रेल-कार—1940



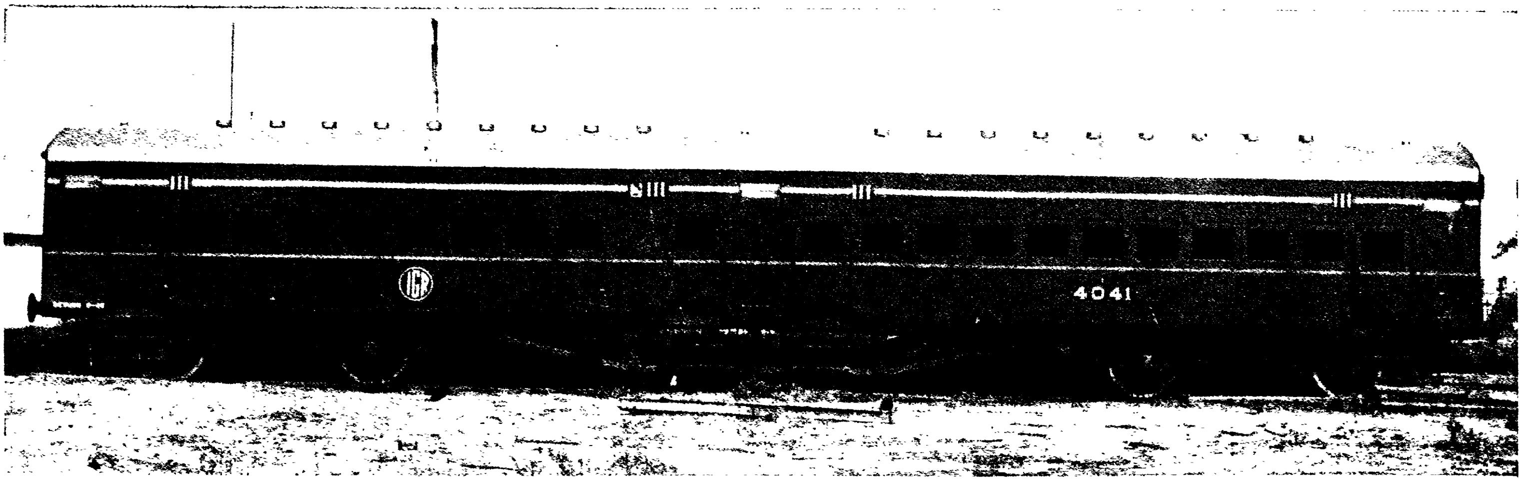
नये सवारी-डिब्बों में तीसरे दर्जे के शौचस्थान का भीतरी भाग



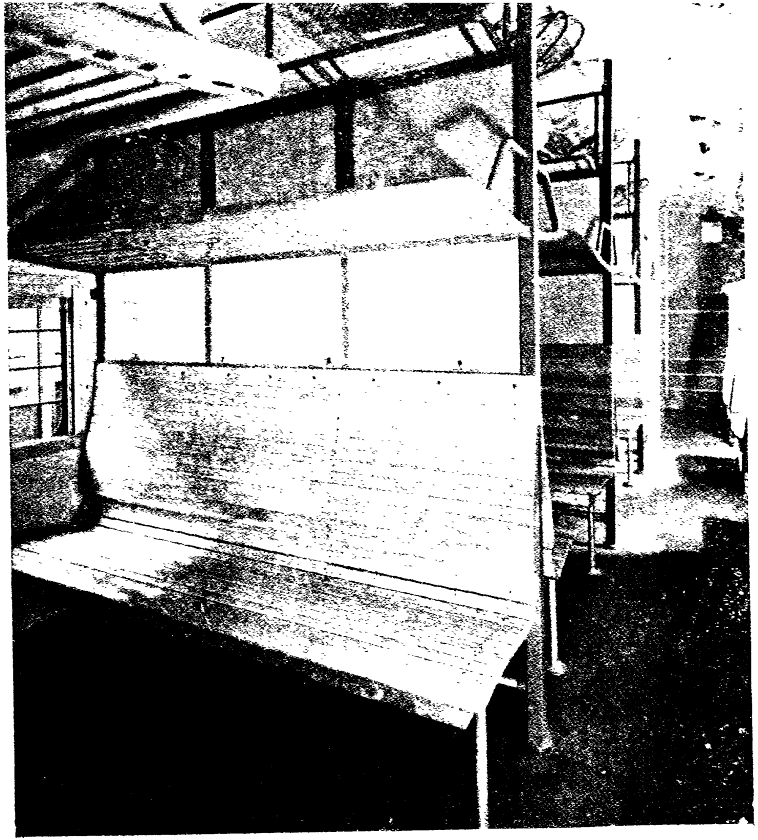
अलमूनियम के छतदार-माल-डिब्बे



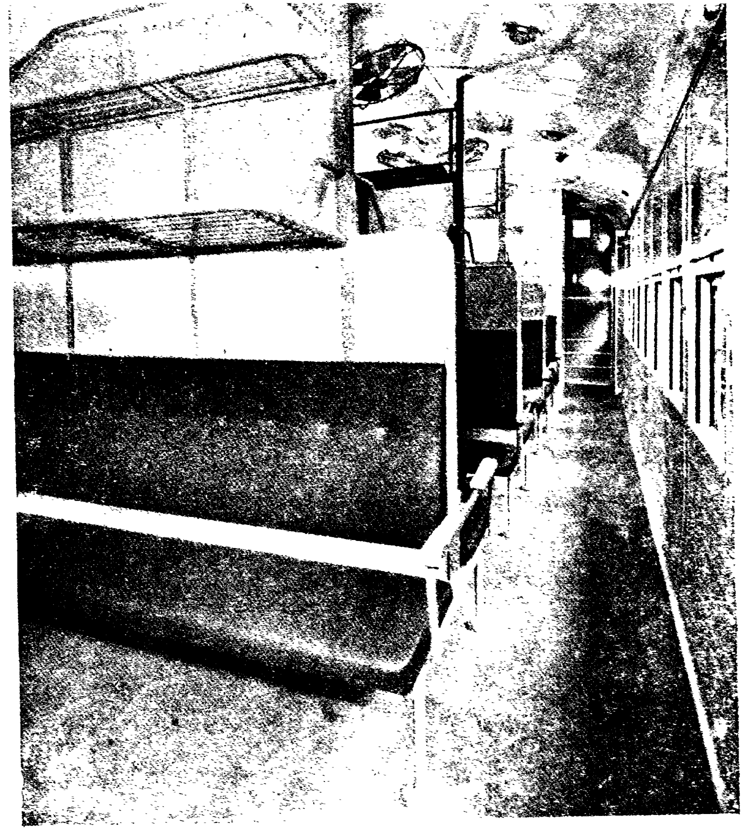
मुख्य लाइनों पर चलने वाले समूचे धातु के बने हुए तीसरे दर्जे के हल्के सवारी डिब्बे—1952



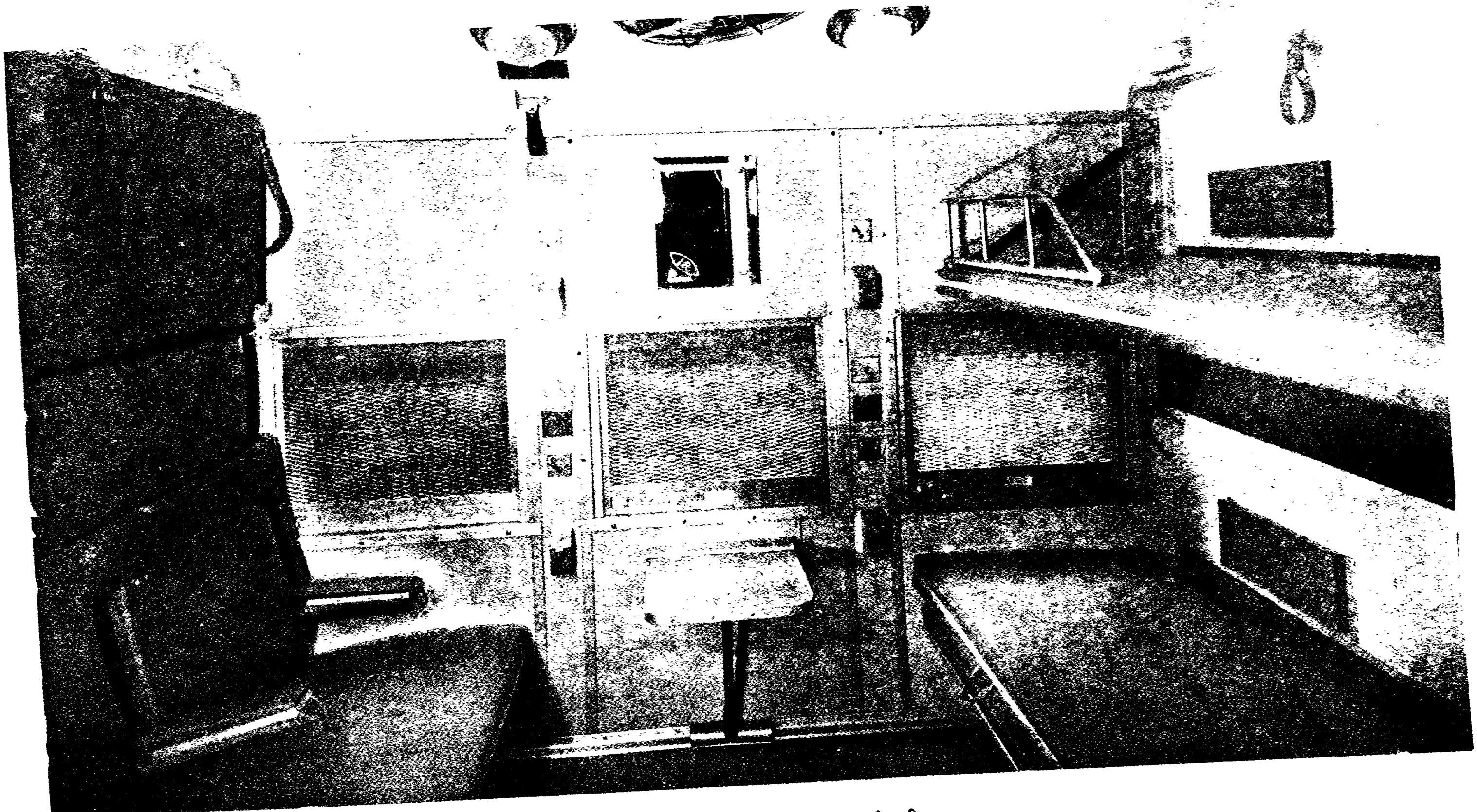
हिन्दुस्तान एयर क्रॉफ्ट लिमिटेड, बंगलौर में निर्मित धातु का तीसरे दर्जे का नया सवारी डिब्बा



मुख्य लाइन पर चलने वाले तीसरे दर्जे के एक नये सवारी डिब्बे का भीतरी भाग



मुख्य लाइन पर चलने वाले ड्योढ़े दर्जे के एक नये सवारी डिब्बे का भीतरी भाग



पहले दर्जे के नये सवारी डिब्बे का भीतरी भाग

दोहरी लाइन पर एक गाड़ी के तुरन्त बाद ही दूसरी गाड़ी को जाने से बचाने के लिए ये यंत्र प्राय: सिगनल से फँसा दिये जाते हैं। यह कई तरह के होते हैं। उत्तर रेलवे में काम आनेवाले यंत्र को 'कारसेन' कहते हैं। इसे भूतपूर्व उत्तर पश्चिमी रेलवे के सिगनल इंजीनियर्स, सर्वश्री कारगिल और सेन गुप्ता ने निकाला था।

टेलीफोन और बेतार का संचार

तार और टेलीफोन का विकास सिगनल प्रणाली से बहुत कुछ सम्बन्धित है। रेलों के प्रारम्भिक विकास में स्टेशनों को सन्देश भेजने के लिए केवल तार के यंत्रों का प्रयोग होता था। बेतार के सन्देश-संचार के विकास ने गाड़ियों के नियंत्रण करने की प्रथा को जन्म दिया। इस प्रणाली में रास्ते के सभी स्टेशनों का सीधा सम्बन्ध, टेलीफोन द्वारा, केन्द्रीय नियंत्रण कार्यालय से रहता है। गाड़ियों का नियंत्रण करने के लिए सभी मुख्य भागों में टेलीफोन लगा दिये गये हैं, जिससे गाड़ियों के संचालन में बड़ा सुधार हुआ है। पिछले युद्ध में, संचार साधनों की गति बढ़ाने और उनकी अधिक स्वतंत्र कार्य-प्रणाली की आवश्यकताओं को पूरा करने लिए, ख़ास-ख़ास जगहों पर छोटे-छोटे नियंत्रण केन्द्र बना दिये गये थे।

रेलों ने अपने प्रधान कार्यालयों और बाहर के क्षेत्रों में टेलीफोन एक्सचेंज बनाये हैं : दूर की ख़ास जगहों में दूसरे प्रबन्धों के अलावा तार द्वारा अपने आप छपनेवाले (टेली प्रिन्टर) यंत्र भी लगाये गये हैं, जिससे काफ़ी बचत होकर, बिना रोक, साफ साफ और जल्दी जल्दी संदेश दिये जा सकें।

संचार के लिए बेतार का भी प्रयोग किया गया है। इससे रेल के प्रधान कार्यालयों का केवल क्षेत्रीय कार्यालयों और मुख्य मुख्य स्टेशनों से ही सम्बन्ध नहीं है, यह रेलवे बोर्ड कार्यालय को भी भारत की सभी रेलों के प्रधान कार्यालयों से मिलाये हुए है। बेतार संचार उत्तम यातायात प्रणाली की रीढ़ माना जाता है।

सिगनल के सामान

भारतीय रेलों ने, सामान के सुभीते और लागत को घटाने के उद्देश्य से, निश्चित आकार और स्वरूप के सिगनल तैयार कर लिए हैं। इस दिशा में सिगनलिंग एण्ड इण्टर लाकिंग स्टेण्डर्ड्स कमेटी ने, सेण्ट्रल स्टेण्डर्ड्स कार्यालय की सहायता से बड़ा महत्वपूर्ण काम किया है। सेण्ट्रल स्टेण्डर्ड्स कार्यालय दूसरे प्रगतिशील देशों की सिगनल प्रणाली के विकास-क्रम का पूरा पता रखता है, जिससे भारतीय रेलों को उचित आकार और स्वरूप निश्चित करने में पूरी-पूरी सहायता मिलती है।

भावी दृष्टिकोण

भारतीय रेलों के एकीकरण पर, सिगनल और बेतार की संचार शाखाओं को एक में मिलाकर जनरल मैनेजर के सीधा नियंत्रण में कर देने से रेलवे मंत्रालय ने उन्नति की ओर महत्वपूर्ण पग उठाया है। रेल-मंत्रालय द्वारा दूसरे देशों की सिगनल प्रणाली की प्रगति जानने की सुविधा दी जाने के कारण, यह कहा जा सकता है कि भारतीय रेलों के सिगनलों का विकास दूसरे प्रगतिशील देशों के साथ साथ होता रहेगा।

11. सवारी डिब्बे

रेल के सवारी-डिब्बों को जिस रूप में आज हम देखते हैं पहले उसका यह रूप नहीं था। सवारी डिब्बों की बनावट में अनुभव, ज्ञान और खोज के आधार पर, समय-समय पर सुधार होते रहे हैं। सबसे शुरू के सवारी डिब्बे लकड़ी के खुले हुये बक्से होते थे, जो पहियों पर कस दिये जाते थे और जिनमें बैठने के लिए बेंचें लगी रहती थीं। यह बेंचें, बिना पीठ की, खुरदरी लकड़ी के तख्तों की होती थीं। पुराने तरीके के ढीले फन्दों के जरिये गाड़ियाँ एक दूसरे से जोड़ दी जाती थीं। सवारियाँ सूरज की धूप, जाड़े की ठंडी हवा, बरसात और बर्फ के तूफानों में खुली बैठी रहती थीं। सवारियों को, गाड़ी रुकने या इंजन की रफ्तार बढ़ाने, गाड़ियों के आपस में टकराने या अलग-अलग होने पर बुरी तरह धक्के लगते थे।

"1830-40 के बीच का ब्रिटेन की रेलों का अनुभव बताते हुये रेल के एक गार्ड महोदय लिखते हैं, कि 'मेरी नौकरी के आरम्भ में हम लोगों को 'ब्रेक मैन' कहा जाता था। हम लोगों को गाड़ियों की छत पर या भरी हुई गाड़ियों में, जहाँ भी जगह मिल सके चढ़ना और जैसे भी बन सके उतरना पड़ता था। बर्फीली रात में तो हम लोगों के पैर ही उखड़ जाते थे। हमारे हाथ-पैर ठण्ड से अकसर सुन्न हो जाते थे और कभी-कभी हम लोग ठण्ड से इतना ऐंठ जाते थे कि हमें उठाना पड़ता था और उठाने पर कोई-कोई मरे मिलते थे। जब कभी गाड़ी किसी ढाल पर गुजरती, हम लोगों को पाँच-छः रोक (ब्रेक) लगाने के लिए एक डिब्बे से दूसरे डिब्बे में भागना या कूदना पड़ता था। इस प्रकार अचानक कूद-फाँद करने पर यह जानना कठिन हो जाता था कि हम कहाँ कूद रहे हैं, जिससे बहुत से आदमियों के हाथ-पैर टूटते या उनकी जानें चली जाती थीं। किसी काम के लिए गाड़ी रुकने पर, ब्रेक मैन को $\frac{1}{4}$ मील पीछे लौटना पड़ता था। जब तक उसे बुलाने की सीटी नहीं बजती वह लौट नहीं सकता था और सीटी बजते ही उसे भरपूर दौड़ना पड़ता था कि कहीं वह पीछे से आने वाली गाड़ी के नीचे न आ जाय। इस प्रकार जान बचाकर भागने में अपनी नौकरी की दौरान में मैंने कई जोड़ी जूते घिस डाले हैं।"

यात्री अक्सर बिल्कुल सटकर बैठते थे और सकुशल यात्रा समाप्त होने पर भगवान को हार्दिक धन्यवाद देते थे। वर्षों के हो-हल्ला के बाद, गाड़ियों में छतें लग जाने पर भी रेल-यात्रा कष्टकर बनी रही।

सी० बी० एण्ड्रूज लिखते हैं, 'गाड़ियों का अन्धेरा यात्रियों की मोमबत्तियों से

दूर होता था। उन्हें वे खरीद कर लाते थे और सीट के पीछे लगाते थे। बीच के स्टेशनों पर गाड़ी पहुंचने का समय निश्चित न होने से यात्री जगह पाने की ताक में घण्टों बैठे रहते थे। एक रेल में तो तीसरे दर्जे के फ़र्श पर इसलिए काजल उलट दिया जाता था कि पहले दर्जे में चल सकनेवाले यात्री उन डिब्बों का इस्तेमाल न करें। ये सब असुविधाएं बाहर की ठण्ड में गलकर मरने से अच्छी होने पर भी कष्ट-दायी थीं।'

1839 में 'रेलवे मॉनिटर' ने तीसरे दर्जे के यात्रियों को सलाह देते हुए लिखा:—

'रेल के मौजूदा प्रबन्ध में, बहुत सी लाइनों पर निश्चितरूप से आनेवाली मुसीबतों को झेलने के लिए आपको बहुत बड़े तत्व-दर्शी बनने का अभ्यास करना चाहिए। ओलों की वर्षा, आँधी के वेग, बरसात की झड़ी, बरफ के तूफान, बादलों की गरज, बिजली की कड़क आदि के लिए आप पूरे तौर से तैयार हो जाइए। धुआँ, धूल, गर्द और दूसरी खराबियों की पूरी खूराक सब जगह मिलेगी। हाथ-पैर टूटने और जिन्दगी गंवाने के खतरों को साथ लेकर चलिए। बैठने के सुख का स्वप्न न देखिए। यात्री के रूप में आपकी हस्ती केवल तीसरे दर्जे के गरीब, भिखमंगे और घृणास्पद व्यक्ति की है जिसके सुख और सुभीते की किसी को चिन्ता करने की जरूरत नहीं है।'

1844 में, ग्रेट ब्रिटेन में लोगों में काफी हो-हल्ला करने पर ग्लैडस्टन का 'चीप ट्रेन ऐक्ट' पास हुआ। इससे एक पेनी प्रति मील का किराया निश्चित हुआ और यह शर्त लगा दी गयी कि सवारी डिब्बे ऐसे बनाये जायें जिनमें हवा और रोशनी खुलकर आये, आँधी, पानी और ठण्ड से बचाव हो, रात की यात्रा में लालटेनें जलायी जायें। पीठदार सीटें बनायी जायें, बाहर देखने के लिए खिड़कियाँ हों तथा उतरने-चढ़ने की गड़बड़ी को रोकने के लिए दोनों तरफ़ काफी दरवाजे हों।

तीसरा दर्जा

भारत में सबसे शुरु के तीसरे दर्जे के डिब्बे समकालीन ब्रिटेन की रेलों के तीसरे दर्जे के डिब्बों के नमूनों पर बनाये गये थे। उनकी बनावट ठेलों की तरह थी और उनमें बाहर को खुलनेवाले दरवाजे होते थे। सीटें सहारेदार होती थीं और लम्बाई की सीध में लगायी जाती थीं। सण्डास का कोई प्रबन्ध न था। केवल एक बात में यहाँ के शुरू के सवारी-डिब्बे ब्रिटेन की कुछ रेलों के डिब्बों से अच्छे होते थे। ब्रिटेन में, प्रारंभ में, मुसाफिरों को रोशनी के लिए अपने साथ मोमबत्ती लानी पड़ती थी, भारतीय रेलों में तेल के चिराग़ लगे रहते थे। वर्षों तक, सवारी-डिब्बों की कमी पड़ने पर, माल के डिब्बों और खुले ठेलों का यात्री-यातायात के लिए प्रयोग होता रहा। तीसरे दर्जे के यात्रियों के प्रति रेल अधिकारियों की उपेक्षा का कारण यह था कि वे समझते थे कि साधारण यात्री सिर्फ़ कम-से-कम भाड़े में, एक जगह से दूसरी जगह जल्दी से पहुंचना चाहता है। चालीस साल बाद, लोगों के काफी हो-हल्ला करने पर, सण्डास जैसी मामूली सुविधा की व्यवस्था की गयी।

फिर इसमें आश्चर्य क्या, कि यदि रेल-विकास के पूरे सौ वर्षों तक तीसरे दर्जे के यात्रियों के कष्टों और असुविधाओं के विरुद्ध लगातार तीव्र आन्दोलन चलता रहे।

दो मंजिले डिब्बे

ईस्ट इण्डियन और ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला रेलों में 1862 में तीसरे दर्जे की दो मंजिला गाड़ियाँ चालू की गयी। इनका एक नमूना ईस्टर्न रेलवे के जन सम्पर्क कार्यालय में दिखाने के लिए अब भी रखा हुआ है। 1874 में निचले दर्जे के मुसाफ़िरों के लिए कम खर्च में ज्यादा जगह निकालने की एक प्रकार की उलटी तरकीब निकाली गयी। चौथे दर्जे के डिब्बे चालू किये गये, जिनमें बैठने की बेंचे हटा दी गयीं जिससे यात्रियों को फ़र्श पर ही बैठना पड़ता था। तीसरे दर्जे में वैसे ही काफ़ी भीड़ होती थी, किन्तु इन चौथे दर्जे के डिब्बों में तो यात्रियों को कभी-कभी भीषण गर्मी में एक दूसरे से सटकर बैठना पड़ता था। इससे लोगों में काफ़ी हो-हल्ला मचा जिससे 1885 में बेंचें तो लगा दी गयीं किन्तु चौथा दर्जा चालू रखा गया। शुरू के तीसरे दर्जे का नाम 'मध्यम' दर्जा रख दिया गया और चौथे दर्जे को तीसरा दर्जा कहा जाने लगा।

शुरू का तीसरा दर्जा चार पहियों की गाड़ी पर लकड़ी का ढांचा तैयार करके बनाया गया। इसमें आम तौर से सत्तर सवारियों की जगह होती थी। दो मंजिले तीसरे दर्जे के डिब्बों में 120 सवारियों की जगह होती थी जिसमें 70 नीचे और 50 ऊपर के हिस्से में बैठते थे। इन गाड़ियों की धुरियों के बीच 12 फीट का फ़ासला होता था और धुरी का बोझ केवल आठ टन रहता था। धुरी की कटोरियाँ ढले हुये लोहे की होती थीं। रास्ते के धक्कों को सम्भालने के लिए कमानियाँ होती थीं। आगे की रोक शुद्ध लोहे की होती थी और लकड़ी में कसी रहती थी। दो मजिला गाड़ियाँ धीरे-धीरे हटा दी गयीं और साधारण गाड़ियों में बैठने की जगह बहुत कुछ बढ़ा दी गयी। धीरे-धीरे प्रचलित गाड़ियों में 93 सवारियों तक की जगह बना दी गयी। वे लकड़ी के ढांचों पर लकड़ी को जड़कर ही बनायी जाती थीं। मजबूती के लिए जगह-जगह पर स्टील की छड़ और कोनियाँ लगा दी जाती थीं।

योरप में सवारी डिब्बे बनानेवालों ने इसी समय पूरे स्टील के ढाँचे पर लकड़ी जड़कर डिब्बे बनाये। भारत में अनुभव से मालूम हुआ कि लकड़ी के ढांचे की गाड़ियाँ चलने पर जल्दी खराब हो जाती हैं और उनकी मरम्मत में काफ़ी खर्च करना पड़ता है। यहाँ भी 1885 में योरप की तरह के स्टील ढाँचे पर लकड़ी की बनी हुई गाड़ियाँ चलायी गयीं इसी समय गाड़ियों की बनावट में भी काफी सुधार किया गया। लकड़ी के डिब्बे न केवल तीसरे दर्जे की सवारियों के लिए बनाये गये बल्कि ऊंचे दर्जों के लिए भी बनाये गये। अभी कुल दस साल से ही सुरक्षा, आराम और सरलता को बढ़ाने के लिए गाड़ियों में बैठने की जगहों, प्रकाश और दूसरे यंत्र-सम्बन्धी सुधार सवारी डिब्बों में किये गये हैं।

तीसरे दर्जे में सबसे पहले 1891 में सण्डास लगाये गये और धीरे-धीरे सभी प्रकार की तीसरे दर्जे की गाड़ियों के ये अंग बन गये।

1922 में, बम्बई के उपनगरों में चलने वाली बिजली की गाड़ियों के लिए, इंगलैण्ड से समूचे इस्पात के डिब्बे मँगाये गये। 1927 में, ईस्ट इण्डियन और नार्थ वेस्टर्न रेलों के लिए 250 समूचे इस्पात के डिब्बे मँगाये गये। 1940 के करीब, भारत के कुछ रेल कारखानों में बड़ी लाइन के कुछ समूचे इस्पात के डिब्बे तैयार किये गये। 1949 में रेलवे बोर्ड यह निश्चय कर सका कि भविष्य में स्वीकृत आकार और बनावट के, केवल समूचे इस्पात के डिब्बे प्रयोग किये जायँ क्योंकि लकड़ी के डिब्बों की अपेक्षा यात्रा के लिए ये अधिक सुरक्षित समझे गये। इसके तुरन्त बाद ही हिन्दुस्तान एयर क्रैफ्ट लिमिटेड, बंगलौर, को 100 गाड़ियाँ बनाने को कहा गया। उस समय से यह कारखाना भारतीय रेलों की बड़ी लाइनों के लिए समूचे इस्पात के डिब्बे तैयार कर रहा है।

समूचे इस्पात की गाड़ियों के बनवाने के निश्चय के साथ ही, रेलवे बोर्ड ने ढांचे और खोल को एक साथ मिलाकर गाड़ियों के बनाने का सुझाव मान लिया। यह गाड़ियाँ अधिक लम्बी और चौड़ी होती हैं जिनमें बैठने की काफी जगह रहती है। अभी तक बड़ी लाइन की गाड़ियों का नियमित आकार 68 फीट लम्बा और 10 फीट चौड़ा था। इन्हें बढ़ाकर क्रमशः 70 फीट और 11 फीट 8 इंच कर दिया गया। इस नये आकार की बहुत सी गाड़ियाँ भारत में बनीं और 1947 में 'सिलवर एरो' नाम की गाड़ी प्रदर्शनी में दिखायी गयी।

थोड़े ही समय में यह अनुभव होने लगा कि 11 फीट 8 इंच की चौड़ाई चालू रास्तों के अनुकूल नहीं है और उसको सब जगह चालू करने में काफी रुपया बेकार में खर्च होगा। इसलिए इसमें उचित सुधार कर दिया गया।

सबसे आधुनिक गाड़ियाँ

अभी हाल में स्विटजरलैण्ड के ज्यूरिच नगर के स्लीरेन कारखाने की बनी हुई गाड़ियाँ यहाँ की गाड़ियों की नाप और बनावट निर्धारित करने के लिए मंगायी गयी हैं। इनमें यात्रा में सुगमता और सुरक्षा की दृष्टि से बहुत बड़ी प्रगति हुई है। यह यन्त्र द्वारा पूरी स्टील को जोड़कर बनायी गयी हैं। यह वजन में बहुत हल्की हैं। इनमें लम्बाई की सीध में लगी हुई परतदार पटरी की कमानियों और गाड़ी के चौखटे के बीच, हिलती-डुलती गद्दियाँ लगी हुई हैं। इनकी धुरी की कमानियाँ सर्पाकार हैं, जो बेलनदार धुरी के बक्सों में लगी हुई हैं। ये धक्कों को रोकनेवाली द्रव-संचालित कटोरियों और रबड़ की गद्दियों के साथ-साथ काम करती हैं। समूची गाड़ी को एक साथ मिलाकर बनाने से इसमें स्वाभाविक मजबूती आगयी है। किसी भीषण दुर्घटना में, इन गाड़ियों के एक दूसरे के अन्दर घुस जाने या चूर-चूर हो जाने की सम्भावना नहीं के बराबर हो गयी है। कमानियों के उत्तम प्रबन्ध के कारण तेज रफ्तार की गाड़ियों में भी यात्रा करना अत्यन्त सुगम और सरल हो गया है।

ऊँचे दर्जे के यात्री

आरम्भ से ही ऊँचे दर्जे के यात्रियों का विशेष ध्यान रखा जाता था। पहले इंगलैण्ड में जो लोग खुले डिब्बों को रिजर्व करा सकते थे वे उनमें अपनी घोड़ा-गाड़ी लादकर उसी में बैठे-बैठे यात्रा करते थे। चाहे यह कारण हो या यह कि शुरू की रेलें घोड़ा-गाड़ी की जगह चालू हुई मानी जाती थीं, ऊँचे दर्जे की गाड़ियों की पहली बनावट बहुत रंगीली और घोड़ा-गाड़ी से मिलती-जुलती थी। घोड़ा-गाड़ी की तरह इसमें भी गार्ड बाहर ही चलता था। सामान भी अधिकतर बाहर ही रखकर जाता था। पहली गाड़ियों में 'एक्सपेरीमेण्ट' नामक गाड़ी में गार्ड के लिए दोनों तरफ पाँवदान बनाये गये, जिससे गाड़ी को घुमाना न पड़े। रेल के डिब्बों की चौड़ाई भी पुरानी घोड़ा-गाड़ी की चौड़ाई के बराबर रखी गयी और 1848 तक "केण्ट एण्ट ईस्ट ससेक्स" रेलवे द्वारा, महारानी विक्टोरिया के लिए बनायी गयी शाही गाड़ी के बाहर घोड़ा-गाड़ी जैसी बत्तियाँ लगी हुई थीं। पहले वर्जे की गाड़ियों पर छत लगी रहती थी; उनमें शीशे की खिड़कियां होती थीं। दूसरे दर्जे की गाड़ियाँ भी छतदार होती थीं लेकिन उनमें दरवाजे या खिड़कियां न थीं। उनमें दो खुले हुये रास्ते होते थे जिनसे होकर लोग आमने-सामने की सीटों पर बैठ जाते थे। अनायास ही, शुरू की इस बैठक व्यवस्था ने रेल के डिब्बों को छोटे-छोटे कमरों में बाँट देने के विचार को जन्म दिया।

गाड़ी के डिब्बों को विभिन्न श्रेणियों के छोटे-बड़े खण्डों में बाँटने का चलन इंगलैण्ड और योरप के दूसरे देशों में खूब चला। अमेरिका, कनाडा और बाद में, रूस में डिब्बों को गलियारों द्वारा एक दूसरे से सम्बन्धित कर देनेवाली गाड़ियाँ बहुत लोकप्रिय हुईं। पहले और दूसरे वर्जे की गाड़ियाँ रँगी हुई होती थीं और उनमें, घोड़ा-गाड़ी की तरह गद्देदार सीटें लगी रहती थीं। पहले वर्जे की सीटें, दूसरे दर्जे की अपेक्षा, अधिक ऊँची गद्दी की बनती थीं और देखने में अच्छी होती थीं। आरम्भ में इंगलैण्ड के पहले और दूसरे दर्जे की यात्रा के अन्तर को बताते हुये एक लेखक ने लिखा था :

'पहले वर्जे की सबसे बड़ी तकलीफ़ वास्तविक से दूना किराया देने की है। इस दर्जे में, दूसरे दर्जे की अपेक्षा, आपकी गरदन टूटने का डर कम जरूर है, परन्तु आप ऐसी घटना के लिए असावधान न रहिए। दूसरे दर्जे में चलने पर धूल और इंजन की राख से प्राणरक्षा करने के लिए आपको नकाब लगाने में ही सुभीता रहेगा। लम्बे सफर में भी आपको अपने पास तैरने की स्कूली पोशाक रखनी चाहिए क्योंकि अधिक वर्षा होने पर गाड़ी की बगलें खुली होने से आपको पानी के तालाब में रहना होगा। आपकी शान को कोई धक्का न लगना चाहिए अगर आपके बगल में हथकड़ी पहने हुए कोई बदमाश पुलिस के सिपाही के साथ बैठा हो। आपके नीचे की सीट की सख्ती तो कुछ भी नहीं है। यह तो आपको पहले वर्जे में ढकेलने के लिये जान-बूझकर ऐसी बनायी गयी है।'

भारत में ऊँचे दर्जे की यात्रा

भारत में ऊँचे दर्जे की गाड़ियों की बनावट का आधार मूलरूप से तीसरे दर्जे की

तरह का है। असल में कई बार एक ही गाड़ी विभिन्न श्रेणी के कई डिब्बों में बाँट दी जाती है। दो मंजिल की गाड़ियाँ ऊँचे दर्जे के यात्रियों के लिए भी बनी थीं, जिनमें ऊपर तो यात्रियों के लिए और नीचे उनके साथ के नौकरों के बैठने का प्रबन्ध था। 1863 में, बम्बई, बड़ौदा एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे के अमरौली कारखाने में, बम्बई के गवर्नर महोदय के लिए, चार पहियों का पहला राजसी सैलून बनाया गया। इस गाड़ी की ऊँचाई बढ़ा दी गयी और चार पट्टियों की तंग सीमा के अन्दर ही आधी जगह में एक सोने-बैठने का कमरा और सामने की आधी जगह में भोजन का कमरा बनाया गया। नीचे के फ़र्श पर नौकरों की जगह बनायी गयी। ड्योढ़ा दर्जा कभी भी तीसरे दर्जे से अधिक अच्छा नहीं रहा। शुरू में उसकी बेंचों में सिर्फ़ गद्दियाँ लगाकर ऊपर से जीन या टाट चढ़ा दिया जाता था। दूसरा दर्जा ड्योढ़े दर्जे से इस माने में जरूर बढ़िया था कि उसमें रोशनी, खिड़कियाँ, सफ़ाई, सीटें और गद्दियाँ आदि पहले दर्जे जैसी थीं।

भारत के पिछले सौ वर्षों में ऊँचे दर्जे की यात्रा की सुविधाएँ संसार के अन्य उन्नतिशील देशों के समान ही रही हैं। किराये के हिसाब से, भारत की कुछ मुख्य रेलों की पहले दर्जे की सुविधाएँ अन्य देशों से अधिक हैं। लुई रसल ने अपनी 'इण्डिया एण्ड इट्स नेटिव प्रिन्सेज' नामक पुस्तक में भारत की 1860-70 के बीच की ऊँचे दर्जे की रेल यात्रा का बड़े विस्तार और विनोदपूर्ण ढंग से वर्णन किया है। उन्होंने आगरा से कलकत्ता की साढ़े पाँच दिन की यात्रा पूरी करके लिखा है:—

> 'धन्यवाद है उन सोनेवाले डिब्बों को जिनकी बदौलत मैंने, रात को छोटे, आरामदेह बिस्तरे पर सोकर और दिन को अपने डिब्बे का चक्कर लगाकर, इतना लम्बा फासला बिना किसी ख़ास थकावट के तै किया। एक नौकर था जो खाने का हुक्म लेकर दूसरे स्टेशन को तार देता गया, जहाँ मेरा नाश्ता या भोजन पहुँचते ही मिल जाता था।'

इससे यह मालूम पड़ता है कि भारत में ऊँचे दर्जे के यात्रियों को सोने की सुविधा अमेरिका में 'पुल मैन' चालू होने के बहुत पहले से मिली हुई थी। उस समय के पहले दर्जे की गाड़ियों का वर्णन करते हुये उन्होंने लिखा है—

> "दो बजे रात को गाड़ी छूटते ही हमें आरामदेह सोनेवाले डिब्बों में कर दिया गया, जिन्हें ईस्ट इण्डियन रेलवे ने हाल ही में चलाया था। इन डिब्बों में केवल दो भाग होते हैं, हर भाग में एक सीट रहती है जो चमड़े के पट्टों से ऊपर कसी रहती है। पट्टे खोलते ही जहाजों जैसी सोने की सीट का बिस्तर तैयार हो जाता है। सीट के सामने दो कोठरियाँ होती हैं- एक शौचादि तथा दूसरी नहाने-धोने की। कुछ अधिक किराया देने पर आप बड़े आराम से यात्रा कर सकते हैं, जो इस देश में बहुत जरूरी है।'

शुरू के पहले दर्जे के डिब्बों में आम तौर से एक से दो तक सोने की सीट होती थी। ऊपर की सीट झूलनेवाली (Folding) होती थी और काम न आने पर दीवाल से लगा

दी जाती थी। इन डिब्बों की तसवीरें अभी मौजूद हैं। एक में दो यात्री अपनी-अपनी सीटों पर आराम करते दिखायी देते हैं, जिनमें से एक देशी हुक्का पी रहा है और दोनों नौकर उनके ऊँचे जूतों में पालिश कर रहे हैं। सभी रेलों में नौकरों के डिब्बे ऊँचे दर्जों के साथ ही बनाने का विशेष ध्यान रखा गया है, जिससे यात्रा में वे अपने मालिकों की ठीक-ठीक देखभाल कर सकें। दो या दो से अधिक सीटों के ऊँचे दर्जे के डिब्बों में प्रत्येक के लिए सभी सुविधाओं से पूर्ण अलग शौचालय आदि का प्रबन्ध रहता है। पहले दर्जे के शौचालय में तो नहाने के हौज भी रहते हैं, जिनकी जगह पर अब फुहारे लगने लगे हैं। हाल की निकली हुई कुछ गाड़ियों में गलियारे भी बनाये गये हैं।

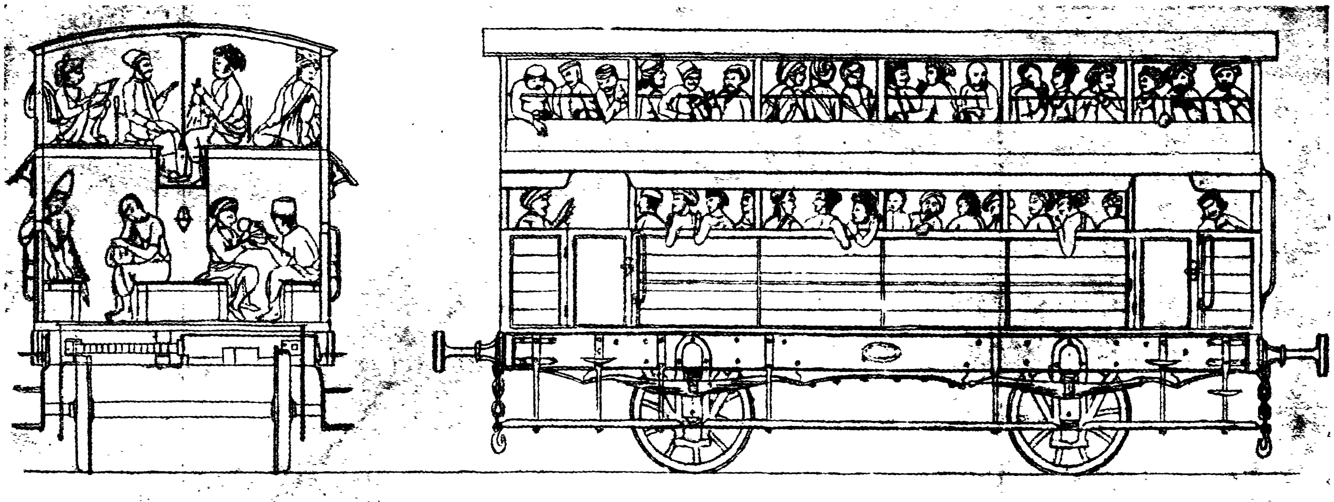
संसार के बहुत देशों की लम्बी यात्रा की लोकप्रिय 'पुल मैन' गाड़ी भारत में कभी नहीं चली। यहाँ आम तौर से ऊँचे दर्जे के यात्री को, रिजर्व करा लेने पर, रात को सोने के लिए पूरी बर्थ मिल जाती है, साथ ही शौचादि और नहाने-धोने की भी सुविधा रहती है। भारत के एक या दो बर्थ वाले पहले दर्जे के आराम और सुविधा का मुकाबिला केवल अमेरिका की कुछ एक या दो बर्थ की सोनेवाली गाड़ियों से किया जा सकता है। अन्तर केवल यह है कि भारत की रेलों में ऊँचे दर्जे के यात्रियों को ये सुविधाएँ, आमतौर से दी जाती हैं किन्तु अमेरिका में इनके लिए यात्रियों को बहुत अधिक भाड़ा देना पड़ता है।

वायु अनुकूलित डिब्बे

भारत में, सबसे पहले 1936 में वायु अनुकूलित गाड़ियाँ चलायी गयीं। इसका श्रेय भारतीय रेलों के इंजीनियरों को है, जिन्होंने बम्बई के पास, माटुंगा के रेल-कारखाने में, विद्युत-यंत्र द्वारा पहली पाँच वायु-अनुकूलित गाड़ियाँ बनायीं। लड़ाई के दिनों में इनमें कोई वृद्धि नहीं हो सकी। 1950 से भारतीय रेलों के कारखानों में कई नये ढंग की वायु अनुकूलित गाड़ियाँ बनी हैं जो पुरानी गाड़ियों से बहुत सी बातों में अच्छी हैं।

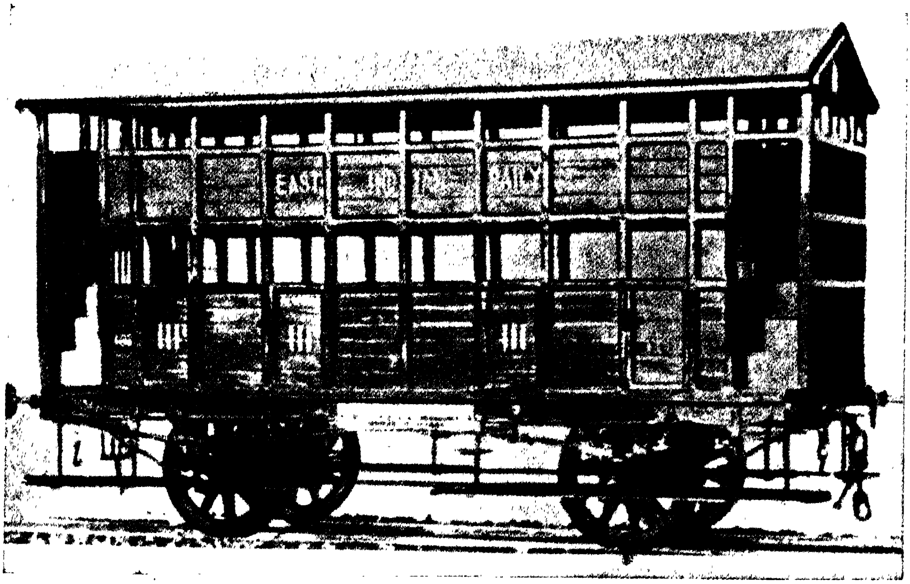
जिस प्रकार अमेरिका और योरप की रेलों में गाड़ियों को आधुनिक यंत्र से गरम करने का संकेत सबसे पहले टीन के पैर गरम करनेवाले खोल से हुआ, उसी तरह भारत की रेलों में भी गर्मी में गाड़ियों के तापक्रम को नीचा रखने के लिए भद्दा किन्तु प्रभावशाली तरीका 1860-70 से ही चालू था। इस तरीके को बताते हुये एम. लुई रसल लिखते हैं 'बम्बई से कलकत्ता तक एक्सप्रेस गाड़ियों से जानेवाले यात्रियों को अब खस के परदों से ढकी हुई गाड़ियों में बिठाया जाता है। इन्हें दो खास तरह की लगी हुई पानी की टंकियों से छिड़काव करके तर रखा जाता है। गाड़ी के चारों ओर की यह नमी तापक्रम को इतना ठंडा रखती है जिससे लू लगने या अपस्मार होने का भय, जिनकी इन यात्राओं में किसी समय अधिकता थी, नहीं रहता।'

किसी भी भारतीय रेल की आधुनिक वायु-अनुकूलित गाड़ी धूल से बिलकुल सुरक्षित है। साथ ही नहाने, शौचादि के कमरे रहते हैं और उसमें आराम के दूसरे साधन भी हैं। सुखद और सुगम यात्रा के लिए यह सर्वश्रेष्ठ है। बड़ी-बड़ी खिड़कियों से यात्री को देश के अनेक सुन्दर दृश्य देखने को मिलते हैं। धूल रोकनेवाला बाहरी शीशा रंगीन

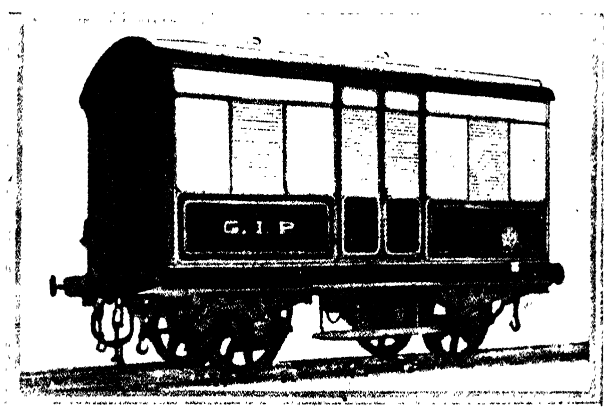


B. B. & C. I. Rly: DOUBLE STORY 3rd CLASS CARRIAGE, 1863.

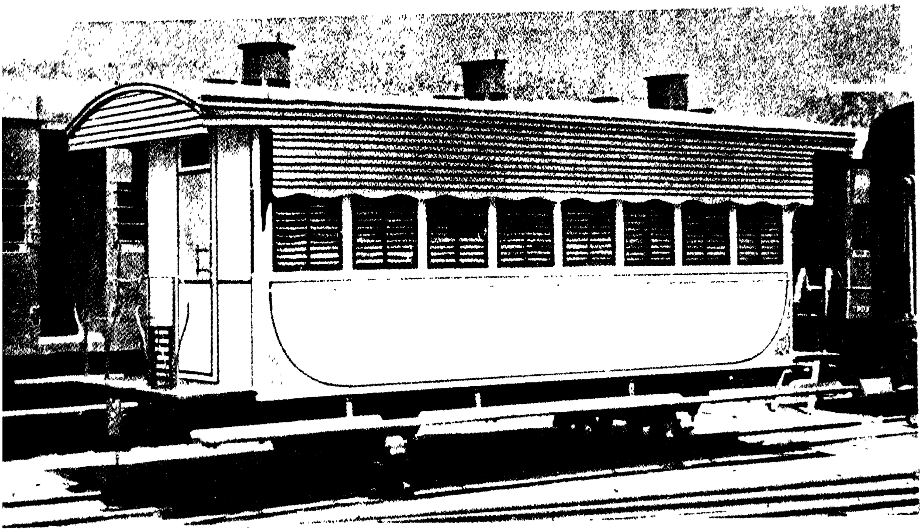
बम्बई बड़ौदा एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे का तीसरे दर्जे का दो मंजिला सवारी डिब्बा ।



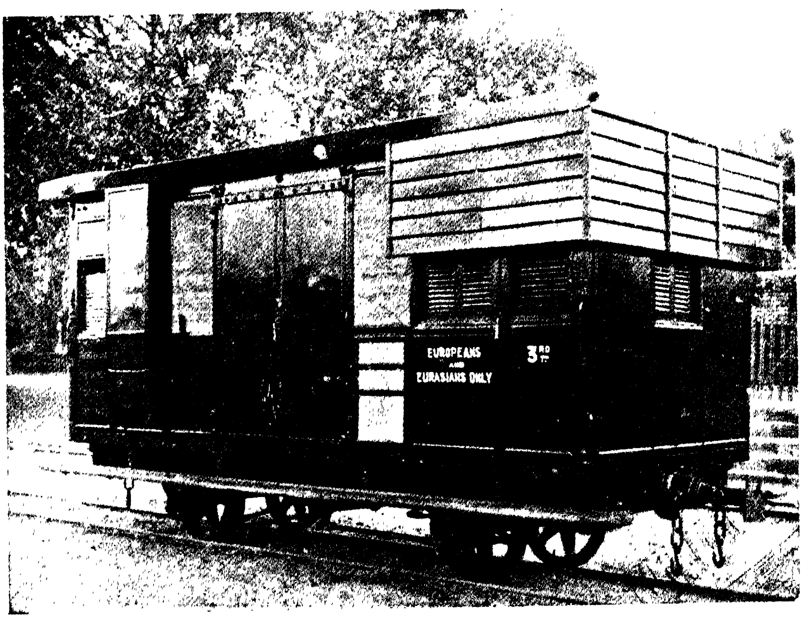
1864 में ईस्ट इण्डिया रेलवे के लिए हबड़ा में बनाया गया दो मंजिला सवारी डिब्बा।



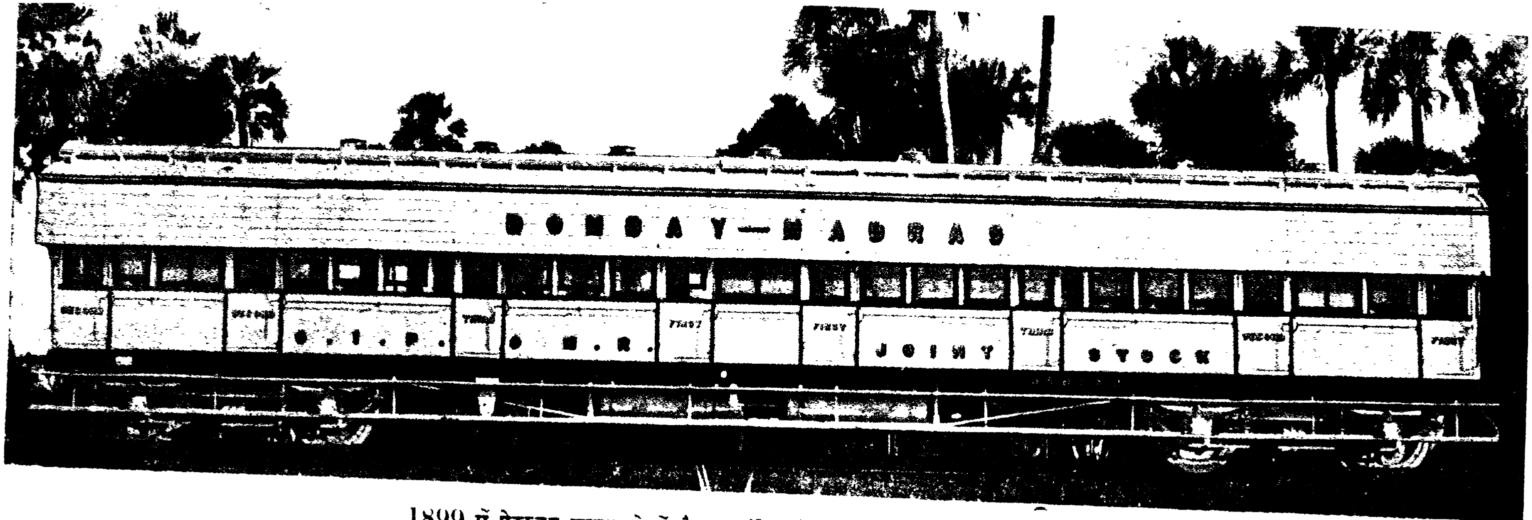
6 टन भार ढोने वाला एक बन्द ट्रक।



प्रिंस आफ वेल्स (बाद के राजा एडवर्ड सप्तम) की यात्रा के लिए बम्बई बड़ौदा एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे के आगरा के कारखाने में निर्मित मीटर लाइन का एक सैलून।



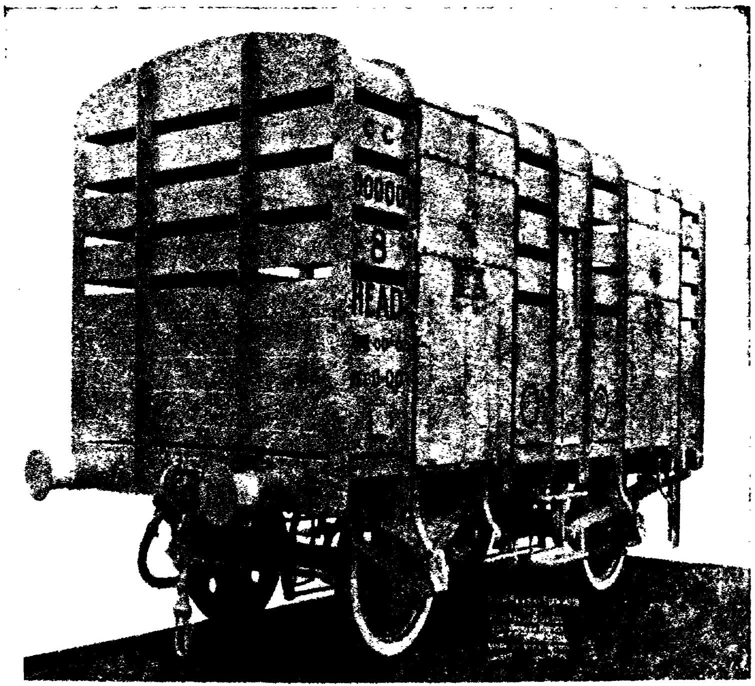
पहले कभी प्रयोग में आने-वाले तीसरे दर्जे, ब्रेक और सामान का मिला-जुला डिब्बा। उस समय की भेद-नीति के अनुसार तीसरे दर्जे का यह डिब्बा केवल यूरोपियन और यूरेशियनों के लिए था।



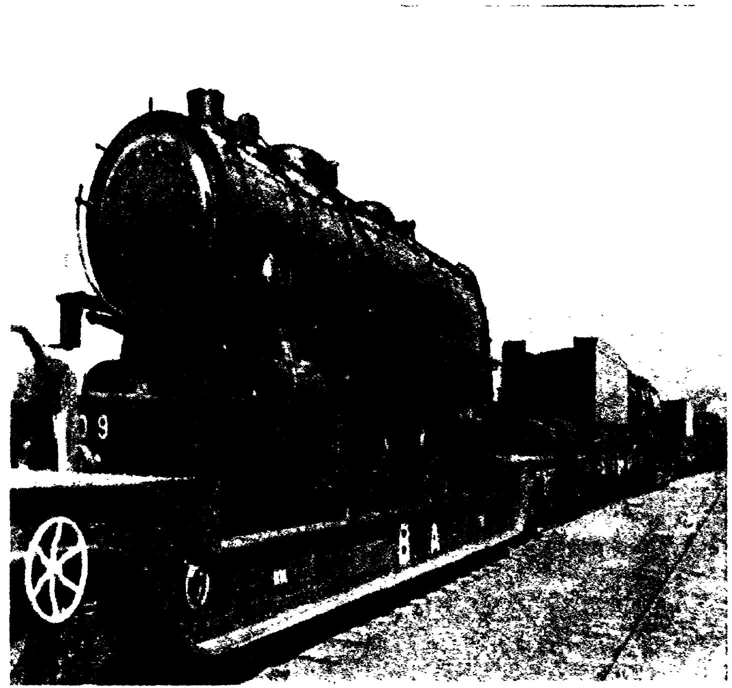
1899 में पेरम्बूर कारखाने में तैयार ऊंचे दर्जे का मिला-जुला एक सवारी डिब्बा।



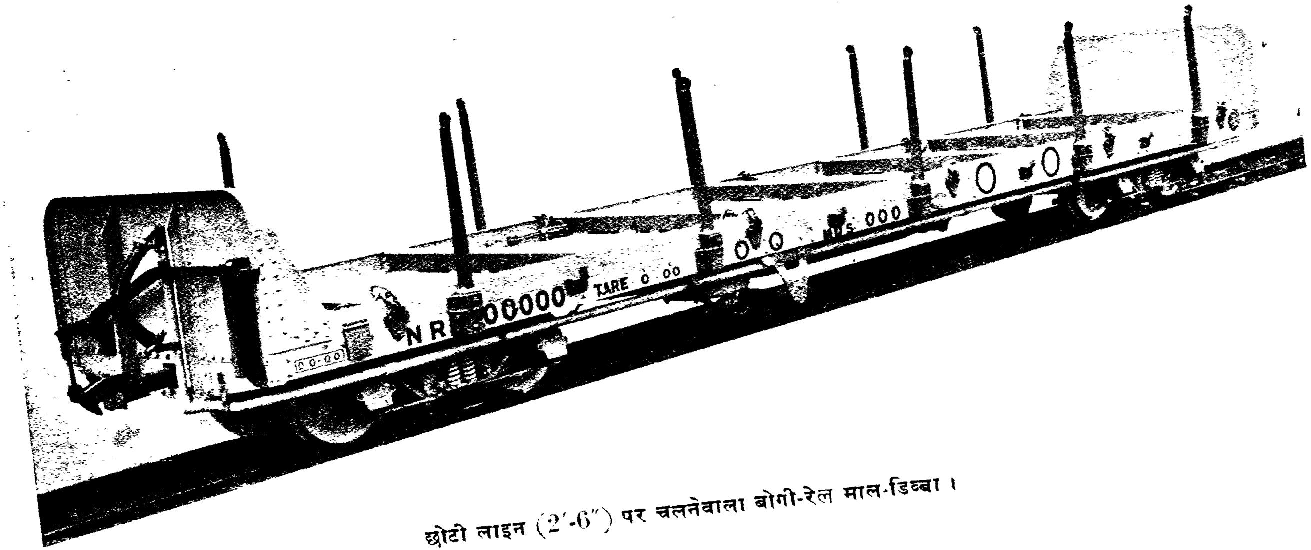
भोपाल-सिहोर के बीच 1906 में भाप से चलने वाले मोटर का सवारी-डिब्बा।



जानवरों का डिब्बा ।

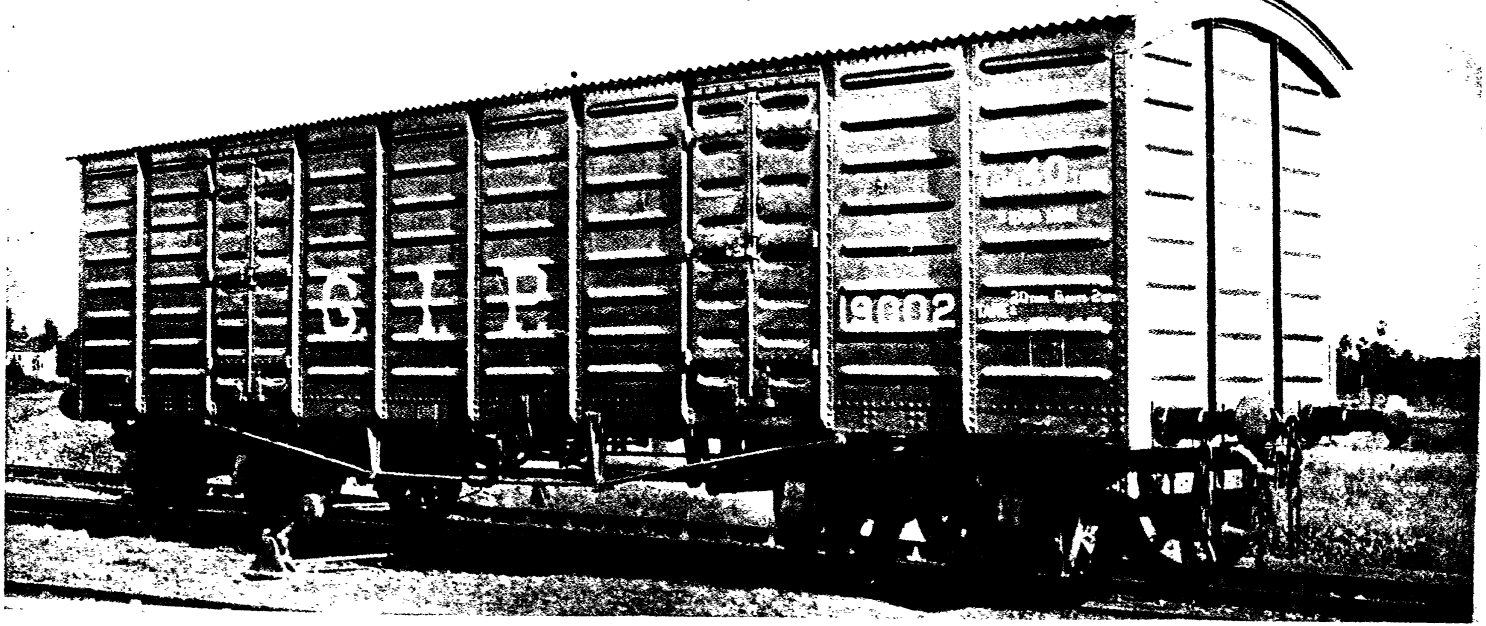


बड़ी लाइन के वेल-वैगन में जाता हुआ मीटर लाइन का एक इंजन ।

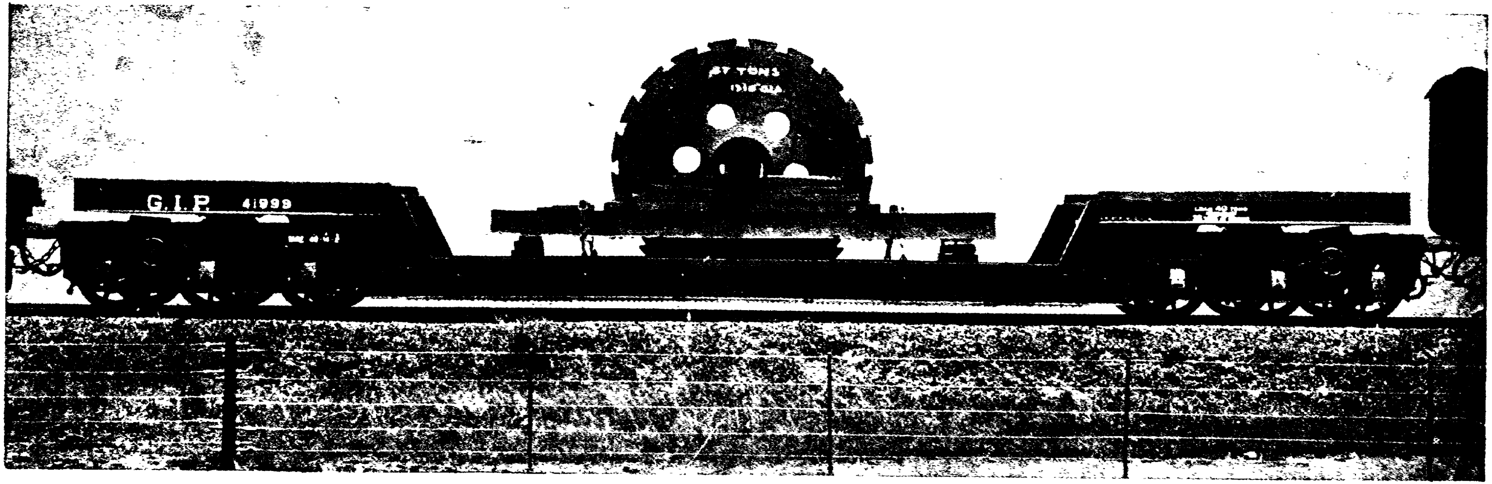


छोटी लाइन (2′-6″) पर चलनेवाला बोगी-रेल माल-डिब्बा ।

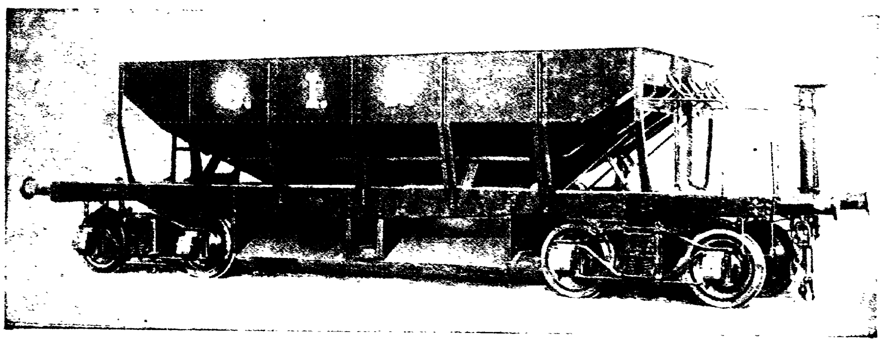
FIRST BOGIE COVERED WAGON BUILT 1911



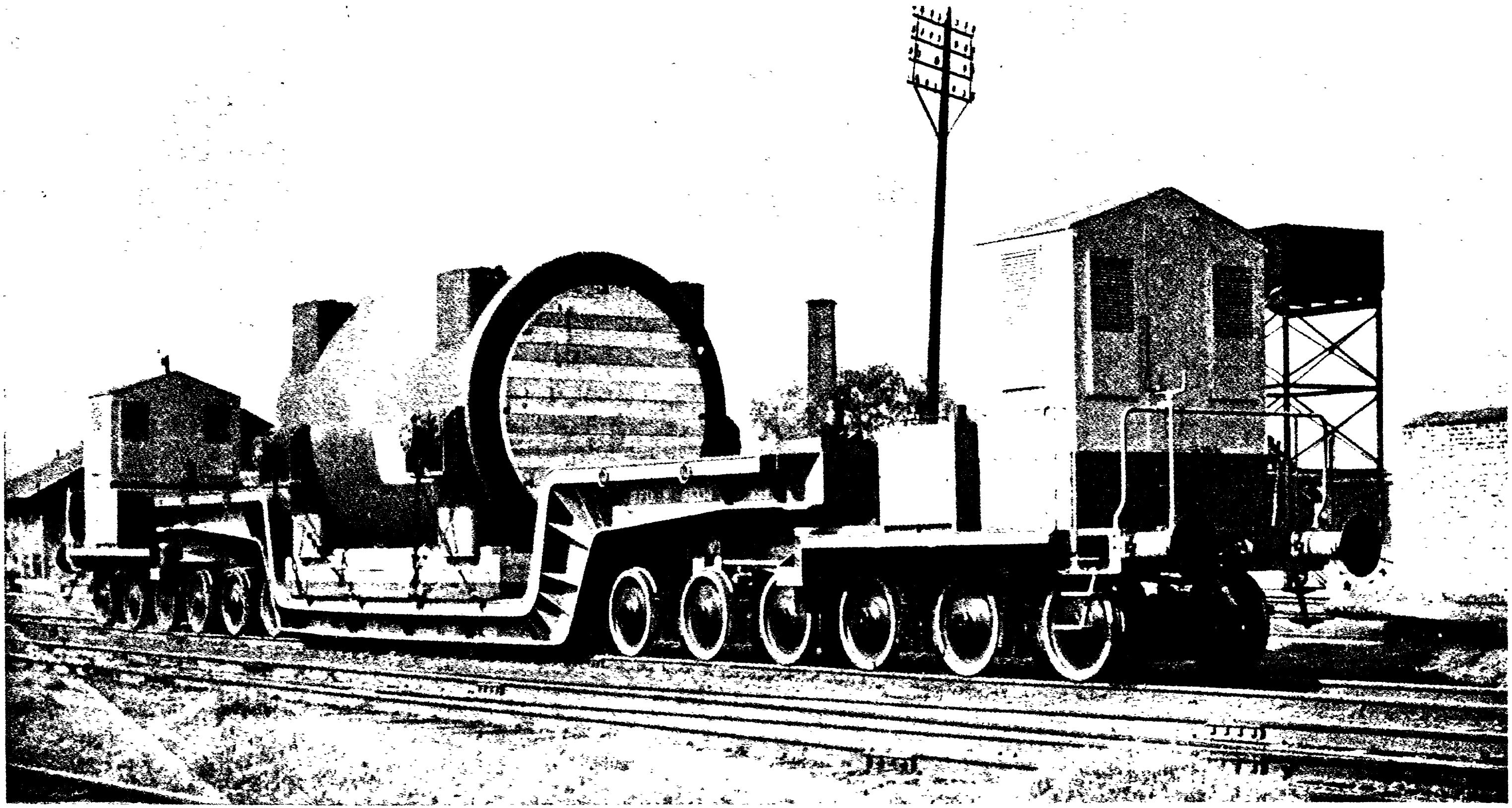
1911 में बनाया गया बन्द बोगी माल-डिब्बा ।



विस्तृत आकार और 40 टन तक की बिल्टियों को ढोने के लिए 1913 में बनाया गया बोगी-वेल-ट्रक ।



1915 में निर्मित "बोगी हापर वॅगन" ।



130 टन तक की बिल्टियों को ढोने के लिए आधुनिकतम ढंग का "वेल ट्रक"। यह माल-डिब्बा देश की कई नदी घाटी योजनाओं की मांग को पूरा करने के लिए बनाया गया है और एशिया में अपने ढंग का प्रायः यह एक ही डिब्बा है।

होता है जिससे बाहर की चमक नहीं आने पाती। बर्थ बड़े-बड़े होते हैं जिन पर दिन में आराम के साथ बैठा जा सकता है और रात में आरामदेह बिस्तरे का काम देते हैं। उनकी सजधज बड़ी सुन्दर और कलात्मक होती है। प्रकाश का प्रबन्ध बड़ा सुविधापूर्ण होता है और सामान रखने तथा कपड़े टांगने का अच्छा प्रबन्ध रहता है जो लम्बी यात्रा में बहुत जरूरी है।

बिजली-गाड़ी के डिब्बे

उपनगरों में बिजली की गाड़ियाँ चलना 1926 से शुरू हुआ जिससे उनके डिब्बों की बनावट अधिक अच्छी रही। शुरू से ही इन लाइनों पर समूचे इस्पात के डिब्बे चालू हुए जिनमें सीटों का ऐसा अच्छा प्रबन्ध था कि यात्रियों के आने-जाने की सुविधा के साथ-साथ पैर रखने की भी जगह थी। 1952 में चालू की गयी गाड़ियां नवीनता और बनावट में संसार के किसी भी देश की गाड़ियों से टक्कर ले सकती हैं। नयी गाड़ियां पूरे धातु की हल्के वजन की बनायी गयी हैं। उनमें आरामदेह सीटें लगी हुई हैं। घूमते हुए पंखे काफी संख्या में लगाये गये हैं और डिब्बों में अधिक प्रकाश फेंकनेवाली लम्बी नली की बत्तियां लगायी गयी हैं।

परिवर्तनों का कालक्रम

भारतीय रेलों की सवारी गाड़ियों के विकास की विभिन्न अवस्थाओं का सिंहावलोकन समाप्त करने से पहले, पिछले सौ वर्षों के बनावट सम्बन्धी कुछ मुख्य परिवर्तनों का कालक्रम निश्चित कर लेना जरूरी है। शुरू के डिब्बों के दरवाजे बाहर की ओर खुलते थे। अन्दर को खुलनेवाले दरवाजे सबसे पहले 1909 में लगाये गये। चार पहियों की गाड़ियों की जगह 56 फीट 10 इंच लम्बी और 9 फीट चौड़ी गाड़ियाँ 1903 में चालू की गयीं। इसी साल पहला भोजन-यान भी अन्य डिब्बों के साथ गाड़ियों में जोड़ा गया। गाड़ियों की सबसे अन्तिम नाप 70 फीट लम्बी और 10 फीट 8 इंच चौड़ी ही गयी है। पहियों की वायु-चालित ब्रेक (Vacuum brake) सबसे पहले 1879 में लगाया गया और बेलनदार धुरी के बक्सों (Roller bearing axleboxes) का प्रयोग 1930 से शुरू हुआ।

शुरू की गाड़ियों में रोशनी का प्रबन्ध यात्री अपनी मोमबत्तियों को सीटों के पीछे लगाकर स्वयं किया करते थे। बाद में कुछ गाड़ियों में तेल और मोम की बत्तियाँ लगने लगीं। 1860-70 के बीच, ब्रिटेन और योरुप की कुछ रेलों में गैस की बत्तियों का प्रयोग आरम्भ हुआ। भारत की गाड़ियों में तेल की बत्तियाँ शुरू से ही लगती थीं। 1870-80 तक गैस बत्तियों का प्रयोग बढ़ गया। गाड़ियों में पहली बिजली की बत्तियाँ लगाने का श्रेय 1902 में जोधपुर रेलवे को प्राप्त हुआ जिसका संचालन यहाँ की एक देशी रियासत करती थी। 1907 तक सभी मुख्य लाइनों की गाड़ियों पर बिजली की बत्तियाँ लग गयीं।

12. माल-डिब्बे

आरंभ में जब भारत में रेल चलाने की योजना पर विचार किया जा रहा था, तो कई बड़े अफ़सरों ने राय दी कि इस देश में लोगों को रेल से लाभ उठाने के लिए तैयार करना असम्भव है और रेलों को यदि पूर्णतः नहीं तो प्रधान रूप से, आमदनी के लिए माल-यातायात पर निर्भर रहना होगा। यद्यपि ये शंकाएं झूठी निकलीं फिर भी माल-यातायात ही भारतीय रेलों की आमदनी का मुख्य साधन रहा है और उससे देश के आर्थिक विकास में प्रोत्साहन मिला है।

सभी देशों में क्रमशः माल-यातायात पर अधिक ध्यान दिया जाने लगा है और रेलों द्वारा विभिन्न प्रकार के बड़े और भारी सामान को हिफ़ाजत और जल्दी से ले जाने के लिए नये और बढ़िया तरीके अपनाये गये हैं।

रूस में तो सदा यात्री-यातायात की अपेक्षा माल-यातायात की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। विशेष रूप से सोवियट शासन में यात्रियों को अधिक सुविधा देने की अपेक्षा, रेलों की माल ढोने की क्षमता बढ़ाने की बड़ी कोशिश की गयी है। अमेरिका में, जहां दोहरी लाइनें बहुत कम हैं, बढ़ते हुए माल-यातायात की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अनेक प्रकार के यंत्रों का प्रयोग किया जाता है।

पहले के माल डिब्बे

सवारियों को ले जाने के लिए जो चार पहियों की खुली बक्सनुमा गाड़ी सबसे पहले काम में आयी थी वही माल ढोने के लिए भी अपनायी गयी। बाहरी आकार और बनावट में सवारी गाड़ियाँ घोड़ा-गाड़ी के नमूने पर बनायी गयीं, लेकिन माल डिब्बे इंगलैण्ड में कोयला और लकड़ी ढोने वाले शुरू के ठेलों की तरह, जिन्हें घोड़े खींचते थे, बनाये गये।

समय के साथ-साथ अनेक प्रकार के सामान की जरूरतों को पूरा करने के लिए, डिब्बों के आकार और बनावट में कई परिवर्तन हुए। भारत, इंगलैण्ड और योरुप के कुछ देशों में चार पहियों की गाड़ी अब भी चालू है। पहले के माल-डिब्बों में लकड़ी की चौखट होती थी और चारों तरफ़ से, धातु की पटरियों और तिकोनियों से मजबूत करके, लकड़ी का बक्सनुमा आकार बनाया जाता था। शुद्ध लोहे की हाल और तीलियों के पहियों पर ये डिब्बे चढ़ा दिये जाते थे। शुरू के ये डिब्बे अधिक से अधिक १२ टन सामान ले जाते थे। वे बन्द या खुले होते थे।

इस सदी के आरम्भ में, इंगलैण्ड और योरप की कुछ रेलों पर इस्पात के बने हुए डिब्बे चालू किये गये। बनावट की मजबूती और अधिक सामान ले जाने के विचार से ये

लकड़ी के डिब्बों से अच्छे थे । 1908 के बाद भारत में इस्पात की चद्दरों और प्लेटों के बने हुए माल-डिब्बे चालू किये गये । भारत उन देशों में था जहाँ सबसे पहले प्रामाणिक आकार के डिब्बों की सुविधाओं को ठीक-ठीक समझा गया । उसने अपनी सभी रेलों पर प्रामाणिक ढंग के विभिन्न प्रकार के इस्पात के डिब्बों को चालू किया । इस सर्वमान्य नमूने के डिब्बों को अपनाने से सामान और पुर्जों को इकट्ठा करने और उनके अनुरक्षण में बहुत कुछ बचत हुई । कुछ डिब्बों में खड़े और कुछ में नीचे गिरा कर खोलने वाले कपाट लगाये गये । छतदार डिब्बों में खड़े कपाट लगते थे किन्तु कुछ डिब्बों में जानवरों को चढ़ाने-उतारने के लिए नीचे को खुलनेवाले कपाट लगाये गये ।

डिब्बों की किस्में

डिब्बों की बुनियादी बनावटें तो निर्धारित हो गयीं किन्तु कोयला से लेकर बालू, लकड़ी के बड़े २ लट्ठों से लेकर गन्ना, खनिज पदार्थ, ईंट-पत्थर के छोटे-बड़े टुकड़ों, हाथी, चीते, खरगोश जैसे अनेक प्रकार के जानवरों, मुर्गी आदि पक्षियों, और पेट्रोल, पानी, तेल, रसायन, कपड़ा अनाज आदि अनेक प्रकार के सामान को ढोने के लिए डिब्बों में आवश्यकतानुसार बहुत कुछ परिवर्तन होते रहे । इस प्रकार कोयला और लकड़ी ले जाने के डिब्बे, तेल, पानी और पेट्रोल की टंकियाँ, वजनी सामान उठानेवाले क्रेन, गैस ले जाने की टंकी, रोड़ी के डिब्बे, विस्फोटक पदार्थों के सुरक्षित डिब्बे, मोटर और दूसरी सवारियाँ और सामान ढोनेवाले अनेक प्रकार के माल-डिब्बे, स्वाभाविक रूप से बनने लगे । चार पहिये वाले माल-डिब्बे तो सदा चालू ही रहे किन्तु विशेष कामों और अधिक सामान लादने के लिए बाद में कुछ दूसरे ढंग के डिब्बे भी बनाये गये जिनका उल्लेख नीचे किया गया है ।

विभिन्न प्रकार के सामान को लादने के लिए चार पहिये की चालू गाड़ी और आठ पहियों की बड़ी गाड़ियों में कौन कौन से परिवर्तन किये गये, इसका अनुमान डिब्बों की कुछ किस्में जान लेने पर हो जाता है । जानवरों के डिब्बों में कई खाने बने रहते हैं और जानवरों को शुद्ध हवा पहुँचाने के लिए उनमें रोशनदान लगे रहते हैं । चारा-पानी के लिए नाद रहती है । लट्ठे ढोनेवाले ठेले खुले होते हैं; उनमें सिर्फ ढांचा रहता है जिससे हर नाप की लकड़ी आसानी से लादी जा सके । उनकी बनावट ऐसी होती है कि गाड़ी के चलने पर लकड़ी गिर नहीं सकती । 'होपर' किस्म के डिब्बों में रोड़ी, खनिज पदार्थ और कोयला लादा जाता है । बारूद की गाड़ियों में मोटी लकड़ी का अस्तर और गर्मी को दूर रखने का साधन रहता है जिससे बारूद में गर्मी से आग न लग सके । इनके अन्दर बन्द करने के सामान जैसे कुण्डे, और कब्जे बन्दूक की धातु के बनाये जाते हैं ताकि विस्फोट के सम्पर्क से आग न लग सके ।

ठण्डी गाड़ियों को दोहरी लकड़ी लगाकर बीच में कार्क का परत लगाकर बनाया जाता है । अपने आप बन्द हो जानेवाले किवाड़ लगे रहते हैं ताकि हवा बिलकुल न जा सके । इनका फर्श लकड़ी पर, खास तरह के सीमेण्ट-मिश्रण से बनाया जाता है, जिसमें गर्मी को रोकने के लिए कार्क लगा दी जाती है, डिब्बे के बीच में बरफ का बक्स रहता है जिसमें इस्पात के चौखटों में बर्फ की सिलें रखी जाती हैं । इन सिलों पर हवा फेंकने के

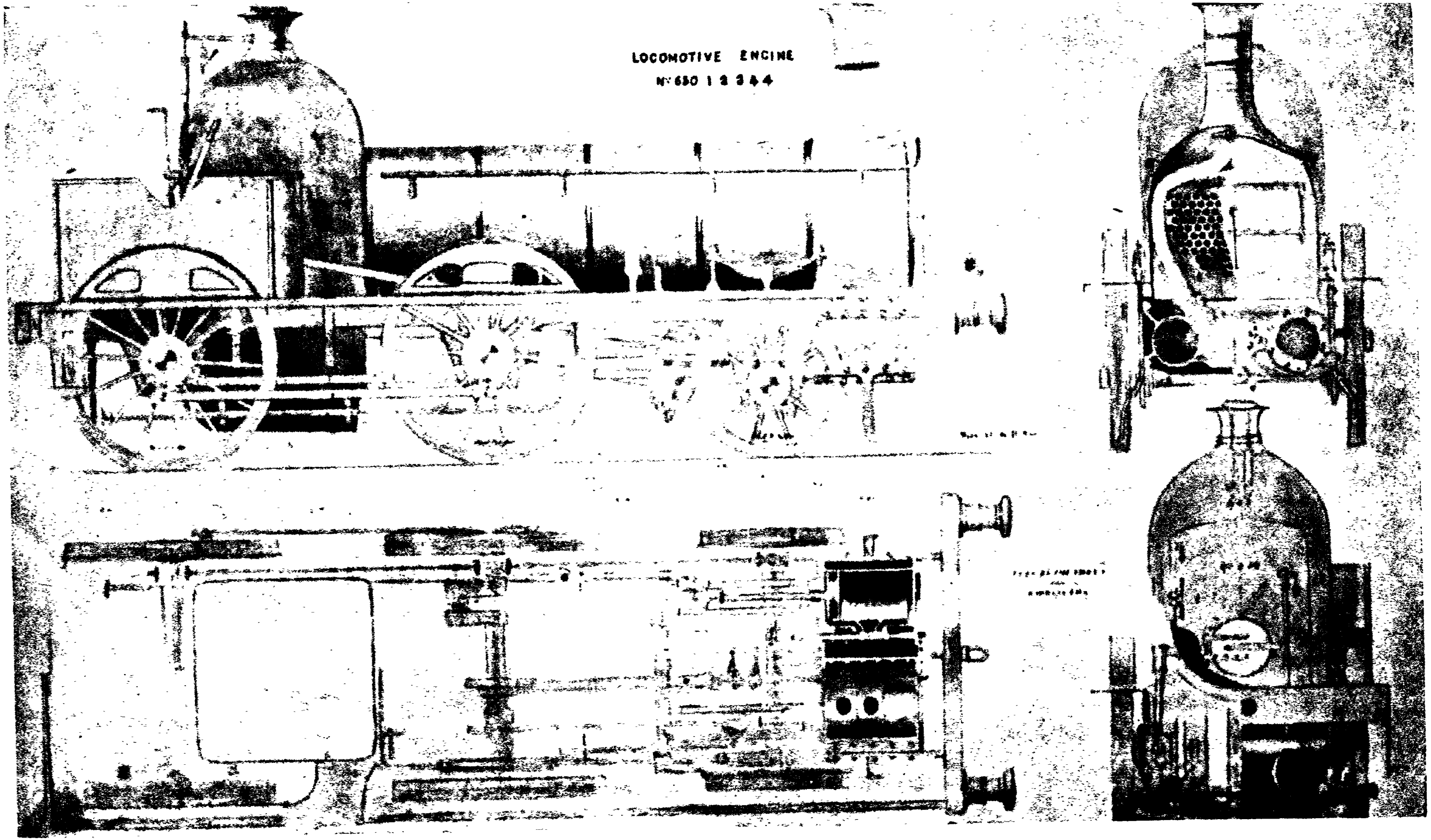
लिए छत पर पंखे लगाये जाते हैं। यह हवा लम्बाई की तरफ लगे हुए पाइपों के जरिये डिब्बों में पहुँचायी जाती है। इस प्रकार की सस्ती गाड़ियाँ अभी हाल में पश्चिम रेलवे ने चालू की हैं। इन पर बम्बई नगर की दूध की कमी को पूरा करने के लिए गुजरात के जिलों से आठ गैलन के बन्द डिब्बों में ठण्डा किया हुआ दूध आता रहता है।

तेल के डिब्बों में सब किस्म के तेल ले जाने के लिए बेलनाकार गोल इस्पात की टंकियाँ होती हैं। पेट्रोल की टंकी के डिब्बों में दबाव से खुलने वाले ढक्कन तथा मुख्य छेद पर कसा हुआ ढक्कन होता है जिससे पेट्रोल उड़ न सके। सूरज की गर्मी से बचाने के लिए डिब्बों के ऊपर अलमुनियम या सफेद रंग चढ़ा दिया जाता है।

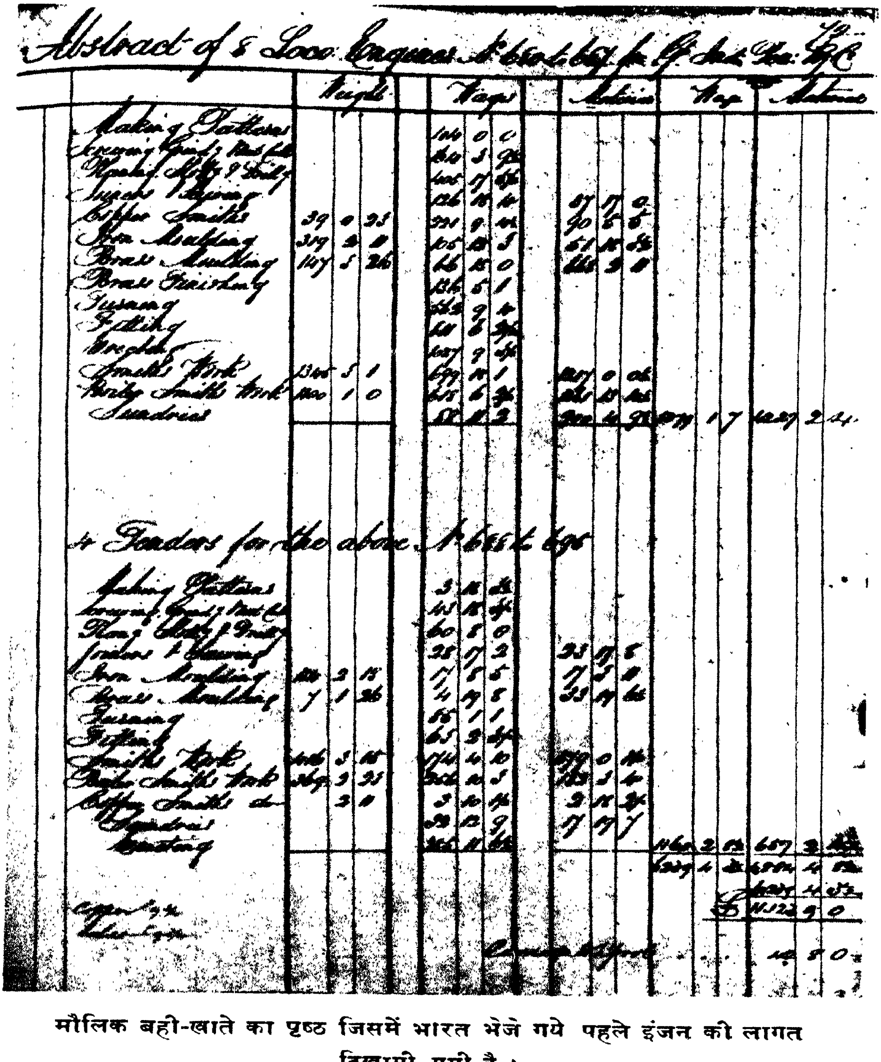
गहरे गड्ढेदार डिब्बे

गहरे गड्ढेदार डिब्बे बड़ी बड़ी वजनी चीजों को, जो अधिक ऊँचाई के कारण चालू डिब्बों में नहीं आ पातीं, ले जाने के लिए बनाये गये हैं। अभी हाल में बनाये गये इस प्रकार के डिब्बे में जिसके अन्दर कई छोटे छोटे गड्ढे बने हैं, 130 टन तक माल लादा जा सकता है। माल डिब्बों की बनावट में यह संसार की नहीं, तो कम से कम योरुप और एशिया की, प्रमुख सफलताओं में है। ये डिब्बे स्विट्जरलैण्ड की एक फ़र्म द्वारा बनाये गये, किन्तु इनका आकार, विवरण और नमूना भारत में रेल-मंत्रालय के सेण्ट्रल स्टेण्डर्ड्स कार्यालय में तैयार किया गया था। इन डिब्बों के गड्ढों का मुख्य गाटर विशेष प्रकार से बनाये गये अड्डों पर रखा रहता है जिनके नीचे दोनों सिरों के धक्कों को सम्भालने के लिए, रबड़ की कमानीदार गद्दियाँ होती हैं। यह ढाँचा बाद में बेलनदार धुरी के दो छः पहियों के डिब्बों पर लगा दिया जाता है। मुख्य गाटर के अड्डों पर भारी चीजों को उठानेवाले द्रव-शक्ति-चालित यंत्र (जैक) लगे हुए हैं, जो मुख्य गाटर को, गेज की नाप से बड़ी चीजों को सम्भालने के लिए आवश्यकतानुसार ऊपर-नीचे कर देते हैं। गाड़ी पर बोझ का ठीक ठीक बटवारा करने के लिए अलग अलग ढंग के तीन ब्रेक गियर लगाये गये हैं जिन के द्वारा विभिन्न प्रकार का बोझ ले जाने के लिए उचित रोक-थाम की जाती है। हर खण्ड में संचालन विशेषज्ञ के लिए रोक-थाम करने की जगह होती है। इसकी बनावट की मुख्य विशेषता यह है कि केवल 27 फीट व्यास के घुमाव पर डिब्बा समकोण तक घूम जाता है जिससे सिंचाई और जल-विद्युत की अनेक योजनाओं की विभिन्न प्रकार की भारी मशीन और दूसरे सामान ठीक जगह पर उतारने में बड़ी सुविधा रहती है। ऊपरी ढाँचे का वजन बिलकुल कम करने के लिए उसकी पूरी जुड़ाई गर्म करके की गयी है। इस विशाल डिब्बे की बाहरी रोक तक की लम्बाई 90 फीट 5 इंच और मुख्य अड्डों के बीच की दूरी 56 फीट 7 इंच है। भारतीय रेलों के चतुर इंजीनियरों के साहस और साधनों से तैयार किये गये इस प्रकार के गड्ढेदार डिब्बे, दामोदर घाटी, भाखड़ा-नंगल, हीराकुण्ड बाँध आदि राष्ट्रीय महत्व की योजनाओं की बड़ी-बड़ी वजनदार मशीनों को पहुँचाकर उन्हें शीघ्र पूरा करने में बड़े उपयोगी सिद्ध हो रहे हैं।

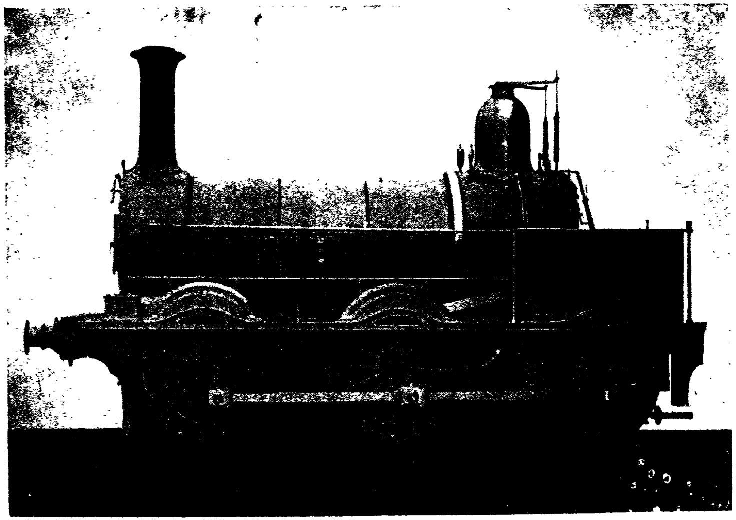
हाल में, प्रयोग के रूप में बनाये गये चार पहियों के खुले और ढके हुए अलमुनियम के डिब्बों के खोल (टेयर) के वजन में और भी कमी आगयी है। पश्चिम, पूर्व, दक्षिण और मध्य रेलों पर इस प्रकार के डिब्बे 1951 में चालू हुए थे।



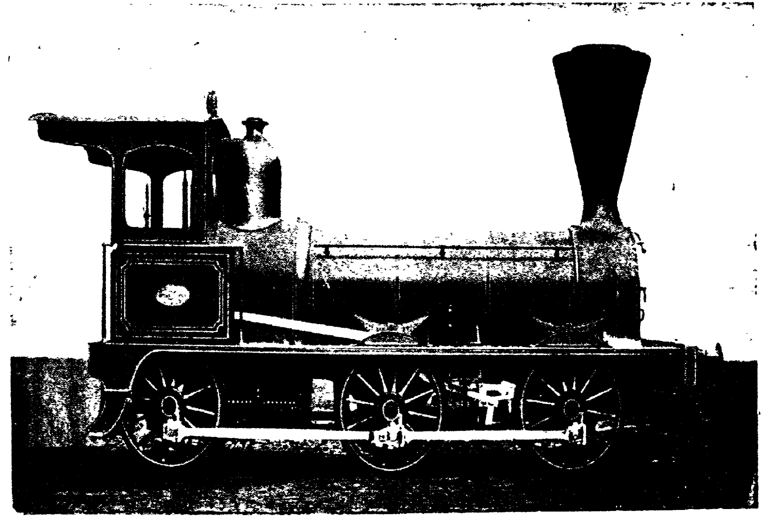
"वालकन फाउन्ड्री लिमिटेड" द्वारा निर्मित और भारत को भेजा गया पहला इंजन ।



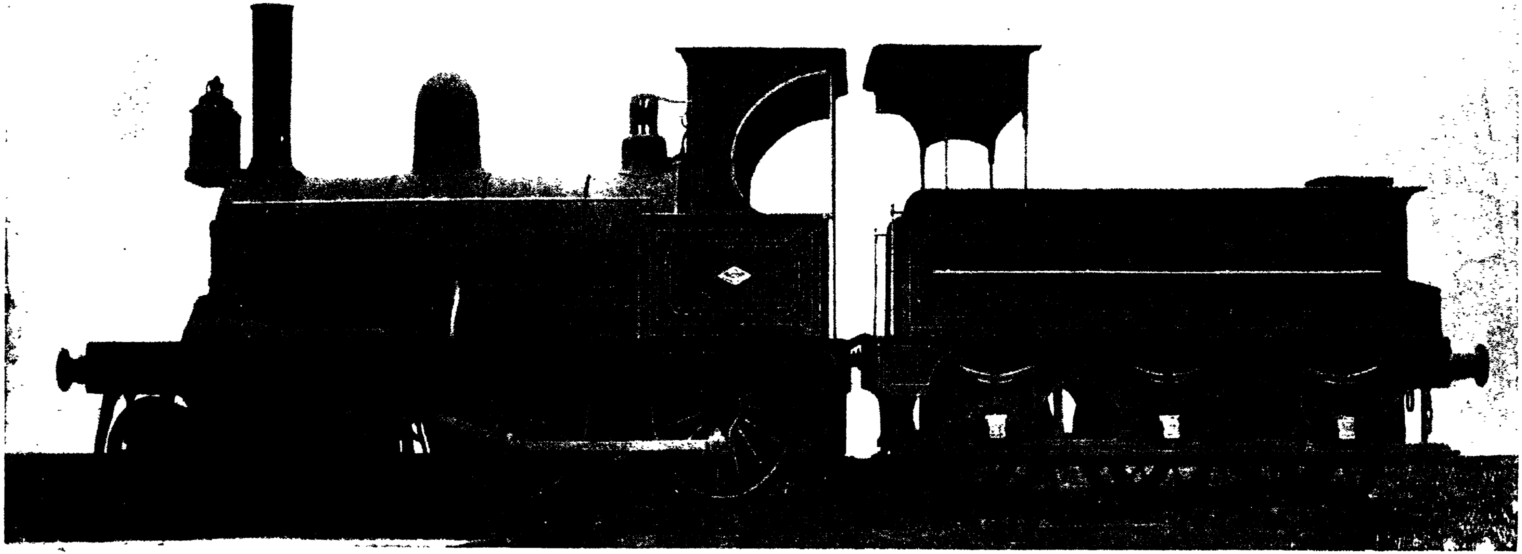
मौलिक बही-खाते का पृष्ठ जिसमें भारत भेजे गये पहले इंजन की लागत दिखायी गयी है ।



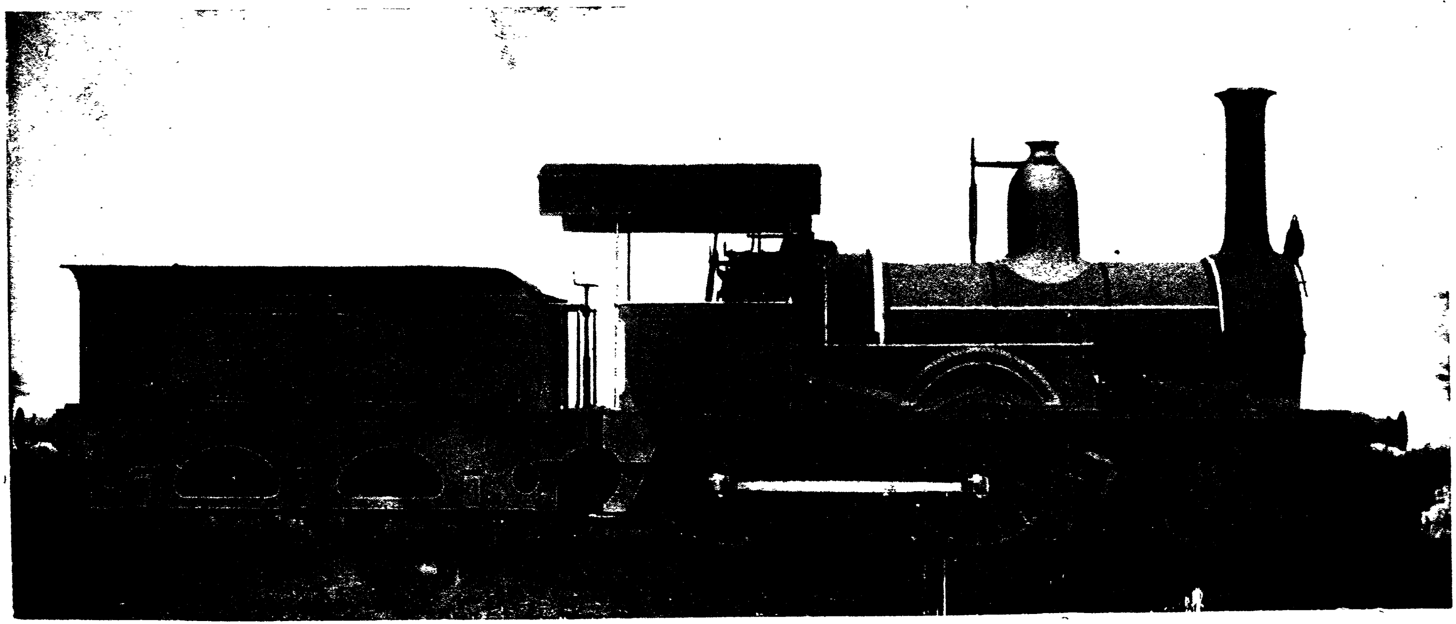
देश में मद्रास रेलवे ने सबसे पहले 0-6-0 क्लास के माल-इंजन का प्रयोग किया। चित्र में दिखलाया गया इंजन लगभग 90 साल पुराना है।



मद्रास रेलवे के बाद ओ० एण्ड आर० ने 0-6-0 व्हीलर इंजन का प्रयोग किया। चित्र में दिखाया गया इंजन 1869 में बन कर तैयार हुआ था और इसमें 40" × 20" का सिलेंडर और 48" के पहिये लगे हैं।



भारत में 1875 के लगभग सवारी गाड़ियों में ग्राम तौर पर 4-4-0 क्लास के इंजन का प्रयोग होने लगा। ऐसे कुछ इंजनों को नये ब्वायलर लगाकर ग्रौर फिर से फ़िट करके ग्राज भी भारतीय रेलवे के लाइट सेक्शनों पर काम में लाया जा रहा है।



1878 में ईस्टर्न बंगाल रेलवे ने 2-4-0 क्लास के टेंडरयुक्त इंजन का प्रयोग शुरू किया। चित्र में दिये गये ऐसे ही एक इंजन में 12″×22″ का सिलेंडर और 66″ व्यास के पहिये लगे हैं।

13. इंजन

इस विज्ञान-युग के यांत्रिक आविष्कारों में भाप के इंजन ने लोगों का, विशेषकर युवकों का ध्यान अपनी ओर जितना आकर्षित किया है उतना शायद किसी दूसरे आविष्कार ने नहीं किया। भापके इंजन को कभी- कभी 'लोहे का घोड़ा' भी कहते हैं। मोटर और हवाई जहाज के चल जाने पर भी भापके इंजन का जादू युवकों पर चढ़ा हुआ है। एक बड़े इंजन को, गुंजरित होनेवाली ताल के साथ धुआँ और भाप छोड़ते, भारी गाड़ी ले जाते देखकर, आज भी मन उछलने लगता है।

उन्नीसवीं सदी के आरम्भ में, इंगलैण्ड में जार्ज स्टीफेनसन का इंजन, ब्रेनड्रेथ का साइक्लोपीड, विलियम मान का इंजन, एडकाक की भाप गाड़ी, गिब की घसीटनेवाली भाप गाड़ी, गरनी की भाप-गाड़ी, आदि बहुत से आविष्कार हुए किन्तु इस विज्ञान युग के सर्व-स्वीकृत 'लोहे के घोड़े' का श्रेय जार्ज स्टीफेनसन के 'राकेट' को मिला। पीले, काले और सफेद रंगों से रंगे हुए इस सुन्दर 'राकेट' का सविस्तार वर्णन मिस फेनी केम्बिल ने किया है जिन्होंने १८३० में जार्ज स्टीफेनसन के साथ इस पर यात्रा की थी।

> वह लिखती है कि 'हम लोगों का उस छोटे इंजन से परिचय कराया गया जो हमें रेलों पर ले जाने के लिए तैयार खड़ा था। उसमें एक ब्वायलर, एक स्टोव, एक प्लेटफार्म, एक बेंच और बेंच के पीछे एक टब था, जिसमें उसकी 15 मील तक की प्यास रोकने के लिए काफी पानी रखा था। इसकी पूरी मशीन साधारण आग के इंजन के बराबर थी। वह दो पहियों के पैरों से चलता है और चमकीले इस्पात के पिस्टनों की टांगों पर आगे बढ़ता है जो भाप से चलाए जाते हैं। इन पिस्टनों के ऊपरी भाग पर, जिन्हें मेरी समझ में कमर के पुट्ठे कहना चाहिए, जितनी अधिक भाप छोड़ी जाती है उतनी ही तेजी से पहिए घूमते हैं। चाल को कम करने के लिए भाप, जिसके बढ़ने से ब्वायलर फट जाता है, एक छेद द्वारा हवा में उड़ा दी जाती है। इस आश्चर्यजनक पशु की लगाम इस्पात की एक छोटी सी मूंठ होती है, जो इसकी टांगों या पिस्टनों पर भाप डालती या रोकती है और जिसका संचालन एक छोटा बच्चा भी कर सकता है। कोयला, जो इसकी खुराक है, बेंच के नीचे रखा हुआ था और ब्वायलर के साथ पानी से भरी हुई शीशे की एक छोटी नली लगी थी जिसके खाली होने से पता लगता था कि इस पशु को पानी चाहिए, जो टंकियों से तुरन्त पहुँचा दिया जाता था। इसमें चिमनीदार चूल्हा था। कोयले को जलाने पर ऐसा काला और हानिकारक धुआँ नहीं निकला जैसा इंजन के चालू होने पर निकलता

> है। इस फुफकारते हुए पशु को, जिसकी पीठ ठोकने की मेरी इच्छा हुई, हमारी गाड़ी में जोत दिया गया और मिस्टर स्टीफेनसन के साथ इंजन की बेंच पर बैठकर हम करीब दस मील प्रति घण्टा की चाल से रवाना हुए।

स्टीफ़ेनसन के समय के हल्के इंजनों से लेकर अब तक उनमें काफी प्रगति हुई है। 'राकेट' आज के आग बुझानेवाले इंजन से अधिक भारी न था जब कि आज कुछ भापके इंजनों का कुल वज़न 850,000 पौण्ड से भी अधिक होता है। धुरी की संख्या भी बहुत बढ़ गयी है। 'राकेट' की दो धुरी की जगह पर आज के इंजनों में 14 या इससे भी अधिक धुरियाँ होती हैं। गाड़ी की चाल जिसपर स्टीफेनसन के जमाने में कड़ी रोक लगायी गयी थी, अब कुछ देशों में 100 मील प्रति घण्टा से भी अधिक हो गयी है। फिर भी, जिन सिद्धान्तों पर जार्ज स्टीफेनसन का 'राकेट' बना था, उन्हीं पर विभिन्न प्रकार के भाप के इंजन आज भी बन रहे हैं। मिस फ़ेनी केम्बिल के सरल शब्दों में यह 'लोहे का घोड़ा' आज भी गर्मी और पानी के सहारे रहता है, भाप के बल चलता है और संचालन की नलियों में भाप पहुँचाने के लिए उसी प्रकार के आवश्यक साधनों की माँग करता है।

जटिल यंत्र

यह सब सुनने में तो बड़ा आसान जान पड़ता है। परन्तु, वास्तव में, इंजन-विकास की प्रत्येक अवस्था में, संसार भर के रेल-इंजीनियरों को वर्षों तक काफ़ी खोज और कड़ी मेहनत करनी पड़ी। 1944 में, इंगलैण्ड के इन्स्टीट्यूट आफ लोकोमोटिव इंजीनियर्स में भाषण देते हुए, अध्यक्ष, मिस्टर एस. ग्राफ-बेकर ने कहा था :—

> 'हमारे सामने के भाप के इंजन की मशीन में कुछ प्राकृतिक अड़चनें और बाधाएँ हैं। इसकी शक्ति में पटरियों की भार-वहन क्षमता और कुशल संचालन में नापक्रम के बढ़ने-घटने की संकीर्ण सीमा अड़चन पहुँचाती है। सुधार होने पर भी, तेज और धीमी चाल में उचित यांत्रिक संतुलन बनाए रखने की कठिनाई के कारण इसका पटरियों और ढांचे पर बुरा असर पड़ता है। इस सम्बन्ध में यह जान लेना उचित है कि रेल-संचालन के लिए, इंजन के समान, पटरी और काँटों की व्यवस्था भी आवश्यक अंग है। इन कठिनाइयों के होते हुए भी भाप का इंजन निःसन्देह बड़ा शानदार यंत्र है, जिसने दूसरे यंत्रों की अपेक्षा सभ्यता के विकास में बड़ा भारी काम किया है।'

ब्रिटेन में 'राकेट' के नियमितरूप से चालू होने के दो साल के अन्दर ही, एटलाण्टिक पार के नये देशों में 'बेस्ट फ्रेंड आफ चार्ल्सटन्स' और 'ओल्ड आइरन साइड्स' जैसे विख्यात इंजन गाड़ियों को खींचने लगे। वर्षों तक इंगलैण्ड और अमेरिका के निर्माताओं ने अधिकतर इंजन बनाए। 1853 के पहले से ही, जब भारत में रेलों का चलना शुरू हुआ, दूसरे देशों में, विशेषकर जर्मनी में, लोगों ने इंजन बनाना शुरू कर दिया था। इस साल पहले भारत में जितने इंजन बाहर से मँगाये गए, प्रायः सभी ब्रिटेन से मँगाए गए थे। इसका कारण यह था कि भारत का इंगलैण्ड के साथ राजनैतिक सम्बन्ध था, सभी रेलवे कम्पनियाँ अंग्रेजों की थीं और उनके इंजीनियरों की ट्रेनिंग ब्रिटिश रेलों में होती थी।

"लार्ड फाकलैण्ड"

1853 में, बम्बई से थाना जानेवाली पहली रेलगाड़ी का 'लार्ड फ़ाकलैण्ड' नामक इंजन '2-4-0' श्रेणी का कहलाता है। इसे इंगलैण्ड में वलकन फ़ाउन्ड्री ने बनाया था। प्रथानुसार, भापके इंजन में दो खण्ड होते हैं, अर्थात् मुख्य इंजन या शक्ति संचालक खण्ड और कोयला-पानी का खण्ड। कुछ इंजनों में इन दोनों खण्डों को एक में मिला दिया गया है, अर्थात् मुख्य इंजन के खण्ड में ही कोयला-पानी की टंकी भी बनायी गयी है। अभी हाल में, 'मेलेट' और 'गेरेट' जैसे जुड़े हुए खण्डों के बड़े इंजन भी निकले हैं। इंजनों की किस्में बहुत कुछ उनके पहियों के हिसाब से तय की जाती हैं। इस प्रकार '2-4-0' की बनावट के इंजन में, सामने दो पहियोंवाली एक धुरी, बाद में आपस में जुड़ी हुई चार पहियों की दो धुरियाँ होती हैं। यह जुड़े हुए डण्डों (राड) द्वारा मुख्य सिलेण्डरों को संचालित करके चलाया जाता है। इनमें पीछे सामान ले जानेवाले खण्ड की धुरी नहीं होती। 2-4-2 किस्म का इंजन भी इसी प्रकार का होता है लेकिन इसमें पीछे की धुरी होती है। 2-2-2 इंजन में, आगे की धुरी, बीच की संचालन-धुरी और पीछे की धुरी होती है। आमतौर से आगे-पीछे के पहियों का व्यास बीच के जुड़े हुए पहियों के व्यास से बहुत कम होता है। आधुनिक इंजनों में बड़ी जटिल व्यवस्था होती है। जैसे, आजकल के जुड़े हुए 'मेलेट' इंजन में पहियों का प्रबन्ध '2-8-0 + 2-8-4' के हिसाब से रहता है और पीछे कोयला-पानी की गाड़ी भी होती है। 'ग्राण्ट' इंजन में कोयला-पानी का डिब्बा अलग से नहीं होता और यह '4-8-2 + 2-8-4' श्रेणी में आता है।

एक्सप्रेस

'2-2-2' बनावट का 'एक्सप्रेस' इंजन, जिसे ईस्ट इण्डियन रेलवे ने करीब सौ साल पहले मँगाया था, आज भी जमालपुर के रेल-कारखाने के बाहर बढ़िया रंगा हुआ सुरक्षित है, और देखने में बड़ा उपयोगी मालूम पड़ता है। उस समय से भारत की बड़ी लाइन, मीटर लाइन और छोटी लाइन के लिए सैकड़ों किस्म के इंजन मँगाये गये। इंजनों का वर्गीकरण प्रायः पहियों की श्रेणी और बनावट की किस्म दोनों हिसाब से होता है। जैसे 'पेसिफिक' बनावट का '4-6-2' पहियों का इंजन विभिन्न आकार और बनावट की कई श्रेणियों के काम आ सकता है, वैसे ही भारतीय रेलों के 1926 और 1930 के बीच के 'पेसिफिक' बनावट के बड़ी लाइन के इंजन "एक्स ए", "एक्स बी" और "एक्स सी" श्रेणी तथा मीटर लाइन के "वाई बी" और "वाई सी" श्रेणी के थे। इस दो अक्षर के वर्गीकरण से गेज और समूह की श्रेणी का तुरन्त पता लग जाता है। बड़ी लाइन के लिए "एक्स", मीटर लाइन के लिए "वाई", लाइट सवारी गाड़ियों के लिए "ए", औसत सवारी गाड़ियों के लिए "बी" और भारी सवारी गाड़ियों के लिए "सी" संकेत का प्रयोग किया गया। इस प्रकार "वाई सी" का मतलब मीटर गेज की भारी सवारी गाड़ी से था। सौ साल में, चालू होनेवाली विभिन्न श्रेणियों की संख्या इतनी बढ़ गयी कि अंग्रेजी वर्णमाला के सभी अक्षरों का संकेत-चिह्न के रूप में प्रयोग करना पड़ा। 1926 के पहले, प्रत्येक रेल समूह, वर्णमाला के एक अक्षर के पीछे संख्या लगा कर, अपना वर्गीकरण स्वयं करता था। जैसे, भूतपूर्व ग्रेट

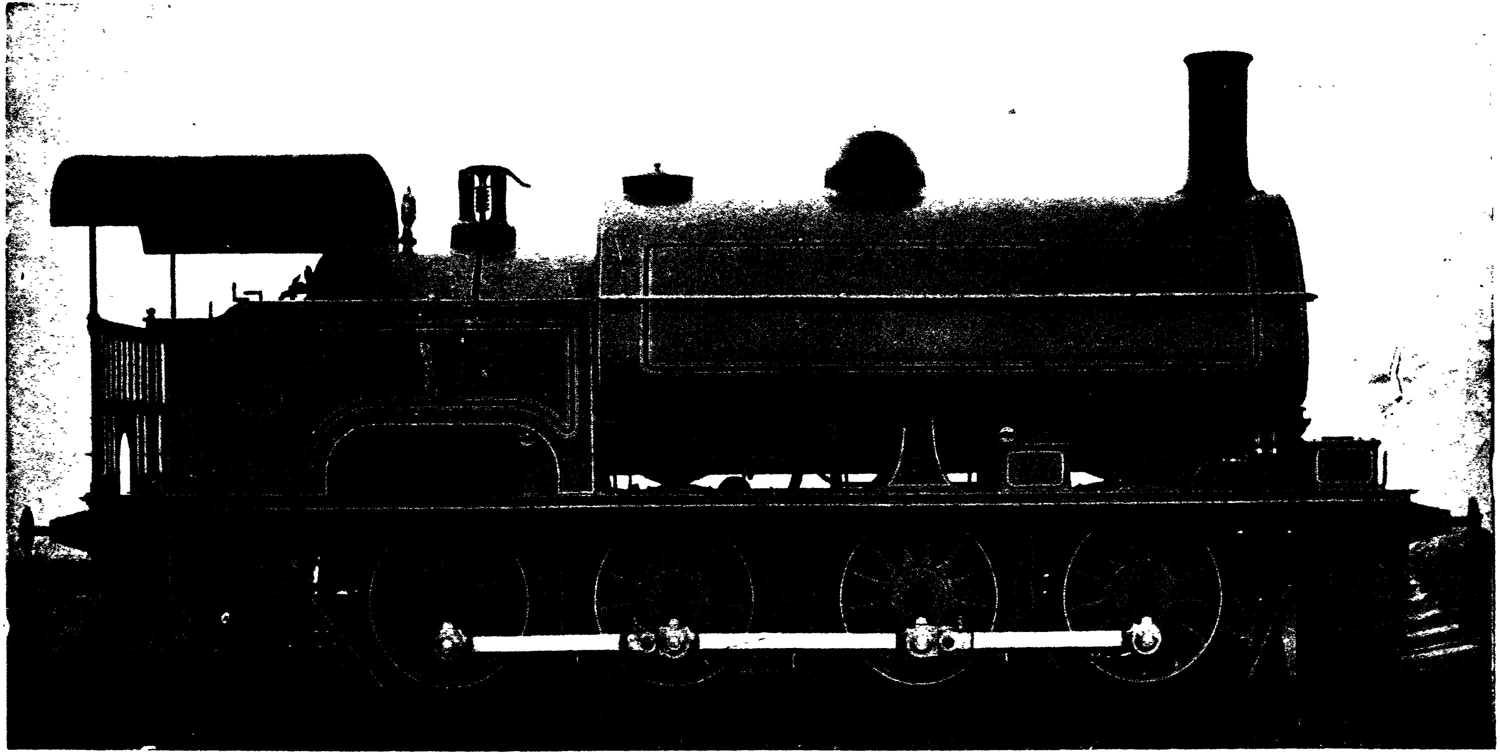
इण्डियन पेनिनसुला रेलवे के "के" श्रेणी के इंजनों में "के 1" से लेकर "के 8" तक के सिलसिलेवार समूह, कुछ संशोधनों के साथ, बनाये गये थे। 5 फीट 6 इंच की बड़ी लाइन, 3 फीट 3⅜ इंच की मीटर लाइन तथा 2 फीट 6 इंच की छोटी लाइन के "आई आर एस" किस्म के पहले इंजनों का वर्गीकरण "एक्स ए", "एक्स डी", "वाई बी" "वाई डी" "ज़ेड बी" और "ज़ेड ई" के संकेत अक्षरों से हुआ। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद, तर्कपूर्ण आधार बनाते समय, वर्गीकरण की सरल प्रणाली अपनायी गयी। "डब्ल्यू" "वाई" और "ज़ेड" अक्षर क्रमशः 5 फीट 6 इंच की बड़ी लाइन, 3 फीट 3⅜ इंच की मीटर लाइन और 2 फीट 6 इंच की छोटी लाइन तथा "पी" अक्षर सवारी गाड़ी के इंजनों और "जी" मालगाड़ी के इंजनों के लिए प्रयोग किया गया। इस प्रकार "डब्ल्यू पी" बड़ी लाइन की सवारी गाड़ी के इंजन का सर्वमान्य संकेत-चिह्न है।

श्रेणियाँ और नमूने

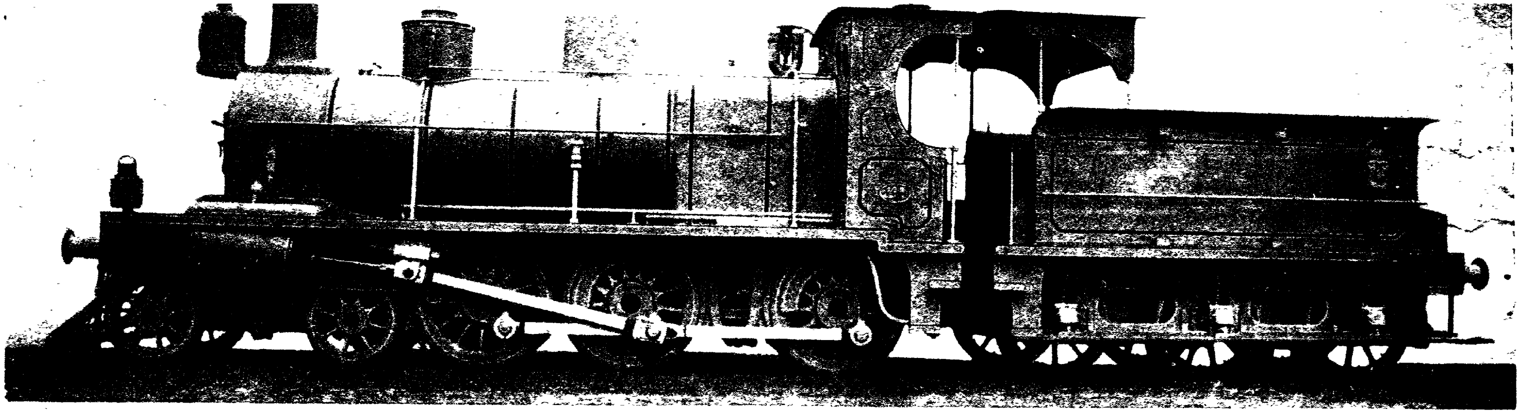
यह पूरी तरह समझ लेने के बाद कि भारतीय रेलों की सम्पूर्ण प्रणाली को अनेक कम्पनियों ने विभिन्न सलाहकार-इंजीनियरों की सहायता से, अपने अपने क्षेत्र की जरूरतों के हिसाब से कायम किया है, हमें विभिन्न प्रकार की अत्यधिक श्रेणियाँ देखकर कोई आश्चर्य नहीं होता। 1923 में, देश के अन्दर इंजनों की 500 से अधिक विभिन्न श्रेणियाँ थीं, जिनके पहियों के आकार, लगाने के प्रबन्ध तथा धुरी के बोझ में काफी अन्तर था। सर्व स्वीकृत और तर्कपूर्ण आधार पर लाने के लिए 1923 और 1930 के बीच की निश्चित नीति के कारण, इनकी संख्या 1952 में घट कर 377 हो गयी। दूसरे विश्वयुद्ध के बाद, लगातार प्रयत्नों के कारण ऐसी आशा है कि अगले पन्द्रह वर्षों में इनकी संख्या में और भी कमी हो जायेगी।

भारतीय इंजन की बनावट और आकार-सम्बन्धी प्रगति का पता लगाने के लिए, समय समय पर बाहर से मँगाये गये विभिन्न प्रकार के इंजनों का विवरण जानना जरूरी नहीं है। चाल में बढ़ती, कोयले की खपत में कमी, साधारण श्रेणी के ईंधन पर चल सकने की क्षमता, संतुलन की सफलता तथा चाल की स्थिरता, विशेष प्रकार के यातायात के विकास के साथ साथ संचालन की कुशलता आदि कुछ आधारभूत बातों को समझ लेना ही काफी होगा। इस दृष्टिकोण से, भारतीय इंजन का विकास धीरे धीरे यहाँ की स्थिति के अनुरूप हुआ है, और बहुत सी बातों में ब्रिटिश परम्परा का अनुसरण करने पर भी अब उसकी अपनी निजी छाप कायम हो गयी है।

अमेरिका और रूस जैसे देशों में जहाँ यातायात बहुत अधिक है और दो मुख्य केन्द्रों के बीच लम्बा फ़ासला तै करना पड़ता है, भारी से भारी सामान को तेजी से ले जाने के लिए बहुत अधिक अश्व-बल (हार्स पावर) के इंजन बनाये जाते हैं। योरुप के देशों में, जहाँ यातायात तो अधिक रहता है, परन्तु मुख्य स्थान प्रायः पास-पास होते हैं, तेज चलने वाले इंजन बनाये जाते हैं, जिनकी तेज चाल से हल्के बोझ बड़े आसानी से ढोये जाते हैं। योरुप के इंजन अमेरिका या रूस की तुलना में आमतौर से कम शक्तिशाली होते हैं। भारतीय यातायात, कुछ वर्षों तक, योरुप और अमेरिका के बीच की श्रेणी का रहेगा।



जी० ग्राई० पी० रेलवे में करजत ग्रौर लोनावला तथा कसारा ग्रौर इगतपुरी के बीच सम्बन्ध जोड़ने के लिए एक भारी घाट सेक्शन था, जिसके लिए 1879 में ही ग्रधिक शक्तिशाली इंजनों की जरूरत हुई। यहाँ एक डब्ल्य क्लास का इंजन दिखाया गया है। इसमें ग्राठ जोड़ी पहिये ग्रौर गद्दीदार टेंक होते थे। ऐसे कुछ इंजन दूसरे विश्वयुद्ध के बाद तक काम में ग्रा रहे थे।

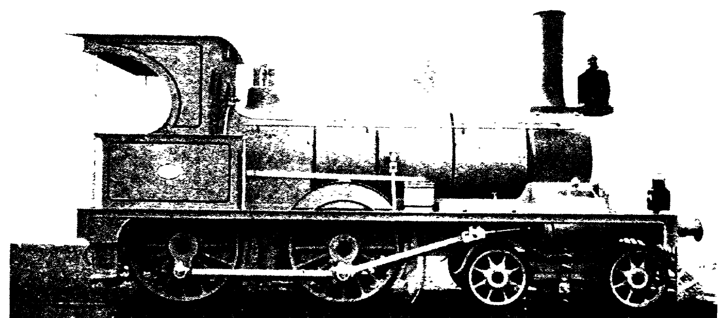


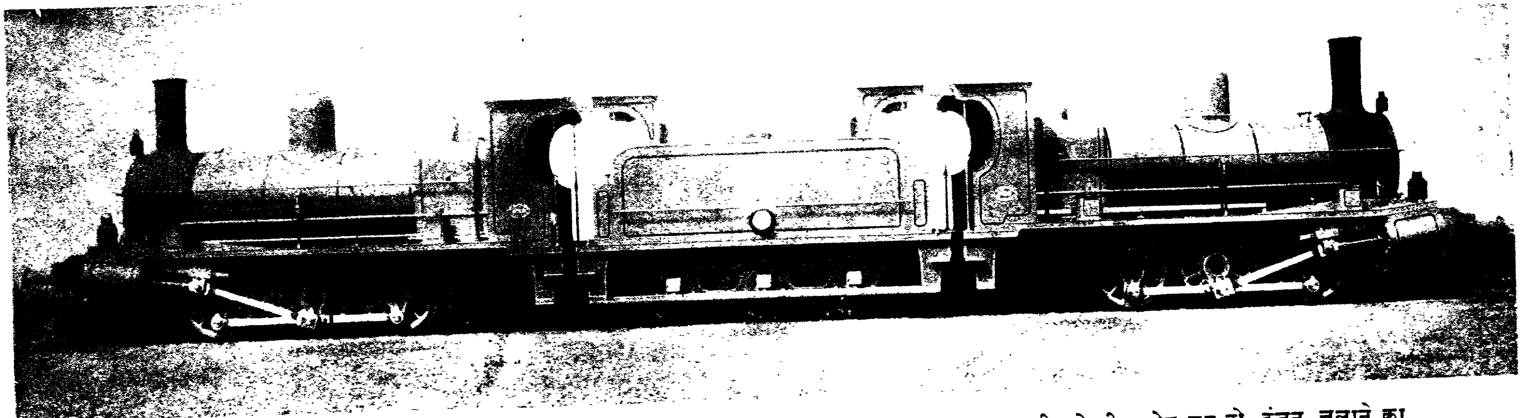
ऊपर—चित्र म दिया गया 4-6-0 इंजन भारत में पहले-पहल इस्तेमाल हुए इस तरह के पहिया-क्रम वाले इंजनों में से एक था। यह इंजन जिसमें $18'' \times 22''$ का सिलेंडर और $51''$ के पहिये लगे हैं, 1885 में प्रयोग में आया।

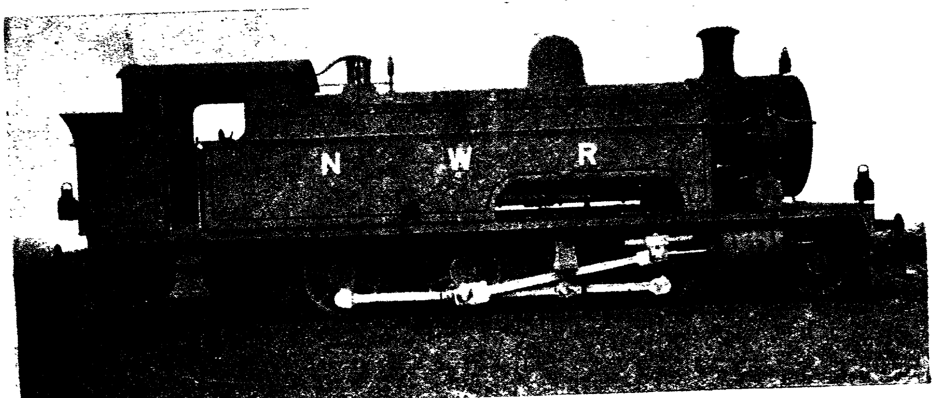
नीचे—1877 मे जो 4-4-0 व्हीलर इंजन चालू किया गया था, आगे चलकर उसका यह रूप हो गया। चित्र में दिखाया गया इंजन 1887 में काम में लाया गया।



ऊपर बताये गये 4-6-0 इंजन का दूसरा दृश्य।

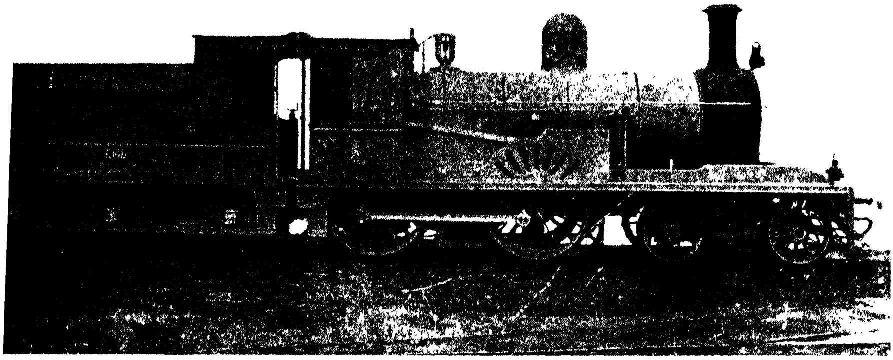




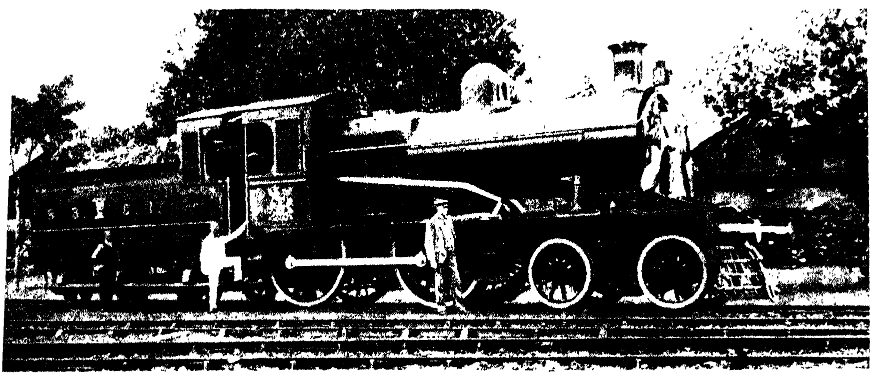


ऊपर--पीठ से पीठ जोड़ कर दो इंजन चलाने का यह तरीका बहुत ही रोचक था। इसका प्रयोग नॉर्थ वेस्टर्न रेलवे के भारी ग्रेड के सेक्शनों में किया गया।

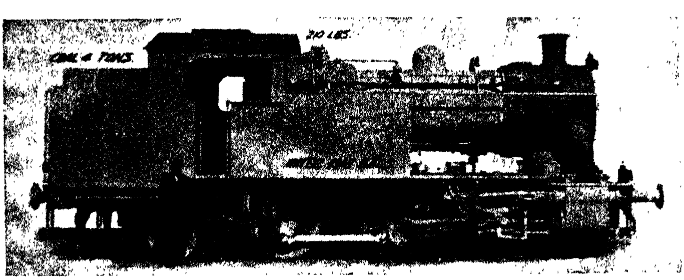
नीचे--नॉर्थ वेस्टर्न रेलवे में भारी शंटिंग के लिए 1896 से इस तरह के 2-8-2 टैंक इंजन काम में लाये गये।



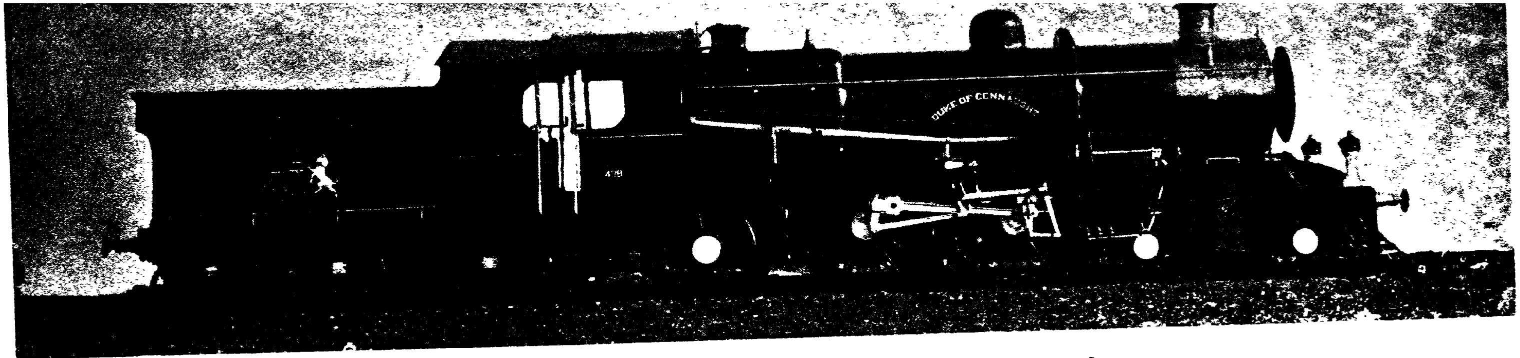
O क्लास का इंजन जो 1898 में चालू हुआ। यद्यपि आज भी इसमें भीतर के सिलेंडर लगते हैं, फिर भी यह पहले दिखाये गये 4-4-0 के इंजनों की अपेक्षा बढ़िया है और 1877-1887 का प्रतिनिधित्व करता है। चित्र में बंगाल नागपुर रेलवे का एक इंजन दिखाया गया है।



बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे का डी 4-4-0 क्लास का एक और इंजन। चित्र में दिखाया गया इंजन 1921 में प्रिंस आफ वेल्स के भारत-आगमन के अवसर पर चलाया गया था।



सवारी गाड़ियों में विशेष काम के लिए इस्तेमाल होने वाला—
डब्ल्यू डब्ल्यू क्लास का मानक लाइट शंटिंग इंजन।



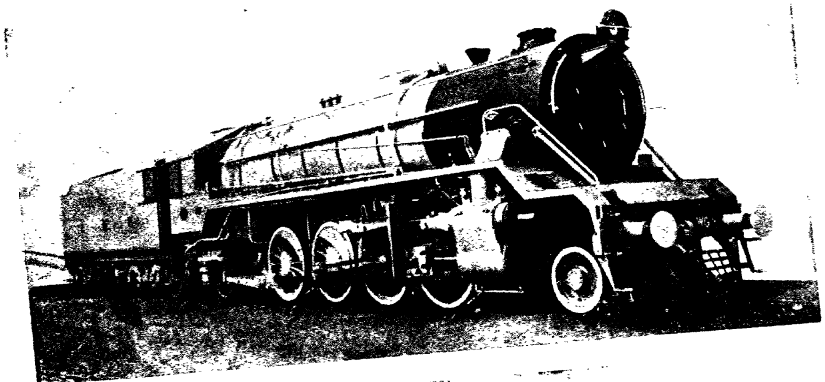
अटलाण्टिक किस्म का इंजन जो हमारे देश में इस तरह के पहिया-क्रम--वाले इंजनों में सबसे पुराना था।



भारत में आरम्भ मे इस्तेमाल किया गया जोड़दार (Articulated) किस्म का एक इंजन। बाद में बंगाल-नागपुर रेलवे ने उतार-चढ़ाव की जगहों पर खनिज यातायात के लिए अधिक भारी गैरेट इंजन चालू किये।

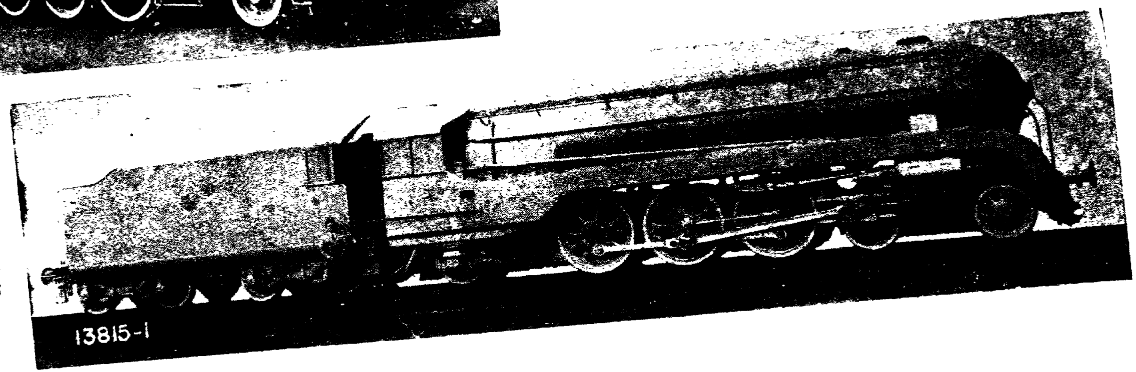
तेज रफ्तार के लिए डब्ल्यू॰ ... शटल गाड़ी का एक इंजन। ये इंजन 4 से लेकर 7 डिब्बों को 65 मील प्रति घंटा की रफ्तार से खींच सकते हैं।

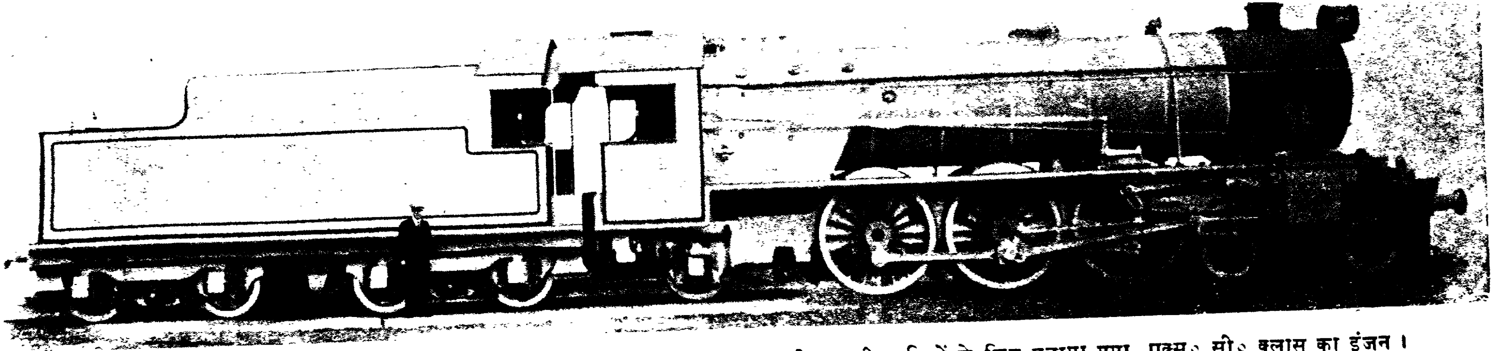




डब्ल्यू॰ जी॰ इंजन। दूसरे विश्व युद्ध के बाद बनाये गये इस नमूने के माल इंजन 1928 के मानक एक्स॰ डी॰ इंजनों की जगह चलने लगे। ये एक्स॰ डी॰ की अपेक्षा 15 प्रतिशत अधिक बोझ खींच सकते हैं, और इनमें ईंधन भी बहुत कम खर्च होता है। इसका और डब्ल्यू पी क्लास के मानक सवारी इंजन का ब्वायलर एक सा होता है।

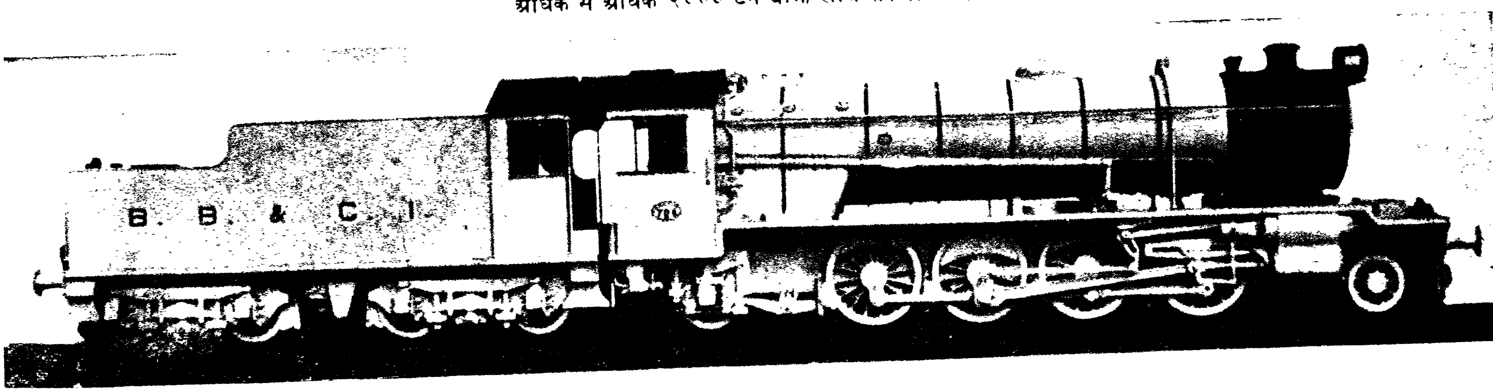
डब्ल्यू॰ पी॰ इंजन जो दूसरे विश्व-युद्ध के बाद की परिष्करण (Rationalization) योजना में तैयार किया गया मानक सवारी इंजन है। भारतीय रेलवे में यह इंजन अपनी चाल और शक्ति के लिए प्रसिद्ध है।

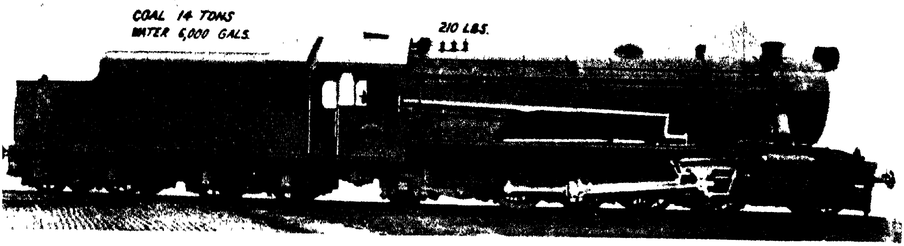




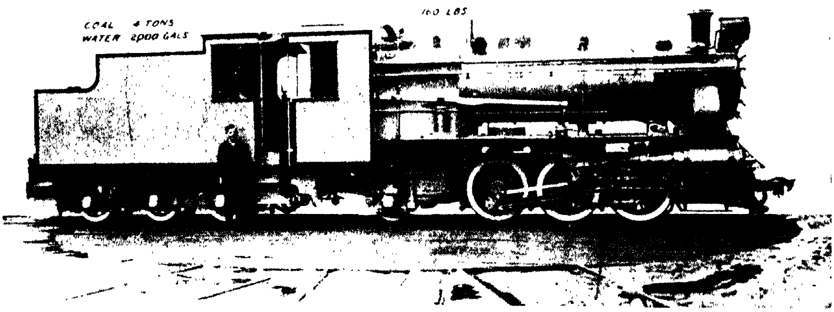
आई० आर० एस० इंजन स्टडर्डाइजशन की पहली योजना के अन्तगत 1928 म भारी सवारी गाड़ियों के लिए बनाया गया एक्स० सी० क्लास का इंजन।

1928 में बनाया गया एक्स० डी० मध्यम क्लास माल इंजन। आई० आर० एस० मानक के इस इंजन में अधिक से अधिक 17 टन का धुरा होता था और यह अधिक से अधिक २००० टन बोझ खींच सकता था।

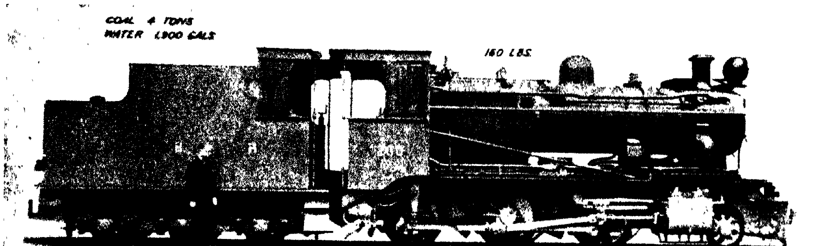




एक्स० ई० क्लास का सबसे भारी माल इंजन, जो प्रथम आई आर एस मानक के अनुसार 1928 में तैयार हुआ, खनिज पदार्थ ढोने के काम आता है। यह इंजन केवल $22\frac{1}{2}$ टन धुरी भार को संभाल सकने वाली लाइनों पर चलता है और साधारण चढ़ाई पर 2200 टन से अधिक बोझ खींच सकता है।



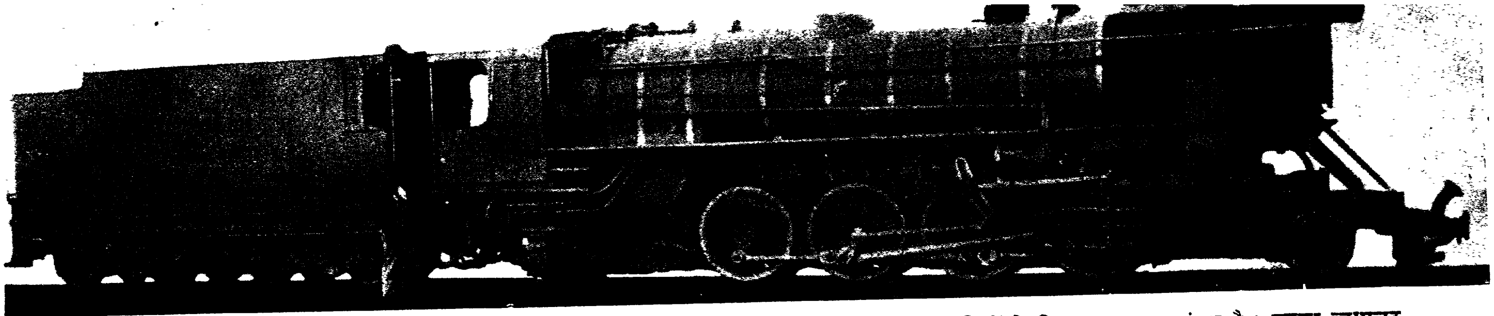
वाई० एफ० क्लास का मीटर लाइन का यह इंजन उन हल्की पटरियों के लिए बनाया गया है जो 8 टन के धुरे को सहन कर सकें। इसमें भट्ठी बड़ी होती है जो मामूली गर्मी पाकर ही काम देने लगती है।



$42\frac{1}{2}$ पौंड की पटरियों पर चलनेवाला वाई० के० क्लास का हल्का सवारी इंजन।



वाई० बी० क्लास का इंजन 22 साल से मीटर लाइन का स्टैंडर्ड सवारी इंजन रहा है। डायग्राम में दिखाये गये इंजन में "पपेट वाल्व गियर" और ए सी एफ आई टाइप का जल तापक लगा है।



वाई० जी० क्लास का इंजन । मीटर लाइन की 50 पौंड और उससे भारी सभी पटरियों पर माल गाड़ियों के लिए यह मानक इंजन है । इसका ब्वायलर बड़ा होने से अधिक शक्ति पैदा की जा सकती है, जिससे मालगाड़ियाँ तेज़ रफ्तार से खींची जा सकती हैं ।



वाई०पी० क्लास का इंजन । यह वाई०जी० क्लास के इंजन के नमूने पर बना है । इसमें भी वैसे ही ब्वायलर और टेंडर लगते हैं । यह इंजन मीटर लाइन की सवारी गाड़ियों के लिए दूसरे विश्वयुद्ध के बाद का मानक इंजन है और लगातार 60 मील प्रतिघंटा की रफ्तार से गाड़ी खींच सकता है । यह शक्तिशाली इंजन बहुत अच्छा चलता है और इसमें ईंधन भी कम खर्च होता है ।

इंजन और रेल-मार्ग के इंजीनियरों को, यातायात की जरूरतों को पूरा करने के साथ साथ रेल मार्ग के विकास के लिए मिल-जुलकर काम करना पड़ता है। इंजन की धुरी के ऊपर अधिक से अधिक बोझ की सीमा निर्धारित करदी जाती है। इस वजन की सीमा पटरियों और रास्ते की बनावट, पुल, ऊपरी पुलों आदि का बोझ संभालने की शक्ति के आधार पर निश्चित की जाती है। सिविल इंजीनियर द्वारा निश्चित किये गये धुरी के ऊपर के वजन और चलनेवाले आकार की सीमाओं के भीतर ही एक चतुर इंजीनियर इंजन में अधिक से अधिक शक्ति और खींचने की सुगमता पैदा करने की कोशिश करता है। वह इंजन के वजन को सब तरफ बाँट देने की कोशिश करता है जिससे मार्ग पर कम से कम दबाव पड़े। इंजन के कुछ पहिये, जैसा पहले बतलाया जा चुका है, सिर्फ बोझ सम्भालने के लिए बनाये जाते हैं। वे खींचने में कोई सहायता नहीं करते और न शक्ति-संचालक पहियों से, जो सिलेण्डरों से चलते हैं, सम्बन्धित रहते हैं। इन जुड़े हुए शक्ति संचालक-पहियों के नीचे का वजन "लसदार वजन" कहलाता है। पहियों और पटरियों के संघर्षण से इंजन की खींचने की शक्ति बँध जाने के कारण, धुरी के वजन की सीमानुसार इंजन इस प्रकार बनाये जाते हैं कि उस सीमा के अन्दर ही धुरी के नीचे अधिक से अधिक वजन पड़े। भारत में मामूली किस्म के कोयले का प्रयोग होने के कारण बड़े ब्वायलर का बनाना जरूरी है। इसी से अधिक बोझ संभालनेवाले पहियों का प्रयोग भी जरूरी हो जाता है। वे बड़े ब्वायलर के बढ़े हुए वजन को, धुरी के वजन की सीमा पार किये बिना, खींचने में सहायक होते हैं।

इंजन का वजन

अब यह देखना चाहिये कि आरम्भ से अब तक इंजन के वजन में किस प्रकार वृद्धि हुई है। उदाहरण के लिए, 'ओल्ड आइरन साइड्स' जो 1831 में अमेरिका के प्रारम्भिक इंजनों में था, का वजन साढ़े पाँच टन था। आज तो अमेरिका में चलनेवाले भाप के इंजन 853000 पौण्ड वजन तक के होते हैं। अमेरिका के कुछ बड़े इंजनों की बफ़रों तक की लम्बाई 100 फीट से अधिक होती है; जबकि भारत के प्रारम्भिक इंजनों की लम्बाई 20 फ़ीट होती थी।

सुधार

पुराने इंजन में, जिसके पिस्टन एक सीध में आगे-पीछे चलते हैं, पिछले सौ वर्षों में कई महत्वपूर्ण सुधार हुए हैं, जिनमें से कुछ तो संसार में सब कहीं लागू कर दिये गये हैं। कुछ सुधार खास खास देशों में वहाँ की जरूरतों के अनुसार लागू किये गये हैं। इंजनों में भाप को और अधिक तापमान तक गरम करने के लिए बड़े हीटरों का प्रयोग करने, कुछ इंजनों में इसी भाप को एक से अधिक सिलेण्डरों में ले जाकर उनके दबाव को बढ़ाने, अधिक दबाव के ब्वायलर लगाने, ब्वायलर में जाने से पहले पानी को गरम करने के उपकरण लगाने, बढ़िया किस्म के वाल्व गियर लगाने तथा दूसरे बहुत से सुधारों के बाद आज का भाप इंजन तैयार हो सका है। अच्छे और अधिक संचालन के नये तरीके चालू किये गये हैं। जैसे, अमेरिका में, जहाँ भाप के इंजनों का सबसे अधिक विकास हुआ है, अब भाप की जगह डीजल इंजन

चलाये जा रहे हैं। अधिक यातायात के क्षेत्रों में जहाँ इस परिवर्तन में अधिक लागत की संभावना है, बिजली के इंजन चलाये जा रहे हैं। इंजन को खींचने के लिए लसदार वजन पर भरोसा रखने के, वर्तमान मूल सिद्धान्त की भी अब अपेक्षा होने लगी है, यद्यपि इस दिशा में काम आनेवाले तरीके अभी केवल प्रयोग की अवस्था में हैं।

रेल ज़ेपलिन

1930-35 के बीच जर्मनी के रेल-मार्ग पर एक ऐसी मशीन दिखायी दी जिसमें लसदार वजन का सिद्धान्त लागू न था। इसे 'रेल ज़ेपलिन' कहते थे और यह सिरे पर लगे हुए हवाई जहाज की तरह के पंखे से चलती थी। यह प्रतिघंटा 140 मील से ज्यादा चल सकती थी। इसमें हवा के प्रवाह से बचने के लिए हवा के निकास की सुन्दर रेखायें थीं और इसमें, हवाई जहाज की तरह चाल की बेहिसाब तेज़ी के लिए व्यवस्था की गयी थी। रेल ज़ेपलिन को क्रूकेनवर्ग नामक जर्मन इंजीनियर ने बनाया था। हैनोवर के पास के रेल-मार्ग पर पहली दौड़ में इसकी चाल 144 मील प्रति घण्टा पहुँच गयी। लड़ाई के पहले पता चला कि ज्यूरिच के डा० वे सिजर नामक दूसरे जर्मन अध्यापक नये प्रकार की सुपर रेल जेपलिन बनाने में जुटे हुए हैं, जिसे वह 225 मील प्रति घण्टा की चाल से ले जाना चाहते हैं।

जहाँ तक चाल का सम्बन्ध है, आज-कल के तेज़ चलनेवाले भाप के इंजन एक घण्टे में 90 मील से अधिक चाल से जा सकते हैं। ब्रिटेन के 'मेलर्ड' नामक इंजन को प्रति घण्टा 125 मील से अधिक जाने का श्रेय प्राप्त है। पिछले बीस वर्षों के ब्रिटेन के कुछ इंजनों के नीचे दिये आश्चर्य-जनक कामों से पता चलता है कि आरम्भ से, जब भापके इंजन के आगे-आगे हरकारा लाल झण्डा लेकर दौड़ाया जाता था, अब तक उन्होंने कितनी प्रगति की है। ब्रिटेन के एल. एम. एस. कारोनेशन स्काट नामक इंजन ने, 29 जून 1937 को, 158 मील का फ़ासला 1 घण्टा 59 मिनट में पूरा किया और बीच में 114 मील प्रति घण्टा की चाल से चला। 1935 में 'सिलवर लिंक' ने प्रति घण्टा सौ मील का औसत कायम रखा। 1936 में 'प्रिंसेज एलीज़बेथ' ने आठ डिब्बों की गाड़ी को लेकर ग्लासगो से लन्दन तक 401.4 मील के फासले को 344½ मिनट में तै किया। चूँकि रास्ता पहाड़ी और साधारण था, इसलिए इतनी बड़ी दूरी इतनी जल्दी तै करने में उसकी आवश्चर्यजनक सफलता मानी जायगी।

भारतीय इंजनों की बनावट

भारत में इतनी तेज चाल लाने की कोशिश नहीं की जाती है और यहाँ के इंजनों की बनावट मुख्यतः ईंधन की किस्म और उसकी बचत के आधार पर निश्चित की जाती है। सबसे शुरू के इंजन, जो ब्रिटेन में बने थे, वहीं के कोयले से चलते थे। किन्तु 1900 के बाद से, जब बंगाल की खानों में कोयला निकलने लगा, रेल के लिए ब्रिटेन से कोयला आना बन्द हो गया। 1930 तक भारतीय रेलों में सबसे बढ़िया किस्म का देशी कोयला इस्तेमाल होता था। लेकिन कुछ ही समय पहले यह अनुभव किया गया कि सबसे बढ़िया किस्म का कोयला, जिसकी उपज बहुत ही सीमित है, धातु-शोधन के लिए सुरक्षित रखा जाय। यहां की रेलों में अब बिना गैस निकाला हुआ कोयला काम में आता है। इसमें न

जलनेवाला भाग 18 से 26 प्रतिशत और ताप जनक तत्व 11000 बी० टी० यू० से 12,600 बी० टी० यू० प्रति पौण्ड तक पाया जाता है। 14,000 बी० टी० यू० प्रति पौण्ड से अधिक तापजनक तत्व के विदेशी कोयले की जगह इस प्रकार के कोयले को काम में लाने के कारण कोयले की खपत बहुत बढ़ गयी है और देशी इंजनों की शक्ति और वजन के अनुपात में कमी आ गयी है। और इसीलिए भारतीय इंजनों की बनावट में बहुत कुछ परिवर्तन और सुधार की ज़रूरत जान पड़ती है। इससे लोगों का ध्यान शक्ति के चुनाव की ओर गया और भारतीय इंजीनियरों को देश के कई क्षेत्रों में, विशेषकर जो खानों से बहुत दूर हैं और जहाँ यातायात बहुत अधिक है, बिजली के प्रयोग से होनेवाली बचत की जांच-पड़ताल करनी पड़ी। जब कि अमेरिका में भाप के इंजन की जगह डीजल इंजन लेते जा रहे हैं, अभी तक भारत में, तेल की कमी के कारण, डीजल इंजन का प्रयोग बहुत कम है।

भारत में बाहर से आनेवाले सबसे पहले इंजन बनावट में बिलकुल सादे थे। उनमें प्रायः छोटे ब्वायलर लगते थे और भाप के बँटवारे के लिए स्टीफेनसन के 'लिंक मोशन' का प्रयोग होता था। वे उस समय की बिछी हुई हल्की पटरियों पर चलने के लिए इस तरह बनाये जाते थे कि धुरी पर बहुत कम वज़न पड़े। धुरी का यह वज़न, धीरे-धीरे बाद की बनावटों में, बढ़ते हुए यातायात के लिए बिछायी गयी वज़नी पटरियों के हिसाब से, बढ़ा दिया गया। शुरू के कुछ इंजनों में कोयला-पानी का डिब्बा अलग से लगा रहता था, किन्तु बहुत से इंजन टैंक के आकार के थे जिनमें कोयला-पानी की मात्रा सीमित होती थी। सिलेण्डरों का आकार भी अलग-अलग होता था। 'लार्ड फाकलैण्ड' नामक पहले इंजन के सिलेण्डरों का आकार 13″ × 20″ और ईस्ट इण्डियन रेलवे द्वारा 1361 में मंगाये गये विशेष प्रकार के इंजनों का आकार 15″ × 22″ था। उनमें जुड़े हुए पहिये थे। पहले के इंजनों के पहियों का व्यास 5 फीट और बाद में आनेवालों का 6 फीट था। कुछ इंजनों में तीन से अधिक धुरियाँ थीं। इनमें अधिकतर '2-4-0', '2-2-2' और '0-4-2' का प्रबन्ध रहता था।

संयोगिक विस्तार

प्रारम्भिक विकास के समय, संयोगिक विस्तार (कम्पाउण्ड एक्सपैन्शन) के प्रयोग ने इंजनों की बनावट और आकार को बहुत कुछ प्रभावित किया। अभी तक यह विश्वास था कि फ्रांस के इंजीनियर इसके अगुआ थे, लेकिन यह सत्य नहीं है। इसका स्पष्ट प्रमाण लेखों में मिलता है कि इंजनों पर संयोगिक विस्तार का प्रयोग सबसे पहले भारत में सत्तर साल से भी पहले किया गया था। 'दी ब्रिटिश स्टीम रेलवे लोकोमोटिव (1825 से 1925 तक)' नामक अपनी पुस्तक में, ई. एल. एहरोन्स ने लिखा है कि '1884 में, उस समय के नार्थ वेस्टर्न स्टेट रेलवे के लोकोमोटिव सुपरिन्टेन्डेन्ट, चार्ल्स सेण्डीफोर्ड ने सवारी और माल ढोने के 2-4-0 के एक इंजन को, अन्दर के 16″ × 24″ के सिलेण्डरों की जगह 17″ सिलेण्डरों को लगाकर और बाहर दो $11\frac{3}{4}$″ × 24″ के सिलेण्डर को जोड़कर, बदल दिया। चारों सिलेण्डर एक ही धुरी को चलाते थे और अन्दर तथा बाहर के संचालन करने-वाले डण्डे, एक ही तरफ, 180 डिग्री पर मुड़े हुए थे। इसी समय, सेण्डीफोर्ड ने एक दूसरे

इंजन को चलाने के लिए कम दबाव के सिलेण्डर पर एक टोंटी द्वारा ब्वायलर की भाप पहुँचाकर, दो सिलेण्डरों के संयोजन में बदल दिया। इन दोनों इंजनों के नक्शे इंगलैण्ड में दो सिलेण्डर के वर्सडेल प्रणाली के चालू होने के पहले, 1833 में बन गए थे।'

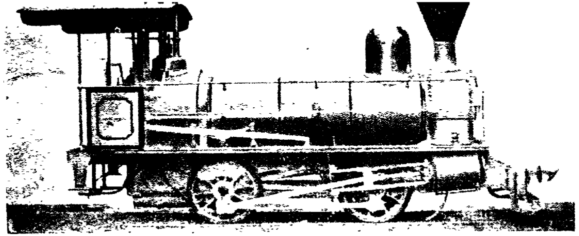
उन्नीसवीं सदी के अन्तिम भाग में इंजन बनानेवालों ने सिलेण्डर संयोजन-क्रिया का बड़े उत्साह से प्रयोग किया किन्तु इस सदी के आरम्भ में, इंजीनियरों ने स्पष्ट रूप से भाप-विस्तार के प्रचलित-सिद्धान्त को फिर से अपनाने की कोशिश शुरू कर दी और पहले विश्वयुद्ध तक कई दूसरी दिशाओं में भी बड़े महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए।

सरकारी रेलों के जिनमें उस समय उत्तर-पश्चिम और पूर्वी सीमाओं की थोड़ी सी रेलें थीं, इंजनों के सर्वमान्य आकार निश्चित करने के प्रारम्भिक प्रयत्नों में कोई विशेष प्रगति नहीं हुई, क्योंकि बहुत सी महाजनी रेलें अपने-अपने अनुभव के अनुसार इंजन के आकार के बारे में भिन्न-भिन्न राय रखती थीं। इंजनों के आकार को अधिक तर्कपूर्ण प्रणाली पर लाने, और लागत को घटाने के लिए सर्वमान्य आधार निश्चित करने और कल-पुरजों की संख्या घटाने की भरपूर कोशिश 1910 में की गयी, जब ब्रिटिश इंजीनियरिंग स्टेण्डर्ड्स एसोशियेशन ने मेसर्स रेण्डल पामर एण्ड ट्रिट्टन, जो उस समय सरकारी-प्रबन्ध की रेलों के सलाहकार इंजीनियर थे, की सलाह से भारत की बड़ी लाइन के लिए 4-6-0 और 2-8-0 बी. ई. एस. ए. और मीटर लाइन के लिए 4-6-0 बी. ई. एस. ए. श्रेणी के इंजन बनाए। यही श्रेणियाँ सभी रेलों पर अधिकतर चालू कर दी गयीं : इनकी मुख्य विशेषताएँ थीं कि इनमें स्टीफेनसन के लिंक-मोशन की जगह वालशेर्ट के वाल्वगियर लगाये गये, बाहर सिलेण्डरों को सर्वमान्य आकार पर बनाया गया और सरल विस्तार की क्रिया चालू की गयी। जुड़े हुए पहियों के नीचे के स्प्रिंग में, संतुलन सुधारने के लिये कुछ हेर-फेर किया गया। इन्हीं इंजनों ने भारतीय रेल-यातायात के मुख्य भार को पैंतीस साल से अधिक उठाया है। बहुत से अब भी चल रहे हैं और अच्छा काम करते हैं।

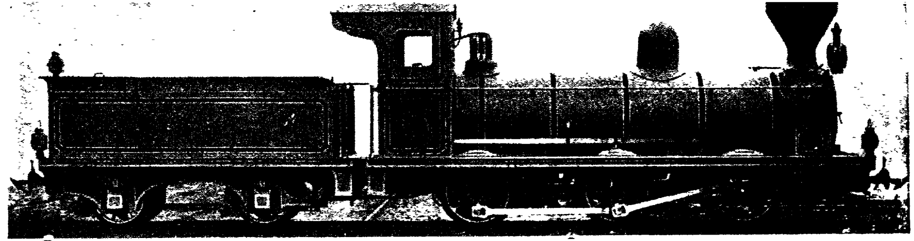
अधिक गर्मी पहुँचाना

अधिक गर्मी पहुँचाने की प्रणाली, जो जार्ज स्टीफेनसन के समय से इंजन-निर्माण की शायद सबसे महत्वपूर्ण प्रगति है, योरुप के कुछ देशों में पहले विश्वयुद्ध के समय और उसके भी पहले से चालू हुई। इस आविष्कार के प्रत्यक्ष लाभ को देखकर भारतीय रेल कारखानों में पुराने इंजनों को इस प्रणाली पर बदलने की बड़ी-बड़ी योजनाएँ चालू हो गयीं। 1922 तक बहुत से इंजन इस प्रणाली के अनुसार चलाये गये और भारत के इंजनों में अधितापित करने की क्रिया आमतौर से चालू हो गयी।

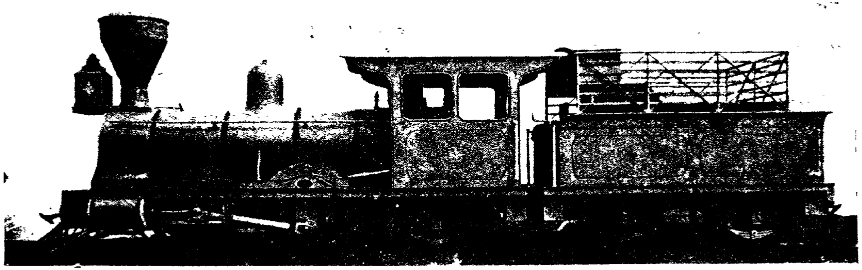
1920 के आसपास, इंजनों का तर्कपूर्ण तथा सर्वमान्य स्तर कायम करने के लिए, एक और कदम उठाया गया। 1910 की कार्यवाहियों से भारत के रेल इंजनों की किस्मों में कमी जरूर हो गयी थी, किन्तु बाद में, यह महत्वपूर्ण काम बिगड़ गया और कई रेलों ने बी. ई. एस. ए. की सर्वमान्य श्रेणियों में अपने छोटे-मोटे परिवर्तन और सुधार किये। 1922 तक स्थिति यहाँ तक पहुँच गयी कि पहियों के प्रबन्ध और वाल्वगियर के विवरण में समानता होते हुए भी 500 प्रकार के इंजन भारत में चलने लगे। सभी विशेषज्ञों की यही



इस किस्म का इंजन 1873 में चालू हुआ। गुमटी की असाधारण स्थिति ध्यान देने योग्य है।

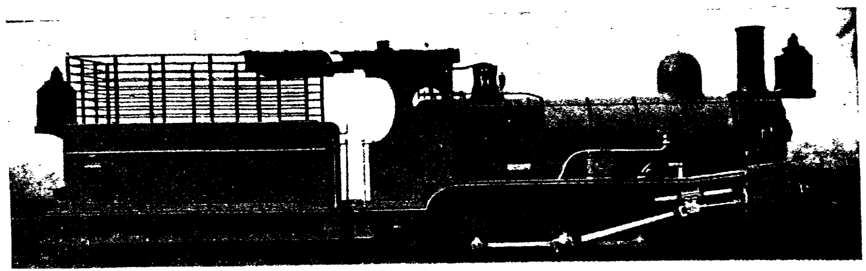


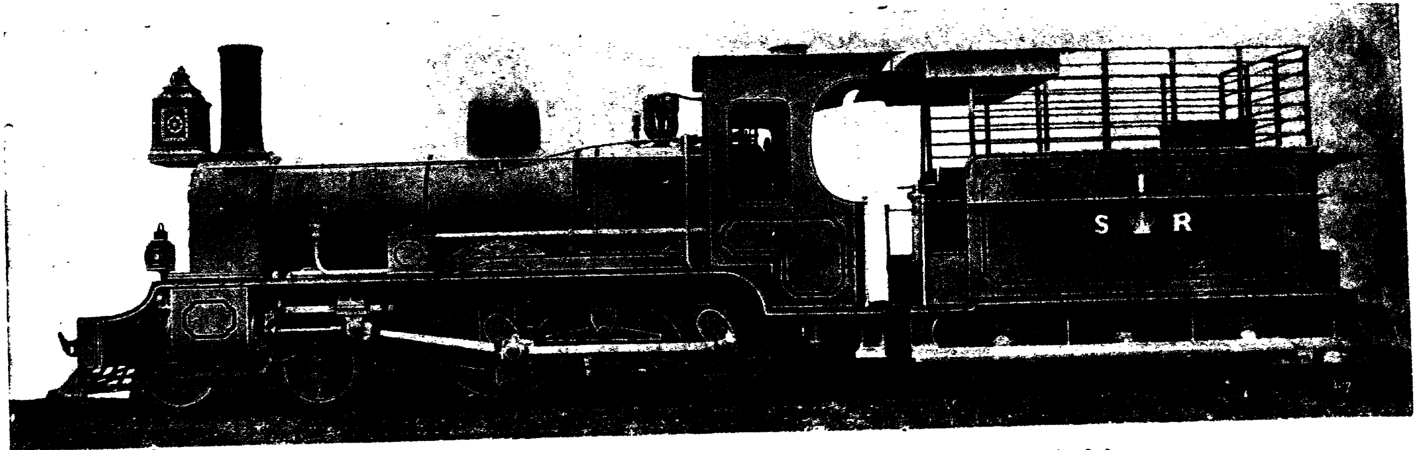
पुरानी किस्म का मीटर लाइन का एक इंजन जो 1873 में बनाया गया था। इसकी बनावट कुछ अच्छी है और बरसों तक यह मीटर लाइन पर चलता रहा है। इसी नमूने के अनेक इंजन आज भी काम में आ रहे हैं।



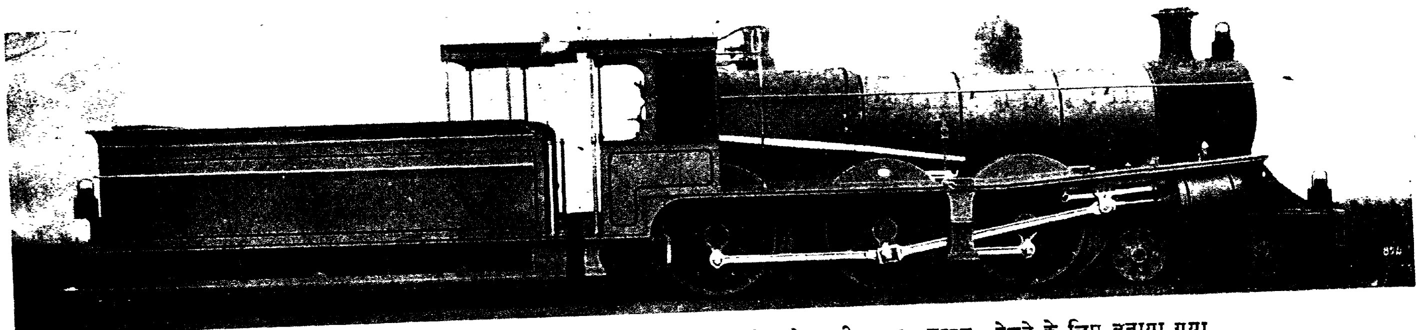
1880 में बने इस सवारी इंजन में लकड़ी का ईंधन जलाया जाता है और इसकी चिमनी पर एक चिनगारी-रोधक (Spark arrester) लगा होता है। जिस समय यह पहले-पहल चालू हुआ, उस समय सजावटी रंगों से युक्त यह इंजन सचमुच रेलवे का गौरव था।

1881 में चालू किया गया माल इंजन। टंडर की बनावट से पता चलता है कि यह इंजन भी लकड़ी के ईंधन से चलने के लिए बनाया गया था।

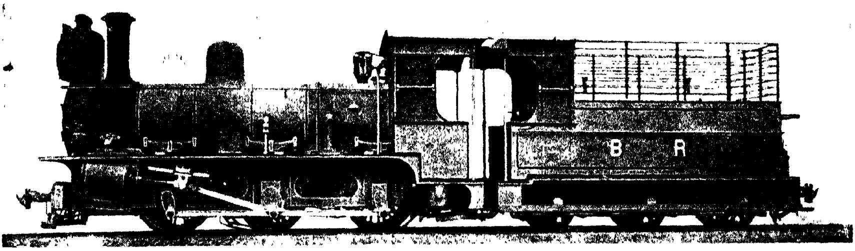




1882 में बनाये गये इस इंजन में सामने एक बोगी लगी है। यह इंजन 1880 की तेज़ सवारी गाड़ियों को खींचने के काम आता था।



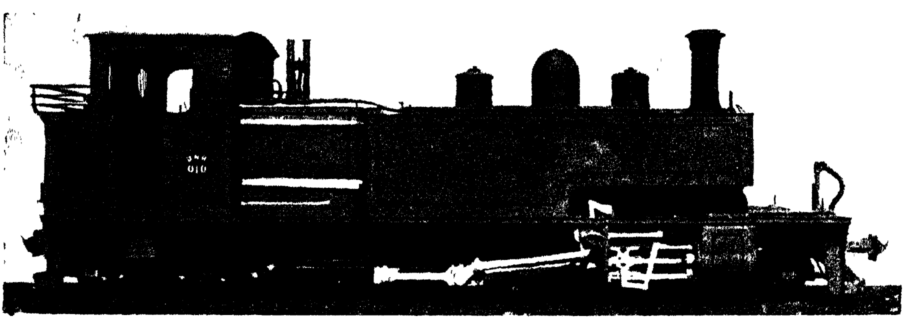
1901 में आकार की दृष्टि से अधिक आधुनिक ढंग के इंजन बनने लगे। बी० एन० डब्ल्यू० रेलवे के लिए बनाया गया 4-6-0 सवारी इंजन का एक नमूना यहाँ दिखाया गया है।



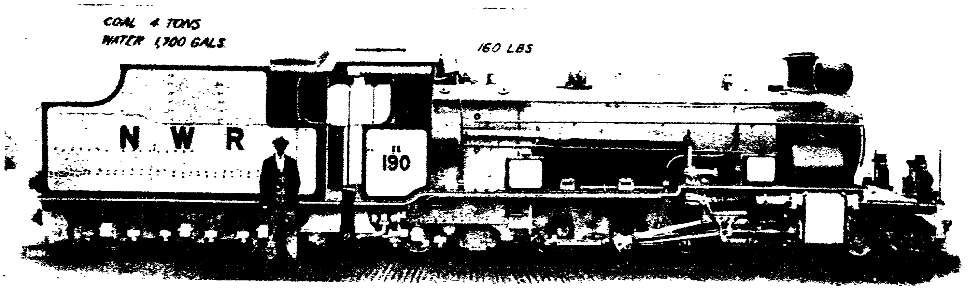
यह 0-6-0 इंजन 1902 में बनाया गया था। यह मिले जुले यातायात में काम आता है और इसमें स्टीवेंसन का लिंक मोशन और लकड़ी का ईंधन जलाने के लिए विशेष प्रकार का टेंडर लगा होता है। ऐसे कई इंजन आज भी मीटर लाइन पर चल रहे हैं।

0-4-0 टैंक इंजन। यह 70 वर्ष पहले 2'-0" गेज की दार्जिलिंग हिमालयन रेलवे पर चालू किया गया था।

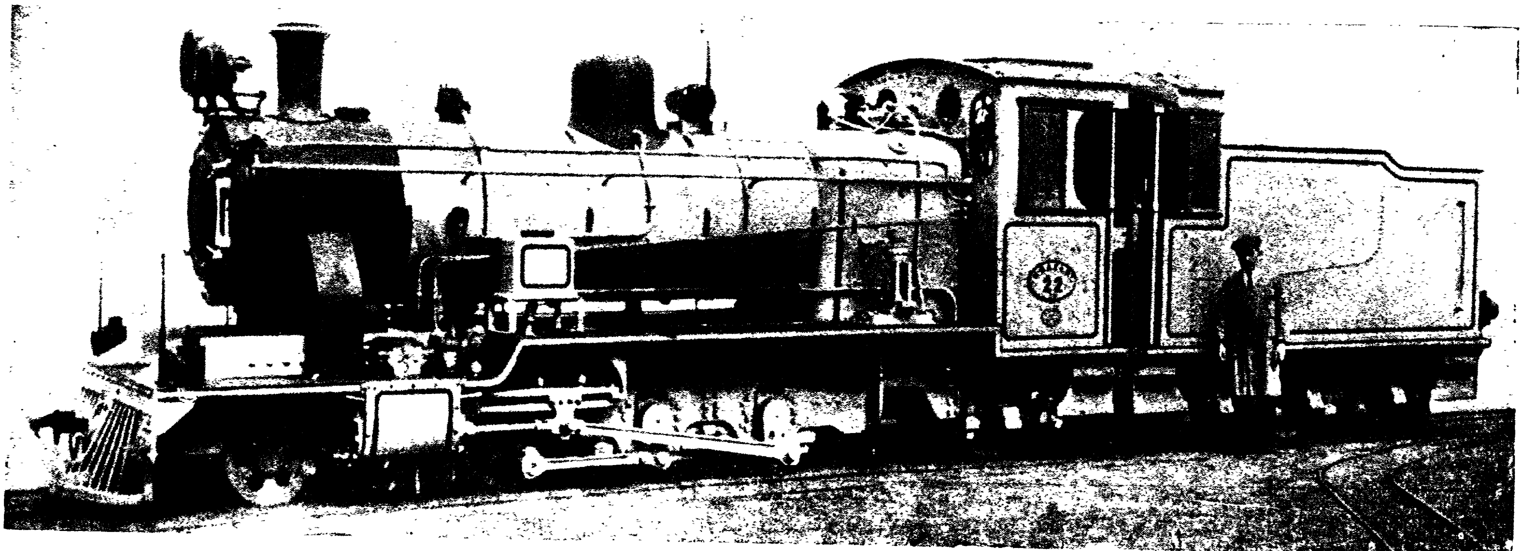




4-6-4 टैंक इंजन जो इस शताब्दी के शुरू में बी० एन० रेलवे में 2'-6" गेज की लाइन पर इस्तेमाल किया गया।



ज़ेड० ई० क्लास का इंजन जो 2'-6" गेज की माल-गाड़ियों के लिए बनाया गया। यह 22 साल तक इस गेज का स्टैंडर्ड इंजन रहा।



ज़ेड० बी० क्लास का यह इंजन 2'-6" गेज का स्टैंडर्ड सवारी इंजन है। यह इंजन इस गेज पर 20 साल तक खूब काम में आता रहा है।

राय थी कि उत्तम संचालन और काफी बचत करने में, सभी तरह की सवारी और हल्के-भारी सामान तथा शंटिंग के विशेष प्रकार के कामों के लिए अधिक तर्क युक्त और सर्वमान्य आकार निश्चित करना आवश्यक ही नहीं अनिवार्य भी हो गया है। 1925 तक ईस्ट इंडियन और जी. आई. पी. रेलवे सरकार के अधीन आ गयी। शासन के इस महत्वपूर्ण परिवर्तन से सर्वमान्य स्तर निश्चित करने में बड़ी सहायता मिली। यही समय भारतीय रेलों की सम्पन्नता और समृद्धि का था और इसमें रेलें नए विचारों को अपनाने के लिए उत्सुक थीं। इसी समय फ्रांस, जर्मनी और रूस जैसे देशों में विभिन्न दिशाओं में सर्वमान्य स्तर निश्चित करने का काम शुरू हुआ।

सर्वमान्य आधार की प्रणाली

रूस में, जहाँ सोवियट शासन के अधीन रेलों का राष्ट्रीयकरण हो चुका था, पहली पंच वर्षीय योजना के अन्तर्गत इंजनों का सर्वमान्य आकार निश्चित करना था। इस समय की दो मुख्य चालू किस्में, यात्री यातायात की जे. बी. (जोजेफ स्टेलिन) और माल यातायात की एफ. डी. (फेलिक्स जेरजिन्स्की) थीं। पहले में '2-8-4' की पहियों की प्रणाली, 3000 तक का अश्व-बल और अधिक से अधिक चाल 78 मील प्रति घण्टा थी। दूसरे में '2-10-2' की पहियों की प्रणाली, 3100 तक का अश्व-बल, 25 से 28 मील प्रति घण्टा की औसत चाल और 2500 टन की माल गाड़ियों को ले जाने की क्षमता थी।

फ्रांस में, यद्यपि 1938 में राष्ट्रीयकरण हुआ, इंजन का सर्वमान्य आकार बनाने की बहुत पहले से चेष्टा होने लगी थी। 1939 तक विभिन्न आकार और बनावट के इंजनों को पेरिस और लियन्स पेसीफिक्स के मूल सिद्धान्तों के अनुसार बनाया या बदल दिया गया। जर्मनी में भी इंजन, डिब्बा और रेलमार्ग के सर्वमान्य आधार निश्चित करने में अच्छी प्रगति हुई। जर्मन स्टेट रेलवे के चार सिलेण्डर के '4-8-4' के प्रमाणित इंजनों ने काफ़ी नाम कमाया। उनके चौखटों के बीच 'वालशेयर' वाल्वगियर के दो सेट लगे थे तथा बाहरी वाल्व झूलते हुए लीवरों से संचालित होते थे। जर्मन इंजीनियर पिसे हुए कोयले का भी प्रयोग कर रहे थे और दस प्रतिशत से कम की राख के कोयले में उन्हें बहुत कुछ सफलता मिली थी।

भारत में, जहाँ सर्वमान्य आधार का सदा पक्ष लिया गया और जहाँ 1910 से चालू किए गए बी. ई. एस. ए. आकार के इंजनों में महत्वपूर्ण प्रगति हुई, रेल-मार्ग, पुल और रेल के डिब्बों आदि में उपयुक्त विकास की सम्भावनाओं पर 1923 से विस्तृत विचार प्रारम्भ हुआ। चलनेवाले डिब्बों की अधिक से अधिक नाप, बड़ी और मीटर लाइन की मुख्य और शाखा लाइनों के लिए धुरी के अधिक से अधिक वज़न का सर्वमान्य आधार निश्चित कर दिया गया और अति आवश्यक काम में प्रयोग होनेवाले कुछ किस्म के इंजनों के आकार की रूप-रेखा बना दी गयी। यह इंजन पहले के कीमती कोयले की जगह मामूली कोयले से चलने के लिए बनाए गए। इसीलिए इनमें बड़ी जाली लगी जिससे इनका वज़न बढ़ गया। इसीलिए इन भारी किस्म के इंजनों में, या तो धुरी का वज़न अधिक रखा गया या धुरियों की संख्या बढ़ा दी गयी।

परीक्षण-कार्य

1931 में, भारत के रेल डिब्बों की प्रतिरोध शक्ति और इंजनों की श्रेणी और गति के मूल आँकड़े इकट्ठा करने के लिए बड़ी लाइन की एक डाइनामो मीटर गाड़ी चलायी गयी। कुछ साल बाद, सवारी गाड़ियों की चढ़ने की विशेषताओं और रेल-मार्ग के दबाव का अध्ययन करने के लिए एक आसिलोग्राफ गाड़ी चालू की गयी। इस खोज के फलस्वरूप बहुत से महत्वपूर्ण आँकड़े इकट्ठे हुए और बाद के बने हुए इंजनों में नयी-नयी बातें शामिल की गयीं जो भारत के लिए बहुत उपयोगी साबित हुईं। इस खोज के परिणाम के आधार पर बने हुए सबसे नये किस्म के इंजनों के चलने में बड़ी स्थिरता आ गयी है और साधारण किस्म का कोयला किफ़ायत से खर्च होता है। दुर्भाग्यवश, 1931 से मन्दी का काफ़ी लम्बा समय आ गया और भारतीय रेलों को नये इंजनों के खरीदने में कमी करने की जरूरत पड़ी और चालू श्रेणियों के अत्यधिक प्रयोग पर ध्यान देना पड़ा। यह नीति दूसरे विश्व युद्ध के छिड़ने तक बड़ी सफल रही। लड़ाई के बाद यातायात की अचानक वृद्धि के कारण, देश में उचित प्रकार के इंजनों की कमी हो गयी।

दूसरे विश्वयुद्ध के अन्तिम दिनों में हालत बहुत खराब हो गयी, किन्तु अमेरिका और कनाडा से, पुरानी भारतीय 'एक्स डी' और 'एक्स ई' श्रेणियों से मिलते-जुलते, 1000 से कुछ अधिक इंजनों के आ जाने पर दशा में कुछ सुधार हुआ। अमेरिका के इन इंजनों से भारतीय रेल प्रणाली में पहली बार बड़े पैमाने पर अमेरिका की विशेषताओं का समावेश हुआ। रेल-इंजन मानक समिति ने जो रेलवे बोर्ड को अपनाने योग्य बातों पर सलाह देती रहती है, इन विशेषताओं की सावधानी से छान-बीन की। इन नये इंजनों की बहुत सी बातें लड़ाई के बाद के सर्वमान्य आकार में शामिल कर ली गयीं और भारतीय इंजनों पर ब्रिटेन की छाप फीकी पड़ने लगी।

युद्ध के बाद विकास

लड़ाई के बाद के भारतीय इंजन यहाँ की स्थिति और देशी कोयले के अनुकूल बनाये गये और भारतीय रेल-मार्गों के लिए विशेष रूप से उपयुक्त हैं। इनके बनानेवालों ने जान-बूझ कर धुरी पर अधिक वजन का प्रयोग नहीं किया है ताकि रेल-मार्गों और पुलों को मजबूत करने में पैसे और इस्पात के खर्च में बचत हो। नयी श्रेणियों में धुरी का सबसे अधिक वजन 18½ टन तक सीमित कर दिया गया है और इंजन को भलीभाँति चलाने का विशेष ध्यान रखा गया है, तथा नयी बनावट में. इंजन की चालीस वर्ष की जिन्दगी के लिए, शक्ति और चाल में काफी वृद्धि कर गयी है। वाल्वगियरों में वेलशेयर बनावट के होने पर भी, उसी हिसाब से सुधार कर दिये गये हैं। ब्वायलरों में, नीची श्रेणी के कोयले की अच्छी खपत के लिए जगह बढ़ा दी गयी है और अधितापित भाप का तापक्रम ऊँचा कर दिया गया है।

पहले के सर्वमान्य इंजन, डाइनामो मीटर की परीक्षा में, प्रति अश्व-बल-घण्टे में 19 से 20 पौण्ड की भाप खपाते हुए पाये गये। नये किस्म के इंजन, अधिक अधितापित भाप के ऊँचे तापक्रम और बहुत अच्छे बँटवारे के कारण, प्रति अश्व-बल-घण्टा 16 से 17

पौण्ड की भाप खपाते हैं, और सब तरफ पूरी किफायत करने पर तो उनमें प्रति अश्व-बल-घण्टा 15.5 पौण्ड से भी कम भाप खर्च होती है। ब्वायलरों की कुशलता में भी, हर प्रकार के कोयले के लिए, पहले के इंजनों के मुकाबले, बहुत कुछ प्रगति हुई है। आजकल के कोयलों की अधिक राख के लिए ज्यादा बड़े पलड़े लगाये गये हैं। इतने सुधारों के बाद भी नये इंजनों की बनावट में भारतीय इंजनों की परम्परागत सादगी बनी हुई है और वे, कोयले की किफ़ायत के बजाय, कम खर्च और मजबूती के प्रमुख उद्देश्य पर बनाये गये हैं। अपने कार्य में जरूरत पड़ने पर अधिक भार को खींचने तथा तेज चलने की उनमें काफ़ी शक्ति मौजूद है।

नयी श्रेणियों की बनावट में सर्वमान्य आधार निश्चित करने की सफलता भी विशेष उल्लेखनीय है। मालगाड़ी और सवारी गाड़ी के इंजनों के ब्वायलर, कोयले के डिब्ब, धुरी के बक्से, स्प्रिंग, ब्वायलर पर लगे सामान, वाल्वगियर, आपस में बदले जा सकते हैं। बड़ी लाइन और मीटर लाइन के इंजनों की बनावट सामान्यरूप से एक ही तरह की है, जिससे उनके आरक्षण की प्रणाली भी सर्वमान्य आधार पर कायम की जा सकती है। ऐसी धारणा है कि बड़ी लाइन की नौ और मीटरलाइन की छः श्रेणियाँ सभी भारतीय रेलों में काम आ सकती हैं; इनसे कार्य के आधार पर विशेष प्रकार के संचालन में कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। इस प्रकार, यह आशा की जाती है कि पुरानी श्रेणियों की जगह इन श्रेणियों को अधिक चालू करने के साथ साथ भारत के इंजनों की विभिन्न श्रेणियों की कुल संख्या धीरे-धीरे पचास से भी कम हो जायेगी। इस संख्या की तुलना 1925 की 500 श्रेणियों और 1952 की 377 श्रेणियों से की जा सकती है।

भारत ने कुछ क्षेत्रों में दूसरी शक्ति को इस्तेमाल करने के तरीके भी अपनाये हैं। घाट के ऊपर, बम्बई से पूना और बम्बई से इगतपुरी तक बिजली के इंजन चलते हैं। इस क्षेत्र में अधिकतर बिजली जल से पैदा की जाती है। उनकी सहायता के लिए ताप-उत्पादन का एक स्टेशन स्थापित किया गया है। कुछ क्षेत्रों में, विशेष कर कोयले की खानों से दूर के इलाकों में, डीजल इंजनों से कुछ काम लिया जाता है। बहुमुखी योजनाओं की वृद्धि और तेल को शुद्ध करने के कारखानों के विकास के साथ भविष्य में, बिजली और डीजल से चलने वाले इंजनों के प्रयोग में वृद्धि की आशा की जाती है। किन्तु, भारत में, अभी वर्षों तक भाप के इंजन की ही प्रधानता रहेगी। पिछले तीन वर्षों में इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण प्रगति यह है कि भारत में अब सबसे नए किस्म के इंजन, चितरंजन के कारखाने और टाटा लोकोमोटिव एण्ड इंजीनियरिंग कम्पनी, जमशेदपुर में बनाए जाते हैं।

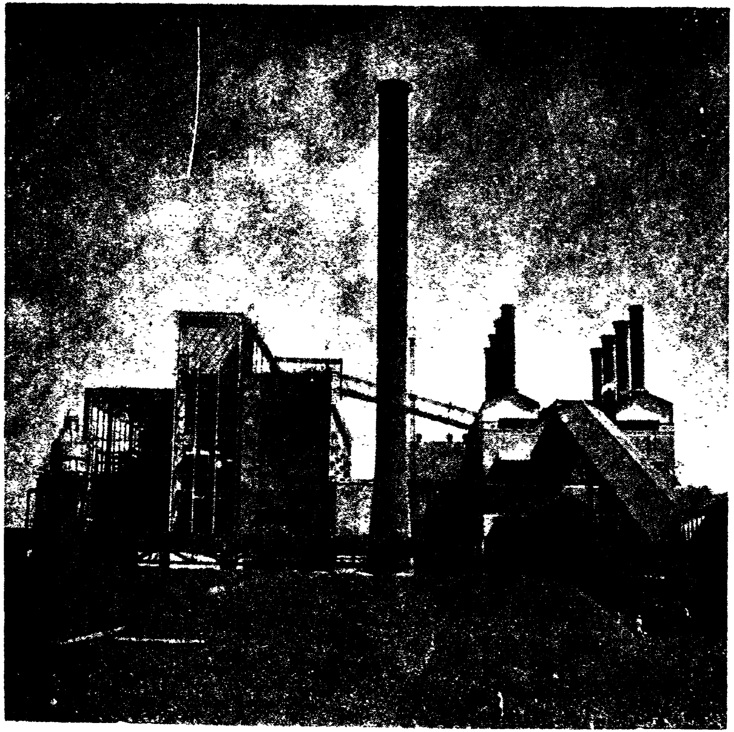
14 गाड़ी चालू रखना

आज जब हम रेलगाड़ी में सवारी करते हैं, तो हमें अठारहवीं सदी के अपने पूर्वजों के प्रिय घोड़े पर सवार होने के समान भय और चिन्ता नहीं होती। हमें केवल आराम की जगह पाने की चिन्ता और नियत समय के बाद गाड़ी के पहुँचने का डर रहता है। थोड़ी देर के लिए भी कोई यह नहीं सोचता कि रेलगाड़ी का यांत्रिक जाल बड़ा जटिल है। उसके नियत समय पर पहुँचना तेज चाल से हिफ़ाजत के साथ चलाने, इंजन, डिब्बों, रेल-मार्ग, सिगनल आदि हजारों कल-पुरजों को ठीक-ठीक और सावधानी के साथ बैठाने और ठीक से चलाने पर निर्भर है। किसी स्टेशन पर पहुँचकर यात्री जब अपने लिए साफ़ सुथरा डिब्बा और सुरक्षित स्थान पाता है, जब वह एक दर्जन या अधिक डिब्बों की पूरी गाड़ी के आगे दानवी इंजन को, भाप छोड़ते हुए, घुड़-दौड़ के विशाल घोड़े की तरह फुफकारते और हत्था खींचते ही 50, 60 या 70 मील प्रति घण्टा की चाल से दौड़ पड़ने के लिए आतुर होते देखता है, उस समय वह यात्रा के आनन्द और अनेक प्रकार के भू-खण्डों को देखने की कल्पना में डूब जाता है। वह यह नहीं सोचता कि उसकी यात्रा के इन अद्भुत साधनों को जुटाने में, उसके आने के पहले, कितनी दौड़-धूप, मेहनत और सावधानी बरती गयी है। उसको यह भान ही नहीं होता कि इंजन को सुधारने और ठीक रखने, डिब्बों की सफाई-रंगाई, खिड़कियों और शीशों को साफ सुथरा रखने, बैठक की गद्दियों में आरामदेह कमानियाँ लगाने, ब्रेक और उससे जुड़े हुए पहियों को दुरुस्त रखने और पहियों को ठीक-ठीक एक सीध में करने के लिए देश भर के दर्जनों कारखानों में हजारों आदमियों ने काम किया है।

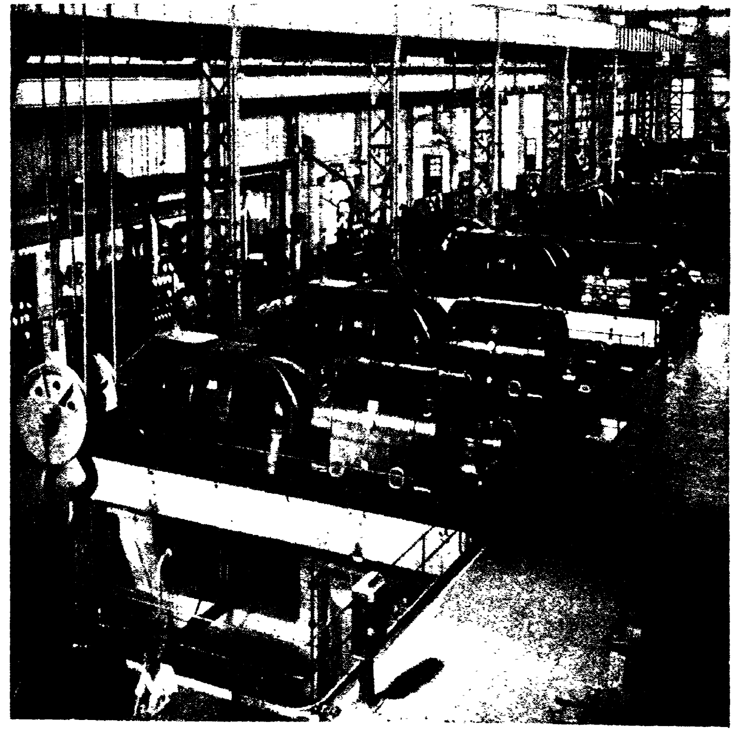
उनकी सुनिश्चित यात्रा के लिए हजारों आदमी उनकी सुख-सुविधा और रास्ते को ठीक बनाये रखने का काम करते हैं। चूंकि वे अनेक प्रकार की स्थितियों और ऋतुओं में प्रायः बाहर काम करते हैं। इसलिए हमें उनका ध्यान भले न हो; किन्तु रास्ते की देखभाल रखने वाली इसी पलटन ने भारतीय रेलों में सुरक्षित यात्रा का स्तर ऊँचा रखा है।

हजारों छोटे-छोटे स्टेशनों की चर्चा भी जरूरी है, जिनसे होकर तेज गाड़ियाँ धूल के बादल छोड़ती हुई निकल जाती हैं, किन्तु वहाँ भी गाड़ियों के आने-जाने और सिगनल, कैंची आदि का प्रबन्ध करने के लिए कर्मचारी रखे जाते हैं, जो गाड़ियों को ठीक समय पर और सुरक्षा से चलाने के लिए आवश्यक हैं।

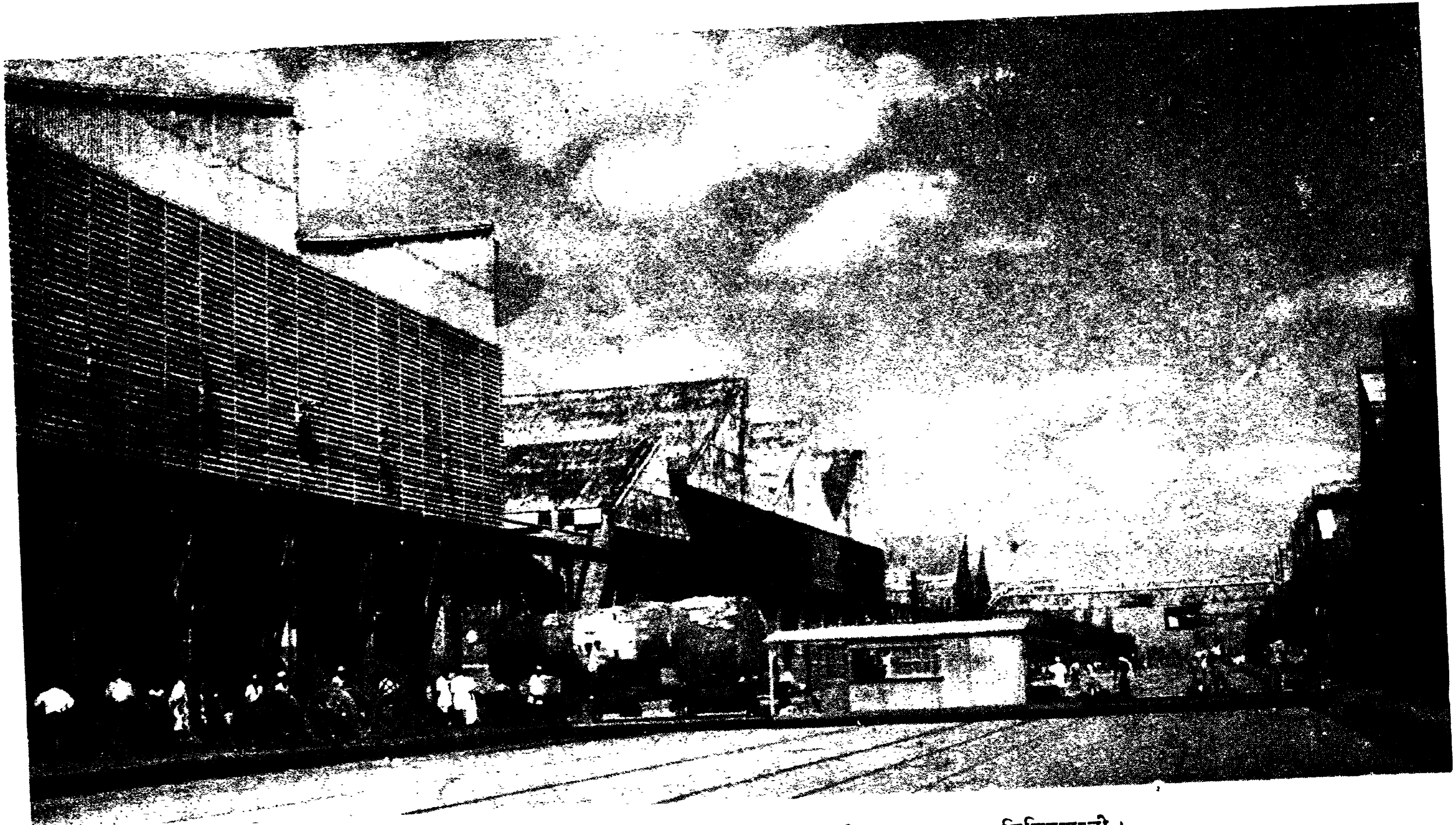
बड़े-बड़े स्टेशनों पर इंजन और डिब्बों की आवश्यक देखभाल करने के शेड बने हुए हैं। हर यात्रा के बाद, उनकी जाँच, सफ़ाई और जरूरी मरम्मत की जाती है, और उनमें कोयला-पानी, तेल और ग्रीज आदि भरा जाता है। माल के डिब्बों की अक्सर रास्ते में भी जांच की जाती है और जो खराबियाँ यातायात-यार्ड में नहीं सुधर सकतीं, उन्हें ठीक करने



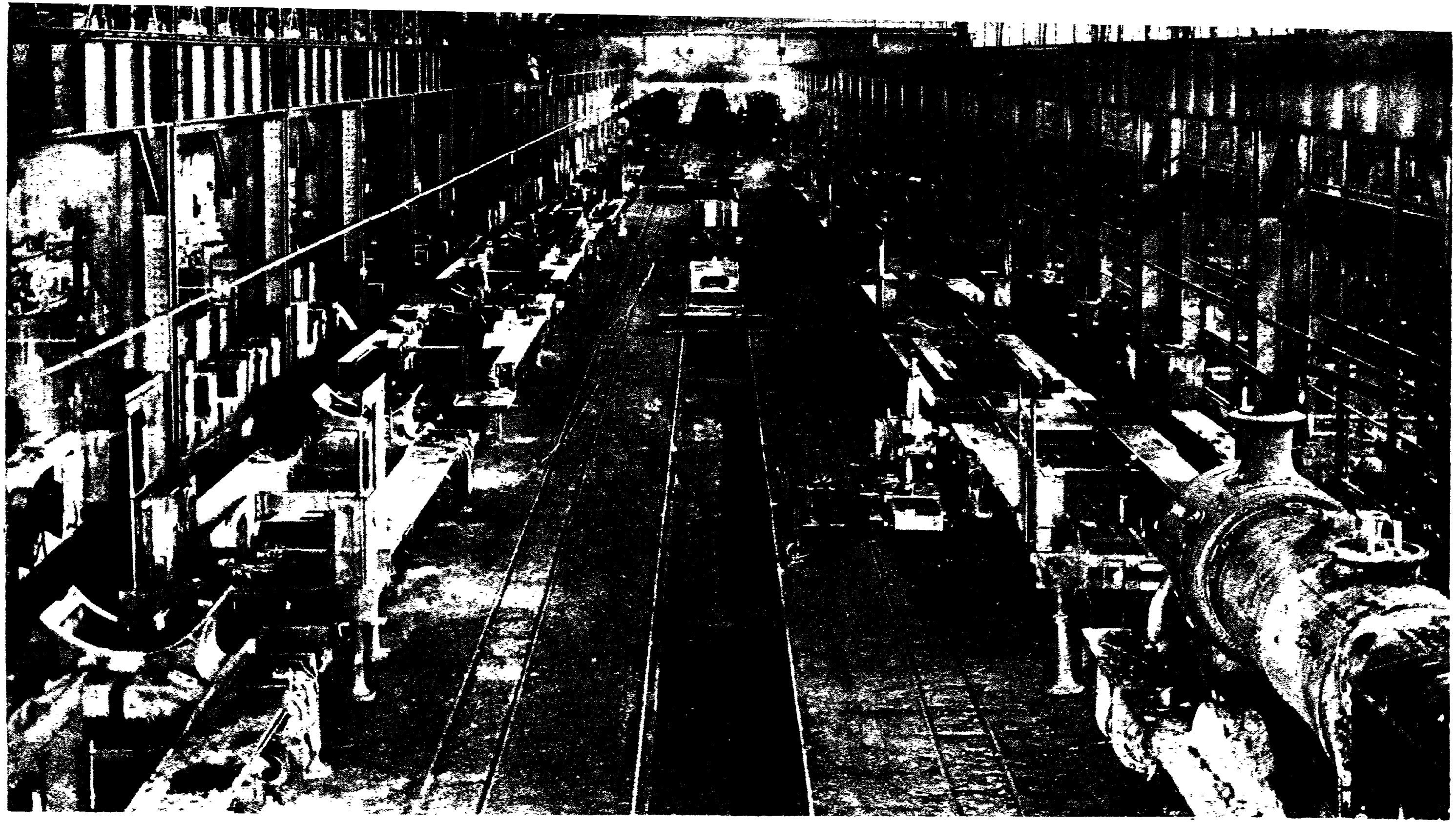
चोला पावर हाउस, कल्यान



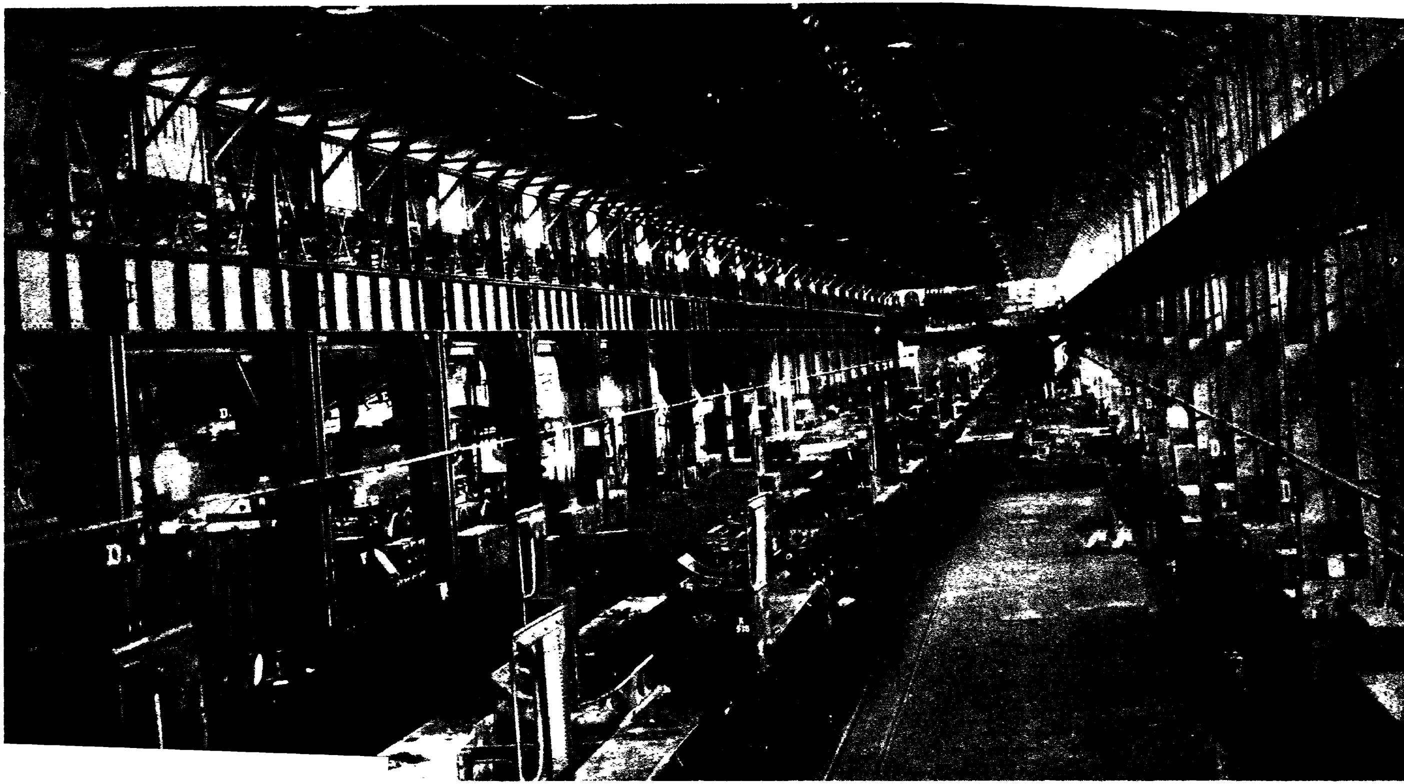
कल्यान के चोला पावर हाउस का भीतरी दृश्य।



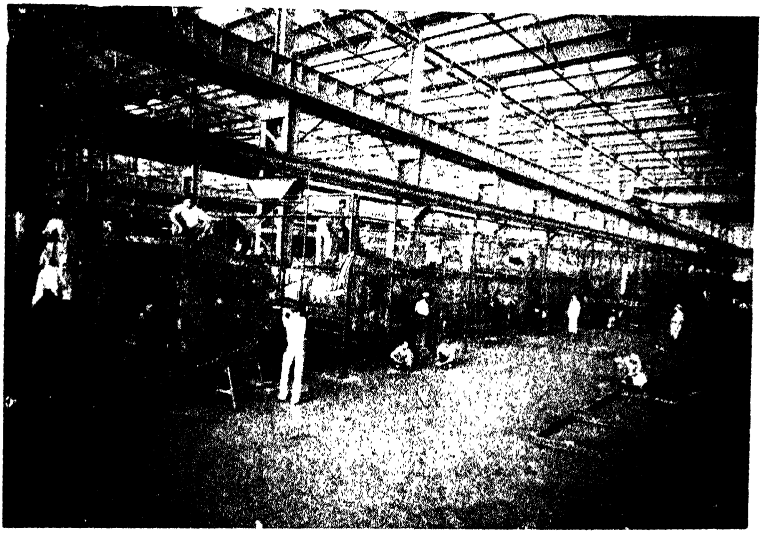
गोल्डन रॉक इंजन, सवारी ग्रौर माल डिब्बों की मरम्मत करने का कारखाना, त्रिचिनापल्ली ।



बेल्ट तरीके की मरम्मत से पहले खरगपुर में "इरेक्टिंग शॉप"।



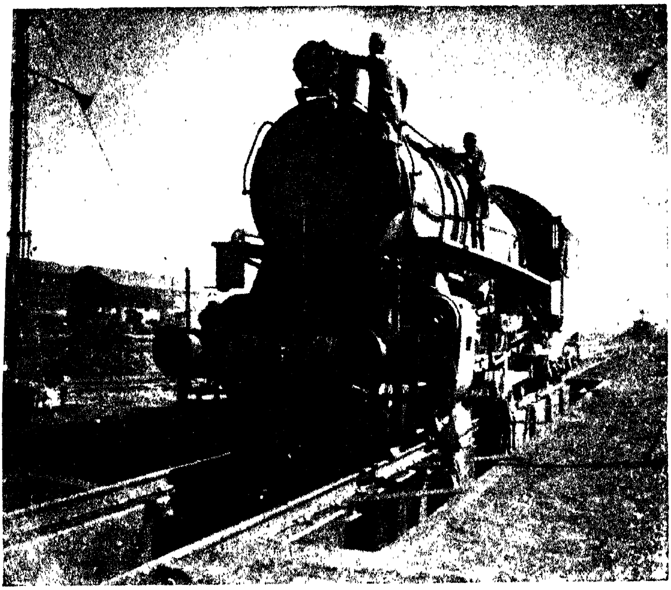
बेल्ट तरीके की मरम्मत के शुरू होने के बाद खरगपुर में "इरेक्टिंग शाप"



दोहाद में ब्वायलरों की मरम्मत करने का कारखाना (Bay)। इसके सामने के मैदान में एक "राक्स सी" ब्वायलर दिखायी पड़ रहा है।



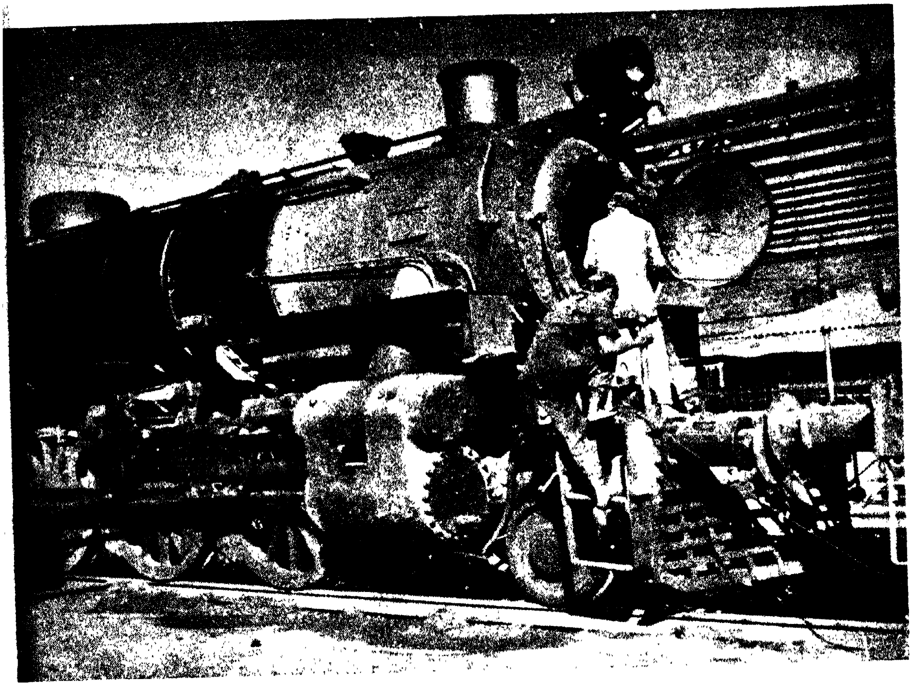
रनिंग शेड के सामने का दृश्य।



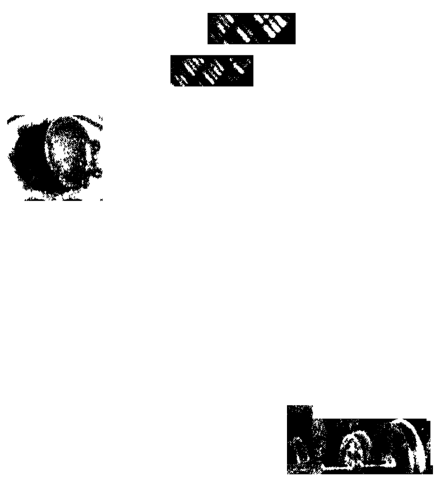
एक चक्कर के बाद इंजन वापस आते है और उनकी जाँच की जाती है ।



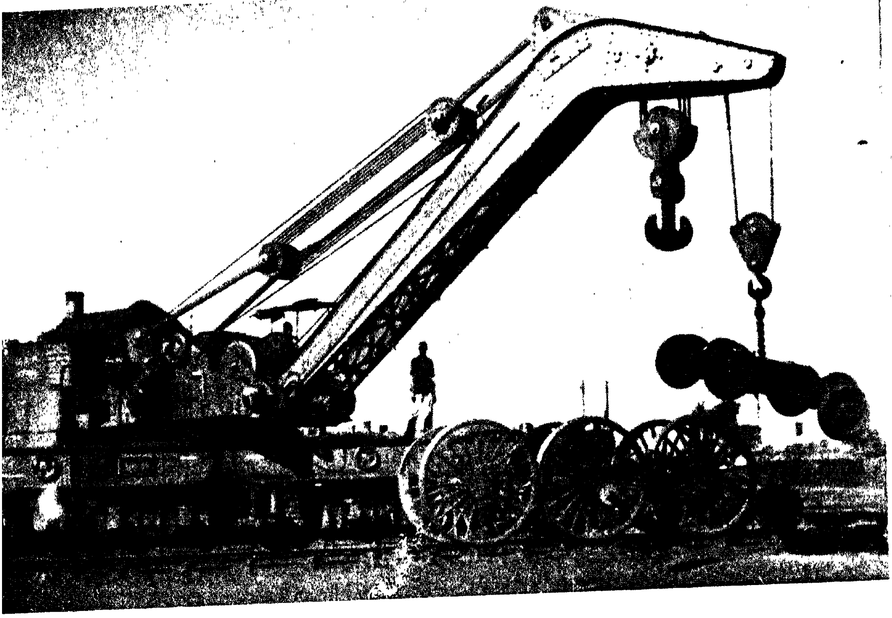
कोयला फिर भरा जाता है ।



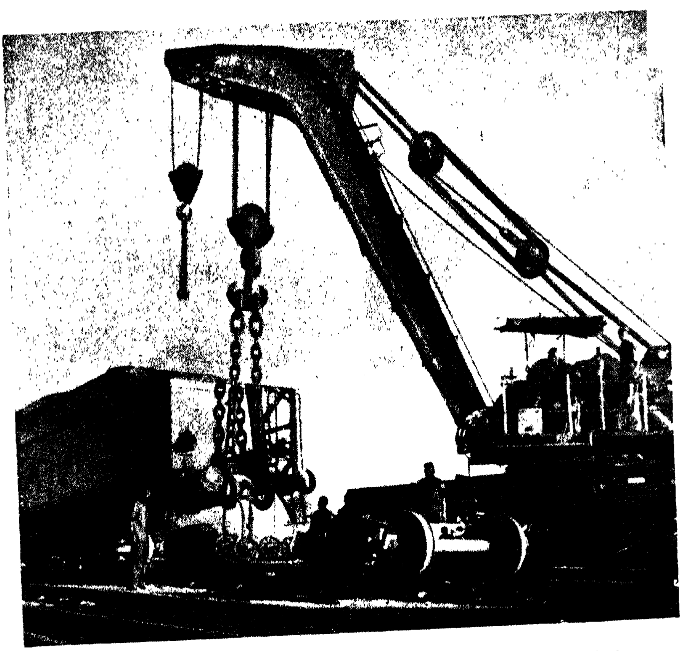
चिमनियां साफ की जाती है।



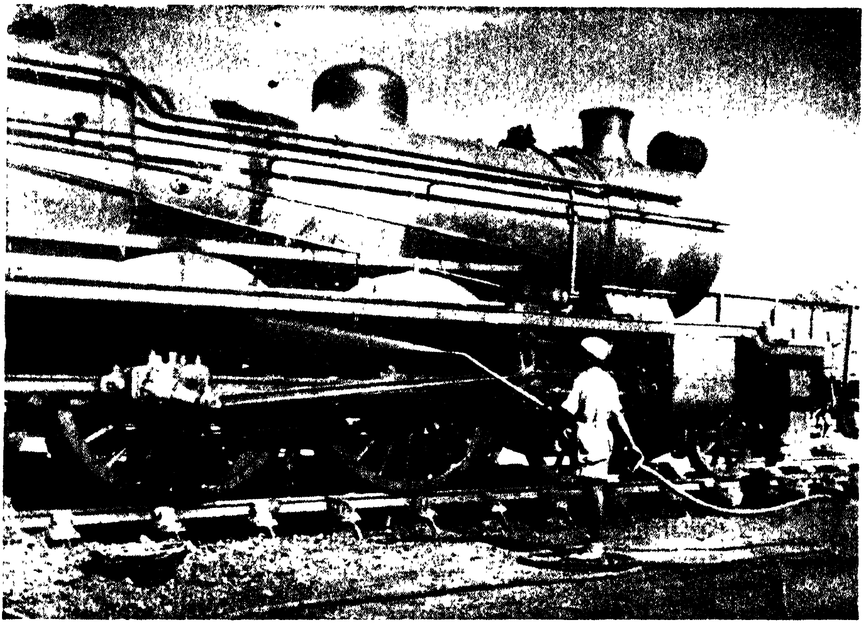
आवश्यकता पड़ने पर पहियों और चाल के दूसरे पुर्जों को देखने के लिए इंजन को "हॉयस्ट" की मदद से उठाया जाता है।



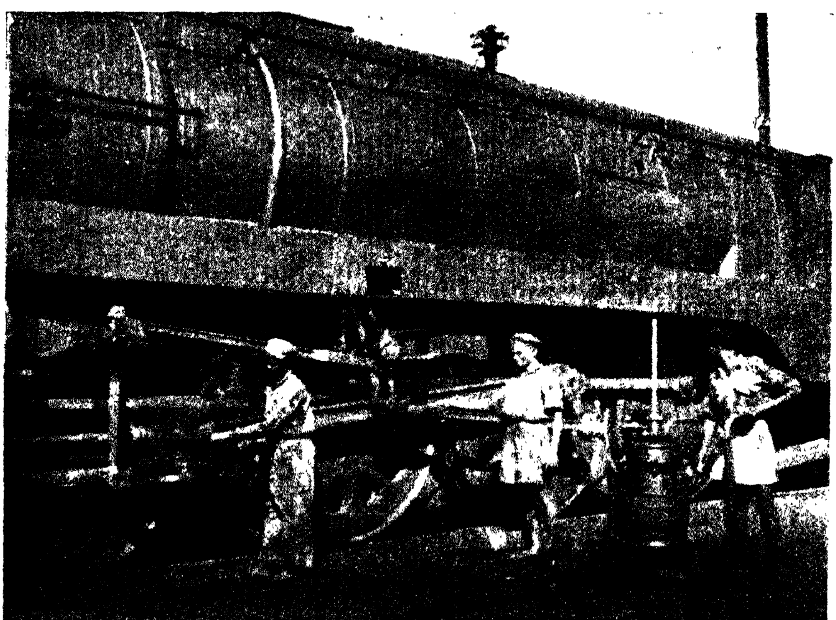
काम करती हुई 65 टन की क्रेन का दृश्य



65 टन की "ट्रेवेलिंग क्रेन" भारी चीजों को उठाने में काम आती है।



तेज धार (Spray) से इंजन को साफ किया जाता है।



एक सफरी "ग्रीज गन" से काम लिया जारहा है।

के लिए डिब्बे गाड़ी से काट कर कारखाने में भेज दिये जाते हैं।

इंजन, डिब्बों आदि की पूरी मरम्मत सुसम्पन्न कारखानों में समय-समय पर होती रहती है। हर रेलवे में इंजन और डिब्बों की मरम्मत के लिए अपने कारखाने सुविधाजनक स्थानों पर बने हुए हैं। भारतीय रेलों के प्रबन्ध व नियंत्रण के कारखानों, शेडों और मरम्मत की जगहों को देखते हुए यह कहना अतिशयोक्ति न होगा कि वे संसार के सबसे बड़े औद्योगिक आयोजनों में हैं।

शुरू के कारख़ाने

इतनी बड़ी औद्योगिक व्यवस्था का श्री गणेश बहुत सूक्ष्मरूप से हुआ। भारत में जब रेलें बनीं, तो यह समझा गया कि यहाँ पर मामूली मरम्मत ही हो सकेगी और जरूरत के छोटे और सभी मामूली कल-पुर्जे, खासकर इंजनों की ढिबरी और पेंच तक, इंगलैण्ड से मँगाने पड़ेंगे। मामूली मरम्मत के लिए, जी. आई. पी. रेलवे ने 1854 में बायकुला में एक छोटा कारख़ाना खोला। ईस्ट इण्डियन रेलवे ने, अनहोनी घटनाओं के कारण, अधिक साहस दिखाया। पहला इंजन भूल से आस्ट्रेलिया चला गया और सवारी-डिब्बों को लानेवाला जहाज समुद्र में डूब गया। इससे सवारी-डिब्बों का भारत में बनाना जरूरी हो गया। इससे यह भी आशा होने लगी कि स्थानीय कारीगरों और साधनों के बल पर, देश में रेल-कारखाने बनने लगेंगे। ईस्ट इण्डियन रेलवे ने हावड़ा में इंजन और गाड़ी बनाने का एक कारखाना चालू किया। शीघ्र ही यह अनुभव किया जाने लगा कि कार्य की विशालता और आवश्यक शिक्षित कारीगरों की प्राप्ति के साथ-साथ हावड़ा में इसके विस्तार की और दूसरी उचित सुविधाएँ नहीं हैं। इसीलिए, इंजन और गाड़ी बनाने का एक बड़ा कारखाना जमालपुर में 1862 में खोला गया।

पश्चिमी भारत में, जी० आई० पी० रेलवे के बम्बई के कारखाने को छोड़कर बम्बई बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे ने 1856 में सूरत के पास अमरौली में एक कारखाना बनाया। इस कारखाने के चिह्न आज भी उत्तरान स्टेशन के पास ताप्ती नदी के उत्तरी किनारे पर मिलते हैं। इन कारखानों का ऐतिहासिक महत्व है क्योंकि ये उसी जगह के पास बनाये गये जहाँ पहले-पहल अंग्रेज भारत में उतरे और सूरत में अपनी पहली बस्ती बसायी थी। अमरौली कारखाना, तिकोनी छत का लकड़ी का बना था। इसकी बनावट बहुत सादी थी। बायकुला, हावड़ा और अमरौली के कारखानों में खास-खास मशीनें, और औजार इंगलैण्ड के बने हुए थे। इनमें इंजन के खराद, बरमें, ढाँचा और आकार बनाने की मशीनें, दबाने के यंत्र, चूड़ीदार भारी सामान को उठाने के जेक, इंजन आदि को ऊपर उठानेवाली मशीनों के साथ-साथ लाइन बनाने के तरह-तरह के औजार भी शामिल थे। इन मशीनों को भाप द्वारा संचालित इंजनों के साथ पट्टे लगाकर चलाया जाता था।

रेलवे की बस्तियाँ

186 में, जिस समय जमालपुर का कारखाना बन रहा था, बम्बई के पास परेल में 35 एकड़ जमीन ली गयी और बड़ी-बड़ी मरम्मतों के लिए एक बड़ा कारखाना बनाने का काम शुरू हुआ। ये दोनों आयोजन रेलों के इंजीनियरिंग-विकास के आरम्भ का महत्व-

पूर्ण अंग हैं। इसके बाद देशभर में कई छोटे-बड़े कारखाने नये से नये ढंग की मशीनें लगाकर बनाये गये। इनमें इंजनों, माल और सवारी-डिब्बों की मरम्मत और संचालन से सम्बन्धित दूसरे काम ही नहीं, रेल के काम आनेवाले बहुत से पुरजे भी बनने लगे।

देश भर में छोटी, बड़ी और मीटर लाइनों के कारखाने बने हुए हैं जिनमें परेल, माटुंगा, दोहाद, जमालपुर, खड़गपुर, लिलुआ, कंचरापारा, पैरम्बूर, गोल्डेन रॉक, चारबाग अजमेर, गोरखपुर और हुबली के कारखाने अधिक प्रसिद्ध हैं। परेल, माटुंगा, पेरम्बूर, चारबाग, अजमेर, गोरखपुर और हुबली के कारखाने बड़े-बड़े शहरों में हैं। जमालपुर, खड़गपुर, गोल्डेन रॉक, दोहाद, कंचरापारा और कुछ दूसरे कारखानों के लिए देहाती क्षेत्र चुने गये। धीरे-धीरे इनके आसपास नगर बस गये। इन्हीं नगरों को मुख्यतः रेलवे बस्तियाँ कहा जाता हैं। जमालपुर का कारखाना करीब 150 एकड़ जमीन पर बना है और नगर कई वर्गमील में फैला हुआ है। यही हाल खड़गपुर, गोल्डेन रॉक, दोहाद और कंचरापारा के कारखानों का भी है।

आत्म-निर्भरता

शुरू में इंजन और डिब्बों में काम आनेवाले लगभग सभी कल-पुरजे ब्रिटेन से मंगाये जाते थे, लेकिन ये सब सामान देश में ही तैयार हों, इसके लिए रेल कारखानों और यहां की दूसरी फैक्टरियों में इनका बनना धीरे-धीरे शुरू हुआ। इससे बहुत से सम्बन्धित उद्योगों के विकास में सहायता मिली है। रेल कारखानों में हजारों आदमियों को पेचीदा मशीनों के चलाने की शिक्षा का सुन्दर अवसर मिला है जिससे भारत के दूसरे उद्योगों को भी सीखे सिखाये आदमी मिलते रहते हैं। सब से बड़ी बात यह है कि उन्होंने ऐसी हालत करदी है कि भारत अब इंजन, माल और सवारी डिब्बों को पूरे तौर से बनाने के योग्य हो गया है।

दोनों विश्वयुद्धों में, इन कारखानों में केवल मरम्मत का ही काम नहीं, बहुत आवश्यक सामान भी तैयार किये जाते रहे जो पहले बाहर से मंगाये जाते थे।

बिजली के विकास से रेलों को अपने निजी बिजली घर बनाने पड़े जिससे सारे देश में छोटे-बड़े बहुत से बिजली-घर बनकर तैयार हो गये। रेल के बिजली-घर देश के उत्पादन केन्द्रों में सबसे बड़े हैं। इन केन्द्रों से बिजली के रेल-मार्गों, स्टेशनों में रोशनी, कुछ कारखानों, बिजली गाड़ियों के संचालन और कुछ दूसरे नगरों में भी रोशनी के लिए बिजली दी जाती है।

बिजली-शक्ति

1895 में, जमालपुर में रेलवे का पहला उल्लेखनीय बिजली घर बना। इस शक्ति-उत्पादन केन्द्र के ब्वायलर-घर में इकहरे ढोल के समान हाथ से कोयला झोंकने वाले ब्वायलर थे, जिनसे आगे-पीछे चलने वाले पिस्टनों द्वारा भाप के इंजन संचालित होते थे। भाप के यह इंजन 220 वोल्ट की डी० सी० करेन्ट के डाइनमो चलाते थे। आज जमालपुर बिजली-घर में 83,00 किलोवाट बिजली पैदा करनेवाला भाप संचालित यंत्र

लगा हुआ है। खड़गपुर के बिजली-घर में 8,260 किलोवाट बिजली पैदा होती है। रेलवे का सबसे बड़ा और अत्यन्त आधुनिक बिजली-घर बम्बई से तीस मील दूर चोल में है जिसमें 40,000 किलोवाट बिजली पैदा हो सकती है। कुछ दूसरी आधुनिक मशीनों के लग जाने पर, चोल के बिजली-घर की उत्पादन शक्ति 136,000 किलोवाट हो जायेगी।

भारतीय रेलों के छोटे उद्योगों में इनके छापेखानों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें से कुछ, खासकर बम्बई, कलकत्ता और मद्रास जैसे राजधानी के नगरों के छापेखानों की तुलना देश के बड़े से बड़े आधुनिक ढंग के छापेखानों से की जा सकती है।

रेलों के अपने नियंत्रण और संचालन के ये कुछ प्रधान प्रयास हैं। बहुत से उद्योग-धन्धे मुख्य रूप से इनकी बहुत सी जरूरतों को पूरा करने के लिए खड़े हो गये हैं। इस्पात उद्योग से, रेल की पटरी, ब्वायलर, धुरी, टायर तथा पेंच, रिवेट, तार, कील और कब्जे जैसी छोटी-छोटी चीजें तैयार होती हैं। दूसरे उद्योग, रबड़ के सामान, धातु को साफ करने वाला कपड़ा, रेत का कागज, चक्की के पहिये, तोलने की मशीन आदि तैयार करते हैं। बिजली की बत्तियां, तार, छत के पंखे और सिगनल तथा अन्तर्पाशन यंत्रों के बहुत से सामान देश में तैयार हो जाते हैं। गाड़ी की बत्तियों की बैटरी भी अब भारत में बनने लगी है। रेलें बहुत बड़ी तादाद में स्वदेशी चमड़ा, नकली चमड़े का कपड़ा, औजार, रंगने की कूंचियां, फ़र्श का मोमिया कपड़ा, सूती कपड़ा आदि सामान भी खरीदती हैं।

इसलिए, रेल अब केवल संसार के सबसे बड़े उद्योगों में एक उद्योग ही नहीं है, बल्कि उसने भारत के औद्योगिक विकास को बढ़ाने में कई तरह से सीधी सहायता की है, और इस प्रकार देश के औद्योगिक विकास में बड़ा भारी योग दिया है।

15. चितरंजन

चितरंजन के रेल-इंजन कारखाने और चितरंजन के नये नगर पर आधुनिकता की छाप है। ये दोनों स्वतंत्र भारत की भावनाओं के सूचक हैं। नगर और कारखाने का नामकरण, स्वर्गीय देशबन्धु चितरंजन दास के नाम पर है। जो भारत के सर्वश्रेष्ठ पुरुषों में थे और जो राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के साहसी योद्धा, दूरदर्शी नेता और विचारक थे।

चितरंजन कारखाना, नवीनतम यंत्र और मशीनों से सम्पन्न है और देश के सबसे आधनिक उद्योगों में से है। 1950 में इसमें तीन रेल के इंजन बनकर तैयार हुए। किन्तु बाद में इसका काम तेजी से बढ़ा। 1951 में 16 और 1952 में 30 इंजन तैयार हुए। प्रतिवर्ष 120 इंजन और 50 अतिरिक्त ब्वायलर बनाना इसका प्रधान लक्ष्य है, जिसकी अगले कुछ वर्षों में पूरा होने की आशा है।

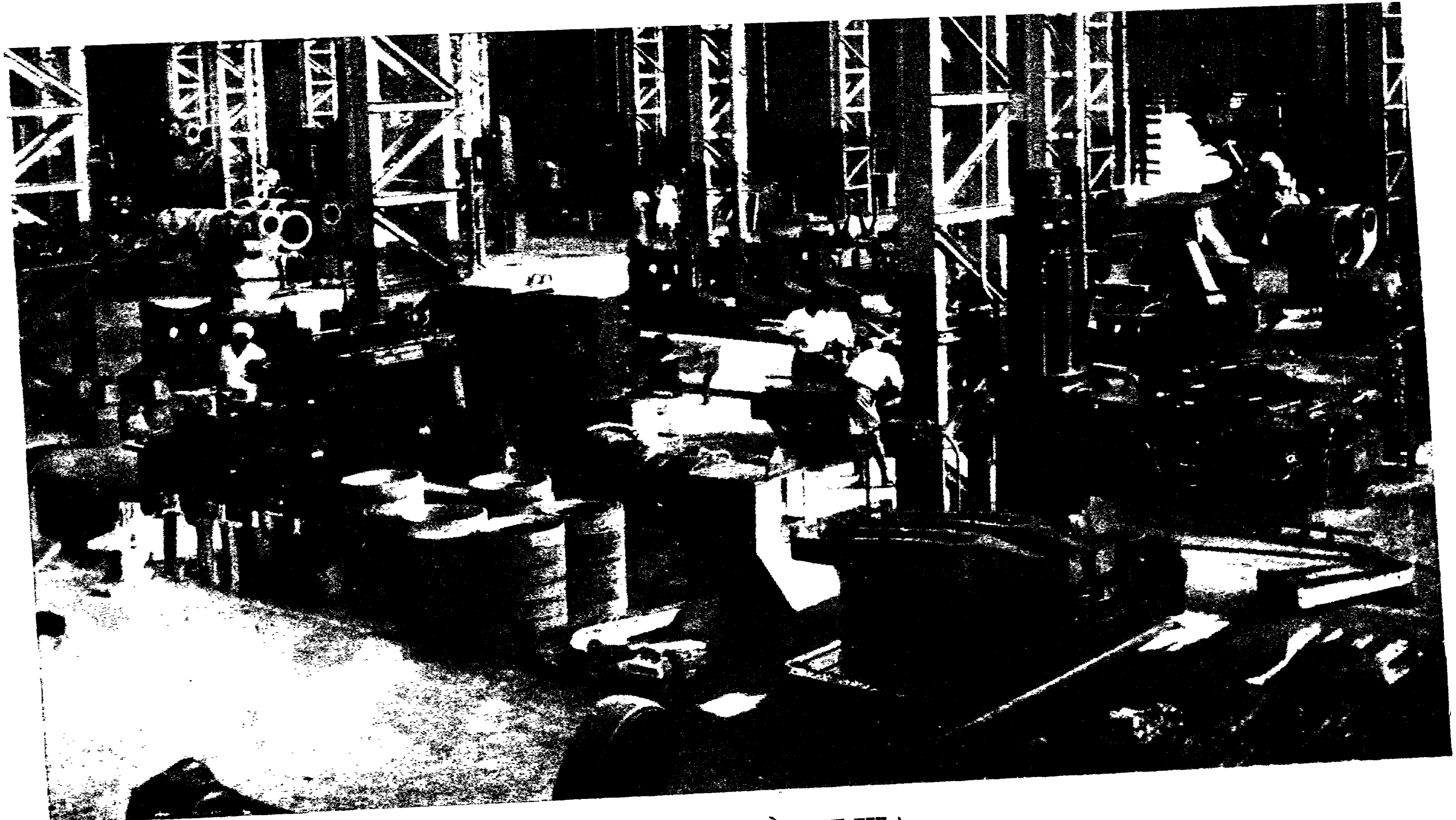
भारत जैसे देश में, जहाँ नगरों की आयु युग और सदियों में नहीं, हजारों वर्षों में गिनी जाती है, चितरंजन नगर का अभी शैशवकाल समझना चाहिए। पांच वर्ष पहले, इस कारखाने के विशाल स्थल में अधिकतर घने जंगल, ऊसर और बिना जोते हुए धान के खेत थे। आसपास के कुछ गांवों में आदिम जाति के लोग रहते थे जो अब भी नगर से कुछ मील दूर रहते हैं। अब यह आशा होने लगी है कि चितरंजन, यदि अभी नहीं, तो आगे चलकर भारत के सुचारुरूप से आयोजित, सुन्दर और स्वच्छ बनावट के औद्योगिक नगरों में गिना जाने लगेगा।

आयोजना

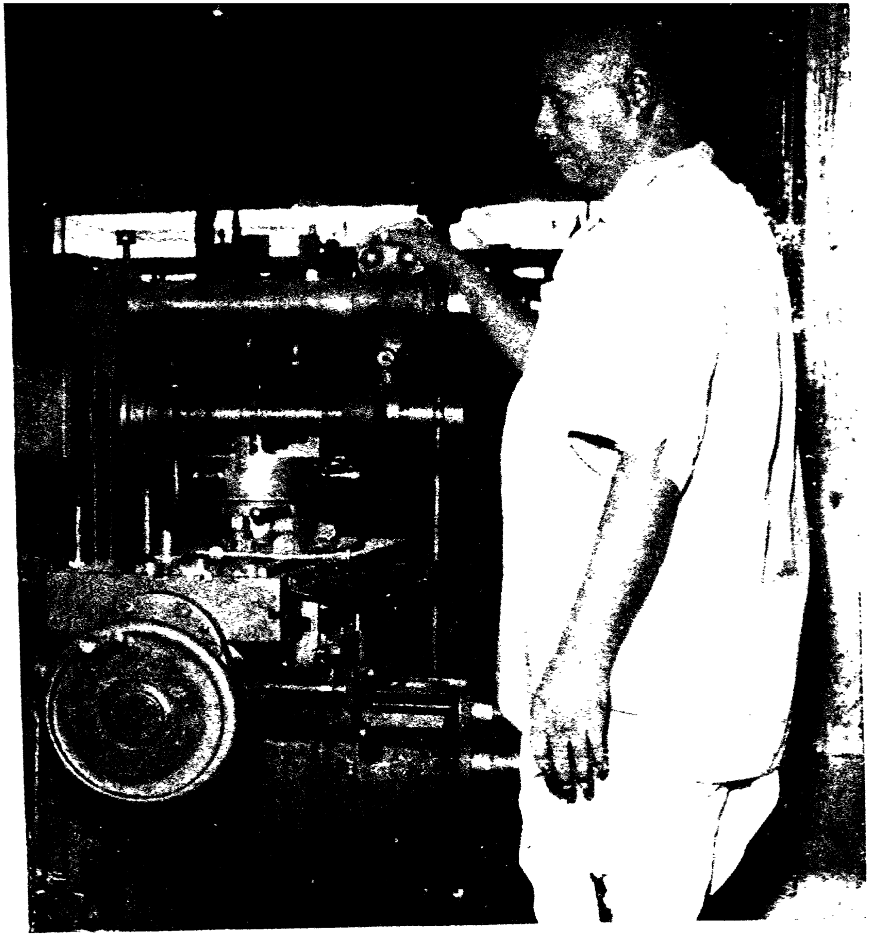
भारत के स्वतंत्र होते ही रेलवे द्वारा आरंभ की गयी योजनाओं में चितरंजन नगर और इंजन-कारखाने का काम सबसे पहले हाथ में ले लिया गया। 1947 में वर्तमान स्थल को अन्तिमरूप से चुना गया और इंजन-कारखाने तथा नये नगर की योजना तैयार की गयी। पांच वर्ष की छोटी अवधि में सात वर्गमील से अधिक की ऊँची-नीची भूमि पर स्वच्छ और आधुनिक औद्योगिक नगर बनकर तैयार हो गया है जिसमें 5,000 से अधिक परिवार रह सकते हैं। कारखाने का क्षेत्रफल 8,80,000 वर्ग फीट हैं। बाड़ों और दफ्तरों को जोड़कर इसका क्षेत्रफल दस लाख वर्ग फीट से अधिक है। इसके बनाने में 11,000 टन इस्पात और 17,00,000 घन फीट सीमेन्ट लगी। कल-पुरजे जोड़ने का सबसे लम्बा बाड़ा 1,560 फीट लम्बा, 212 फीट चौड़ा और 75 फीट ऊँचा है। चितरंजन-कारखाने में विभिन्न प्रकार की आधुनिक ढंग की, 985 मशीनें लगी हुई हैं, जिनमें इंजन के 5,000 से अधिक कल-



चितरंजन का एक मनोहारी दृश्य ।

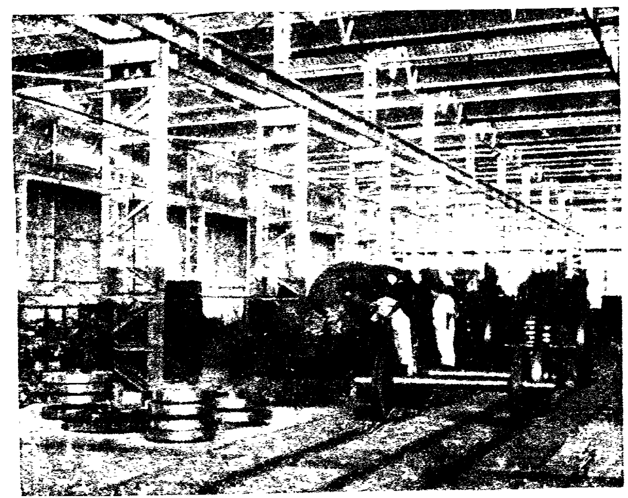


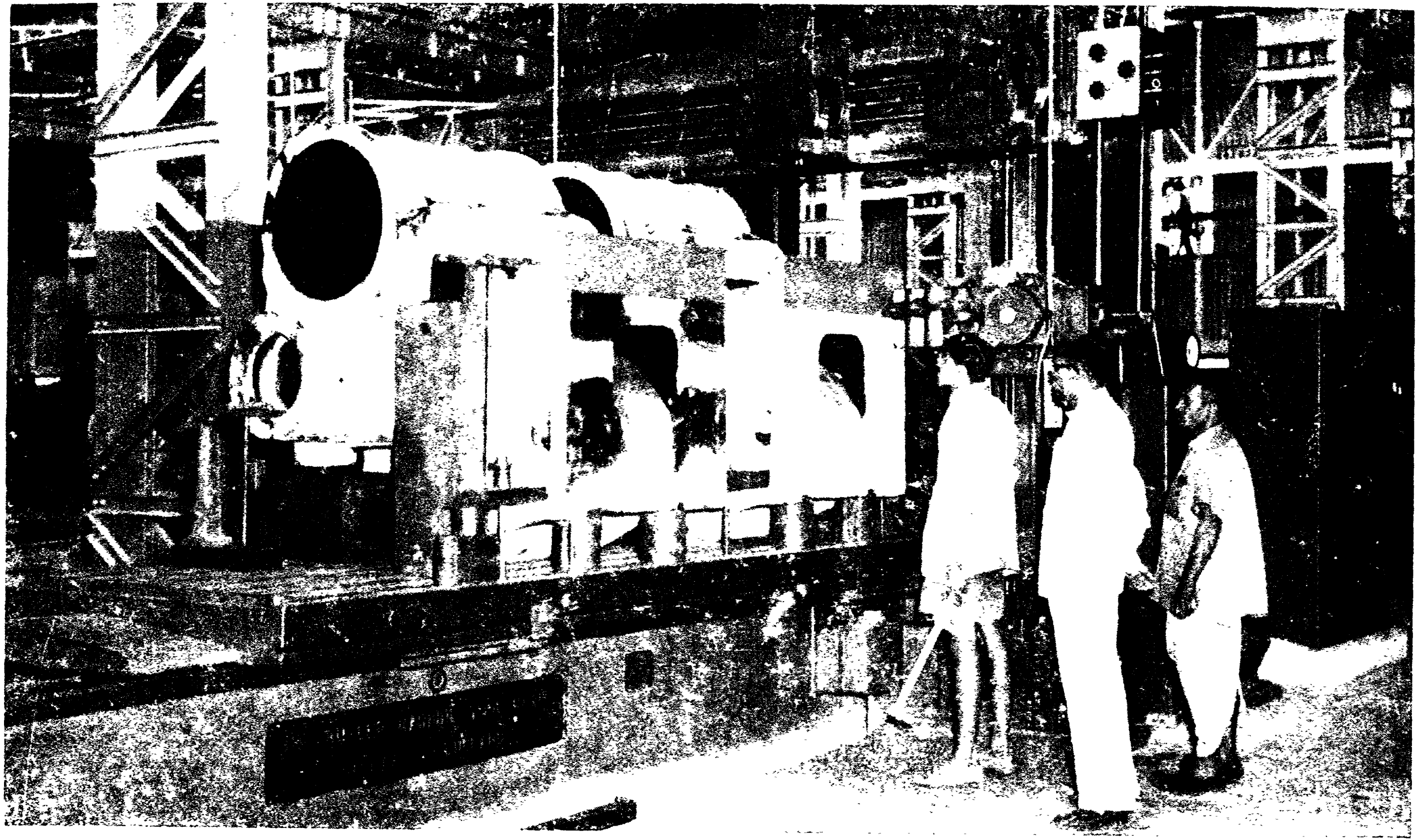
बड़ी मशीनों के कारखाने का एक दृश्य ।



हॉरिजेन्टल मिलिंग मशीन काम कर रही है।

पहियों के कारखाने का एक दृश्य





इंजन के सिलिण्डरों को मशीन में लगाया जा रहा है।

पुरजों का 80 प्रतिशत भाग तैयार किया जा सकता है। इस सफलता पर किसी शासन और इंजीनियर-समूह को उचित गर्व हो सकता है ।

चितरंजन नगर

चितरंजन का निर्माण लगभग 14 करोड़ रुपये की लागत से हुआ है। यह नगर ऊंची-नीची भूमि के आसपास बना हुआ है। मकान, एक के ऊपर एक, चढ़ते हुए दिखाई देते हैं। रात में बत्तियों का दृश्य बड़ा आकर्षक मालूम होता है। काफ़ी मात्रा में साफ पानी पहुंचाने का हर मकान में प्रबन्ध है। बिजली सस्ती है और आसानी से मिल जाती है। छोटे-छोटे मकानों में भी सफ़ाई का अच्छा प्रबन्ध है। साधारण कर्मचारी के लिए अच्छी जगह और कम किराये को देखते हुए, चितरंजन की अनेक सुविधाओं की तुलना संसार के किसी भी देश से की जा सकती है । ईंटों के सबसे छोटे दो कमरों के साफ-सुथरे मकान में सीमेन्ट की छत और फर्श, एक बरामदा, स्नान-घर, रसोई-घर तथा बाहर फुलवाड़ी की काफ़ी जगह होती है। कुछ श्रेणियों के अकुशल कर्मचारियों को मकान का किराया नहीं देना पड़ता। रहने की जगह का आकार और स्तर कर्मचारियों के पद और वेतन के अनुपात से घटता-बढ़ता है। नगर इस तरह बसाया गया है कि श्रेणी विशेष के कर्मचारियों का किसी एक क्षेत्र में जमाव न हो, फिर भी निचली श्रेणी के कर्मचारियों को कार्य-केन्द्रों और सामाजिक चहल-पहल की जगहों के बिलकुल पास रखा गया है। नगर के केन्द्र में दूकानें हैं। कर्मचारियों के लिए क्लब, सिनेमा और उनके बच्चों के लिए स्कूल और खेल के मैदान हैं। कर्मचारियों तथा उनके परिवारों के लिए अच्छे अस्पताल व दवाखाने हैं। जन-स्वास्थ्य विभाग के प्रयत्नों से विषैले मच्छरों से भरा हुआ क्षेत्र, अब मलेरिया से मुक्त हो गया है। अनुकूल जलवायु के कारण चितरंजन एक प्रकार का 'स्वास्थ्य-स्थल' बन गया है।

कारखाना

इस कारखाने की मशीनें आधुनिक ढंग की हैं जिनसे विभिन्न प्रकार के व्यवसाय चलाये जा सकते हैं। यहाँ पर ढाँचे बनाये जाते हैं, ढलाई, गढ़ाई और लोहारी का काम होता है, साँचे गलाये जाते हैं, इस्पात गरम होता है, ठीक नाप के औजार व पुरजे बनते हैं, ब्वायलर तैयार होते हैं और कल-पुरजों को जोड़कर इंजन खड़े किए जाते हैं। बहुत से देशों में इंजन के कई कल-पुरजे सहायक उद्योगों से खरीदे जाते है। किन्तु चितरंजन में इनमें से अधिकांश को कारखाने में ही बनाने का प्रबन्ध किया गया है, क्योंकि भारत में इसके सहायक उद्योग नहीं के बराबर हैं। कारखाने के यंत्रों से लगभग 80 प्रतिशत कल-पुरजे बनने की आशा की जाती है। अभी कुछ समय तक रोलर बेयरिंग, ब्वायलर ट्यूब और कुछ विशेष प्रकार के इस्पाती खण्डों को बाहर से मंगाना पड़ेगा। ऐसी आशा है कि अगले कुछ वर्षों में ये सामान भी भारत में बनने लगेंगे।

चितरंजन के विभिन्न अंग एसबेसटास की साफ़-सुथरी नालीदार चद्दरों के बने हुए दक्षिणी, केन्द्रीय और उत्तरी भागों में बँटे हुए हैं। दक्षिणी भाग में ढाँचे बनाने का और लोहा-पीतल की ढलाई का काम होता है। केन्द्रीय भाग में लोहार-खाना, गढ़ाई-घर है और भारी-

हल्की मशीनें लगी हुई हैं। उत्तरी भाग में, पूर्व से पच्छिम को समानान्तर जाने वाली तीन पट्टियाँ हैं, जिनके उत्तरी कोने में ब्वायलर का कारखाना, केन्द्र में इंजन जोड़ने-मिलाने और उसके कोयला वाले डिब्बे, ढाँचे आदि बनाने के कारखाने हैं। दक्षिणी कोने में तैयार कल-पुरजे इकट्ठा किये जाते हैं। इस प्रबन्ध से इंजन जोड़ने के कारखाने में, समय-समय पर ब्वायलर-घर से ब्वायलर, मशीन-घर और गोदाम से अनेक प्रकार के कल-पुरजे, पहुँचते रहते हैं। कारखाने के पच्छिमी किनारे से चलकर पूर्वी किनारे के छोर तक पहुँचते-पहुँचते इंजन और कोयला-डिब्बा बनकर पूरा हो जाता है।

इंजन के कल-पुरजों के बनाने का नियमित उद्घाटन, स्वर्गीय देशबन्धु चितरंजन दास की विधवा पत्नी, श्रीमती बसन्ती देवी ने 26 जनवरी 1950 को किया और भारत के राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र प्रसाद ने पहली नवम्बर 1950 को, कारखाने का पहला इंजन चालू किया। तब से दिसम्बर 1952 के अन्त तक, चितरंजन में 49 इंजन बन चुके हैं।

चितरंजन के इंजन

इस समय चितरंजन में, मालगाड़ियों के लिए, डब्ल्यू० जी० श्रेणी के इंजन बनाये जा रहे हैं। उनमें '2-8-2' श्रेणी के पहिये लगे होते हैं और धुरी का वजन 18.5 टन रहता है। यह इंजन, जो रेलवे बोर्ड के केन्द्रीय मानक कार्यालय द्वारा तैयार किये गये नमूने पर बनते हैं, इस प्रकार बनाये जाते हैं कि इनमें मामूली किस्म का देशी कोयला बहुत कम खर्च हो, सुचारुरूप से भाप निकले और चलने में पूरी स्थिरता रहे। डब्ल्यू० जी० श्रेणी के इंजन की भट्टी की चलनी के एक वर्गफुट में, अधिक से अधिक 135 पौण्ड प्रति घण्टा बिना जलाया कोयला झोंका जाता है और 38,890 पौण्ड चलन-शक्ति पैदा होती है। भारत की पिछले सोलह वर्ष की भरपूर छान-बीन के फलस्वरूप अधिक बचत करने वाले ब्वायलर, भाप को अत्यधिक गरम करने वाले कल-पुरजे और उत्तम प्रकार के वाल्व गियर तैयार हो गये हैं और इन सब विशेषताओं को नये इंजनों में शामिल कर दिया गया है।

रेलवे विकास का चितरंजन एक सीमा चिह्न है, किन्तु भारतीय इंजन के निर्माण का इतिहास बहुरूपी है। 1885 में, ईस्ट इण्डियन रेलवे के जमालपुर के कारखाने में सबसे पहले इंजनों का बनना शुरू हुआ। मीटर गेज लाइन का पहला इंजन, 1896 में, बम्बई बड़ौदा एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे के अजमेर के कारखाने में बना। यह सराहनीय सफलता थी, क्योंकि पहले-पहल इंगलैण्ड ही अकेला देश था जहाँ इंजन बनाये जाते थे और अमेरिका में तो 'बेस्ट फ्रेण्ड आफ़ चार्ल्सटन' नामक पहला इंजन 1830 में बना। कुछ ही वर्ष बाद जर्मनी और फ्रांस में भी इंजनों का बनना शुरू हो गया। पिछली सदी में, 1890 के आस-पास, इन देशों को छोड़कर, बहुत कम कारखाने थे जिन्हें इंजनों के बनाने में उल्लेखनीय सफलता मिली हो।

इंजनों का निर्माण

जमालपुर कारखाने का बना हुआ पहला इंजन, करीब 33 साल काम में आने के

बाद, 1932 में हटा दिया गया। इसके ब्वायलर प्लेट, धुरे और ढांचे के प्लेट ही बाहर से मँगाये गये थे। इस इंजन की कुल लागत 33,000 रुपये थी। 1899 और 1923 के बीच, जमालपुर के कारखाने में, इंजनों की मरम्मत और संभाल के दैनिक कार्य के अलावा, '0–6–0', '0–6–4' और '0–6–2' श्रेणी के 214 बड़ी लाइन के इंजन और 103 ब्वायलर बने।

1896 में, अजमेर के कारखाने में बना हुआ पहला इंजन, मीटर लाइन का '0–6–0' श्रेणी का था। इसमें छः पहियों का कोयले वाला डिब्बा था, इसके सिलेण्डर 14×20 इंच स्ट्रोक के थे और ब्वायलर का दबाव 140 पी० एस० आई० था। इसका वजन $30\frac{1}{4}$ टन था और माल और सवारी दोनों गाड़ियों के लिए बनाया गया था। बाद के सात वर्षों में, इसी प्रकार के 9 इंजन और बनाये गये। 1909 में एक बड़ा कार्यक्रम बनाया गया और सवारी गाड़ी के लिए पी. श्रेणी के पाँच बड़े-बड़े इंजन बनाये गये, जिनके साथ छः पहियों का कोयले वाला डिब्बा था। ये इंजन '4–6–0' श्रेणी के थे और 61·2 टन भारी थे। 1923 तक इस प्रकार के 63 इंजन चालू हुए। 1931-38 के बीच इंजन निर्माण के क्षेत्र में और भी अधिक उन्नति हुई। 'वाई डी', 'वाई बी', और 'वाई एफ' श्रेणी के 85 आई० आर० एस० इंजन बनाये गये जिनमें भारतीय इंजनों के उस समय तक के आकार सम्बन्धी सभी सर्वमान्य सुधारों को शामिल किया गया। विदेश से आने वाले '4–4–4' श्रेणी के अन्तिम दस इंजन 1950 में बनकर आ गये। ये इंजन भारत से भेजे गये नमूने और आकार पर बनाये गये थे। अजमेर के कारखाने में, बम्बई बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे की जरूरतों के अलावा, भारत की दूसरी रेलों के लिए भी कई इंजन बने और लड़ाई के दिनों में वहां निकटवर्ती पूर्वी देशों के लिए भी इंजन बनाये गये। इन इंजनों की कार्य कुशलता किसी भी किस्म के विदेशी इंजन के बराबर साबित हुई। वे भारत की विशेष परिस्थितियों के अनुकूल बनाये गये थे। उनसे प्रारम्भिक लागत में काफ़ी बचत हुई। तुलनात्मक आंकड़ों को देखने से पता चलता है कि 1930 में अजमेर के बने इंजनों के 1,000 रुपये प्रति टन के मुकाबिले बाहर से मंगाये गये इंजनों का 1,170 रुपये प्रति टन मूल्य पड़ता था।

चितरंजन के इंजन-कारखाने और जमशेदपुर के टाटा लोकोमोटिव एण्ड इंजीनियरिंग कम्पनी के बन जाने के बाद अजमेर में इंजनों का बनना बन्द हो गया, क्योंकि अजमेर के कारखाने का उपयोग अब मरम्मत के कामों के लिए होने लगा है।

इन सफल प्रयत्नों के होते हुए भी, रेलों ने बड़े पैमाने पर इंजन बनाने की नीति नहीं अपनायी। पहले विश्वयुद्ध के तुरन्त बाद की बनी हुई पेनिनशुलर लोकोमोटिव कम्पनी नामक निजी कम्पनी ने सिंहभूमि के अपने निजी कारखाने में इंजन बनाने का कार्यक्रम तैयार किया, किन्तु रेल-नीति के संचालकों ने इसे प्रोत्साहित नहीं किया, जिससे पूरी योजना स्थगित करनी पड़ी। अगर शुरू में निजी प्रयासों की सहायता से या रेल के कुछ-कुछ बड़े कारखानों में जरूरी मशीनें लगाकर, इंजन बनाने की भरपूर कोशिश होती, तो इंजन के

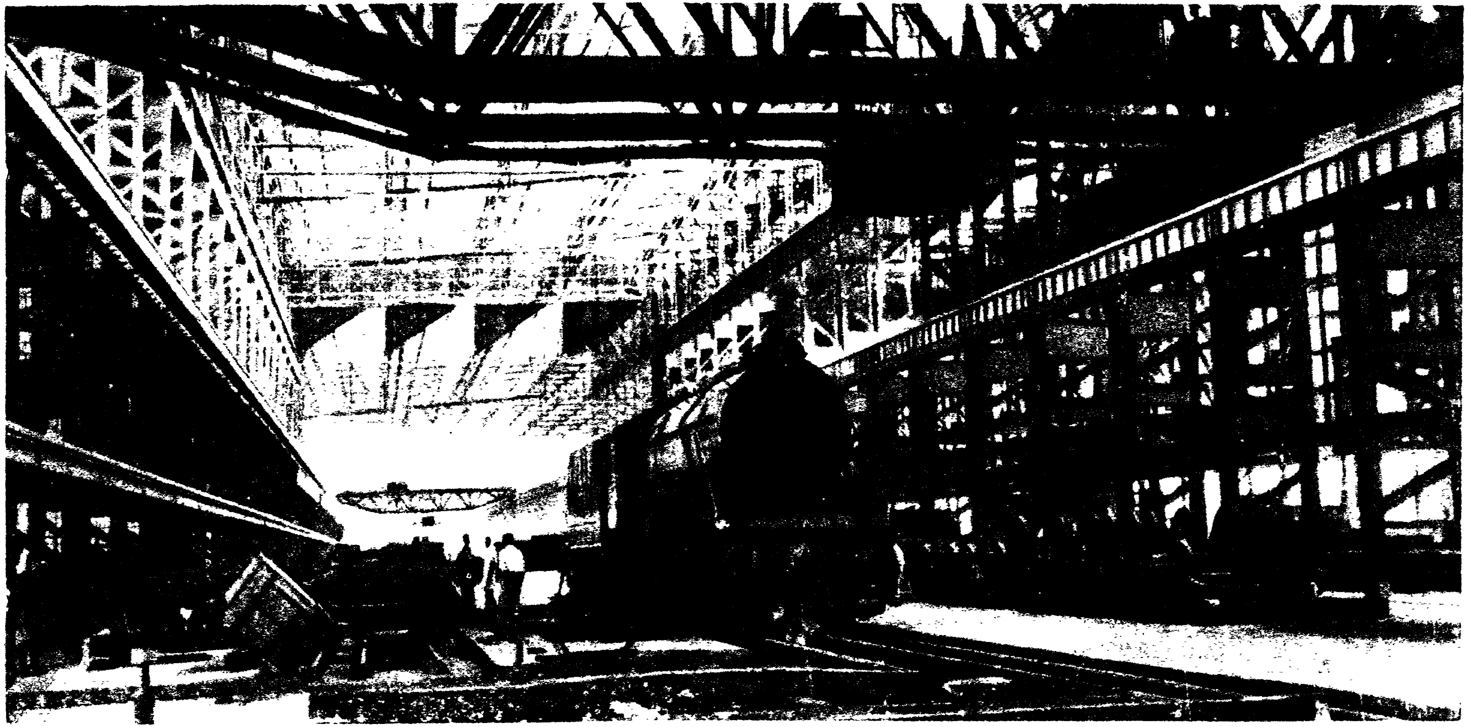
मामले में भारत कई साल पहले आत्म-निर्भर हो जाता और खर्च में बहुत बड़ी बचत होती।

जनमत

भारतीय जनमत की ओर से देश में इंजन बनाने की माँग बराबर होती रही और इस प्रकार की माँग स्वाभाविक भी थी। पहले विश्वयुद्ध के बाद बाहर से नये इंजनों के मँगाने की कठिनाइयों और चालू इंजनों के घिसकर टूटने और बिलकुल बेमरम्मत हो जाने के कारण, इस माँग ने जोर पकड़ा। इस सदी में, 1920-30 के बीच, विधान सभा में सभी दल के भारतीय नेताओं ने देश में इंजन तैयार करने पर बल दिया। फिर भी, रेल-अधिकारियों ने जमालपुर और अजमेर के कारखानों के विस्तार के लिए कोई क्रियात्मक कार्यवाही नहीं की। ब्रिटेन से इंजन मँगाते रहने के पक्ष में अनेक व्यवहारिक कठिनाइयाँ और उलटी-सीधी बातें सामने रखी गयीं। इससे तो यही नतीजा निकलता है कि दूसरे मामलों की तरह, इसमें भी उस समय के रेल-प्रबन्धकों का स्वार्थ ब्रिटेन के उद्योगों के फूलने-फलने में अधिक था। उचित तो यह था कि वे भारत में इस उद्योग का विकास करते, किन्तु उन्होंने ब्रिटेन के इंजन कारखानों को भारतीय रेलों का संरक्षण देना अधिक पसन्द किया।

समय के साथ, इस आन्दोलन ने जोर पकड़ा। अन्त में जुलाई 1939 में, यांत्रिक इंजीनियर, मिस्टर जे. हम्फ्री और वित्त अफ़सर, श्री के. सी. श्रीनिवासन की एक कमेटी बनायी गयी, जिसे भारत के कुछ चालू कारखानों में इंजन बनाने की योजना की जाँच करने और इस योजना के आर्थिक पक्ष और प्रारम्भिक व्यय का विवरण देने का काम सौंपा गया। कमेटी ने 1940 में, दूसरा विश्वयुद्ध छिड़ने पर, अपनी रिपोर्ट दी। कमेटी ने सिफ़ारिश की कि लड़ाई छिड़ जाने पर भी और लड़ाई के कारण भी, भारत में इंजन बनाने का काम तुरन्त शुरू कर दिया जाय। कमेटी की इस सिफ़ारिश पर अमल करने के लिए कोई कार्यवाही नहीं की गयी। लड़ाई के दिनों में, इंजनों की कमी बराबर प्रत्यक्ष होती गयी। इससे तो बिलकुल स्पष्ट हो गया कि इंजन और रेल-संचालन के दूसरे आवश्यक सामानों की पूर्ति के लिए भारत को स्वावलम्बी बनने की बड़ी जरूरत है।

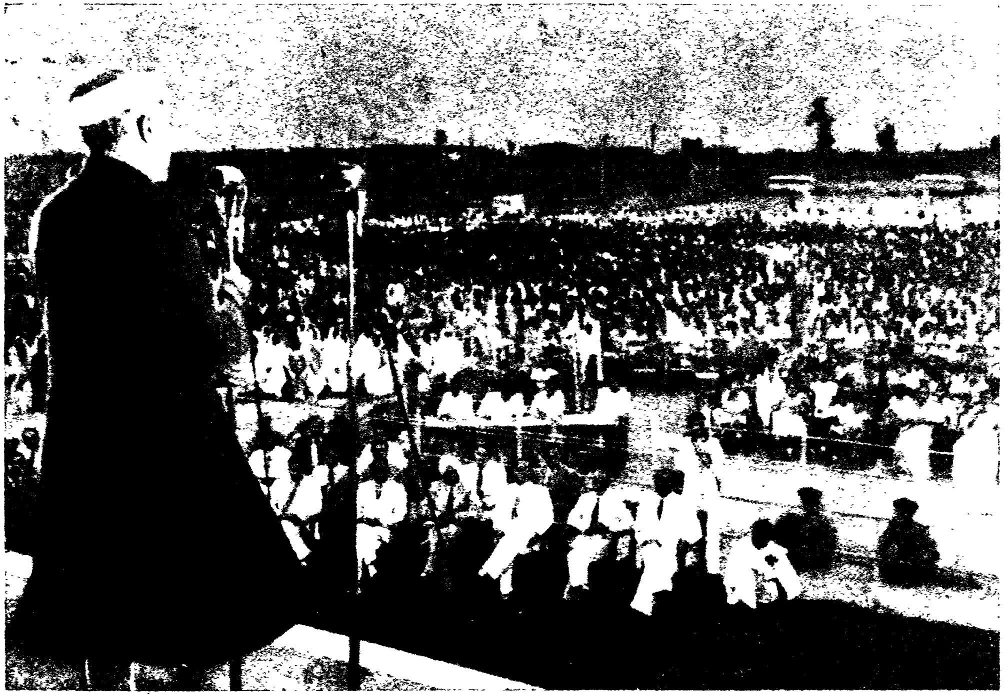
1945 तक, श्रीनिवासन कमेटी की सिफ़ारिशों पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया। उस समय के अविभाजित बंगाल के चाँदमारी में एक स्थान चुना गया। राजनैतिक उथल-पुथल और देश के बँटवारे के कारण, इस स्थान पर अधिक काम नहीं हो सका। 1947 में, चितरंजन का वर्तमान स्थान अन्तिमरूप से चुना गया। इस स्थान को चुनने में प्रधान रूप से इन बातों का ध्यान रखा गया है कि यहाँ इमारतें बनाने के लिए ऊसर की सस्ती भूमि का विस्तृत क्षेत्र है तथा नगर निर्माण के अनुकूल प्राकृतिक ऊँचाई-निचाई का चित्रवत् दृश्य चारों ओर दिखायी देता है। उत्तम जलवायु, जल की सुगमता, इस्पात और कोयला उत्पादन-केन्द्रों की समीपता, माइथान बाँध और दामोदर घाटी-योजना के विशाल जल-कुण्ड आदि इसके प्रबल आकर्षण हैं।



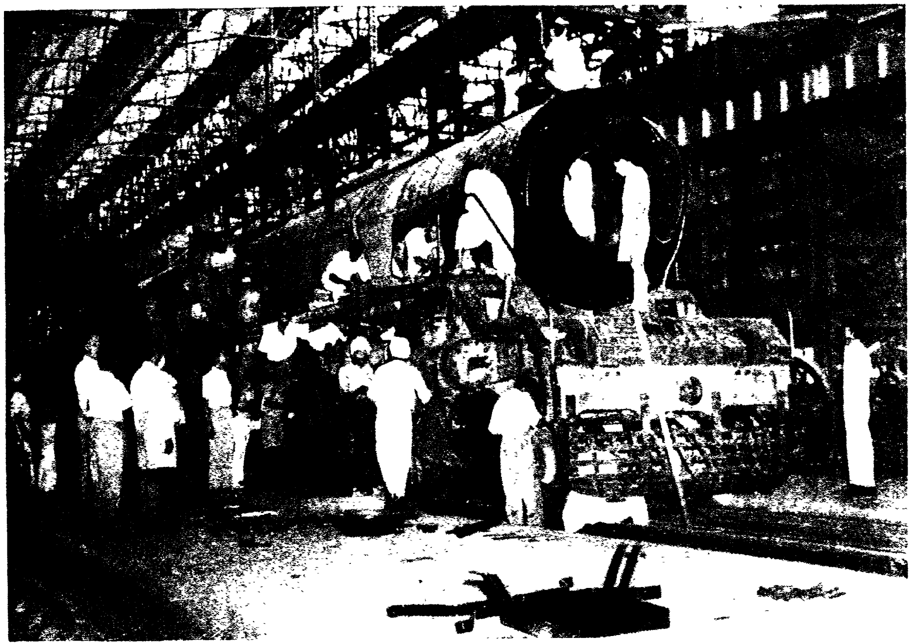
''इरेक्टिंग शॉप'' का दूसरा दृश्य ।



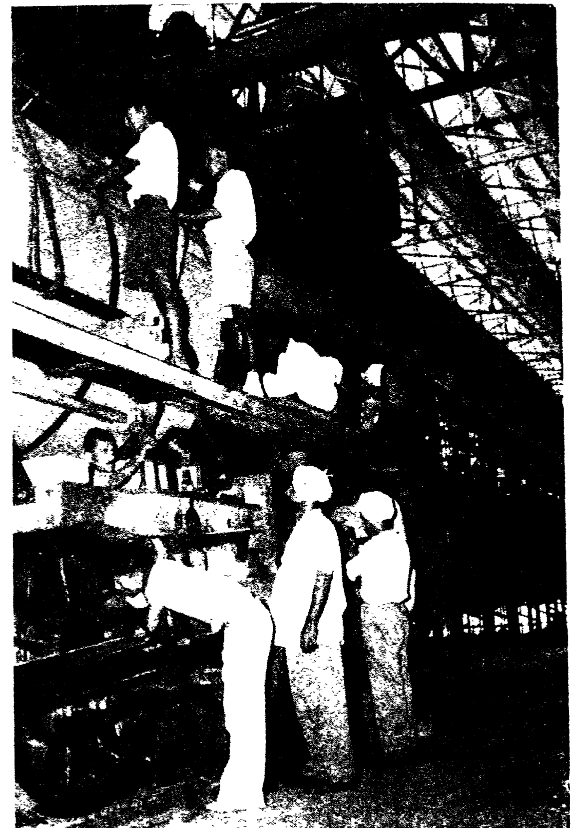
इंजन के ढांचे पर काम हो रहा है ।



1 मार्च 1952 को चितरंजन में कर्मचारियों के सम्मुख भाषण करते हुए प्रधान मंत्री ।



"इरेक्टिंग शॉप" का एक दृश्य।



वाल्व गीयर को इकट्ठा किया जा रहा है।



चितरंजन में बना हुआ एक इंजन।

चितरंजन, रेलों के सामान में आत्म-निर्भरता प्राप्त करने के लिए, स्वतंत्र भारत के प्रथम महान् आयोजन का प्रतीक है। नगर की दृष्टि से, वह भविष्य के औद्योगिक नगरों का आदर्श है। कारखाने की बनावट और विस्तार, मशीनों की श्रेष्ठता और नवीनता से प्रकट होता है कि आज का भारत संसार के प्रगतिशील औद्योगिक देशों की बराबरी करने तथा संचालन और उत्पादन के सर्वोच्च आदर्शों को स्थापित करने के लिए आतुर हो उठा है। चितरंजन ने एक स्वप्न को सच कर दिया है।

16. बिजली से क्रान्ति

उन्नीसवीं सदी के उत्तरार्ध में बिजली-शक्ति के विकास और व्यवहार के साथ-साथ एक नवीन युग आरम्भ हुआ। करीब सत्तर साल पहले, बेतार के तार और दूरदर्शन यंत्र की कौन कहे, टेलीफोन और बिजली की रोशनी का भी कहीं पता न था। उस समय ट्राम गाड़ियाँ अधिकतर घोड़ों से चलती थीं और यातायात के लिए भाप की चलन-शक्ति अभी आरंभ हो रही थी।

बिजली-शक्ति के विकास के फलस्वरूप बहुत से परिवर्तन हुए। हर घर में प्रकाश और शक्ति के लिए बिजली जरूरी हो गयी। मिल और कारखानों में बिजली का व्यवहार होने लगा। तार के समान टेलीफोन भी संचार का उपयोगी साधन बन गया।

इस नयी शक्ति ने शीघ्र ही यातायात के क्षेत्र में भी प्रवेश किया। रेलवे स्टेशन, यार्ड और रेलगाड़ियों में मोमबत्तियों, तेल व गैस की बत्तियों की जगह दमकने वाली बिजली की बत्तियाँ लग गयीं। हाथ से चलनेवाले अनेक यंत्र और रेल-कारखानों की मशीनें अब बिजली से चलने लगीं। यात्रियों को आराम पहुँचाने और बिगड़ने वाली चीजों को बचाने के लिए, वायु-अनुकूलित सवारी-डिब्बे और माल के ठण्डे डिब्बे चालू किए गए। स्वचालित रंगीन रोशनी के सिगनलों के लगते ही, रेल-यात्रा अधिक सुरक्षित हो गयी और सिगनल देने की प्रथा में क्रान्ति सी हो गयी। चलन-शक्ति से बिजली की श्रेष्ठता प्रकट हुई और सामूहिक यातायात का अधिक अच्छा और तेज साधन निकल आया।

बिजली की शक्ति का उपयोग

बिजली की चलन-शक्ति के सबसे प्रारम्भिक उपयोग का उल्लेख 1839 में मिलता है। उस समय एडिनबरा से ग्लासगो के बीच की लाइन पर एक छोटा रेल का इंजन चलाया गया। इसमें बहुत भद्दे किस्म का एक मोटर लगा हुआ था जिसमें पुरानी बनावट की बिजली की छोटी-छोटी बैटरियों से शक्ति पहुँचती थी। रेल के इंजीनियरों ने, इस डर से कि कहीं यह भाप के इंजनों की जगह न चलने लगे, इसे बुरी तरह से नष्ट कर डाला। करीब ४० साल बाद, अच्छी मोटरों की एक बिजली से चलने वाली गाड़ी चालू हुई। फिर भी, गाड़ी चलाने में बिजली के प्रथम सफल प्रयोग का प्रदर्शन 1879 में हुआ, जब बर्लिन प्रदर्शनी के दर्शकों को, बिजली से चलने वाले इंजनों की छोटी-छोटी गाड़ियों में घुमाया गया।

बिजली की चलन-शक्ति के प्रारम्भिक प्रयोग कहीं-कहीं, खासकर जहाँ इससे लाभ

होता दिखायी पड़ा, सफल हुए, फिर भी संचालन की अनेक समस्याओं को हल करने और रास्तों पर किफायत से लगनेवाले सामान की बनावट के लिए बड़ी छान-बीन और मेहनत करनी पड़ी।

नयी सदी के आरम्भ होते ही बिजली की चलन-शक्ति में तेजी से विकास होने लगा। भाप के इंजनों से न संभलनेवाले, उपनगरों के भारी यातायात में इसका उपयोग बराबर बढ़ता गया। विकास की अगली वृद्धि में इसका व्यवहार पहाड़ियों की चढ़ाई और सुरंगों से होकर जाने वाली रेलों के लिए हुआ। जापान, फ्रांस, इटली, स्विटजरलैण्ड और स्वीडन जैसे देशों में बिजली की चलन-शक्ति ने बड़ी उन्नति की है और दूसरे बहुत से देशों में भी शहरी क्षेत्रों के भारी यातायात के लिए इसका पूरी तरह उपयोग हुआ है।

भारत की रेलों में बिजली का उपयोग

भारत में बिजली की चलन-शक्ति का उपयोग हाल में शुरू हुआ है। फिर भी, भविष्य में इसके व्यवहार की बड़ी सम्भावनाएँ हैं। भारत में पहली बिजली की रेल भूतपूर्व जी० आई० पी० रेलवे के बम्बई खण्ड की बम्बई से कुर्ला की साढ़े नौ मील लम्बी हार्बर शाखा पर चली। इसका उद्घाटन 1925 में हुआ। बम्बई और कल्याण के बीच बिजली गाड़ी चलाने की यह पहली मंजिल थी। 1926 में, उपनगरीय मुख्य लाइन पर, बम्बई से कुर्ला और कुर्ला से थाना तथा हार्बर शाखा की माहीम कार्ड पर बिजली की रेलें चालू हुईं। 1926 में, बम्बई से 33 मील, कल्यान तक बिजली की रेल पूरी कर दी गयी।

लगभग इसी समय 1928 में बम्बई बड़ौदा एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे के अधीन, बम्बई और बोरविली के बीच की लाइन पर भी बिजली की रेल चलने लगी।

1929 और 1930 में, भूतपूर्व जी० आई० पी० रेलवे की मुख्य लाइन के उत्तर-पूर्व मार्ग पर, कल्यान और इगतपुरी के बीच 52 मील तक, और दक्षिण-पूर्व मार्ग पर, कल्यान और पूना के बीच 86 मील तक, बिजली की रेलें चालू हो गयीं। 1931 में, मद्रास बीच और ताम्बरम् की मीटर लाइन पर बिजली लगाकर यातायात के लिए खोल दी गयी। 1936 में, भूतपूर्व बम्बई बड़ौदा एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे के बोरविली और विरार के बीच भी गाड़ियाँ बिजली से चलने लगीं।

तब से भारत में बिजली का कोई अधिक विकास नहीं हुआ है, यद्यपि बहुत सी बिजली-योजनाओं की जाँच-पड़ताल जारी है। कलकत्ता के आसपास के उपनगरों की लाइनों पर बिजली लगाने की योजना पर विचार हो रहा है। मध्य रेलवे के इगतपुरी और भुसावल स्टेशनों के बीच बिजली-गाड़ी चलाने के प्रश्न पर भी विचार हो रहा है।

मध्य रेलवे में बिजली

1914 में ही, बम्बई के रेल-मार्ग पर बिजली-गाड़ी चलाने की योजना पर बहुत कुछ विचार हुआ था। किन्तु, लड़ाई के कारण बात आगे न बढ़ सकी। 1922 में, बम्बई और कल्यान के बीच बिजली लगाने की योजना मंजूर कर ली गयी। लड़ाई के बाद,

बम्बई में मकानों की बेहद कमी हो जाने से भी इस योजना को प्रोत्साहन मिला। बम्बई की आबादी को इधर-उधर बिखेरने के लिए, उसके उपनगरों का विस्तार बहुत जरूरी हो गया।

उपनगरीय यातायात

सबसे पहले, बम्बई म्यूनिसिपेलटी ने मिल-मजदूरों को हार्बर शाखा के किनारे बसाने की योजना बनायी। इसका बड़ा महत्व है क्योंकि इसी से बिजली-संचालन के पक्ष में अन्तिम निर्णय हुआ। इसको बनाने का एकमात्र यही व्यावहारिक उपाय था कि रेल-मार्ग को चुनाई की डाटों और इस्पात के पुलों पर इतनी काफ़ी दूर तक ले जाया जाता कि वाडी बन्दर का माल यार्ड और बम्बई टरमिनस को जानेवाले मुख्य मार्ग की चारों लाइनें पार हो जातीं। इसके लिए मुख्य लाइन के उतार के कठिन मोड़ को प्रति 34 फीट में 1 फुट से कुछ अधिक फैलाना जरूरी हो गया। यह मालूम हुआ कि ऐसे चढ़ाव-उतार पर भाप के इंजनों से उपनगरीय गाड़ियाँ भरपूर नहीं चलायी जा सकतीं। यह भी एक मुख्य कारण था, जिससे कल्यान तक के पूरे रेल-मार्ग पर बिजली गाड़ी चलाना तै हुआ।

उपनगरीय लाइनों में बिजली हो जाने के कुछ वर्षों तक, 1930 के आसपास की व्यापारिक मन्दी और रुकावट के कारण बिजली यातायात का विस्तार आशा से बहुत कम हुआ। किन्तु, पिछले दस वर्षों में बहुत तेजी से विकास हुआ है। आज उपनगरों में बिजली की रेलें बहुत लोकप्रिय हैं और उनसे बम्बई के रहने वालों को बड़ा लाभ हुआ है।

ये गाड़ियाँ सस्ते यातायात का साधन है और इनसे उपनगरों के विकास में बड़ी मदद मिली है। उपनगरों की लाइन में बिजली होने के बाद से, बम्बई की आबादी पांच लाख से बढ़कर 1950-51 में 30 लाख हो गयी तथा बम्बई के आसपास के कुछ उपनगर तो बिजली की रेलें चल जाने के बाद बने। 1926-27 में, रेलों से 3 करोड़ 20 लाख यात्री गये, किन्तु 1951-52 में, यात्रियों की संख्या 29 करोड़ 20 लाख तक पहुँच गयी। आज अकेले मध्य रेलवे के उपनगरीय क्षेत्रों में रोज 550 से अधिक बिजली गाड़ियाँ चलती हैं।

घाटों का जमघट

उत्तर-पूर्व में इगतपुरी और दक्षिण-पूर्व में पूना तक की मुख्य लाइन पर बिजली लगाने का कारण भिन्न था। थाल और भोर घाट की चढ़ाइयों पर लाइन तो बन चुकी थी, किन्तु यहाँ कुछ खास रुकावटों के कारण, गाड़ियों के जल्दी चलने में बड़ी रुकावट होती थी। भाप से चलने वाली गाड़ियों में काफी खर्च पड़ता था। सवारी गाड़ियाँ, घाटों में काम देनेवाले विशेष प्रकार के इंजनों से चलायी जाती थीं, और माल-गाड़ियों को, घाटों की प्रति 37 फीट में 1 फुट की चढ़ाई के ऊपर चलने के पहले, दो भागों में कर दिया जाता था।

बम्बई और पूना के बीच जो आकर्षक स्वास्थ्य-स्थल था और जहां घुड़दौड़ के शौकीन सप्ताह के अन्त में बराबर जाया करते थे, यातायात काफ़ी बढ़ा-चढ़ा था। यह

अनुभव किया गया कि अच्छी प्रकार की सवारी गाड़ियों के चलने से केवल यात्री-यातायात और कमाई में ही वृद्धि नहीं होगी बल्कि दोनों शहरों के बीच के अनेक स्टेशनों की भी उन्नति होगी। यह दूसरा कारण था जिससे बम्बई और पूना के बीच बिजली-गाड़ी चालू की गयी।

मुख्य लाइन के इन भागों में बिजली लगने से घाटों के अवरोध को दूर करने में काफ़ी मदद मिली और गाड़ियों का चलना सरल हो गया। डाक और एक्सप्रेस गाड़ियों के दौड़ने के समय में एक घण्टा से अधिक की कमी कर दी गयी है। 'डेकन क्वीन' जैसी बम्बई से पूना को सीधी जाने वाली गाड़ियाँ अब तीन घण्टे में पहुँचती हैं। मालगाड़ियों में अब ज्यादा माल जाने लगा है और उन्हें घाटों के ऊपर ले जाने के लिए अब बाँटना नहीं पड़ता, जिससे संचालन-खर्च में काफी कमी और चाल में अधिक तेजी आने लगी है।

रेल-मार्ग पर जो पूरा का पूरा बड़ी लाइन का है, 1500 वोल्ट की सीधी करेण्ट की चलन-शक्ति का सामान लगाया गया है। सब मिलाकर 16 उप-सटेशन हैं, जिनसे कुल 103,000 किलोवाट बिजली पैदा होती है। इनमें से 11 उप-स्टेशनों का नियंत्रण कल्यान के केन्द्रीय निरीक्षण-केन्द्र से होता है।

बिजली की शक्ति

सभी बिजली-गाड़ियों को चलाने के लिए, रेलवे के कल्यान बिजली घर में शक्ति पैदा की जाती है। यह 1929 में, 40,000 किलोवाट बिजली पैदा करने के लिए तैयार किया गया था। मध्य और पश्चिम दोनों रेलों की बिजली-सम्बन्धी कुल जरूरतों को पूरा करने के लिए, इस स्टेशन में 82,000 किलोवाट बिजली पैदा करने की व्यवस्था की जा रही है। इसके विस्तार की पहली कार्यवाही 12,000 किलोवाट शक्ति-उत्पादन के यंत्र लगाकर दिसम्बर 1952 में पूरी कर दी गयी।

मध्य रेलवे की बिजली-गाड़ियों को चलाने के सामान में, चार डिब्बों की अनेक कामवाली 67 बिजली गाड़ियाँ, 25 सवारी और 41 माल-गाड़ी के इंजन हैं। विविध काम में आनेवाली चार डिब्बों की गाड़ियों में 16 गाड़ियाँ 1951 में चालू हुईं। इन नयी गाड़ियों की बनावट पुरानी से बिल्कुल भिन्न है। इनमें हल्के वजन की बनावट का ढंग अपनाया गया है। भारतीय रेलों के इतिहास में पहली बार बिजली से आपु-सचालित ब्रेक और नली की रोशनी (फ्लोरेसेन्ट लाइट) का इन बिजली की गाड़ियों में इस्तेमाल किया गया।

पश्चिम रेलवे की बम्बई और बोरविली की 22½ मील की दूरी में, 1928 के अन्तिम भाग में बिजली का काम पूरा हुआ और जैसा पहले बताया जा चुका है, इस लाइन के बोरविली से विरार के 16½ मील के विस्तार को 1936 में चालू किया गया। उपनगरों की बढ़ती हुई आबादी की यातायात सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए, उपनगरीय भाग में बिजली-गाड़ियाँ चालू की गयीं। भूतपूर्व जी० आई० पी० रेलवे की तरह यहाँ भी व्यापारिक मन्दी के कारण शुरू में यातायात में आशा कम वृद्धि हुई। किन्तु, हाल के कुछ वर्षों में यातायात बहुत बढ़ गया है और उपनगरीय यात्रियों की संख्या 1930-31 में

3 करोड़ 10 लाख से बढ़कर 1950-51 में 15 करोड़ हो गयी।

रेल-मार्ग पर 1,500 वोल्ट की सीधी करेण्ट की चलन-शक्ति का प्रबन्ध किया गया है। कुल मिलाकर पाँच उप-स्टेशन हैं और एक स्टेशन बन रहा है। इस पर चार डिब्बों की 52 गाड़ियाँ चलती हैं, जिनमें 12 आधुनिक बनावट की हैं और 1952 के शुरू में चालू की गयी हैं।

दक्षिण रेलवे

मद्रास बीच और ताम्बरम् के बीच का 18 मील लम्बा नया रेल-मार्ग, उपनगरीय बिजली-गाड़ी को चालू करने के लिए बनाया गया। यह लाइन बिजली-गाड़ी के लिए 1930 में चालू हुई। इस रेल-मार्ग पर भी, जो समूचा मीटर गेज का है, 1,500 वोल्ट की सीधी करेण्ट की चलन-शक्ति का प्रबन्ध है। बम्बई की तरह इस लाइन में भी उपनगरों में रहने वालों की सुविधा और शीघ्र यातायात के लिए बिजली लगायी गयी। बम्बई की रेलों की तरह इसमें भी बिजली लग जाने के बाद, यात्रियों के यातायात में वृद्धि हुई।

इसमें जुड़े हुए चौखटों के तीन डिब्बों की 17 गाड़ियाँ चलती हैं और बिजली की गाड़ियों के लिए, मद्रास बिजली कम्पनी के दो उप-स्टेशनों से बिजली ली जाती है जो इसी उद्देश्य से बनाये गये हैं।

17. पहाड़ी रेल

"अगर फिरदौस बररूए जमीं अस्त, हमी अस्तो, हमी अस्तो, हमी अस्त।" यदि पृथ्वी पर कहीं स्वर्ग है, तो यहाँ है, यहाँ है, यहाँ है—सम्राट जहाँगीर कश्मीर की घाटी की बिखरी हुई छटा को देखकर फूट पड़ा। कश्मीर ही स्वर्ग है। शिलांग से श्रीनगर तक 1400 मील लम्बी हिमाच्छादित चोटियों वाले हिमालय की तराई और दक्षिण की नीलगिरी पहाड़ियों में सैकड़ों ऐसे स्थान हैं जो सुन्दरता में संसार के किसी भी स्थान से होड़ ले सकते हैं। इन स्थानों की प्राकृतिक छटा आगन्तुक को आकर्षित करती है और उसे यहां आन्तरिक आनन्द मिलता है।

प्रकृति का सुन्दरतम रूप

सहस्रों वर्ष का भारतीय इतिहास इस बात का साक्षी है कि ये स्थान शान्ति और एकान्त प्रेमी ऋषि-महर्षि, प्रकृति-रहस्य के जिज्ञासु, अध्यात्मवादी तीर्थयात्री, सृष्टि-सौन्दर्य के प्रेमी पर्यटक और मैदान की गर्मी से मुक्ति चाहनेवाले व्यक्तियों को सदा आकर्षित करते रहे हैं। फिसलती हुई बर्फ की चट्टानें, हिमाच्छादित चोटियों का विस्तृत और अनन्त दृश्य, नदी, झील आदि जलाशयों से मिलने के लिए आतुर झरनों का जल, हरी-भरी घाटियों से झाँकती हुई भीमकाय चट्टानें, पहाड़ की शोभा बढ़ानेवाले नाना प्रकार के जंगली फूल, शुण्डाकार विशाल वृक्ष, सभी प्रकृति के सौन्दर्य को बढ़ाते हैं। पहाड़ी रेलों के निर्माण और संचालन में निर्माताओं को बहुत सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा और इन पर विजय पाने के लिए उन्होंने बड़ी सूझ-बूझ से काम लिया।

रेलों के समागम से पहले इन पहाड़ी स्थानों में लोग या तो पैदल चलकर आते थे अथवा घोड़ा, पालकी, डोली, घोड़ा-गाड़ी या बैलगाड़ी में यात्रा करते थे।

ईस्ट इन्डिया कम्पनी के प्रारंभिक काल में शिमला, सोलन, धर्मपुर, नैनीताल, कुरसियांग और दक्षिण भारत में उटकमण्ड, कुनूर और कोडाई कनाल में योरुप के लोगों की छोटी-छोटी बस्तियाँ बस गयी थीं। 1856 में कमान्डर-इन-चीफ के सैनिक सचिव कर्नल कनेड़ी ने कालका से शिमला तक 58 मील लम्बी सड़क का निर्माण कराया। 1861 में सिलिगुरी-दार्जिलिंग सड़क बनी जिसका श्रेय लार्ड नेपियर को है जो उस समय भारतीय सेना में लेफ्टीनेण्ट थे।

पहाड़ी रेल बनाने का पहला प्रयोग स्विटजरलैण्ड में हुआ। स्विटजरलैण्ड और आल्प्स श्रेणी के समीपवर्ती देश के निवासियों ने अनुभव किया कि आल्प्स उनके रास्ते में

बाधक है। 1839 में लैनिका नाम के इन्जीनियर ने 7000 फीट ऊँचे एप्स्ल्यूजन दर्रे से होकर आल्प्स के पार रेल की लाइन निकालने का प्रयत्न किया किन्तु उन्हें अपने उद्देश्य में सफलता न मिली। आल्प्स पर पहली रेलगाड़ी चलाने का श्रेय आस्ट्रिया के इन्जीनियर चेगा को है। चेगा ने पूर्वी आल्प्स में सेमरींग लाइन का निर्माण किया जो संसार में अपने ढंग की पहली रेलवे लाइन थी। इससे भविष्य में बननेवाली लाइनों के निर्माण में सहायता मिली। चक्करदार रास्ते बनाकर पहाड़ी के चढ़ाव-उतार को ठीक करने के नियम का प्रयोग सबसे पहले चेगा ने ही किया था। 1878 में भारतीय इंजीनियरों ने सिलिगुरी-दार्जिलिंग लाइन के निर्माण में इस नियम का सफल प्रयोग किया जिससे खर्चीली सुरंगें नहीं बनानी पड़ीं। इस लाइन के निर्माण में एक दूसरा नियम भी काम में लाया गया। वह यह कि लाइन कहीं पीछे की ओर मुड़कर और कहीं टेढ़े रास्ते से आगे बढ़ती है। यद्यपि गाड़ी को पीछे की ओर हटना पड़ता है, फिर भी वह हर मोड़ और चक्कर के साथ ऊंचाई पर चढ़ती है।

प्रारंभिक प्रयोग

पहाड़ी रेल के निर्माण में एक दूसरी युक्ति का भी सफल प्रयोग किया गया है। यह प्रयोग लाइन के बीच तीसरी पटरी का है। 1812 में ब्लेन्किन्साप ने इस युक्ति के आधार पर पहला इंजन चक्करदार लाइन पर चलाया था। जे० बी० फेल नाम के एक अंग्रेज इंजीनियर ने अत्यधिक ढालू लाइन पर चलनेवाला इंजन तैयार किया जो तीसरी पटरी के सहारे आगे बढ़ता था। इस इंजन में दो क्षितिजाकार पहिये लगे थे जो शक्तिशाली स्प्रिंग से रेल की पटरी पर दबाव डालते थे। इस युक्ति से इंजन सहायक पटरी के सहारे ऊँचाई पर चढ़ जाता था, यद्यपि ये पहिये स्वयं इंजन द्वारा चलाये जाते थे। फेल ने प्रयोग के लिए लाइन बना कर यह सिद्ध किया कि उनका इंजन 10 में 1 की ऊँचाई पर चढ़ सकता है। इस इंजन में कुछ दूसरी सुविधायें भी थीं। यह दूसरे इंजनों की अपेक्षा हलका और सस्ता था। बीच की तीसरी पटरी पर चलने के कारण इसके रेल से उतर जाने की संभावना भी कम थी। फेल ने जो इंजन बनाया उसने बाद में बनने वाले पहाड़ी रेल के इंजनों के लिए नमूने का काम किया।

दार्जिलिंग रेलवे

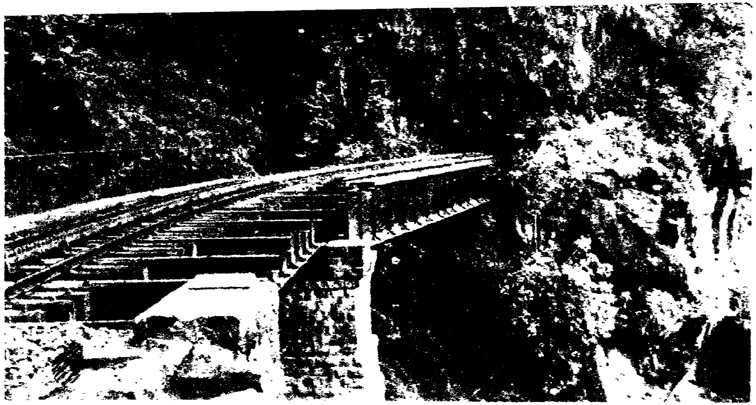
आल्प्स पर्वत पर रेल की लाइन बनाने में इंजीनियरों को जो कठिनाइयां उठानी पड़ीं उन्हें ध्यान में रख कर यदि देखा जाय, तो 1878 में सिलिगुरी-दार्जिलिंग रेलवे का निर्माण एक महत्वपूर्ण प्रगति है। इसका श्रेय ईस्ट बंगाल रेलवे के एजेण्ट फ्रैंकलिन प्रेस्टेज को है। इन्होंने इसकी योजना तैयार करके दो फ़ीट की 51 मील लम्बी लाइन का निर्माण 2 वर्ष के भीतर कराया। यह लाइन अधिकतर उस रास्ते से होकर निकाली गयी है जहाँ पहले बैलगाड़ी की सड़क थी। जहाँ चढ़ाई अथवा ढलान अधिक है, वहाँ लाइन को घुमा फिरा कर 40 मील की लम्बाई में 7000 फीट की ऊँचाई पर चढ़ा दिया गया है। साधारणतः



दार्जिलिंग हिल रेलवे में सुरंगों के बजाय मोड़ और घुमाव देकर लाइन बनाई गई है।
(घूम में बतासिया लूप लाइन)



मेट्टुपलयम से उटकमण्ड (पहाड़ी स्टेशनों की रानी) तक फैली नीलगिरी माउन्टेन रेलवे में निर्माण सम्बन्धी कई निराली विशेषताएं हैं। इनमें से कुछ विशेषताएँ अगले चित्रों में दिखायी गयी हैं।



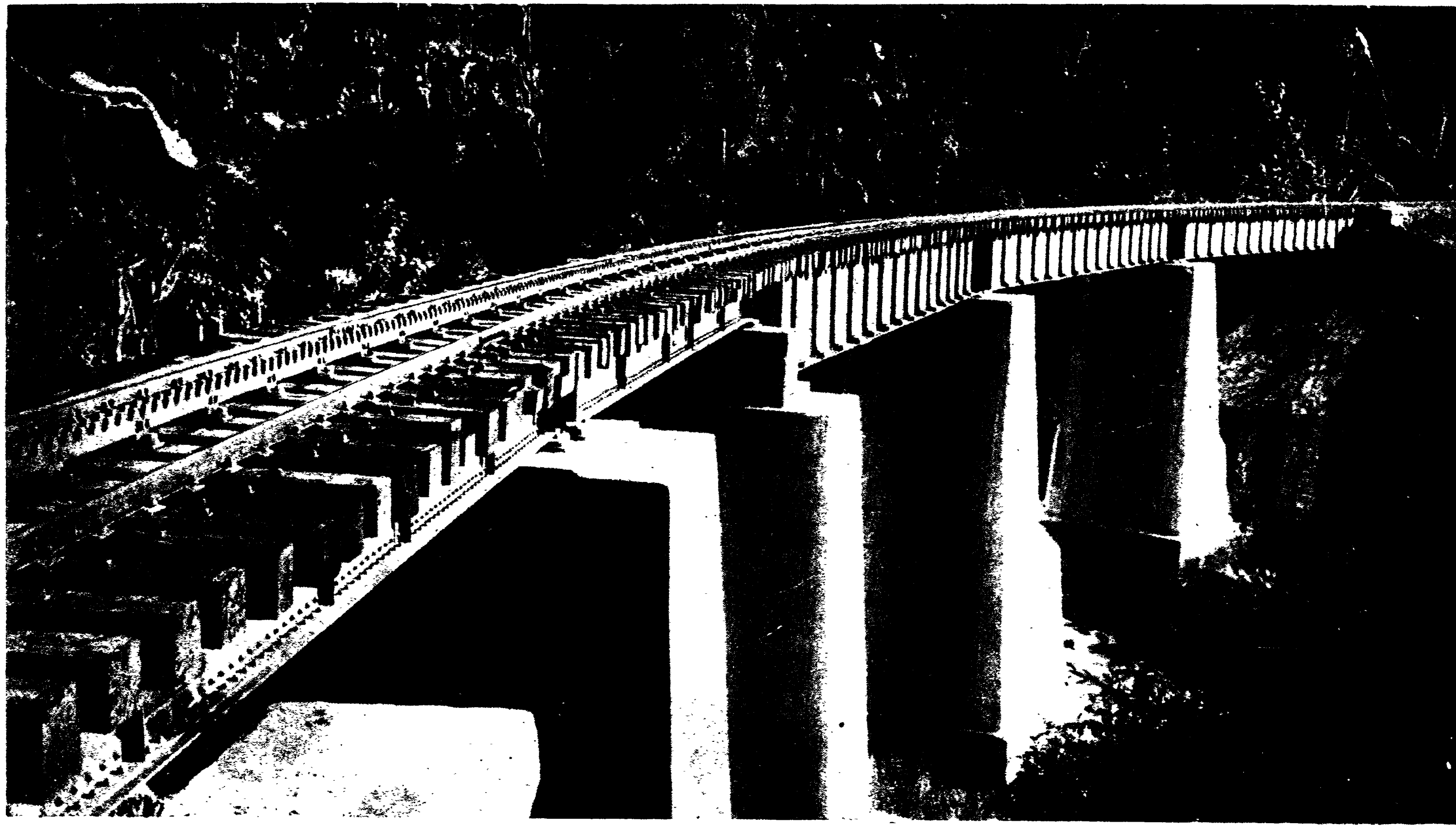
बायें (ऊपर) : सुरंग से लगा हुआ एक पुल।

बायें (नीचे) : उटकमण्ड जाने वाली गाड़ी एक मेहराबदार पुल से गुजर रही है।

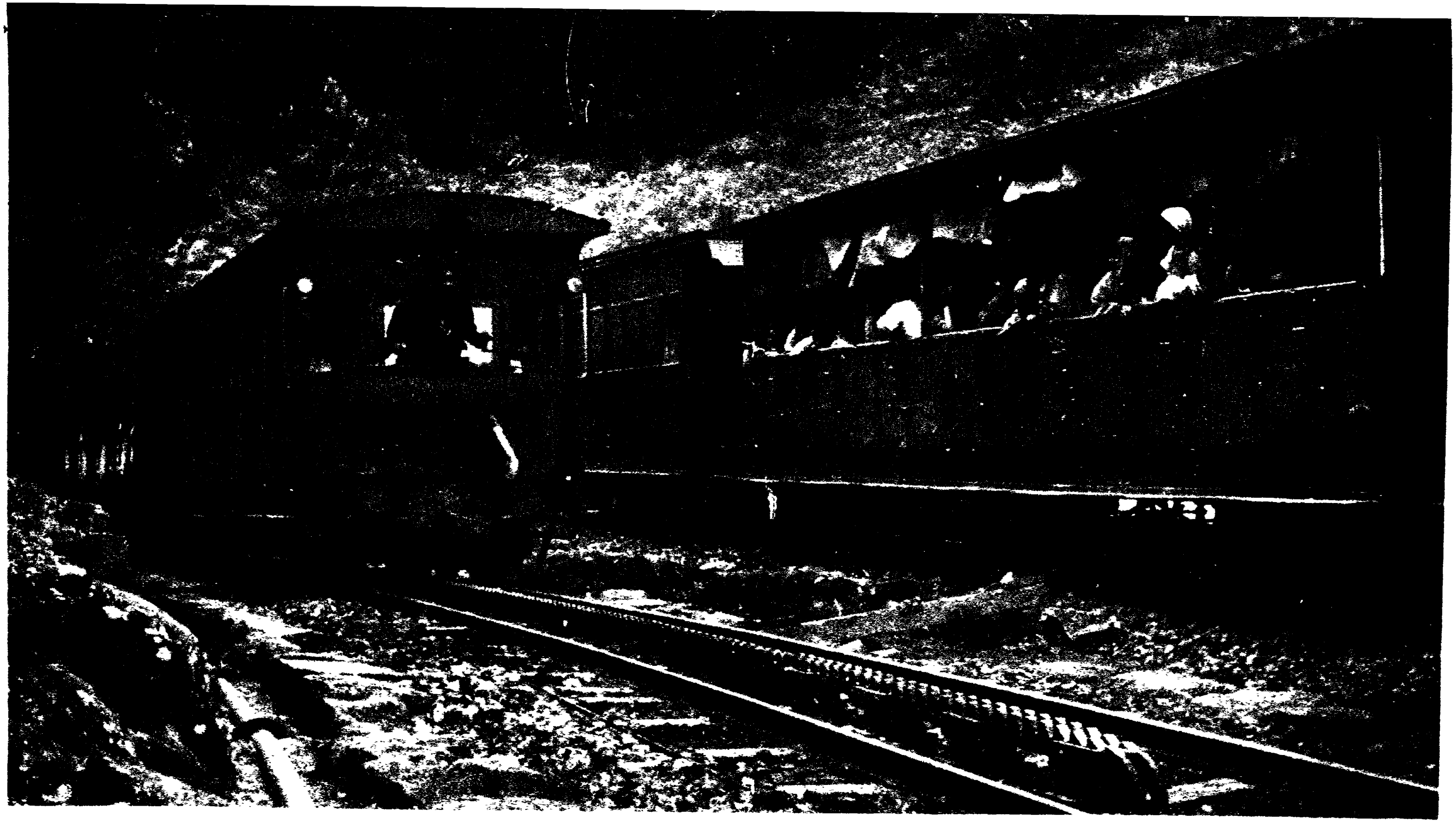
नीचे : तीन पटरियों पर जाता हुआ इंजन। बीच की रैक लाइन को देखिए।







पुल के ऊपर रेलवे लाइन का निकट से लिया गया दृश्य जिसमें रैंक लाइन दिखायी पड़ रही है।



नीलगिरि माउन्टेन रेलवे पर 'ब्ल्यू माउन्टेन एक्सप्रेस'। देखिए गाड़ी को इंजन पीछे से धकेल रहा है और गार्ड यह देख रहा है कि लाइन पर कोई रुकावट तो नहीं है।



जैसा इन दो चित्रों में दिखाया गया है, इस लाइन पर अक्सर धरती खिसकने से रास्ते में पत्थरों के टुकड़े जमा हो जाते हैं। गाड़ी के कर्मचारियों को इन रुकावटों का बड़ा ध्यान रखना पड़ता है जो कभी-कभी तेज़ घुमावों पर एक दम सामने आजाती हैं।





दार्जिलिंग हिल रेलवे में "लूप प्रणाली (Loop system) का एक उदाहरण।

नीलगिरि रेलवे की एक सवारी गाड़ी का दृश्य जिसमें 1 : 12 के तेज़ चढ़ाव पर गाड़ी जा रही है।





पूर्वोत्तर रेलवे में बीदरपुर और लुमडिंग के बीच पहाड़ी खण्ड का एक दृश्य । छोटी सुरंग के बाहर फैले हुए मालडिब्बों को देखिए ।

चढ़ाव-उतार का अनुपात 25 में 1 का है, लेकिन कहीं-कहीं यह अनुपात 20 में 1 और 19 में 1 तक भी है। इसके सबसे बड़े मोड़ का अर्द्धव्यास 59 फीट है। इस प्रकार सुरंग के बिना चक्करों और घुमावों के आधार पर इसका निर्माण किया गया है। चक्करदार लाइनों और छोटे-छोटे पुलों के द्वारा इसे उत्तरोत्तर ऊँचाई पर चढ़ाया गया है। कहीं-कहीं लाइन को पीछे ले जाकर ऊँचाई पर चढ़ाने का प्रयत्न किया गया है।

पहले-पहले जो इंजन बने, वे दो फुट चौड़े रास्ते के लिए भी छोटे होते थे। वे अधिक से अधिक 7 टन वजन खींच सकते थे, लेकिन आधुनिक इंजन 32 टन का भार आसानी से खींच सकते हैं। इन इंजनों में 4 पहिये होते हैं जिनमें 11″ × 14″ मोटे बेलन लगे होते हैं। उनका भार 14 टन होता है। इंजन के सामने बालू से भरे हुए 2 सन्दूक रखे रहते हैं। वर्षा काल में पटरी की देख-रेख करने वाले कर्मचारी बालू को पटरी पर छिड़कते चलते हैं ताकि पटरियों से पहिये फिसल न जायें। इस इंजन में कोयला ब्वायलर के ऊपर रखा जाता है। हरे रंग में रंगे हुए ये इंजन ऐसे प्रतीत होते हैं मानो राक्षस स्वरूप युद्धोन्मत घोड़े महान रथों को खींचने का प्रयास कर रहे हों। आरम्भ में सवारी गाड़ियाँ चार पहियों की एक छोटी सी ट्राली के समान होती थीं जिनके ऊपर कनवास की छत और अन्दर बैठने के लिए लकड़ी की दो बेंच रहती थीं। परन्तु आधुनिक सवारी गाड़ियों के डिब्बे 26 फीट लम्बे और 6 फीट चौड़े होते हैं और इनमें सभी तरह की सुविधा रखी गयी है। माल के डिब्बे अधिक से अधिक 32 फीट लम्बे होते हैं।

दार्जिलिंग

दार्जिलिंग रेलवे लाइन विभिन्न जलवायु और अनेक प्रकार के प्राकृतिक छटावाले प्रदेशों से गुजरती है। तराई में ऊँचे साल के वृक्ष, धान और चाय के विस्तृत क्षेत्रों के पीछे झांकते हुए दिखायी पड़ते हैं। पहाड़ियों में चक्कर काटती हुई ऊँचाई की ओर गाड़ी ज्यों ज्यों आगे बढ़ती है, सरों के वृक्ष, खिले हुए सेमर, लताओं से वेष्ठित और काई आदि से आच्छादित लम्बे लम्बे बांस दिखायी पड़ते हैं। जब गाड़ी 3,000 फीट की ऊँचाई पर पहुँचती है, तो पास के जंगलों और पर्वतों में अंजीर, देवदारु, बलूत और अखरोट के पेड़ मिलते हैं। चार हजार फीट की ऊँचाई पर भोजपत्र, मैपुल, लीचेन आदि से आच्छादित पहाड़ियाँ और पेड़ दिखलायी पड़ते हैं। इससे आगे ऊँचे-ऊँचे ओक और अखरोट के अतिरिक्त अनेक प्रकार के बड़े बड़े फूलोंवाले वृक्ष भी बहुतायत से पाये जाते हैं। प्रकृति का जैसा सुन्दर और मोहक रूप हमें सिलिगुरी और दार्जिलिंग की कुछ घण्टों की यात्रा में मिलता है, वैसा संसार की किसी भी यात्रा में नहीं मिल सकता। दार्जिलिंग से हिमालय की 12 से अधिक बर्फीली चोटियाँ दिखायी पड़ती हैं। उनकी ऊँचाई 20,000 फीट से अधिक हैं। इनमें से कुछ अब तक भी अज्ञात हैं।

पहले पहल 1847 में शिमला तक रेल की लाइन बनाने का विचार किया गया था। नवम्बर 1847 में इस रेलवे लाइन के रास्ते का मानचित्र और आय-व्यय-विवरण 'दिल्ली गजट' के एक पत्रकार ने प्रकाशित किया जिसमें लिखा कि "सम्भव है कि यह स्थान सरकार

निवासी हवा खोरी के लिए जाते है। मथरान का शाब्दिक अर्थ 'चोटी का जंगल' है। यह समुद्र की सतह से 2500 फीट की ऊँचाई पर बसा है। सबसे पहले मई, 1850 में थाना के जिलाधीश ह्यू म पंजीमैलेट ने इसका पता लगाया था। 1855 में बम्बई के गवर्नर लार्ड एलफिस्टन ने मथरान पहाड़ी स्टेशन की नींव डाली। सन् 1907 में नेराल-मथरान के बीच यातायात आरम्भ हो गया। नेराल मध्य-रेलवे के दक्षिण पूर्व भाग का एक स्टेशन है। इस रेलवे का निर्माण सर आदमजी पीर भाई ने किया था। इन्होंने इस काम के लिए 10 लाख रुपये की पूंजी से एक लिमिटेड कम्पनी खोली थी। इसमें दो हजार हिस्सेदार थे। यह लाइन दो फीट चौड़ी और 12.6 मील लम्बी है। इस पर 30 पौंड वाली पटरियां बिछायी गयी हैं। मार्ग में आनेवाले ढलानों का अनुपात 20 में 1 है। इस चक्करदार रेलवे लाइन से मथरान पहाड़ी के सुन्दर दृश्य दिखलायी पड़ते हैं। इस पहाड़ी के ढलानों पर बनी हुई लाइन इंजीनियरिंग की दक्षता की प्रतीक है। समतल पहाड़ियों पर गाड़ी की चाल अधिक से अधिक 12 मील प्रति घंटा है, किन्तु कुछ विशेष घुमावों पर, जिनका अर्द्ध व्यास 60 फीट है, चाल केवल पाँच मील रखी गयी है।

मथरान लाइट रेलवे में 0-6-0 श्रेणी के 4 इंजन हैं जो 36 टन बोझ खींच सकते हैं। यह लाइन मथरान पहाड़ी के किनारे-किनारे बनी है और कम खर्च में बनी हुई पहाड़ी रेल का एक अच्छा उदाहरण है।

18. कर्मचारी

रेल हमारे देश में लोगों को काम देनेवाला सबसे बड़ा धन्धा है। आज भारतीय रेलों में 9 लाख 25 हजार आदमी काम करते हैं। हर 400 भारतीयों में से एक रेल कर्मचारी है। हर सौ परिवार में एक का भरण-पोषण रेलवे से होता है। 1951-52 में रेलवे का 1 अरब 22 करोड़ रुपया कर्मचारियों पर खर्च हुआ, जो उसके वार्षिक संचालन-व्यय का लगभग आधा था। रेलवे में मुख्य रूप से काम करनेवालों के अलावा बहुत से लोग उसके सहायक उद्योग-धन्धों तथा निर्माण-कार्यों में लगे हुए हैं।

शाही मजदूर कमीशन ने 1931 में लिखा था, कि भारत में रेल के मजदूरों की समस्याएं जितनी अधिक हैं उतनी ही विभिन्न भी हैं। हर रेलवे की अपनी समस्याएं हैं, जिनका उनके रेल-मार्गों पर काम करने वालों की हालत पर बहुत बड़ा असर पड़ता है। रेल की लम्बाई, उसके आसपास के क्षेत्रों की हालत, वहाँ का जलवायु, क्षेत्रों की मानवीय और कई दूसरी विशेषताएं, वहाँ के लोगों की औद्योगिक उन्नति, जिसके फलस्वरूप रेलवे के लिए अधिक कर्मचारियों के मिलने की सम्भावनाएं तथा काम मिलने के दूसरे साधन आदि कुछ मुख्य समस्याएं

रेलवे के 6 लाख से अधिक कर्मचारी केवल मजदूर श्रेणी के हैं। इनमें बोझा उठाने वाले, गैंग मैन, प्वाइण्ट्स मैन, सफाई करने वाले, भंगी, भिश्ती, कारखानों के कर्मचारी, खान, इंजन-शेड, गाड़ी की जाँच करने के डिपो में काम करनेवाले तथा नावों और रेल-मार्गों की देखभाल करनेवाले कर्मचारी शामिल हैं। रेलवे कम्पनियों के बारे में यह नहीं कहा जा सकता कि दूसरे व्यापार-उद्योगों में दी जानेवाली मजदूरी से बहुत अधिक मजदूरी वे अपने कर्मचारियों को देती हैं, या उनके यहाँ काम करने की हालत बहुत अच्छी है। मजदूर कमीशन के अनुसार, "पिछले पचास वर्षों में दोनों ओर से अधिक से अधिक सुभीते की शर्तों का सौदा चलता रहा।" इस समय की एकमात्र उल्लेखनीय सुविधा प्रावीडेण्ट फण्ड की थी जो 1880 से जारी की गयी।

युद्ध का प्रभाव

पहले विश्वयुद्ध के बाद ही रेलों ने कम वेतनवाले कर्मचारियों की सुख-सुविधा की ओर ध्यान देना शुरू किया। युद्ध-काल में वेतन और भत्ता में काफी बढ़ती करना अनिवार्य हो गया और चीजों की महंगाई और बढ़ते हुए जीवन-व्यय को कम करने के लिए सस्ती अनाज की दूकानें भी खोली गयीं। पहले विश्वयुद्ध के बाद मजदूरों की हालत बहुत गम्भीर

हो गयी । चीजों के दाम बराबर बढ़ रहे थे । चारों ओर से संकटकाल की वेतन-वृद्धि को स्थायी कर देने की माँग तो हो ही रही थी, लोग उसमें भी काफ़ी बढ़ती चाहने लगे । युद्ध के प्रभाव ने मजदूरों को अपने अधिकारों के लिए सजग कर दिया । पहली बार रेल मजदूरों ने अपना संघ बनाया और संयुक्तरूप से अच्छी शर्तों की जोरदार माँग करने लगे ।

पहले विश्वयुद्ध से पहले हड़ताल एक अनहोनी घटना मानी जाती थी । यदि कभी हड़ताल हुई भी तो केवल सीमित क्षेत्र तक रहती थी और उसका प्रभाव केवल थोड़े से मजदूरों पर पड़ता था । पहले विश्वयुद्ध के बाद ही, मजदूर-संगठन बढ़ने लगे और संयुक्त रूप से सौदा करने के शक्तिशाली साधन बन गये । 1924 में, अखिल भारतीय रेल-कर्मचारी संघ (आल इण्डिया रेलवे मैन्स फेडरेशन) से सम्बन्धित संगठनों की संख्या एक दर्जन से अधिक थी और उनके सदस्यों की संख्या दो लाख से अधिक थी । इस समय हड़ताल एक साधारण घटना बन गयी जिससे रेल-कर्मचारियों के कष्टों और असन्तोष का पता चलता था ।

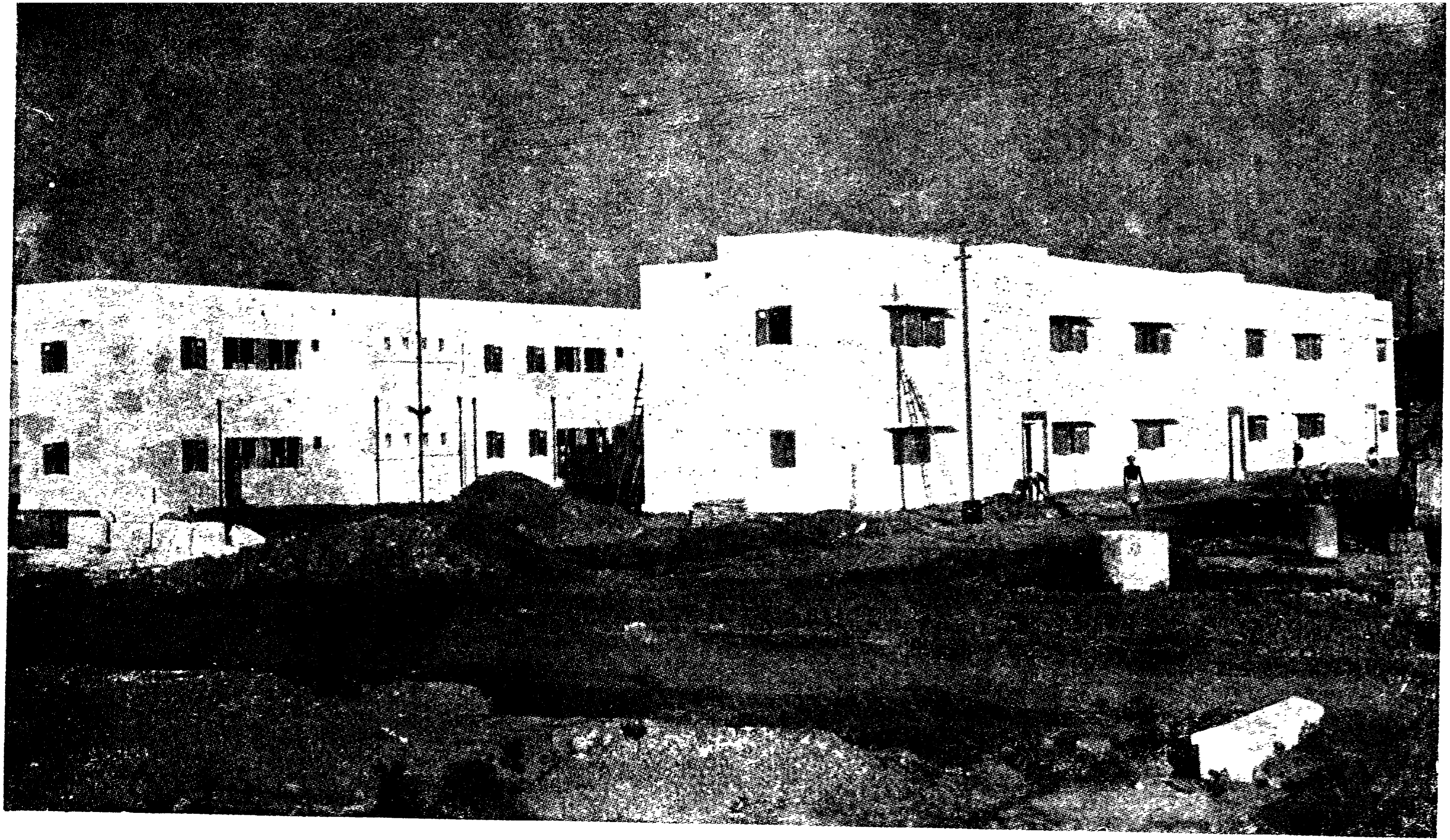
संयुक्त सौदा

सिर्फ 1921-22 में विभिन्न रेलों में 48 हड़तालें हुई, जो एक या दो दिन से लेकर तीन महीने तक चलीं । हडेलस्टन लिखते हैं, "ईस्ट इण्डियन रेलवे के पूरे इतिहास में 1921 के दिसम्बर के आरम्भ से 1922 के अप्रैल के चालू होने तक के समय से बढ़कर दुःखदायी समय कभी नहीं आया । यह पूरे चार महीने कर्मचारियों के लिए कष्ट और काम देनेवालों के लिए चिन्ता के दिन थे ।" इनमें से कुछ जटिल हड़तालों का वर्णन करते हुए, हडेलस्टन लिखते हैं कि '3 दिसम्बर 1921 को लिलुआ सवारी और माल-डिब्बा कारखाने के सात हजार कर्मचारियों, यानी प्रायः सभी लोगों ने हड़ताल कर दी । फ़रवरी की आखिरी तारीख को, लिलुआ से कुछ मील दूर, हावड़ा स्टेशन पर भारी दंगा हो गया । कहा जाता है कि लिलुआ के मजदूरों ने यह दंगा कराया था क्योंकि उनका विश्वास था कि उस दिन आम हड़ताल हो जायगी । पिछले वर्ष की तुलना में इस साल आमदनी में करीब साढ़े पचहत्तर लाख रुपये की कमी हुई । साथ ही यातायात में माल के खोने और बरबाद होने से 21 लाख से अधिक के दावों की भुगतान करनी पड़ी, इन हड़तालों से, विधान सभा और बाहर के लोगों की सहानुभूति अपने आप मजदूरों के प्रति हो गयी ।

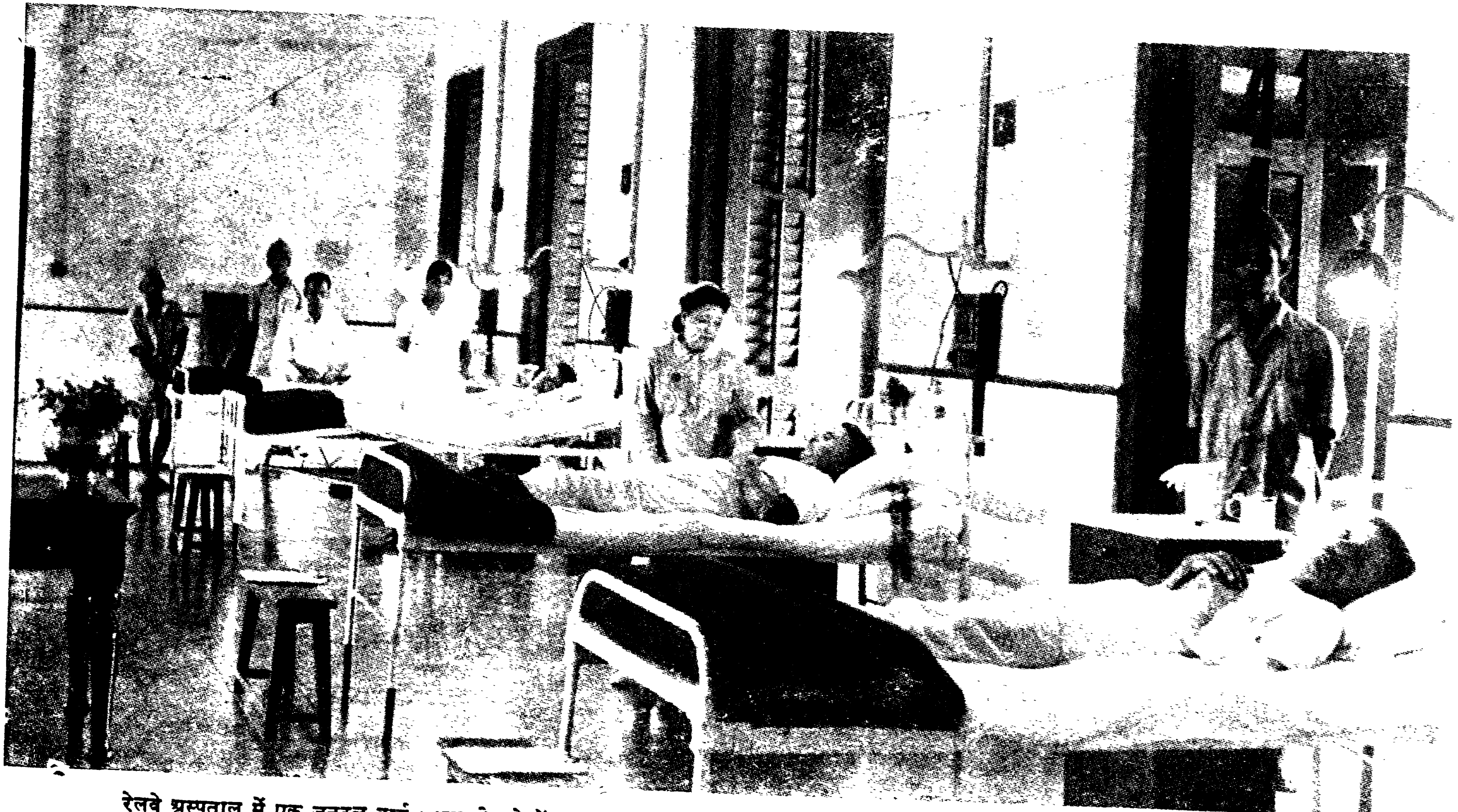
मजदूरों की दशा और उनको दी जानेवाली सुविधाओं में बराबर सुधार होता गया । कानून बनाकर काम के घण्टे बाँध दिये गये और अतिरिक्त समय के काम के घण्टों की मजदूरी अनिवार्य कर दी गयी । कर्मचारियों के अपने व्यावसायिक संगठन बनाने और सामूहिक सौदा करने के अधिकार को मान लिया गया । प्रावीडेण्ट फण्ड की सदस्यता अन्य श्रेणी के मजदूरों के लिए भी खोल दी गयी । बीमारी की छुट्टी की सुविधा निचली श्रेणी के कर्मचारियों को दी जाने लगी । कारखानों की दशा में बहुत कुछ सुधार हुआ । मजदूरों में किफायतशारी फैलाने के लिए अनेक सहकारी समितियाँ चालू की गयीं । घरों की हालत और मजदूर-बस्तियों के सामान्य जीवन को सुधारने के लिए काफ़ी रुपया दिया गया ।



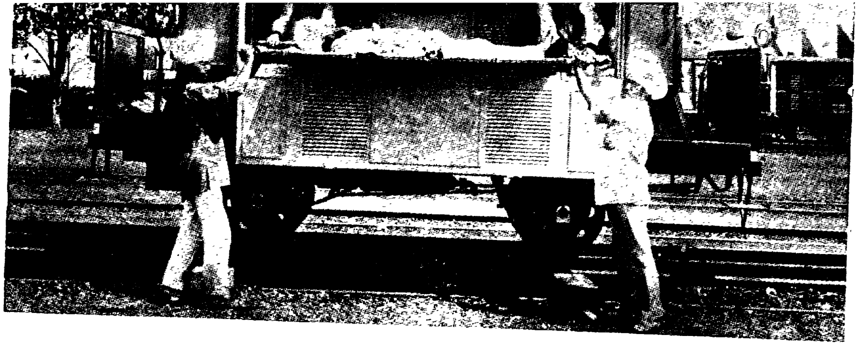
कर्मचारियों के मकान का एक नमूना



मद्रास के पेरम्बूर कारखाने के कर्मचारियों के मकान ।



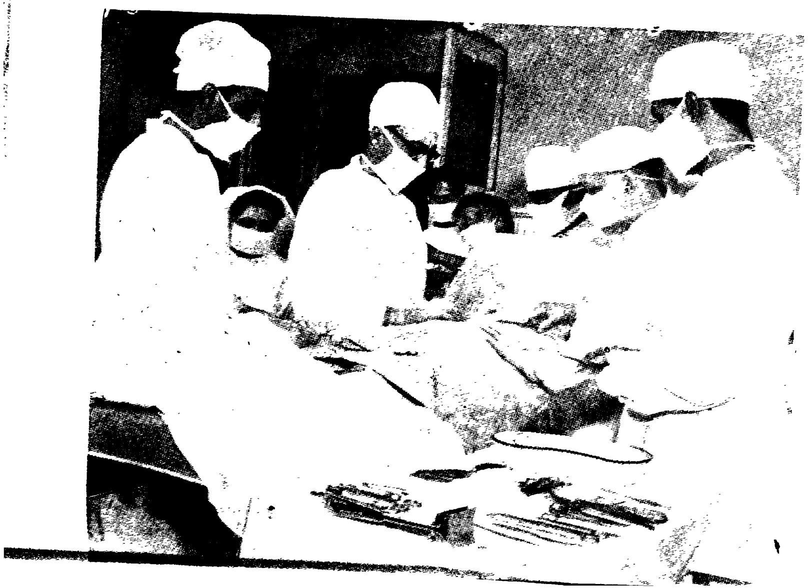
रेलवे अस्पताल में एक जनरल वार्ड। भारतीय रेलों पर काम करने वाले कर्मचारियों की चिकित्सा और कल्याण का विशेष ध्यान रखा जाता है।

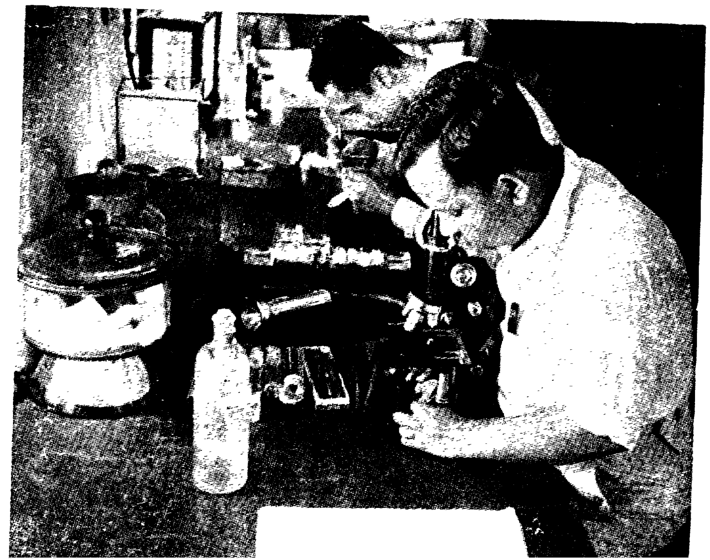


रोगी को स्ट्रेचर पर रखकर अस्पताल की मोटर तक ले जाया जा रहा है।

नीचे बायें : "आपरेशन थियेटर" में काम करता हुआ एक सर्जन।

नीचे : गार्डन रीच, कलकत्ता की एक प्रयोगशाला में मलेरिया पर अनुसन्धान किया जा रहा है।





1947 से रेलवे मजदूरों की स्थिति में और भी सुधार हुआ है। भारत सरकार ने उस समय न्यायाधीश राजाध्यक्ष को पंच बनाया और न्यायाधीश वरदाचारी की अध्यक्षता में एक केन्द्रीय वेतन कमीशन बनाया। पंच को रेलवे कर्मचारियों के काम के घण्टे, सामयिक विश्राम आदि पर विचार करना था और कमीशन को सरकारी कर्मचारियों के वेतन-सम्बन्धी सभी पक्षों की पूरी-पूरी जाँच करनी थी। इन्होंने जो बहुमूल्य सिफारिशें कीं, उनमें से बहुतों पर उसी समय से अमल होता आ रहा है।

स्वतंत्रता के बाद

वेतन कमीशन के बनने से पहले भारतीय रेलों के कर्मचारियों के वेतन की सैकड़ों श्रेणियाँ थीं। एक ही किस्म या मिलते-जुलते कामों के लिए देश के विभिन्न भागों के वेतनों में बड़ा अन्तर था। कमीशन ने वेतन की श्रेणियों का सर्वमान्य स्तर निश्चित किया और उनकी संख्या घटा कर 30 से कम कर दी। योग्यता, उचित दक्षता, काम का महत्व और उसके मूल्य को हर श्रेणी का आधार बनाया गया। कमीशन ने स्थान विशेष के लिए मकान के किराये और क्षतिपूरक भत्ते की सिफ़ारिश की और फैली हुई अनेक अनियमित बातों को दूर किया। वेतन कमीशन और बाद में रेलवे की संयुक्त परामर्शदात्री समिति की सिफ़ारिशों पर, मज़दूरी और वेतन के बढ़ जाने से, रेल-कर्मचारियों को दी जानेवाली रकम उत्तरोत्तर बहुत बढ़ गयी। 1946-51 के बीच, कर्मचारियों की संख्या में कोई ख़ास बढ़ती न होने पर भी, यह रकम लगभग दूनी हो गयी। छुट्टी के नियमों में भी बहुत कुछ उदारता बरती गयी और अब अस्थायी कर्मचारी भी, एक साल की नौकरी के बाद, छुट्टी कमाने, पाने और छुट्टी के वेतन के मामलों में, स्थायी कर्मचारियों के बराबर माना जाता है। लगातार काम करनेवाली श्रेणी के कर्मचारियों के काम के घण्टे 60 से घटा कर 54 और बीच-बीच में खाली रह कर काम करनेवालों के घण्टे प्रति सप्ताह 84 से घटाकर 75 कर दिये गये हैं तथा अतिरिक्त समय का भत्ता प्रचलित सवा गुना से बढ़ाकर डेढ़ गुना कर दिया गया। सामयिक विश्राम के नियमों में भी उदारता दिखलायी गयी। गाड़ी के साथ चलने वाले कर्मचारियों के लिए, जिन पर काम के निश्चित घण्टों का नियम अभी तक लागू नहीं था, प्रति सप्ताह 54 घण्टे बांध दिये गये और उन्हें अतिरिक्त समय के भत्ते का भी अधिकार मिल गया।

ऊंची नौकरियों में वेतन और भत्ते बढ़ाने के बजाय कम किये गये। इस समय एक महत्वपूर्ण परिवर्तन यह हुआ है कि ऊँची नौकरियों में लगभग सभी भारतीय हो गये हैं।

ऊंची श्रेणी के कर्मचारी

पहले जिस ढंग से ऊँची श्रेणी के कर्मचारियों का बँटवारा अंग्रेजी और भारतीय आधार पर किया गया था, उसका वर्णन एकवर्थ कमेटी (1920-21) ने इस प्रकार किया है :

> पिछली रिपोर्ट के दिन भारतीय रेलों में लगभग 710,000 आदमी काम करते थे। इनमें, लगभग 700,000 भारतीय और केवल 7,000 विदेशी थे,

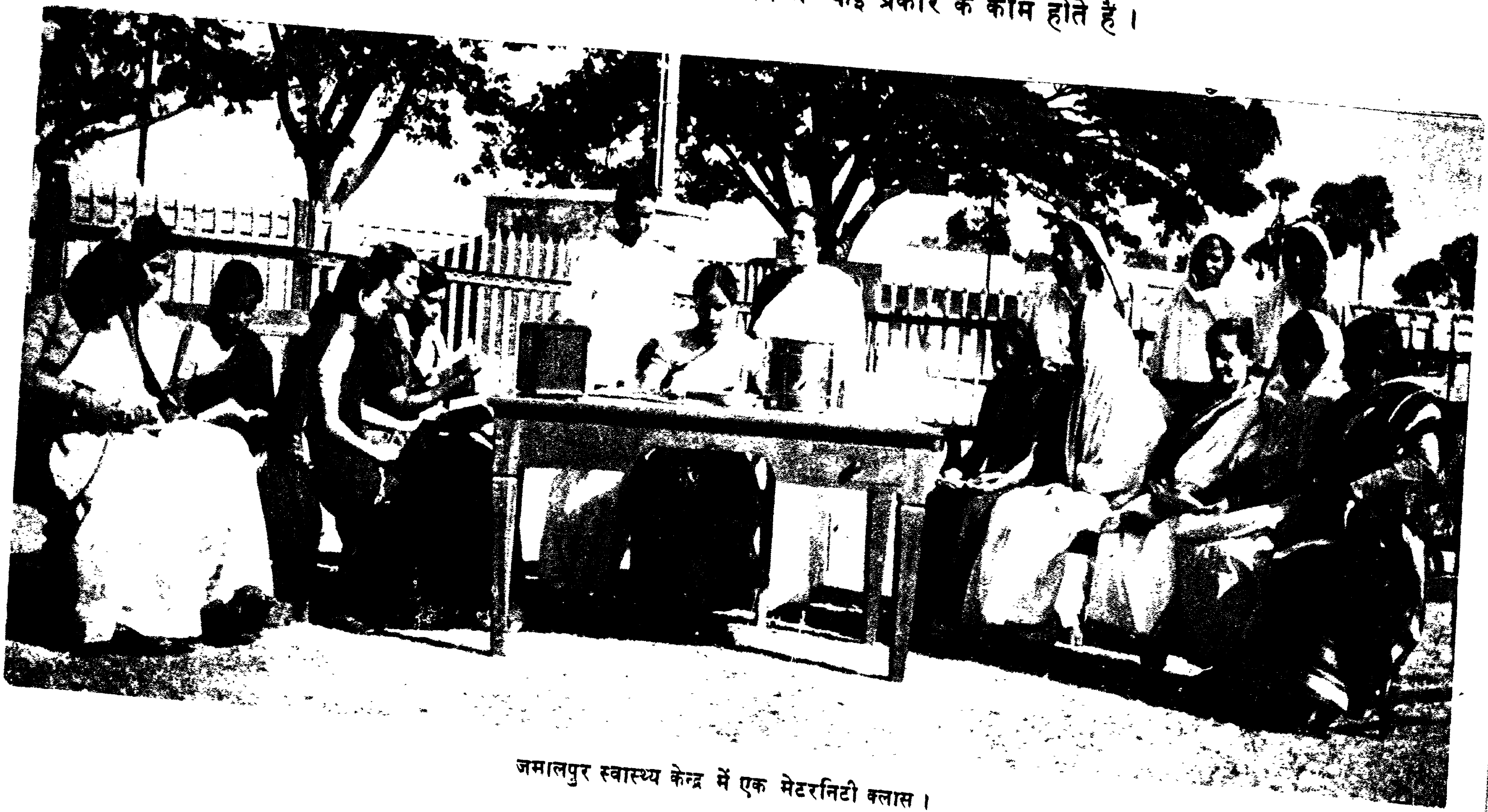
> जिनका अनुपात ठीक एक प्रतिशत था। किन्तु, यह सात हजार, एक गिलास पानी के ऊपर तेल की पतली परत की तरह थे। उसपर तैरने पर भी नीचे के सात लाख में घुलते-मिलते नहीं थे। ऊँची जगहों पर कहीं भारतीय नहीं है। दूसरी अच्छी जगहें भी भारतीयों को नहीं दी गयी हैं। कुछ अच्छे पदों पर भारतीय हैं, लेकिन उनकी संख्या बहुत ही कम है। डिस्ट्रिक्ट इंजीनियर, डिस्ट्रिक्ट ट्रैफिक सुपरिन्टेन्डेण्ट अथवा सहायक आडीटर (लेखा-परीक्षक) की जगहें केवल ऐसी हैं जिनपर भारतीय अभी तक पहुँच सके हैं। विस्तृत आँकड़ों से पता चला है कि देश की मुख्य रेलों की 1,749 ऊँची जगहों में से 182 या केवल दस प्रतिशत से कुछ अधिक जगहों पर भारतीय काम करते हैं। इन 182 भारतीयों में, 158 विभिन्न विभागों के सहायक डिस्ट्रिक्ट अफसर के पद तक पहुँच सके हैं। इन्हें इससे अधिक ऊँची जगहों पर नहीं रखा गया। छोटे-छोटे अफसरों की जगहों पर भी इनकी संख्या काफी नहीं है, इस तरह की शिकायतें हमारे सामने बराबर बनी हुई हैं।

एकवर्थ कमेटी की सिफ़ारिशों और विधान-सभा में जनता की कड़ी आलोचना के फलस्वरूप, भारतीयों को धीरे-धीरे उच्च शिक्षा की अधिक सुविधाएँ मिलने लगीं और ऊँची जगहों पर अधिक संख्या में भारतीय नियुक्त किये जाने लगे। एक भारतीय को रेलवे बोर्ड का सदस्य बनाया गया और बाद में और अधिक भारतीय लिये गये। कुछ भारतीय डिप्टी कमर्शियल मैनेजर, कमर्शियल मैनेजर, डिप्टी एजेण्ट और एजेण्ट के पदों तक पहुँचे। कुछ शिल्प और इंजीनियरिंग विभागों के ऊँचे पदों पर रखे गये। फिर भी, भारत के स्वतंत्र होने तक, अधिकांश ऊँची जगहें अंग्रेजों के लिए सुरक्षित बनी रहीं। इसके अलावा अंग्रेजों को वेतन, उपहार, भत्ता, लाभांश (बोनस), छुट्टियाँ, स्वदेश की छुट्टी के भत्ते आदि की अनेक सुविधाएँ प्राप्त थीं, जो उनके हिसाब से ब्रिटेन से लोगों को भारत में आकर काम करने को आकर्षित करने के लिए तो काफ़ी थीं किन्तु भारतीय राजनीतिज्ञों के मत से ये सुविधाएँ भारत की रेलों पर भारी बोझ के समान थीं।

जातीय पक्षपात

छोटी नौकरियों में भी अंग्रेजों और आंग्ल-भारतीयों का कुछ विशेष ध्यान रखा जाता था। उन्हें अधिक वेतन मिलता और एक ही काम के लिए भारतियों की अपेक्षा उन्हें अधिक सुविधाएँ और छूट दी जाती थीं। रेलवे बस्तियों में अंग्रेजों और आंग्ल-भारतीयों के लिए अलग बस्तियाँ थीं। उनके मकान बढ़िया थे। उनके विश्राम और मनोरंजन के लिए संस्थाएँ और क्लब अलग थे और उनके इलाज का प्रबन्ध भी अलग था। इस प्रकार के भेद-भाव 1946 के बाद मिट गये। किसी काम के लिए केवल योग्यता के आधार पर ही चुनाव होने लगा। अंग्रेजों के अवकाश ग्रहण करने पर भारतीयों को उनकी जगहों पर रखा जाने लगा। इससे ऊँची नौकरियों के मूल वेतनों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ, फिर भी अंग्रेजों के विशेष भत्तों, और उनकी पक्षपातपूर्ण सुविधाओं को बन्द कर देने से खर्च में काफी बचत हुई है।

रेलवे बस्ती के सामुदायिक जीवन में कई प्रकार के काम होते हैं।



जमालपुर स्वास्थ्य केन्द्र में एक मेटरनिटी क्लास।



प्रौढ़ शिक्षा क्लास में पढ़ने वाली स्त्रियाँ।



बच्चों की प्रदर्शनी का एक चित्र।



"रेलवे बस्तियों में बच्चों के स्वास्थ्य-निर्माण पर विशेष ध्यान दिया जाता है।"

बायें : एक केन्द्र में बच्चों के सामान्य स्वास्थ्य की जांच की जा रही है।

नीचे बायें : बच्चों को बी. सी. जी. का टीका लगाया जा रहा है।

नीचे : एक बच्चा कांटे पर तुल रहा है। उसके वजन को ध्यान से नोट किया जा रहा है।







कल्याण-केन्द्र में बच्चों को दूध बाँटा जा रहा है।



1951 में पूर्व रेलवे, कचरापारा में "इण्टर डिविजनल एथेलीट मीट" के समय रेलवे खिलाड़ी ।

"रेल कर्मचारियों और उनके बच्चों को खेलकूद में प्रोत्साहन दिया जाता है और इसके लिए उन्हें अनेक सुविधाएँ दी जाती हैं ।"



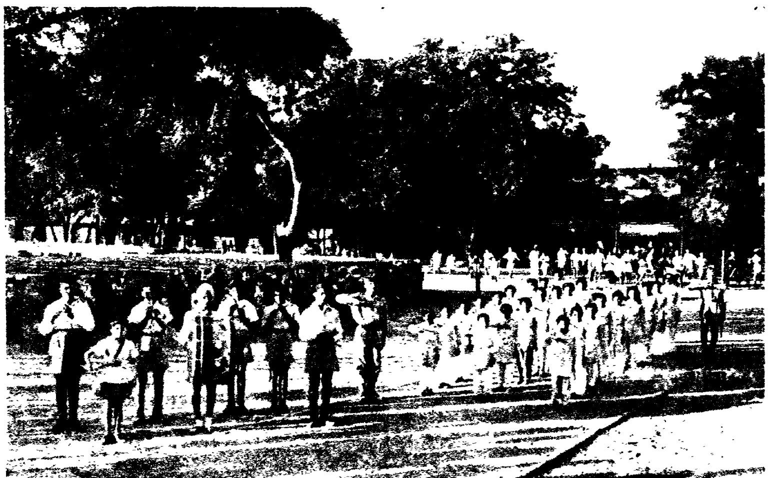
हावड़ा में "सालाना डिविजनल खेल" के अवसर पर एक खिलाड़ी ऊँची कूद लगा रहा है ।



रेलवे कर्मचारियों की एक बड़ी भीड़ फुटबाल का खेल देख रही है इसमें रेलवे की दो टीमें खेल रही हैं ।

नीचे बायें : स्कूल की लड़कियों की परेड ।

नीचे : आंग्ल भारतीय रेलवे स्कूल, गुन्टकल में स्कूल के बच्चों की शारीरिक शिक्षा ।







एक रेलवे स्कूल में "ललित कला" की क्लास में विद्यार्थी।



स्कूल की लड़कियाँ प्राथमिक चिकित्सा की क्लास में।



दक्षिण रेलवे के भारतीय रेलवे स्कूल, गुन्टकल में लड़के और लड़कियां फुलवाड़ी की शिक्षा ले रहे हैं।



जमालपुर मिडल स्कूल में लड़कों की सूत-कताई की क्लास।



रेलवे स्कूल में विद्यार्थी ड्रिल कर रहे हैं।



मसूरी के ओकग्रोव स्कूल में विद्यार्थी जिल्दसाज़ी सीख रहे हैं।



एक रेलवे स्कूल में लड़के और लड़कियों की "मॉण्टसरी क्लास।

सुख-सुविधा

रेलों ने अपने कर्मचारियों को कई तरह की सुविधाएँ दी हैं। सभी श्रेणियों के कर्मचारियों के लिए बड़ी संख्या में रहने के मकान बनाये गये हैं। देश भर की रेलवे-बस्तियों के मकानों का सामान्य स्तर, जगह, रोशनी, बनावट और सफाई आदि को देखते हुए, पड़ोस में रहने वाले उसी श्रेणी के लोगों के मकानों से प्रायः ऊँचा है। हाल की बनी हुई रेलवे की कुछ बस्तियों में निचली श्रेणी के कर्मचारियों के मकानों की बनावट पर विशेष ध्यान दिया गया है, और उनका सामान्य स्तर पूर्व के किसी भी देश के समान ऊँचा है।

रेलवे की ओर से अच्छे अस्पताल, दवाखानों, प्रसूति केन्द्रों की व्यवस्था की गयी है। इनमें न केवल कर्मचारियों बल्कि उनके परिवार की भी देखभाल होती है। डिस्ट्रिक्ट मेडिकल अफसर के लगभग सभी प्रधान अस्पतालों में दाँत के इलाज की व्यवस्था कर दी गयी है और रेलवे के कुछ स्कूलों में स्वास्थ्य-योजना चालू की गयी है।

भारतीय रेलों के चिकित्सा-विभाग की बराबरी संसार का कोई भी रेलवे संगठन शायद ही कर सके। हाल के बने हुए समूचे रेल-प्रबन्ध के छः क्षेत्रों में से प्रत्येक क्षेत्र में एक मुख्य चिकित्सा अधिकारी (चीफ़ मैडिकल आफिसर) रहता है। इन क्षेत्रों को आबादी और यातायात आदि के आधार पर कई खण्डों में बांट दिया गया है। जैसे, पूर्वरेलवे में, लगभग 6,000 मील की लम्बी रेलवे-लाइन के 9 खण्ड (डिस्ट्रिक्ट) किये गये हैं, और एक खण्ड एक डिस्ट्रिक्ट मैडिकल अफसर के अधीन है। इस क्षेत्र के कंचरापारा, खड़गपुर, लिलुआ और जमालपुर के चार बड़े कारखानों में चिकित्सा अधिकारी अलग से रखे गये हैं। हर क्षेत्र के प्रधान कार्यालय में मलेरिया की रोक-थाम के लिए, मुख्य चिकित्सा अधिकारी से सम्बन्धित एक मलेरिया अधिकारी रखा गया है। उसकी सहायता के लिए कुछ और कर्मचारी भी वहाँ रखे गये हैं। डिस्ट्रिक्ट के प्रधान केन्द्रों और कारखानों के अस्पताल बड़े सम्पन्न हैं और कुछ में तो 150 पलंग हैं। रास्ते के हर पचास मील पर कुशल सहायक सर्जन के अधीन एक दवाखाना है। अकेले पूर्व रेलवे में 110 दवाखाने हैं, जिनमें 66 सीनियर और 223 जूनियर श्रेणी के मेडिकल अफसर नियुक्त हैं। डाक्टर कर्मचारियों और उनके आश्रितों के स्वास्थ्य की देखभाल करते हैं और प्रधान कार्यालय और जरूरत पड़ने पर, बाहर के स्टेशनों में भी रोगियों को देखने जाते हैं। दवाखानों में बी. सी. जी., चेचक, मियादी बुखार, हैजा और प्लेग के टीके और सुई लगाने का भी प्रबन्ध है।

रेल-कर्मचारियों और उनके आश्रितों को दवा देने के अलावा, डिस्ट्रिक्ट चिकित्सा अफसर और उनके सहायक, रेलवे की बस्तियों और स्टेशनों तथा गाड़ियों की सफाई आदि की भी देखभाल करते हैं। वे पानी और भोजन सामग्री की निगरानी, मलेरिया विरोधी कार्यवाही, कर्मचारियों के स्वास्थ्य की जाँच, बच्चों तथा गर्भवती स्त्रियों को दूध वितरण का निरीक्षण तथा जरूरत पड़ने पर प्रथम उपचार का भी प्रबन्ध करते हैं। कारखानों में, जहां अनेक दुर्घटनाएँ होती हैं, अलग से प्रथम उपचार के साथ कर्मचारियों को दुर्घटनाओं से बचने की शिक्षा देने का भी प्रबन्ध है।

रेलवे बस्तियाँ

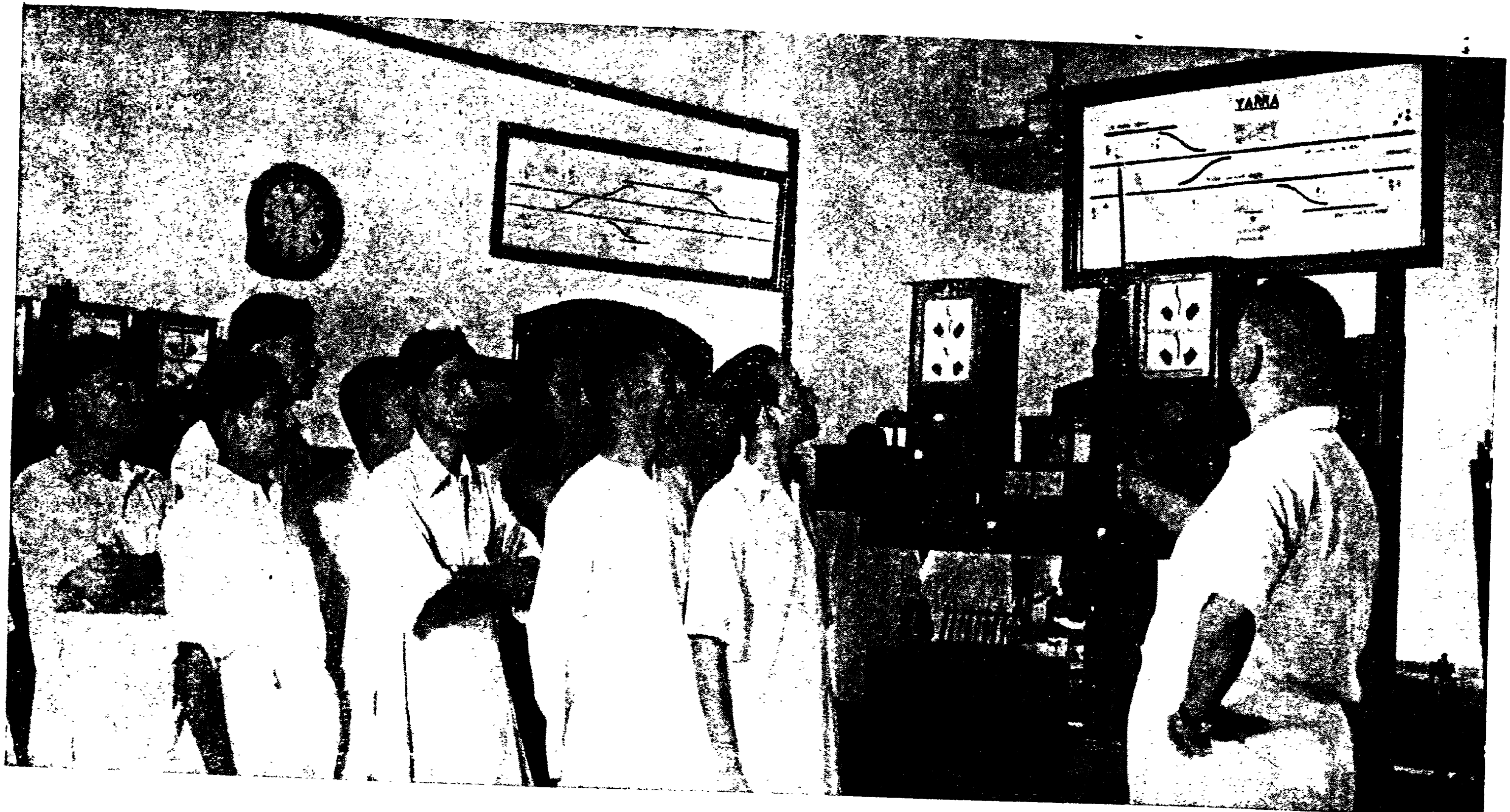
रेलवे की बस्तियों और नगरों में मनोरंजन का समुचित प्रबन्ध है। खेल-कूद में भी रेलवे बहुत कुछ दिलचस्पी रखती हैं। रेलवे इंस्टीट्यूट सामाजिक चहल-पहल के केन्द्र हैं जो सभी रेलों में बने हुए हैं। इन केन्द्रों में रेल-कर्मचारियों को जो सुख-सुविधाएं दी गयी हैं, उन्हें देखते हुए इनकी सदस्यता का शुल्क नाममात्र है और कर्मचारियों के वेतन के अनुपात से लिया जाता है। इन संस्थाओं में भोजन, पानी, बाहरी और भीतरी खेलों आदि की सुविधाओं की तुलना विदेश के कर्मचारियों के किसी भी क्लब से की जा सकती है। इनमें सिनेमा और थियेटर वाचनालय और पुस्तकालय, जलपान घर, तास खेलने के कमरे, तैरने के तालाब, घूंसेबाजी, टेनिस, हाकी, फुटबाल, बासकेट-बाल, रगबी और क्रिकेट आदि जैसे कुछ मैदानी खेलों का भी प्रबन्ध है। रेलवे के हाकी और फुटबाल के खिलाड़ियों ने, पिछले सौ वर्षों में, बहुत से राष्ट्रीय स्तर के मोर्चों को जीता है और इनमें कुछ चोटी के खिलाड़ी निकले हैं। रेलवे स्पोर्ट्स एसोशियेसन ने, सेना के बाद, भारत में घूंसेबाजी (बाक्सिग) को प्रोत्साहित करने के लिए सबसे अधिक प्रयत्न किया है। रेलवे में कुछ चोटी के खिलाड़ी हुए हैं, बहुत से गोल्फ और टेनिस के राष्ट्र-विजेता और क्रिकेट के कई नामी खिलाड़ी भी हो गये हैं। इन संस्थाओं ने अव्यवसायी नाटकों, बालरूम और शास्त्रीय नृत्य में भी बड़ी दिलचस्पी ली है।

प्रशिक्षण

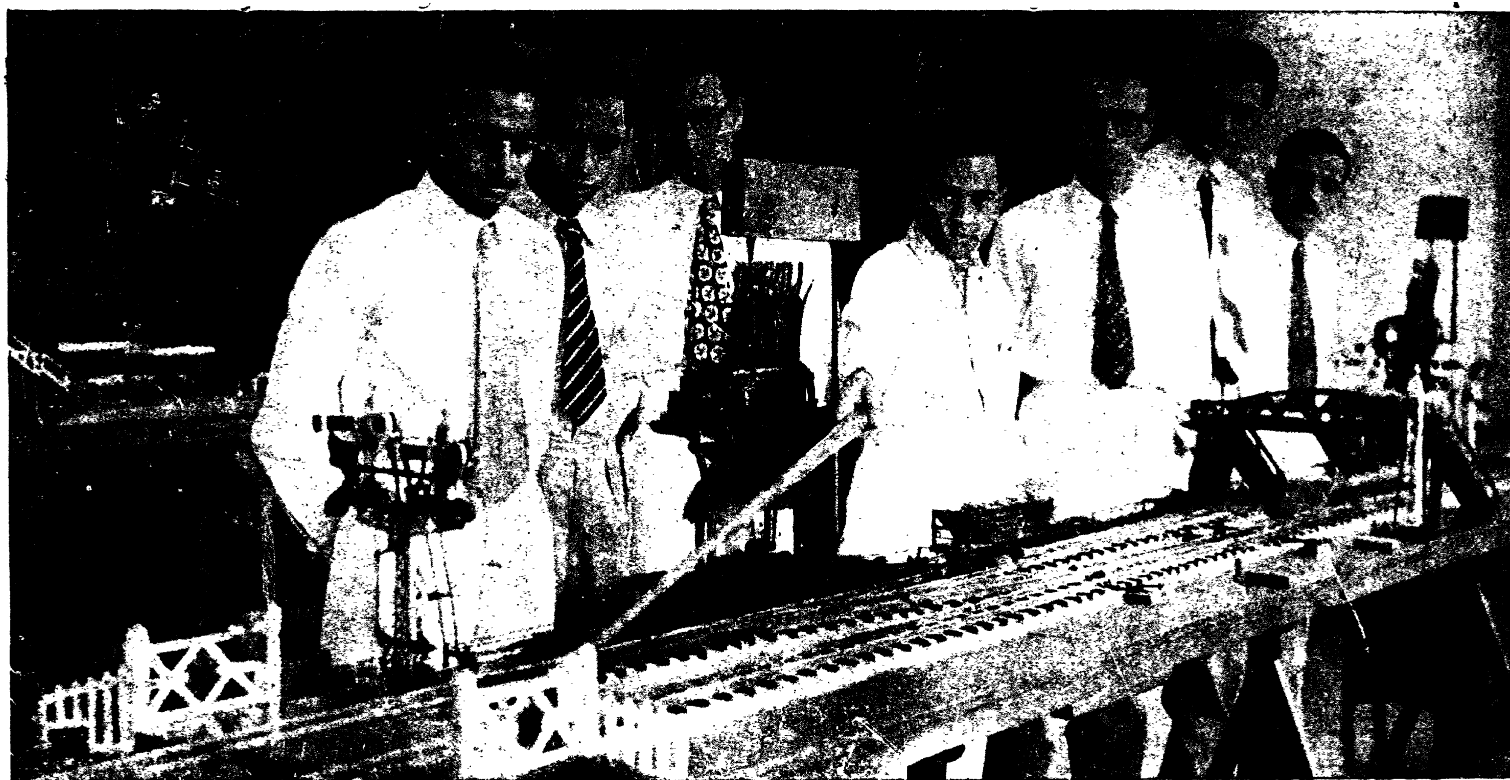
अपने कर्मचारियों और अफसरों की टेकनिकल शिक्षा की ओर रेलवे विशेष ध्यान देती है। आस-पास के गाँवों से प्रायः रंगरूट भरती किये जाते हैं जिन्हें बाद में दस्तकारी, मिस्त्री, मशीन-मैन आदि की शिक्षा देने का समुचित प्रबन्ध हर क्षेत्र में मौजूद है।

इंजीनियरिंग और यातायात विभाग के अफसरों की शिक्षा के लिए कई रेलों में शिक्षा संस्थाएं हैं जिनमें जमालपुर, गौहाटी, चन्दौसी, बीना और सहारनपुर की संस्थाएं अधिक महत्वपूर्ण हैं। 31 जनवरी 1952 को, भारतीय रेलों के उच्च अधिकारियों को शिक्षा की अधिक सुविधा देने का ऐतिहासिक समारोह हुआ। जब उस समय के रेल-मंत्री श्री गोपालस्वामी आयंगर ने, बड़ौदा में भारतीय रेलों के 'स्टाफ कालेज' का उद्घाटन किया। इस कालेज के लिए बड़ौदा के महाराजा गायकवाड़ का एक पुराना महल चुना गया। इस कालेज में यातायात और व्यवसाय विभाग के अफसरों की शिक्षा की व्यवस्था है और छोटे अफसरों को रेल-संचालन की विभिन्न समस्याओं को समझाने के लिए अल्प-कालीन शिक्षा दी जाती है।

अपने बड़े और छोटे अफ़सरों को शिक्षा देने के साथ ही रेलवे अपने चुने हुए उम्मीदवारों को विदेश में अध्ययन करने के लिए आर्थिक सहायता, अध्ययन की छुट्टी और भत्ते भी देती है। रेलवे के इंजीनियरिंग और संचालन क्षेत्रों के आधुनिक विकास का अध्ययन करने के लिए, ऊँचे अफसरों को, शिष्ट-मंडल के साथ, विदेशों में जाने का भी अवसर दिया जाता है।



चन्दौसी ट्रेनिंग स्कूल के ट्रांसपोर्टेशन मॉडल हॉल में एक शिक्षक रेखा-चित्र की सहायता से छात्रों को दुहरी लाइन के स्टेशन की रचना समझा रहा है ।



बड़ौदा कालेज में गाड़ी चलाकर दिखायी जा रही है।



ट्रेनिंग अप्रेन्टिस, लोको कारखाना, दोहद ।



रेलवे कर्मचारियों को शिक्षा दी जा रही है ।



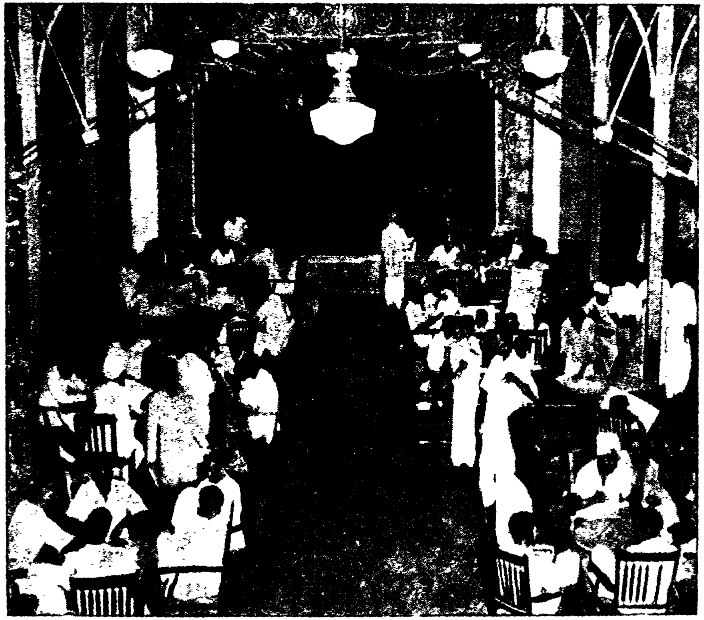
दक्षिण रेलवे के पेरम्बूर कारखाने के अलग अलग विभागों में बांटने के लिए काफी और चाय ले जायी जा रही है ।



रेलवे बस्ती, आसनसोल के लड़कों के पार्क में एक चक्कर झूला



रेल कर्मचारी क्लब में कैरम टूर्नामेण्ट ।



रेलवे इन्स्टीट्यूट में वाचनालय ।



रेलवे की अनाज की दूकान का भीतरी दृश्य ।

19. यात्री–यातायात

हमारे महान राष्ट्रीय कवि, डाक्टर रवीन्द्र नाथ टैगोर के स्वनामधन्य पिता, महर्षि देवेन्द्र नाथ टैगोर ने अपनी आत्मकथा में 1856 की अपनी कलकत्ता-शिमला यात्रा का वर्णन किया है। कलकत्ता से बनारस तक उन्होंने नाव से यात्रा की जिसका किराया 100 रुपये था। उन्होंने लिखा है कि "लगभग डेढ़ महीने में हम बनारस पहुँचे। बनारस से घोड़े-गाड़ी में चलकर दूसरे दिन शाम को इलाहाबाद आये। इलाहाबाद में गंगा के दाहिने किनारे पर गाड़ी नाव में रखवा ली क्योंकि हमें सन्देह था कि दूसरे दिन सवेरे कोई दूसरी गाड़ी मिलेगी या नहीं। रात उसी घोड़े-गाड़ी में सोकर बितायी। सवेरे नाव धीरे-धीरे चली और दोपहर को नदी के दूसरे किनारे पहुँची।" घोड़े-गाड़ी से चलकर वह 14 दिन में आगरा पहुँचे। गाड़ी रात-दिन चलती थी। चौबीस घण्टे में एक बार दोपहर के समय वह किसी वृक्ष के नीचे भोजन बना लेते थे। आगरा से नाव द्वारा वह एक महीने में दिल्ली पहुँचे। उनके निम्न वाक्य से नाव की चाल का अनुमान लगता है। उन्होंने लिखा है कि "मैं बहुधा यमुना के किनारे किनारे फसलों, गाँवों और बगीचों के बीच प्रकृति का आनन्द लेते हुए नाव के साथ पैदल चला करता था। दिल्ली से अम्बाला तक घोड़ा-गाड़ी में और उससे आगे शिमला तक "झंपान" में यात्रा की।"

रेल-युग से पहले की यात्रा

1849 में महाराजा रणजीत सिंह के दरबार के एक चिकित्सक, डाक्टर होनीबर्जर ने गढ़मुक्तेश्वर से कलकत्ता तक नाव में यात्रा की। यात्रा दो महीने में समाप्त हुई और 1300 रुपये नाव का भाड़ा देना पड़ा। डाक्टर होनीबर्जर ने अपनी "पूर्व में पचीस वर्ष" नामक पुस्तक में लिखा है कि उन दिनों नदी में तरह तरह की नावें तैरती दिखलायी पड़ती थीं। कुछ नावों में दो से लेकर पाँच, कुछ में दो से छः और कुछ में चार से पांच आदमियों के बैठने के लिए स्थान बने थे। कुछ नावें ऐसी भी थीं जिनमें केवल एक आदमी बैठ सकता था। सामान और माल ढोने के लिए अलग नावें थीं। इनके अतिरिक्त 'लोहे के' सरकारी स्टीमर भी थे जो कलकत्ता और इलाहाबाद के बीच माल और थोड़े से यात्री ढोते थे। बर्न ने गंगा के किनारे की एक चुंगी के रेकार्ड से 1844-45 के कुछ आंकड़े दिये हैं जिससे ज्ञात होता है कि उस वर्ष कलकत्ता और बनारस के बीच चलने वाले यात्रियों की संख्या 60000 थी और सरकारी स्टीमरों में 17588000 रुपये का माल ढोया गया।

पहले-पहल सन् 1831 में पोस्ट मास्टर, श्री जार्डिन, ने बैलगाड़ी द्वारा डाक भेजने

की व्यवस्था का श्रीगणेश किया। इस 'डाकगाड़ी' को बम्बई से पूना पहुँचने में 48 घण्टे लगते थे। इसमें किराये पर कुछ यात्री भी आते-जाते थे। प्रति व्यक्ति 90 रुपये किराया बतलाया जाता है। सबसे पहले नवम्बर 1841 में अलीगढ़ और कानपुर के बीच नियमित रूप से सड़क यातायात आरम्भ हुआ। 1845 में डाक की बैलगाड़ियाँ कलकत्ता और लाहौर; बम्बई, सूरत और पूना के बीच चलने लगीं। 1850 में बैलों की जगह इन गाड़ियों में घोड़े रखे गये। इन "डाक गाड़ियों" को चलाने के लिए स्थान-स्थान पर बहुत सी कम्पनियाँ बनायी गयीं। सबसे पहले तन्तीमल नाम के कानपुर के एक व्यापारी ने अन्तर्देशीय यातायात कम्पनी स्थापित की।

सड़क द्वारा यात्रा के खतरे

उस समय सड़क की यात्रा मँहगी, अधिक समय लेनेवाली तथा कष्टदायक तो थी ही, साथ ही सुरक्षित भी न थी। रास्ते में सदा जंगली जानवरों का भय बना रहता था। मुगलकाल के अन्तिम तथा ब्रिटिशकाल के प्रारम्भिक काल में शासन की अव्यवस्था के कारण रास्ते में ठगों और डाकुओं के गिरोह देश के विभिन्न भागों में बिना रोक-टोक घूमा करते थे। कर्नल टेलर और स्लीमन ने अपने लेखों में सड़कों पर फिरनेवाले इन डकैत और लुटेरों का जो वर्णन किया है उसे पढ़कर खून सूख जाता है। स्लीमन ने लिखा है कि बड़े बड़े रास्तों पर ठगों का राज्य था। ये ठग वेष बदलकर यात्रियों के मित्र बन जाते थे और इतना हिलमिल जाते थे कि यात्री उनका विश्वास करने लगते थे। दूर तक उनके साथ चलने के बाद ये ठग यात्रियों को निश्चित स्थानों पर गला घोंट कर मार डालते और सब कुछ लूट लेते।

मृत्यु से कुछ समय पूर्व महर्षि देवेन्द्रनाथ टैगोर ने कलकत्ता से बनारस तक 15 घण्टे में रेलगाड़ी से यात्रा की थी। उस समय कलकत्ता से बनारस का तीसरे दर्जे का किराया 6 रुपया 9 आना और पहले दर्जे का 26 रुपया 5 आना था। 1879 में रसलेट ने सात दिनों में कलकत्ता से आगरा और आगरा से कलकत्ता तक यात्रा की थी। इसमें 24 घण्टे का विश्राम भी सम्मिलित है। उन्होंने लिखा है कि गर्मी होते हुए भी यात्रा सुखद थी।

प्रारंभिक रेल यात्रा

23 अगस्त 1854 की 'बंगाल हरकुरु' पत्रिका की प्रति में "रेल यात्रा का प्रथम अनुभव" शीर्षक लेख में एक रोचक वर्णन है। प्रसिद्ध फुटकर सामान और इत्र के व्यापारी श्री रूपचन्द घोष हुगली में गाड़ी से उतरते ही भ्रम में पड़ गये। वह इधर-उधर सड़कों पर पूछने लगे कि 'मैं कहाँ पहुँच गया।' बड़ी देर के बाद उन्हें यह विश्वास हुआ कि वह हुगली पहुँच गये। ग्रह और नक्षत्रों का अध्ययन करके पंडित राधालंकुर बनर्जी ने हुगली तक रेल से यात्रा की। लेकिन रेल द्वारा वापस जाने से उन्होंने यह कह कर इन्कार कर दिया कि "आग की गाड़ी में अधिक यात्रा करने से जीवन घट जाता है। जिस प्रकार रेल समय और दूरी का लोप करके प्रत्येक यात्रा की लम्बाई को कम कर देती है, उसी प्रकार यह मानव जीवन को भी अवश्य छोटा कर देगी।" इसके बाद श्री जोन्स का वर्णन आता है। वह

लगातार तीन दिन रेल द्वारा हुगली तक आते जाते रहे। गाड़ी में तेजी से चलने के कारण उन्हें अपने घोड़े की चाल पसन्द न आयी। उसकी चाल बढ़ाने के लिए वह बेचारे घोड़े पर निष्फल कोड़े बरसाते थे।

यात्रियों के आँकड़े

पहले 16 सप्ताह में ईस्ट इण्डियन रेलवे के यात्रियों की औसत संख्या प्रति सप्ताह 7000 थी। लेकिन 1855 में जब रानीगंज लाइन खुली तो यह संख्या बढ़कर प्रति सप्ताह 12,000 हो गई। थालघाट और भोरघाट की लाइनें खुल जाने के बाद 1870 में बम्बई आने-जानेवालों की संख्या बीस लाख से भी अधिक हो गयी।

आरंभ में हावड़ा से हुगली तक का पहले, दूसरे और तीसरे दर्जे का किराया क्रमशः 3 रुपया, 1 रु० 2 आना और 7 आना था। 1853 में बम्बई से थाना तक जी. आई. पी. रेलवे में पहले, दूसरे और तीसरे दर्जे का किराया क्रमशः 2 रु० 10 आना, 1 रु० 1 आना, 6 पाई और 5 आना 3 पाई था। इस प्रकार तीसरे दर्जे का किराया लगभग 3 पाई प्रति मील था।

दूसरे देशों से तुलना करने पर मालूम होता है कि भारत में रेल के किराये की दर सबसे कम रही है। केवल 1930 में जापानी रेलों का किराया भारतीय दर से भी कुछ कम हो गया था। वहाँ किराया 2.5 पाई प्रति मील था जब कि भारत में 3.25 पाई था। उन दिनों अमेरिका, कनाडा और ब्रिटेन में रेलों का औसत किराया भारत की तुलना में 3 से लेकर 6 गुना अधिक था।

रेलों के विस्तार के साथ-साथ यात्री यातायात निरन्तर बढ़ता गया। 1901 में ईस्ट इण्डियन रेलवे में 240 लाख यात्रियों ने यात्रा की थी। 1916-17 में यह संख्या 420 लाख और 10 वर्ष बाद 720 लाख हो गई। 1951-52 में भारत की प्रथम श्रेणी की रेलों में 12473 लाख यात्रियों ने यात्रा की और रेलों ने 390300 लाख मील की दूरी तय की।

श्रेणियाँ

पहले पहल रेल गाड़ियों में पहला, दूसरा और तीसरा—केवल तीन दर्जे रखे गये थे। तीसरे दर्जे के डिब्बों में लकड़ी के बेन्च लगे हुए थे। बाद में इस तीसरे दर्जे को ड्योढ़े में बदला गया और तीसरे दर्जे के लिए 'खुले' डिब्बे बनाये गये। एक समय था जब कुछ अंग्रेज विशेषज्ञों ने इस बात पर आशंका प्रकट की कि भारत जैसे देश में, जहाँ बहुत बड़ी संख्या में लोगों का जीवन-स्तर बहुत नीचा है, रेल-यात्रा की ओर लोगों को आकर्षित करना असंभव होगा, और यदि किसी प्रकार लोगों को रेल से यात्रा के लिए तैयार भी कर लिया जाय, तो इस देश की धार्मिक और जातीय विषमताओं को देखते हुए रेलों में कई दर्जे रखने पड़ेंगे। किन्तु कुछ दिनों के अनुभव के बाद ये दोनों धारणाएं गलत सिद्ध हुईं। रेल पर चलनेवालों की संख्या, जिसमें 10 में 9 तीसरे दर्जे के यात्री थे, जिस तेजी के साथ हर

साल बढ़ती गयी, उससे यह स्पष्ट हो गया कि लोग रेल में चलना पसन्द करते हैं और जातीय अथवा धार्मिक विषमताओं का रेल-यात्रा पर कोई प्रभाव नहीं है। रेलगाड़ियों में योरुप-निवासियों और ऐंग्लो इन्डियनों के लिए पहले जो अलग व्यवस्था की गयी थी, उसका हमारे देश की विधान सभाओं और जनता ने बड़ा विरोध किया जिसके फलस्वरूप वह व्यवस्था आज से २० वर्ष पहले समाप्त कर दी गयी।

पिछले सौ वर्षों में जितने कम भाड़े की दर पर भारतीय रेलों ने पहले और दूसरे दर्जे के यात्रियों को सुख-सुविधा दी है उसकी तुलना संसार की अच्छी से अच्छी रेल-व्यवस्था द्वारा दी गयी सुख-सुविधा से की जा सकती है। पहले और दूसरे दर्जे के डिब्बों में प्रायः दो से चार तक शायिकायें रहती हैं, और हर डिब्बे में शौचस्थान आदि बने हुए हैं। पहले दर्जे के यात्रियों के लिए झड़ी स्नान की भी व्यवस्था है। ऊँचे दर्जे के यात्रियों के लिए सभी मुख्य स्टेशनों पर अच्छे ढंग के और आरामदेह प्रतीक्षालय और विश्रामघर बने हैं। चलती गाड़ी में और बीच के स्टेशनों पर उनके लिए भोजन का अच्छा प्रबन्ध किया गया है।

तीसरे दर्जे के यात्री

1951-52 में वायु अनुकूलित, पहले और दूसरे दर्जे के यात्रियों की संख्या क्रमशः 25000, 19971000 और 22418000 थी, जब कि केवल तीसरे दर्जे के यात्रियों की संख्या 1,20,49,00,000 थी। अर्थात् ऊँचे दर्जे के कुल यात्रियों की संख्या तीसरे दर्जे के यात्रियों की $3\frac{1}{2}$ प्रतिशत थी। इसका एक मात्र कारण भाड़े की कमी है। 1897 में प्रथम 100 मील के लिए औसत किराया 3 पाई से लेकर $1\frac{1}{2}$ पाई प्रति मील था और अधिक दूरी के लिए यह दर इससे भी कुछ कम थी। किराये की दर में कई बार परिवर्तन हुआ। इस समय साधारण और डाक गाड़ियों का तीसरे दर्जे का औसत किराया क्रमशः 5 और 6 पाई प्रति मील है।

रेलों में चार दर्जे बनाये जाने के कई वर्ष तक तीसरे दर्जे के लिए खुले डिब्बे थे जिनमें लोग फर्श पर बैठ कर यात्रा करते थे। 1891 ई० में तीसरे दर्जे के डिब्बों में लकड़ी के बेंच लगाये गये। कुछ समय के बाद उनमें शौचस्थान बनाये गये। हडिल्सटन ने एक स्थान पर लिखा है कि उस समय यह बात किसी के विचार में भी न आयी थी कि तीसरे दर्जे की आय ही भारतीय रेलों के विकास का साधन बनेगी। तीसरे दर्जे को यदि भारतीय रेलों की रीढ़ कहा जाय, तो अत्युक्ति न होगी। आमदनी की दृष्टि से यदि ऊँचे दर्जों को समाप्त कर दिया जाय, तो कोई अन्तर न पड़ेगा बल्कि निश्चय रूप से लाभ होगा।

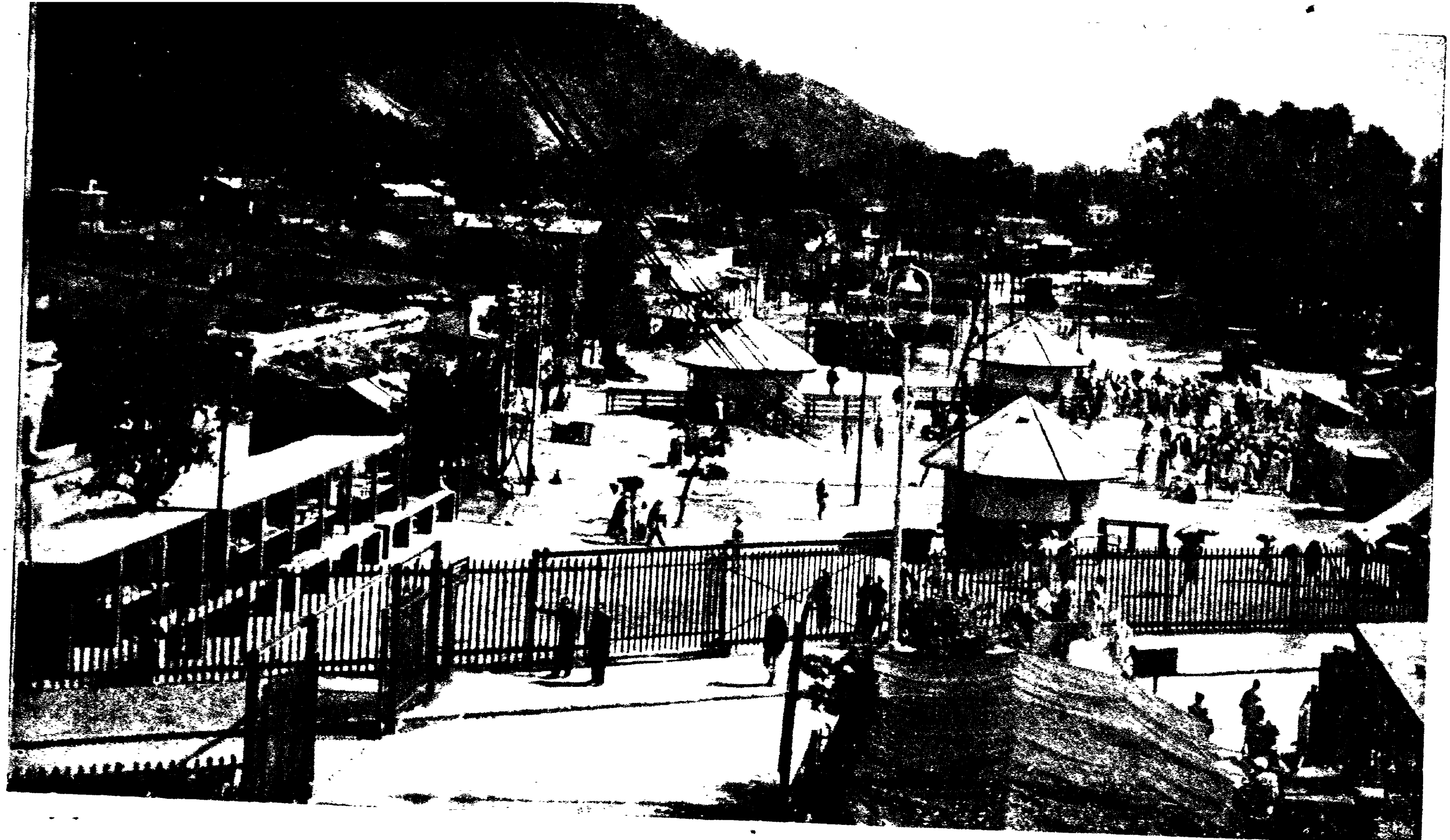
बीसवीं सदी के आरम्भ में भारतीय रेलों की स्थिति बतलाते हुए हडिल्सटन ने लिखा है कि "किसी दिन शाम को एक भरे हुए प्लेटफार्म पर खड़े हो जाइए। गाड़ी आते ही आप देखेंगे कि उसमें चढ़ने के लिए दौड़-धूप, शोर, झगड़ा, बहस और धक्कम-धक्का शुरू हो जाती हैं। किन्तु यह सब देखकर आप यह न समझ लें कि इसमें बेचारे तीसरे दर्जे के यात्रियों का दोष है।" हडिल्सटन का कहना है कि "भारत में रेल की आमदनी का बहुत बड़ा भाग तीसरे दर्जे के यात्रियों से आता है। यदि रेलगाड़ियों में चार के स्थान पर, पहला, दूसरा

ग्रौर तीसरा, केवल तीन दर्जे रखे जायं, तो यह समस्या बहुत कुछ सरल हो जायगी। कहने को तो भारतीय रेलों में केवल तीन या चार दर्जे हैं, किन्तु सच बात तो यह है कि प्राय: सभी गाड़ियों में कई प्रकार के डिब्बे लगे रहते हैं। योरोपियनों के लिए उपाहार-यान, हिंदू और मुसलमानों के लिए ग्रलग-ग्रलग भोजन के डिब्बे, डाक का डिब्बा, गर्फ का डिब्बा, स्त्रियों का डिब्बा, देशी राजा-महाराजाग्रों, बड़े-बड़े सरकारी ग्रौर रेल के ग्रफसरों के सैलून—तरह-तरह के डिब्बे पाये जाते हैं ग्रौर भारतीय रेलगाड़ी ग्रनेक प्रकार के डिब्बों का एक पिण्ड बन जाती है। ग्रच्छा होगा कि इसे कुछ सरल किया जाय।"

जनता की ग्रोर से तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए ग्रधिक सुविधा की माँग बराबर जारी रही है, फिर भी इस क्षेत्र में कोई मौलिक ग्रथवा विशेष सुधार न हो सका। किन्तु पिछले पाँच वर्षों में हालत बहुत कुछ बदल गयी है ग्रौर इसमें सुधार हुग्रा है। यद्यपि ग्रमेरिका, कनाडा, ब्रिटेन, जर्मनी ग्रादि देशों में जो सुविधाएँ तीसरे दर्जे के यात्रियों को प्राप्त हैं, उस स्तर तक पहुँचने के लिए यहाँ ग्रभी बहुत कुछ करना शेष है फिर भी तीसरे दर्जे की यात्रा ग्रब वैसी दुखदायी या कष्टप्रद नहीं रह गयी है जैसी द्वितीय विश्व युद्ध के समय थी। ग्रभी 10 साल पहले मध्यम श्रेणी के डिब्बों में केवल कुछ एक गाड़ियों में पंखे लगे थे। लेकिन ग्राजकल लगभग सभी दर्जों के डिब्बों में पंखे लग गये हैं। यात्रियों के ग्राराम के लिए ग्रच्छे ढंग की बैठकें ग्रौर शौचस्थान बनाये गये हैं। रोशनी की व्यवस्था में भी सुधार हुग्रा है। ड्यौढ़े ग्रौर तीसरे दर्जे में स्थान ग्रारक्षित करने की सुविधा दी गयी है। लम्बी यात्रा के यात्रियों के लिए ग्रलग ग्रलग डिब्बों की व्यवस्था की गयी है। निचले दर्जों में भीड़ कम करने के लिए लम्बी यात्रा के लिए तेज या शटल गाड़ियाँ चलायी गयी हैं जिनमें ग्रधिकतर तीसरे दर्जे के डिब्बे रहते हैं। लगभग सभी मुख्य स्टेशनों पर छतदार प्लेटफार्म बनाये गये हैं। कई स्टेशनों पर तीसरे दर्जे के नये प्रतीक्षालय बनाये गये हैं। बड़े बड़े स्टेशनों पर गाड़ियों के पहुंचने ग्रौर छुटने के समय की घोषणा करने के लिए ध्वनि-विस्तारक लगाये गये हैं। ग्रशिक्षित यात्रियों की सुविधा के लिए स्टेशनों पर यात्री-सहायक रखे गये हैं जो उन्हें गाड़ी में बैठने, टिकट खरीदने ग्रादि में सहायता पहुँचाते हैं।

भोजन की व्यवस्था

ऊँचे दर्जे के यात्रियों के लिए तो पहले से ही ग्रच्छे प्रकार के उपाहारगृहों की व्यवस्था है; गत पाँच वर्षों से तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए भी भोजन ग्रादि की व्यवस्था में बराबर सुधार किया जा रहा है। उपाहार-यानों में सस्ते दाम पर ग्रब तीसरे दर्जे के यात्रियों को भी भोजन मिलने लगा है। लगभग सभी बड़े स्टेशनों पर शाक ग्रौर सामिष उपाहार गृहों की व्यवस्था कर दी गयी है जहाँ उचित मूल्य पर स्वच्छ ग्रौर ताजा भोजन मिलता है। स्टेशनों पर मिठाई, चाय ग्रादि की दूकानें भी रखी गयी हैं ग्रौर शुद्ध जल की भी व्यवस्था की गयी है। कई प्रमुख स्टेशनों पर ठण्डे पानी के लिए जलशीतक लगाये गये हैं। गर्मियों में विशेषकर तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए, यह व्यवस्था बहुत ही उपयुक्त सिद्ध हुई है। टिकट देने की व्यवस्था में सुधार करने के लिए टिकट-घरों का विस्तार किया गया है। टिकट बाँटनेवाले कर्मचारी भी बढ़ाये गये हैं।



हरिद्वार में 1950 के कुम्भ मेले का गोल क्षेत्र।



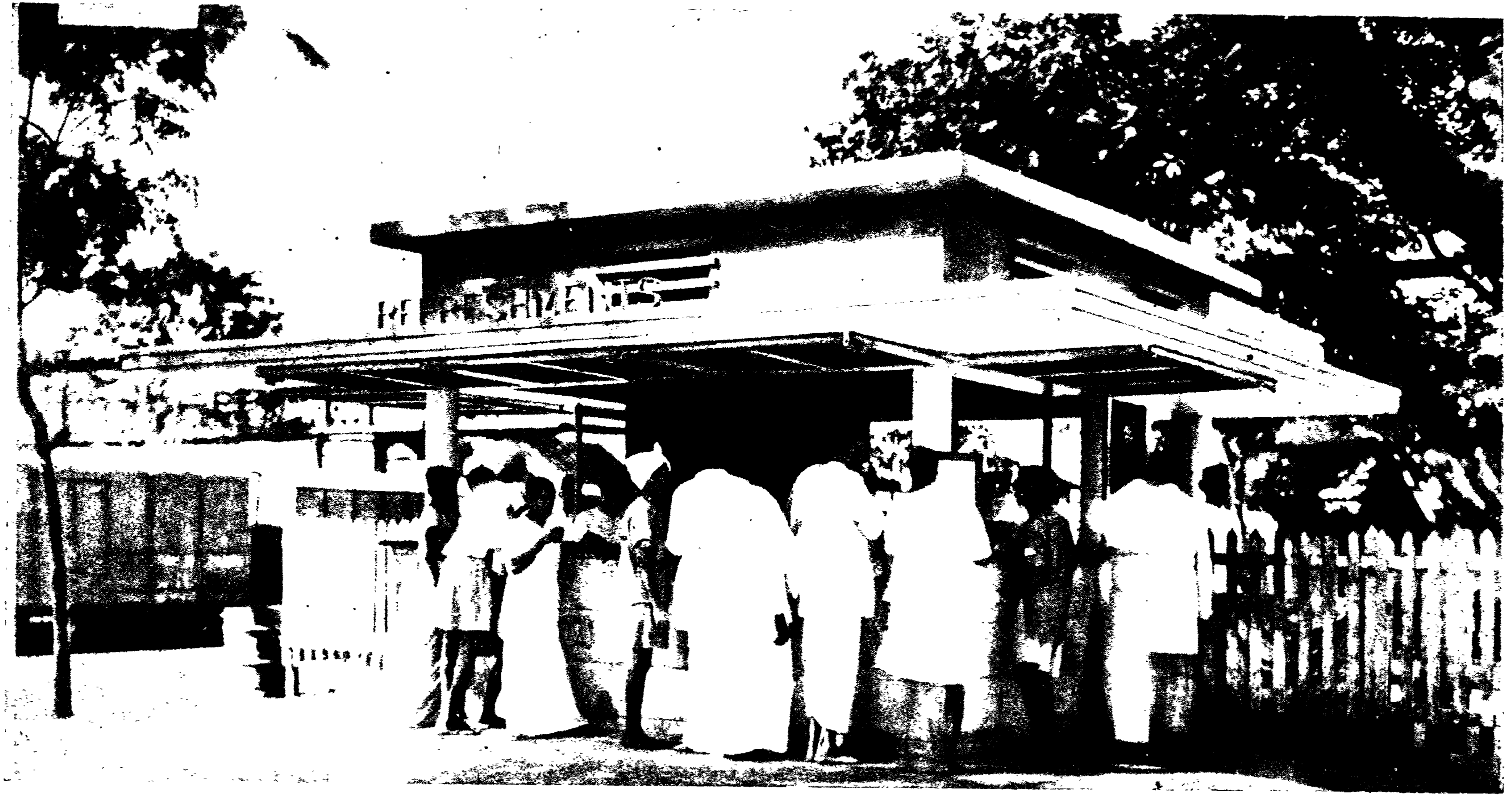
1950 में हरिद्वार कुम्भ मेले के समय स्टेशन से निकलते हुए यात्री।



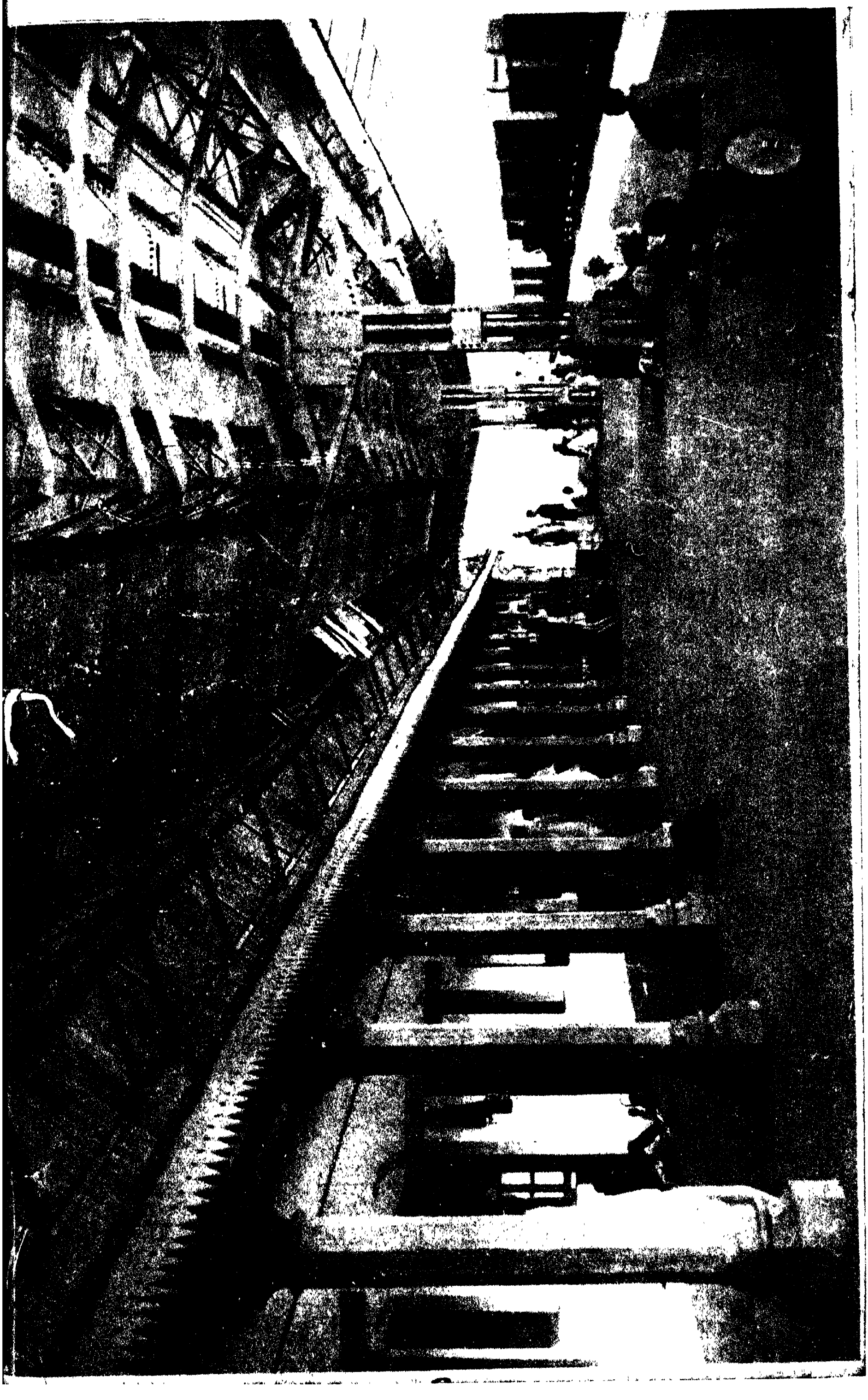
फेअर्ली प्लेस कलकत्ता का टिकट घर और आरक्षण कार्यालय ।

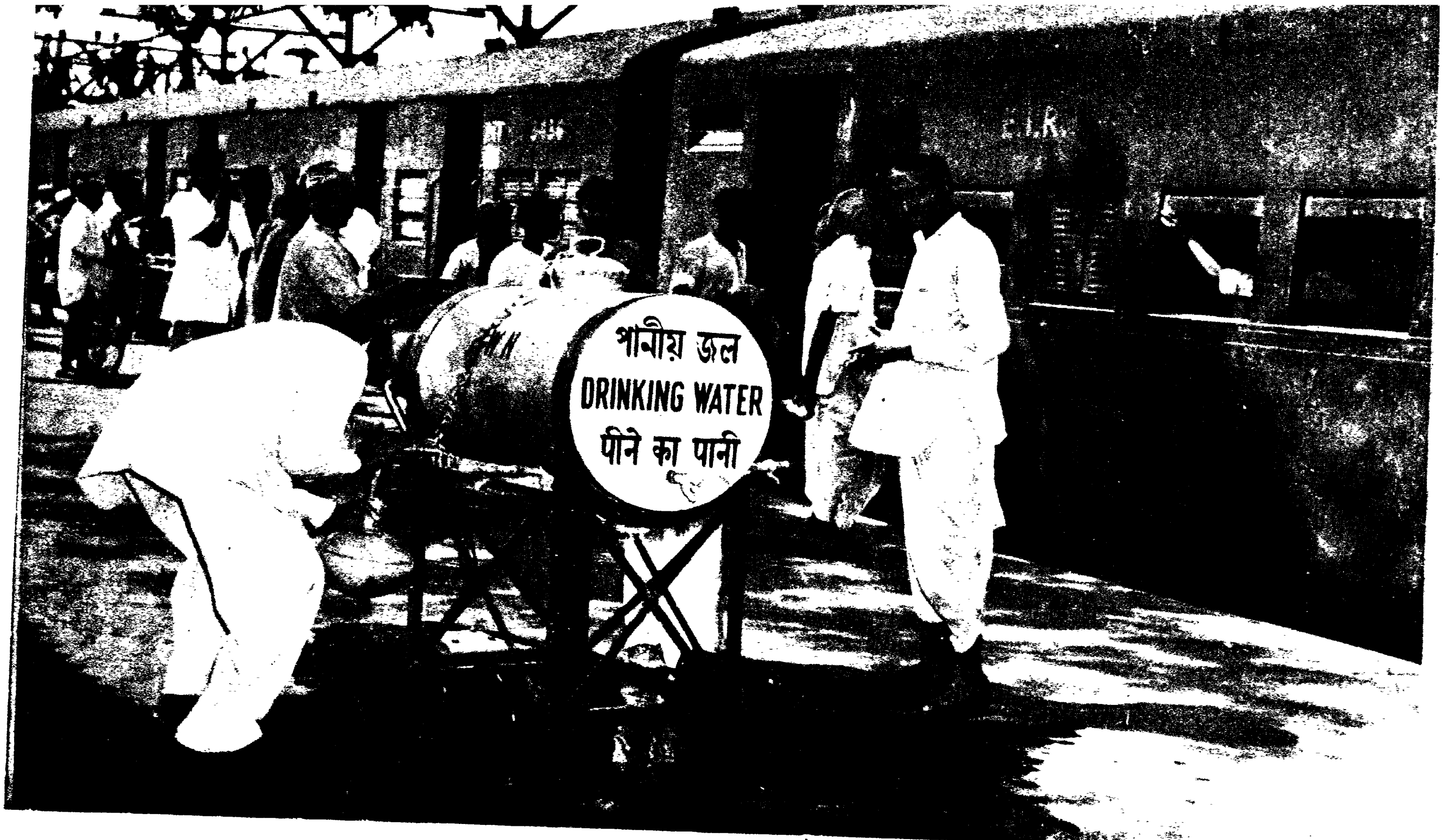
तीसरे दर्जे के सवारी डिब्बे का भीतरी दृश्य।





दक्षिण रेलवे के अरकोनम स्टेशन पर उपाहार गृह ।





पूर्व रेलवे के बर्दवान स्टेशन पर यात्रियों के लिए पीने के पानी की व्यवस्था ।

20. पर्यटकों का स्वर्ग

देशाटन के लिए भारत एक अद्भुत देश है। इस विशाल देश के कई भाग ऐसे हैं जहाँ भीषण गर्मी पड़ती है और कुछ स्थान ऐसे भी हैं जो सदा बर्फ से ढके रहते हैं। एक स्थान का जलवायु दूसरे से भिन्न है। विस्तृत भूभाग में फैली हुई भारत की पर्वत मालाएँ ऊँचाई और प्राकृतिक सौन्दर्य की दृष्टि से अद्वितीय हैं। इस देश में नदियों और नहरों का जाल बिछा हुआ है। ये विशाल नदियाँ अपनी सहायक नदियों के साथ विस्तृत उपजाऊ मैदानों से होकर बहती हैं और ऐसा सुन्दर दृश्य उपस्थित करती हैं जिसकी कल्पना कोई चित्रकार भी नहीं कर सकता। भारत का समुद्र-तट 3000 मील से कुछ अधिक लम्बा है। इस लम्बे समुद्र-तट में कुछ ऐसी खाड़ियाँ और मैदान हैं जिनकी गणना संसार की सुन्दरतम खाड़ियों और मैदानों में की जा सकती है। यहाँ के उष्ण प्रदेशीय बनों में अनेक प्रकार के जीव-जन्तु और फल-पौदे पाये जाते हैं। अतएव, इसमें सन्देह क्या कि प्रकृति-सौन्दर्य की प्रचुरता की दृष्टि से भारत एक सुरम्य देश है।

शिलाबद्ध इतिहास

किन्तु भारत का आकर्षण केवल उसके विभिन्न जलवायु, गगन-चुम्बी पर्वत-माला, प्राकृतिक दृश्य, सुविस्तृत बन और सुन्दर समुद्र-तट तक सीमित नहीं है। उसके आकर्षण का एक दूसरा श्रोत भी है और वह है उसका हजारों वर्ष का पुराना इतिहास जो उसके शिलालेख, प्राचीन नगरों के खण्डहर, मन्दिर, किले, महल, मस्जिद, गिर्जाघर, मज़ार और पर्वत-कन्दराओं के रूप में आज हमारे सामने है। कला, बनावट और सजावट की दृष्टि से संसार की प्रसिद्ध इमारतों में इनका प्रमुख स्थान है।

साथ ही भारतवर्ष "अर्वाचीन" और "प्राचीन" का एक अनोखा सम्मिश्रण है। जीवन के कतिपय क्षेत्रों में हम संसार के अन्य प्रगतिशील देशों के समान हैं, किन्तु कुछ क्षेत्र ऐसे भी हैं जहाँ हजारों वर्ष की प्राचीन परम्पराएं अपने उसी रूप में वर्तमान हैं।

पर्यटकों के लिए तो भारत मानों पृथ्वी का "स्वर्गिक फूल" है। संसार के भिन्न-भिन्न भागों से यहाँ यात्री आते रहे हैं। फ़ाहियान, ह्वेनसांग, मेगेस्थनीज़ आदि यात्री इस देश में लगभग दो हज़ार वर्ष पहले आये थे। उनके लेखों से पता चलता है कि यद्यपि उस समय भारत में यात्रा की सुविधाएँ पर्याप्त न थीं, फिर भी इस देश के निवासी वर्ष के हर भाग में पैदल, नाव और गाड़ियों में बैठ कर प्राकृतिक दृश्यों को देखने जाया करते थे।

रेल ने आवागमन को सरल और सुगम बना दिया है। जिस यात्रा में पहले दो हफ्ते

अथवा एक महीना लग जाता था वह अब एक ही दिन में तय की जा सकती है। इन सुविधाओं के कारण लोग एक स्थान से दूसरे स्थान तक बिना किसी कठिनाई के आ जा सकते हैं। इसका फल यह हुआ है कि पिछले सौ वर्षों में यात्रियों की संख्या बराबर बढ़ती रही है और यात्री-यातायात रेल की आय का प्रमुख साधन बन गया है। इस बढ़ते हुए यातायात से रेलों की आय तो बढ़ी, किन्तु साथ ही विशेष प्रकार की समस्याएँ भी उठ खड़ी हुईं। प्राचीन समय के प्रायः सभी तीर्थस्थान और मन्दिर ऐसे स्थानों में हैं जो अपने जलवायु और प्राकृतिक सौन्दर्य के कारण यात्रियों को आकर्षित करते हैं। बहुत से तीर्थ स्थानों तक रेल की लाइनें निकाली गयी हैं। इन स्थानों में उत्सव वर्ष के विभिन्न भागों में मनाये जाते हैं। प्रायः देखा जाता है कि ये उत्सव उस समय आरंभ होते हैं जब मौसम अच्छा रहता है और प्रकृति अपना सुहावना रूप धारण करती है। साधारणतः इन तीर्थ स्थानों में लोगों का आना-जाना अधिक नहीं रहता। सामान्यतः इनकी जनसंख्या भी 15-20 हजार के बीच रहती है और प्रतिदिन 100 और 200 के बीच लोग यहाँ आते जाते हैं। लेकिन उत्सव या मेले के दिनों में यहाँ हजारों यात्री रोज आते हैं और उनके लिए स्पेशल गाड़ियाँ चलायी जाती हैं।

तीर्थ-यात्रा

कुम्भ मेला इन बड़े उत्सवों में से एक है। कुम्भ हर बारह वर्ष के बाद क्रम से भारतवर्ष के चार प्रसिद्ध स्थानों में मनाया जाता है। ये स्थान हैं नासिक, उज्जैन, प्रयाग और हरिद्वार। सन् 1950 में 12 और 21 मार्च के बीच कुम्भ मेला हरिद्वार में हुआ था। मेले के दिनों में हरिद्वार की जनसंख्या एक लाख से बढ़कर लगभग $12\frac{1}{2}$ लाख हो गयी थी। मेले में आनेवाले 50 प्रतिशत यात्री रेल से आये। आनेवाले यात्रियों की संख्या सबसे अधिक उन नौ दिनों में थी जब मेला जोर पर था। 12 और 21 मार्च के बीच एक दिन मेले में 122,000 यात्री पहुँचे, अर्थात् हर घण्टे में 5,083। मेला समाप्त हो जाने पर लगभग इतने ही आदमियों को वापस भेजने का प्रबन्ध भी करना पड़ा और इसके लिए 37 स्पेशल गाड़ियां चलायी गयीं। इस बड़े जन-समूह के स्वास्थ्य और सुरक्षा का समुचित प्रबन्ध करना पड़ा। साथ ही उन्हें यात्रा-सम्बन्धी सुविधाएँ भी दी गयीं जिनमें टिकट देना, टिकटों की जांच, हर तरफ से गाड़ियों के आने-जाने की व्यवस्था, भीड़ का जमाव और दुर्घटना को रोकना आदि काम शामिल थे।

कुम्भ मेले के अतिरिक्त देश के सभी भागों में हिन्दू, बौद्ध, मुसलमान, सिक्ख, पारसी और ईसाइयों के उत्सव और समारोह मनाये जाते हैं। इनमें से कुछ मेले तो इतने बड़े होते हैं कि इनमें लाखों की संख्या में लोग आते हैं और उनके लिए विशेष रूप से व्यवस्था करनी पड़ती है। स्पेशल गाड़ियों के आने-जाने, यात्रियों की सुविधा और सुरक्षा, उन्हें टिकट देने, उनके टिकट और सामान की जाँच, उनके लिए पानी और भोजन की व्यवस्था, आकस्मिक दुर्घटनाओं और बीमारियों की रोक-थाम के लिए सफाई जैसे कार्य अनिवार्य हो जाते हैं।

भारी संख्या में यात्रियों का आना-जाना हमारे देश का दैनिक क्रम सा बन गया है

और वर्षों के अनुभव से रेल कर्मचारी इन मेलों और उत्सवों से सम्बन्धित जटिल समस्याओं को अपना सामान्य कार्यक्रम समझने लगे हैं ।

पर्यटकों के लिए आकर्षण

विदेश से आनेवाले यात्रियों के लिए भारत में बहुत से आकर्षण हैं । भारत का सर्वोत्तम विहार-स्थल कश्मीर अपनी प्राकृतिक छटा और उसकी प्रचुरता में अद्वितीय है । जैसा सर फ्रान्सिस यंगहस्बैण्ड ने कहा था, संसार में कश्मीर की घाटी जैसा सुरम्य स्थान कहीं और नहीं है । यह घाटी चारों ओर से बर्फीले पहाड़ों से घिरी हुई है और इसके पीछे एक विशाल पर्वतमाला खड़ी है जिसकी बराबरी का संसार में कोई दूसरा पहाड़ नहीं है । अजन्ता की चित्रित प्राचीरें, एलोरा तथा एलिफेण्टा के शिलालेख, रामेश्वरम्, मदुरा, श्रीरंगम, कोनार्क और पुरी के स्तंभ, भुवनेश्वर और द्वारिका के मन्दिरों के गगन-चुम्बी कलश, राजस्थान के राजप्रासादों की कला और सूक्ष्मता, आगरे का ताजमहल, दिल्ली का लाल किला सरीखे मुग़ल काल के भव्य भवन केवल ऐतिहासिक महत्व के विषय नहीं, वरन निर्माण-कला के जीते जागते उदाहरण भी हैं ।

भारत में शिकारियों के लिए भी बहुत कुछ सामग्री पायी जाती है । उड़ीसा की चिल्का झील और कश्मीर की झीलों में बतखों का शिकार होता है । चाहा, चकोर, तीतर, बटेर आदि तरह-तरह के पक्षी देश के अधिकांश भाग में पाये जाते हैं । भारत के जंगलों में चीता, सिंह, भैंसा, भालू और दूसरे जंगली जानवर बहुत बड़ी संख्या में पाये जाते हैं । जूनागढ़ का 'गिरिवन' सिंह के शिकार के लिए प्रसिद्ध है । मैसूर और आसाम में अभी भी हाथी का शिकार किया जा सकता है । भारत का समुद्रतट, इसकी नदियां और झीलें मछली के शिकार, नाव की सैर आदि के लिए प्रसिद्ध हैं । गुलमर्ग और कुछ दूसरे पहाड़ी स्थानों में जाड़े के मौसमी खेलों की व्यवस्था है ।

पर्यटन कार्यालय

प्रथम विश्वयुद्ध से पहले लन्दन में एक यात्री-कार्यालय था । एकवर्थ समिति ने यह सुझाव रखा कि पर्यटन को प्रोत्साहन देने के लिए सक्रिय प्रयत्न किये जायें । इसके फलस्वरूप न्यूयार्क में दूसरा पर्यटन-कार्यालय खोला गया । वेजवुड समिति ने सिफारिश की कि लन्दन और न्यूयार्क के कार्यालयों का काम बढ़ाया जाय और पर्यटन यातायात को बढ़ावा देने के लिए रेलों में जन-सम्पर्क अधिकारी रखे जायें । विदेश में प्रचार के लिए 1930 में बहुत सी पुस्तिकाएँ और विवरण प्रकाशित किये गये और प्रचार-कार्य में लन्दन और न्यूयार्क में पर्यटन-कार्यालयों के अतिरिक्त कुछ दूसरी यात्रा-संस्थाओं से भी काम लिया गया ।

हमारे देश में यात्रा-सम्बन्धी प्रचार का काम 1948 में आरम्भ हुआ । विदेशी पर्यटकों को भारत की ओर आकर्षित करने के लिए यातायात मंत्रालय के सहयोग से 1948 में रेलवे प्रशासन ने विशेष कार्यवाही की । इस काम के लिए एक तदर्थ समिति बनायी गयी जिसमें सम्बन्धित मंत्रालय, पर्यटन-यातायात और होटलों के प्रतिनिधि रखे गये । एक साल

बाद यातायात मंत्रालय में पर्यटन शाखा खुली और देश के प्रमुख नगरों और पर्यटन-केन्द्रों में इसकी बहुत सी उप-शाखाएँ खोली गयीं। रेल-प्रशासनों ने भी अपने प्रधान कार्यालयों और दूसरे प्रमुख केन्द्रों में सूचनालय स्थापित किये और उनमें सूचना अधिकारी नियुक्त किये। इन सूचना केन्द्रों का काम यह है कि यात्रियों को आवश्यक सूचना दें, उनकी यात्रा का कार्यक्रम तैयार करें और गाड़ी, विश्रामगृह और होटलों में उनके लिए स्थान आरक्षित करायें। राँची, पुरी और औरंगाबाद जैसे पर्यटन-केन्द्रों में रेलवे की ओर से होटल खोले गये हैं। कई दूसरे प्रमुख स्थानों में विश्रामगृह बनाये गये हैं जहाँ यात्रियों की सुविधा के सभी साधन उपलब्ध हैं और उन्हें उचित मूल्य पर मिल जाते हैं।

भ्रमण-यान

विदेश से आनेवाले पर्यटकों के लिए साधारण गाड़ियों में स्थान आरक्षित किये जाते हैं और, यदि वे टोली में भ्रमण करना चाहें, तो उन्हें रियायती दर पर भ्रमण-यान (टुअरिस्ट कार) भी मिल सकता है जिसमें यात्रा, भोजन और निवास की सभी सुविधाएँ दी गयी हैं। इसमें पर्यटक अपनी इच्छानुसार अपने कर्मचारी साथ ले जा सकते हैं। गाड़ी से लगी रसोई में उन्हें मनमाना भोजन मिल सकता है। इन डिब्बों में चीनी के बर्तन, मेज़पोश, काँटा-छुरी, बिस्तरे की चादर और तौलिए के अतिरिक्त शीतक भी रखे गये हैं। बड़ी लाइन के भ्रमणयान में आठ और मीटर लाइन में छः आदमियों के सोने का स्थान है। हर कार में एक गोल कमरा भी है। अलग शौचस्थान के अतिरिक्त इनमें नौकरों के लिए अलग कोठरियाँ भी हैं। विशेष रूप से आयोजित यात्रा के लिए पर्यटकों को साधारण सवारी डिब्बे भी मिल सकते हैं। टोली में यात्रा करनेवाले विद्यार्थियों और खिलाड़ियों को किराये में विशेष रियायत दी जाती है।

कुछ अनुभवी लोगों का मत है कि यदि कोई आठ से बारह सप्ताह भारत में बितायें, तो उसे यहाँ इतने अधिक सुन्दर स्थान और आकर्षण की वस्तुएं देखने को मिलेंगी जो संसार के किसी एक देश में नहीं मिल सकतीं, और इस यात्रा में भोजन, निवास, किराये आदि पर जो कुछ खर्च होगा वह अमेरिका और योरुप के अच्छे ढंग के होटल के उतने ही समय के खर्च से अधिक न होगा। भारत में यात्रा के कई आकर्षण हैं। यहाँ की रेल-यात्रा सुखमय तो है ही, साथ ही दूसरे देशों की तुलना में प्रायः सबसे सस्ती भी है।

21. माल–यातायात

प्रायः लोग यह समझते हैं कि रेलों की आमदनी का मुख्य साधन सवारियां हैं, लेकिन सच बात तो यह है कि रेलों की कुल आमदनी का बहुत बड़ा भाग माल-यातायात से आता है। 1951-52 में, भारतीय रेलों की कुल 294 करोड़ रुपये की आमदनी में 158 करोड़ रुपये माल-यातायात से आये, जो कुल आमदनी का करीब 54 प्रतिशत होता है। यह ध्यान देने योग्य है कि ईस्ट इण्डियन रेलवे ने, अपने पहले साल में, सिर्फ 27,213 टन माल ढोया, जब कि 1951-52 में, भारत में रेलों द्वारा कुल 9 करोड़ 80 लाख टन माल भेजा गया। यह आश्चर्यजनक प्रगति है।

मुख्यतः व्यापारिक संस्था होने के कारण, रेलों ने हमेशा ही माल पर इस हिसाब से भाड़ा लगाकर आमदनी बढ़ाने की कोशिश की जिससे दैनिक संचालन-व्यय, मूल्यह्रास और ब्याज निकालकर, इतनी बड़ी योजना के अनुरूप उनको लाभ होने लगे। यह कोई आसान काम न था।

रेलों में जानेवाला माल

रेलें तरह-तरह के माल-सामान ढोती हैं जिनमें कच्चा माल, बनी हुई चीजें, बिगड़ जानेवाली वस्तुएं, खुले और बोरों में बन्द हुए सामान, तरल पदार्थ, सस्ती और कीमती चीजें, टूटने वाले और हानिकारक पदार्थ, सब तरह का इमारती सामान, दवाइयां, रसायन, कपड़े, जूते, साज-सामग्री आदि दैनिक व्यवहार में आनेवाले सभी प्रकार के सामान शामिल हैं। इन भिन्न-भिन्न चीजों को, भिन्न-भिन्न स्थानों और स्थितियों में ले जाने की दर निश्चित करना उलझन का काम है। एक ओर तो माल की कीमत, वजन, उसको ले जाने की जिम्मेदारी आदि बातों का ध्यान रखना पड़ता है, दूसरी ओर ले जाने के खर्च को भी देखना पड़ता है। किसी खास चीज के यातायात की दर निश्चित करने का, कीमत और स्थिति का ठीक-ठीक हिसाब न लग सकने के कारण, अभी तक कोई विश्वसनीय ढंग नहीं निकल सका है।

शुरू में, विभिन्न रेल-कम्पनियों को माल ढोने की दर निश्चित करने की छूट थी, जिससे, स्पष्ट है, इस मामले में कोई समानता नहीं आ सकती थी। अभी तक सामान्य प्रथा यह रही है कि चीजों को विभिन्न श्रेणियों में बांट देते हैं और परिवहन के तरीकों और लागत के अनुमान के हिसाब से माल कई श्रेणियों में बांट दिये जाते हैं और हर श्रेणी की अलग-अलग दर निश्चित कर दी जाती है।

भारतीय रेलों का सबसे पहले का वर्गीकरण बहुत सरल तथा सूक्ष्म था और प्रचलित आकार के एक पन्ने में छप सकता था। उस समय रेलों में जानेवाली चीजों की संख्या सीमित थी। विकास और उन्नति के साथ चीजों की किस्में भी तेजी से बढ़ गयीं और 1873 तक ईस्ट इण्डियन रेलवे की चालू वर्गीकरण-सूची पूरे आकार के 13 पन्नों की हो गयी और 1889 में माल के वर्गीकरण की यह सूची घने छपे हुए 109 पन्नों तक पहुँच गयी।

दर निश्चित करने की प्रारम्भिक नीति

रेल परिवहन के एकाधिकार के कारण, सरकार ने शुरू से माल-यातायात की दरों पर नियंत्रण रखा। इसका मूल आधार यह था कि अधिकतम दर की सीमा निश्चित करके जनता के हितों की रक्षा की जाय और रेल के प्रबन्धकों को बेजा महसूल वसूल करने से रोका जाय। साथ ही कम से कम दर निर्धारित की जाय जिससे सरकार द्वारा निश्चित लाभ का आश्वासन पायी हुई कम्पनियाँ संचालन लागत की दर से कम में माल न ले जायँ।

मार्च 1883 में, प्रस्ताव नं० 162 (रेल यातायात) द्वारा इन सिद्धान्तों की व्याख्या की गयी। भारत सरकार ने निश्चित किया कि यातायात की लागत और व्यापार के सहन करने योग्य महसूल के अन्दर किराये की दर निश्चित की जाय। सरकार ने यह साफ कर दिया कि दर निश्चित करने में यातायात से सम्बन्धित खाली गाड़ियों के चलने, बीच बीच में रुकने और दूसरे मार्गों की तुलनात्मक दरों आदि सभी बातों का ध्यान रखा जाय। दूरी के आधार पर दर, जिसमें फासले के साथ-साथ दर का आधार घटता जाता है, सभी प्रकार के यातायात के लिए ठीक समझी गयी। आर्थिक दृष्टि से दूरी के आधार पर दर इसलिए ठीक होती है कि लम्बे फासले को तै करने में खर्च की लागत कम हो जाती है। सरकार को यह भलीभाँति मालूम हो गया कि मनमाना नफा कमाने के बजाय अधिक से अधिक यातायात को अपनी ओर आकर्षित करने के हिसाब से दरों का निश्चित करना हितकर होगा।

सिद्धान्तों की व्याख्या

बाद में, भारत सरकार के 12 दिसम्बर 1887 के प्रसिद्ध प्रस्ताव के पहले, भारतीय रेलों के लिए दर निश्चित करने के निम्नलिखित चार सिद्धान्त निकाले गये :—

1. जनता के हितों की रक्षा करने और प्रबन्धकों द्वारा बेजा महसूल लगाने की रोक-थाम के लिए भारत सरकार के लिए यह जरूरी हो गया कि वह सभी प्रकार के यात्री-यातायात के लिए अधिक से अधिक किराया और विभिन्न प्रकार के माल-यातायात की ऊंची से ऊंची दरों की सीमा निश्चित कर दें।

2. जनता से वसूल होनेवाली रकम दो भागों में बाँटी जा सकती है, (1) मील-संख्या के हिसाब से किराया और महसूल, जो यात्री और माल-यातायात के फासले के हिसाब से कमती-बढ़ती होते हैं, और (2) चुंगी, जो अड्डों पर आने वाले माल पर निश्चित दर से लगायी जाती है।

3. एक बार किराया और महसूल की ऊंची से ऊंची और कम से कम दर बांध देने के बाद, इस मामले में सरकार का हस्तक्षेप करना व्यापार के हित में बाधक होगा। इस ऊँची और नीची सीमा के अन्दर रेलवे शासन को व्यापार की स्थिति और जरूरतों के अनुसार अपनी दरों में हेर-फेर करने की छूट होनी चाहिए।

4. यद्यपि जनता के हित-साधन के लिए सरकार को महसूल और किराये के मामलों में सीधा हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए, फिर भी सार्वजनिक हितों का संरक्षक होने के नाते सरकार यह अवश्य चाहेगी कि रेलवे शासन कुछ निर्देशक सिद्धान्तों का पालन करें। किसी प्रकार का अनुचित पक्षपात नहीं होना चाहिए। दूसरे शब्दों में, रेलवे-शासन को किसी भी व्यक्ति या कम्पनी का पक्षपात करके भाड़ा या महसूल की दरों में ऐसी छूट नहीं देनी चाहिए जो सर्वसाधारण को प्राप्त न हो। दूसरे, जिन जगहों में छूट देने योग्य पर्याप्त यातायात होता हो, वहाँ रेलवे शासन को दो स्टेशनों के बीच यातायात करने की जनता को सभी छूट और सुविधाएँ देनी चाहिए और साधारण स्थानीय दर पर सीधा यातायात करने में प्रत्येक रेलवे शासन को सन्तोष करना चाहिए।

भारतीय रेल-अधिनियम

1890 का इण्डियन रेलवे अधिनियम इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर बनाया गया था।

सभी रेलों को अपनी समझ के अनुसार उचित महसूल वसूल करने की छूट मिली हुई थी, फिर भी रेलों के आपसी यातायात की वृद्धि और विकास के साथ यह आवश्यक हो गया कि विभिन्न रेलों के लिए माल का एक सा वर्गीकरण तैयार किया जाय। इस तरह का माल का पहला वर्गीकरण पहली जुलाई 1910 को उन रेलों में लागू किया गया जिन्होंने भारतीय रेलवे कानफ्रेंस एसोशियेशन में भाग लिया था। इसमें केवल पाँच श्रेणियां थीं। विस्फोटक और खतरनाक माल की एक दूसरी श्रेणी थी। इन श्रेणियों की दरों का आधार इस प्रकार था :—

श्रेणी	प्रति मन प्रति मील का आधार
1	0·333 पाई
2	0·500 ,,
3	0·666 ,,
4	0·833 ,,
5	1·00 ,,
विस्फोटक पदार्थ	1·500 ,,

पहला विश्वयुद्ध छिड़ जाने के कारण सरकार को अतिरिक्त धन की जरूरत पड़ी

और इसीलिए पत्थर और लकड़ी के कोयले तथा ईंधन पर एक पाई प्रति मन, और दूसरी सभी चीजों पर 2 पाई प्रति मन की सरकारी चुंगी लगानी पड़ी।

1921 में, अनाज, दाल, ईंधन और चारे को छोड़ कर सभी प्रकार के माल-यातायात पर महसूल के प्रति रुपया पर दो आना छः पाई का प्राइमेज कर लगाया गया। अपने अधीन रेलों की कमाई को छोड़ कर, इस प्रकार रेल-महसूल द्वारा सरकारी आमदनी बढ़ाने का यह पहला मौका माना जाता है।

पहली अप्रैल 1922 से, श्रेणियों की संख्या बढ़ाकर दस कर दी गयी, साथ ही इस लदाई कर को महसूल की दर में शामिल कर दिया गया। इन श्रेणियों के आधार इस प्रकार थे :—

श्रेणी	प्रतिमन प्रतिमील का आधार		श्रेणी	प्रतिमन प्रतिमील का आधार	
1	0·38	पाई	6	0·83	पाई
2	0·42	,,	7	0·96	,,
3	0·58	,,	8	1·04	,,
4	0·62	,,	9	1·25	,,
5	0·77	,,	10	1·87	,,

माल के महसूल की ये दरें आमतौर पर सबसे अधिक दरों के आधार पर रखी गयीं, जिससे कुछ रेलों में कुछ चीजों के लिए नीची दरें रखनी पड़ीं। रेलवे में माल-यातायात के लिए समान दर लागू करने के लिए निश्चित दरों की एक सूची बनायी गयी। यह सूची बढ़ते हुए फासले के साथ घटती हुई दरों के आधार पर तैयार की गयी।

इस सूची के अनुसार चौदह साल तक काम करने के बाद यह मालूम हुआ कि सभी श्रेणियों का एकसा बंटवारा नहीं हुआ था और रेलवे की जिम्मेदारी और माल भेजने वाले की जिम्मेदारी की दरों का अनुपात ठीक नहीं था। जनता में इसकी आलोचना भी हुई। इसलिए, पहली मई 1936 से छः नई श्रेणियां चालू की गयीं और रेल की जिम्मेवारी और माल भेजने वाले की जिम्मेदारी की दरों का अनुपात अधिक उचित और तर्कपूर्ण आधार पर रखा गया। 16 नयी श्रेणियों का आधार इस प्रकार बनाया गया :—

श्रेणी	प्रतिमन प्रतिमील का आधार		श्रेणी	प्रतिमन प्रतिमील का आधार	
1	0·38	पाई	4 बी	0·72	पाई
2	0·42	,,	5	0·77	,,
2 ए	0·46	,,	6	0·83	,,
2 बी	0·50	,,	6 ए	0·89	,,
2 सी	0·54	,,	7	0·96	,,
3	0·58	,,	8	1·04	,,
4	0·62	,,	9	1·25	,,
4 ए	0·67	,,	10	1·87	,,

पहली मार्च 1940 से अनाज, खाद, चाय आदि को छोड़कर बाकी सभी किस्म के माल के कुल महसूल पर दो आने प्रति रुपया अधिक भाड़ा लगा दिया गया।

नयी दरों का ढाँचा

सभी मुख्य भारतीय रेलों के राष्ट्रीयकरण के बाद विभिन्न रेलों के सीधे यातायात के बढ़ते हुए फासले की घटती हुई दरें कायम करने की सार्वजनिक माँग की उपेक्षा करना कठिन हो गया। इसीलिए दूसरे विश्वयुद्ध के समय, दरों के आधार का फिर से ब्योरेवार विश्लेषण हुआ। इस निमित्त बनाये गये विशेष संगठन के चार साल के कठिन परिश्रम के बाद पहली अक्टूबर 1948 से मौजूदा दरों की नियमित सूची काम में आ रही है। नयी दरों की सूची में 15 श्रेणियाँ हैं और इतनी ही समूचे मालगाड़ी के डिब्बों की दरों की श्रेणियाँ हैं, जो सभी भारतीय रेलों के लिए बढ़ते हुए फासले पर घटती हुई दर के आधार पर बनायी गयी हैं। आजकल, अधिक से अधिक दूरी के लिए छोटे से छोटे रास्ते द्वारा सब से सस्ती दर पर माल ढोया जाता है। दूसरे विश्वयुद्ध के समय जो नयी चुंगी लगी वह नयी दरों में शामिल नहीं है और उनका हिसाब लगाने का तरीका सरल और नियमित हो गया है। रेलों की बढ़ी हुई परिचालन लागत को पूरा करने के लिए ये नयी दरें कुछ बढ़ा दी गयी हैं।

सरकारी नियंत्रण के अलावा, परिवहन के दूसरे साधनों तथा रेलों की आपसी प्रतियोगिता ने भी दरों को निश्चित करने में बहुत प्रभाव डाला। असल में, कलकत्ता के व्यापारियों ने, 1861 में ही, सरकार को साफ बता दिया था कि उत्तर भारत से बम्बई को जानेवाले माल के महसूल की दरों से कलकत्ता के व्यापार को नुकसान पहुँच रहा है। बम्बई की दोनों लाइनों को चलानेवाली कम्पनियों को सरकार से निश्चित लाभ का आश्वासन प्राप्त था और उन्हें महसूल की दर घटाने में उस हद तक कोई आपत्ति नहीं थी जब तक कि वे सरकार की निश्चित की हुई कम से कम दर का उल्लंघन नहीं करतीं, विशेषकर ऐसे समय में जब आश्वासित दर से अधिक कमाने की सम्भावना बहुत कम थी। प्रतियोगिता से किसी हद तक लाभ तो हुआ, किन्तु इससे कभी-कभी अनुचित तरीकों का भी प्रयोग होने लगा, जिससे कुछ खास स्टेशनों के बीच चुनी हुई चीजें भेजने के लिए कई तरह की रियायती दरों के निकलने से परेशानी बढ़ गयी। अन्त में, बन्दरगाहों से आने-जानेवाले माल की बहुत सी घटी हुई दरें रेलों की अधिकृत सूची में शामिल कर ली गयीं। इससे जनता को यह शिकायत हुई कि रेलें कच्चे माल के निर्यात और बने हुए विदेशी माल के आयात को प्रोत्साहित कर रही हैं और उनकी यह नीति देशी उद्योगों के विकास में बाधक है। लोगों को बड़ी कोशिश करके यह समझाया गया कि बन्दरगाहों से आने-जानेवाले माल की घटी हुई दरें केवल व्यापार बढ़ाने के उद्देश्य से लगायी गयी हैं। यह भी बताया गया कि देशी उद्योगों में कभी भी कच्चे माल की इतनी बड़ी तादाद को खपाने की क्षमता नहीं रही और बचे हुए कच्चे माल को विदेशों में भेजना जरूरी था। इसी तरह, जब तक देश में लोगों के नित्य व्यवहार की चीजें नहीं बनने लगतीं और हमारी सभी आवश्यकताएं देश में तैयार माल से पूरी नहीं होतीं, तब तक बाहर से बने हुए

माल का मंगाना जारी रखना होगा। लोगों को यह भी बताया गया कि आयात-निर्यात के व्यापार के विकास में घटी हुई दरें लगा कर रेलें जो सहायता पहुँचाती हैं उससे वास्तव में देश की आमदनी बढ़ती है। भारतीय उद्योग कमीशन (1916-18) ने भी औद्योगिक विकास पर रेल की चालू दरों के प्रभाव का विस्तृत अध्ययन किया। कमीशन ने यह तो नहीं माना कि कुछ रेलों की घटी हुई दरें केवल विदेशी हितों को सहायता पहुँचाने के लिए लगायी गयी हैं, फिर भी, कमीशन को यह बात जान पड़ी कि बन्दरगाहों से आने-जानेवाले माल का खुले आम रेलों द्वारा पक्षपात करने से कुछ ऐसी रियायतें और सुविधाएं मिल गयी हैं जिससे किसी न किसी रूप में आयात-निर्यात के व्यापार को लाभ हो रहा है।

1948 में, दरों का नियमित आधार बनाते समय यह स्पष्ट कर दिया गया कि आयात-निर्यात और देश के अन्दर के यातायात के बीच कोई भेद नहीं बरता जायगा। इस तरह सभी प्रकार के पक्षपात का पूर्णरूप से अन्त कर दिया गया।

रेलवे दर-अधिकरण

भारतीय रेल- अधिनियम में विशेष प्रकार के लोगों या यातायात के लिए अनुचित पक्षपात या विरोध करने पर रोक लगी हुई थी। फिर भी, 1921 में, एकवर्थ कमेटी ने रेलवे शासन और जनता के बीच दर सम्बन्धी मामलों का निपटारा करने के लिए एक अधिकरण (ट्रिब्यूनल) नियुक्त करने की सरकार से सिफ़ारिश की। भारत सरकार ने इस सिफ़ारिश को नहीं माना, क्योंकि

1. दर सम्बन्धी मामलों में अन्तिम फैसला देनेवाली संस्था के बनाने में भारतीय रेल-अधिनियम के पांचवे अध्याय का संशोधन करना पड़ता है।
2. सरकार रेलों के व्यापारिक लाभ की जिम्मेदार है, इसलिए इन दरों को निर्धारित करने और उन पर नियंत्रण रखने के लिए दर-अधिकरण की स्थापना करना ठीक नहीं होगा।

1923 में इस मामले पर रेलों की केन्द्रीय परामर्श समिति के साथ विचार किया गया और सोच-विचार के बाद, 1926 में रेलवे की दर परामर्श समिति बनायी गयी। यद्यपि इस परामर्श समिति ने बहुत अच्छा काम किया और बहुत से मामलों में सरकार ने उसकी राय मानी, फिर भी व्यापारिक हितों ने स्वतंत्र अधिकरण बनाने की माँग जारी रखी। इस माँग के फलस्वरूप 1949 में दर-अधिकरण नियुक्त किया गया। इस न्यायाधिकरण का विधान और उसके कामों की व्याख्या भारतीय रेल-अधिनियम 1890 की 34 से 46 वी तक की धाराओं में मिलता है।

राष्ट्रीय विकास

अपनी प्रगति के साथ रेलों ने देश के आर्थिक विकास में भी हाथ बँटाया है। नयी लाइनों के खुलते ही आर्थिक सरगर्मी चालू हो जाती थी और आज भी पिछड़े हुए क्षेत्रों के विकास के लिए ही नयी लाइनें खोलने की माँग की जाती है। इसके अलावा, रेलों ने

उद्योग-धन्धों के विकास के लिए भाड़े में भी बहुत कुछ छूट दे रखी है। यद्यपि साधारणतः परिचालन की लागत तक भाड़े में कमी की गयी है, फिर भी कोयला जैसे मूल उद्योग के विकास के लिए तो रेलों ने परिचालन की लागत से भी कम दर निश्चित की है। यातायात की क्षमता के अनुसार महसूल की दर निश्चित करने के सिद्धान्त ने चीजों के अधिक से अधिक यातायात को प्रोत्साहित किया है। जब तक कीमती चीजों का भाड़ा अधिक नहीं होगा, अनाज और कच्चे माल जैसी सस्ती चीजें आसानी से नहीं भेजी जा सकतीं।

रेलों ने लोहा और इस्पात-उद्योग के विकास में, भाड़े में उचित रियायत करके, बड़ी मदद पहुँचाई है। इन दरों में कुछ तो कच्चे माल के लिए 1/15 पाई प्रति मन प्रति मील और बनी हुई चीजों के लिए 1/6 और 1/10 पाई प्रति मन प्रति मील तक नीची कर दी गयीं। यह घटी हुई दरें लगभग इस सदी के शुरू में चालू हुई और लगभग 25 साल तक जारी रहीं। आज भी यह साधारण श्रेणी की दरों से बहुत कम हैं। कच्चे माल, सीमेण्ट, रसायन, ग्लास, शक्कर और कागज के उद्योगों के लिए भी भाड़े में रियायत दी गयी। खेती की उन्नति में भी रेलों ने कम सहायता नहीं पहुँचाई है। लगभग सभी रेलों में खाद और रसायन के यातायात के लिए घटी हुई दरें रखी गयी हैं।

उद्योग-धन्धों और खेती के विकास से उद्योग और रेल दोनों को लाभ हुआ है।

22. उद्योगों का विकास और राजकीय डाक-व्यवस्था

पिछले सौ वर्षों में संसार के अन्य प्रगतिशील देशों की तरह, भारत ने भी, कई क्षेत्रों में प्रगति की है। इस प्रगति में रेलों के प्रभाव का ठीक-ठीक अनुमान लगाना कठिन है। किन्तु यह कहना अतिशयोक्ति न होगी कि रेलों ने राष्ट्र की प्रगति में अमूल्य सहायता की है। उन्होंने राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तनों के क्षेत्र को बढ़ाया और देश के आर्थिक ढांचे को मजबूत किया। सुरक्षित, सस्ते और शीघ्रगामी परिवहन का जाल बिछा कर, रेलों ने बहुत बड़े समुदाय को देश के एक भाग से दूसरे भाग की यात्रा करने के योग्य बनाया और तरह तरह का कच्चा और तैयार माल दूर-दूर के गांवों से व्यापारिक केन्द्रों, और वहां से देहातों को पहुँचाया। रेलों के प्रभाव से लोगों की यात्रा की आदतें बदल गयीं। लोगों को अलग रखनेवाली जातीय और प्रान्तीय सीमाएं टूट गयीं, शिक्षा का विकास हुआ और साधारण व्यक्तियों को जीविका के साधन और उसके अवसर मिले। रेलों ने देश के भीतर और विदेशी व्यापार को बढ़ाया और देश की कृषिमूलक अर्थ-व्यवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन किया। रेलों से अनेक उद्योगों के विकास में प्रोत्साहन मिला और देश की आर्थिक प्रगति को स्वावलम्बी बनने में सहायता मिली। रेलों के प्रसार के साथ छोटे-छोटे गाँव कस्बे बन गये, कई कस्बे बड़े शहर हो गये और कुछ बड़े-बड़े शहर तो इतने बढ़ गये कि उनकी आबादी, क्षेत्रफल और जीवन की आधुनिक सुविधाओं की तुलना संसार की बड़ी से बड़ी राजधानियों से की जा सकती है।

उद्योग-धन्धे

दिल्ली, इलाहाबाद, पटना आदि जैसे शहर, बड़े-बड़े राज्यों की, ईसा काल की कई शताब्दियों पहले, राजधानी होने पर भी, 1860 तक, आज के हिसाब से, 50,000 से 200,000 तक की आबादी के मामूली कस्बे थे। इनकी और इनके समान दूसरे शहरों की आबादी चार से पांच गुना हो गयी है। कानपुर जैसे औद्योगिक केन्द्र, रेलों के चालू होने के समय तक, मामूली कस्बे थे। जमशेदपुर, बंगलौर और आसनसोल का तो कहीं पता भी न था। कलकत्ता, बम्बई और मद्रास आयात-निर्यात के केन्द्र होते हुए भी, प्रसिद्ध न थे और उनमें कोई उल्लेखनीय उद्योग-धन्धा न था। पिछले सौ वर्षों में देश में उद्योग-धन्धे बड़ी तेजी से बढ़े हैं। आज सबसे अधिक जूट का सामान भारत में बनता है। रेशमी तथा सूती कपड़ों के उत्पादन में वह चोटी के देशों में है। लोहा, इस्पात, शक्कर, सीमेण्ट, भारी रसायन, दवाइयाँ तथा अन्य जीवनोपयोगी वस्तुओं के उत्पादन में भारत का पूर्व के देशों में प्रमुख स्थान है। देश ने औद्योगिक क्षेत्र में न केवल स्वावलम्बी होने की ही कोशिश की, बल्कि अपने यहां की बनी हुई चीजों के निर्यात को भी काफी बढ़ाया।

रेलों के चालू होने पर ही आसाम तथा देश के अन्य भागों में बड़े पैमाने पर चाय पैदा करना सम्भव हो सका। आज भारत में चाय की केवल सबसे अधिक खपत ही नहीं होती, उसका सबसे अधिक निर्यात भी यहीं से होता है। 1952 में केवल आसाम से 143,300 टन चाय रेलों द्वारा बाहर भेजी गयी।

बीस साल से कुछ पहले तक, भारत बाहर से बढ़िया चीनी मँगाता था। देहाती क्षेत्रों में थोड़ी तादाद में मोटी शक्कर बनाने भर को गन्ने की खेती होती थी। आज, भारत में अपनी जरूरत के लिए बढ़िया चीनी तैयार होती है और कभी-कभी बच जाने पर बाहर भी भेजी जाती है। गन्ने की खेती अब बहुत बड़े क्षेत्र में होने लगी है, जिससे बिहार और उत्तर प्रदेश के देहातों की अर्थ-व्यवस्था में काया पलट हो गयी है।

कोयला

कोयले की कहानी बड़ी रोचक है। कोयले की खानें खोदने का सबसे पहला लिखित वर्णन 1774 का है, जब कि रानीगंज की उथली खानों का पता लगा। 1855-56 में, रानीगंज तक ईस्ट इण्डियन रेलवे की लाइन बन जाने पर, रानीगंज से कलकत्ता को 1,60,000 टन कोयला भेजा गया। 1860 में रानीगंज में 50 खानें बन गयीं, जिनसे हर साल 282,000 टन कोयला निकलने लगा। देश में काफी कोयला निकलने लगा फिर भी, बम्बई, मद्रास, कराची तथा दूर-दूर की जगहों में देरी से पहुँचने के कारण, इंगलैण्ड और दक्षिण अफ्रीका से समुद्र मार्ग द्वारा कोयला आता रहा। यातायात का खर्च बहुत ज्यादा होता था, जिससे कलकत्ता तक में विलायती कोयला देशी कोयले से अधिक सस्ता बिकता था। विदेशों से मुकाबिला करने और कोयले की खपत को अन्य रेलों तथा अनेक मिलों और कारखानों में बढ़ाने के लिए, ईस्ट इण्डियन रेलवे ने 300 मील से ऊपर के भाड़े को घटाकर 5·4 से 4·5 पाई प्रति टन प्रति मील कर दिया। कोयले के उत्पादन की वृद्धि के साथ देशी कोयले की माँग बढ़ी और विदेशी कोयले का आना धीरे-धीरे बन्द हो गया। रेलों ने महसूल की दर में कमी करना जारी रखा। 1905 में, अधिक फासले के साथ-साथ घटती हुई दरें लागू की गयीं और इस तरह घटते-घटते 2·72 पाई प्रति टन प्रति मील की दर हो गई। 1889 में, भारतीय रेलों द्वारा भेजा गया कुल कोयला, विदेशी कोयले को मिलाकर, 1,311,000 टन था। 1951-52 में, 35,148,949 टन कोयला निकाला गया जिसमें 32,761,000 टन कोयला रेल से गया, जिससे रेलों को 26.63 करोड़ रुपये की आमदनी हुई, जो कुल आमदनी का 9 प्रतिशत से ऊपर और महसूल की कमाई का 17·3 प्रतिशत हुआ।

रेलों के चालू होने से केवल रुई, जूट, चाय, शक्कर और कोयले के उद्योगों की ही उन्नति नहीं हुई, बल्कि ये उदाहरण तो केवल यह स्पष्ट करने के लिए हैं कि रेलों ने देश की आर्थिक व्यवस्था को मजबूत करने में कितना बड़ा काम किया है। अनाज और अन्य खाद्य पदार्थों के वितरण, कच्चे माल और खनिज पदार्थों के ढोने और कई प्रकार की आयात-निर्यात की चीजों के ले जाने में, रेलों ने बहुत बड़ा काम किया है। युद्ध, अकाल और सूखा के संकट-काल में भी उन्होंने देश की अपूर्व सेवा की है।

डाकसेवा

डाक की सस्ती प्रणाली के विकास का मुख्य कारण रेल थी। लोगों को शायद यह नहीं मालूम है कि रेलों के चलने से पहले प्रमुख नगरों के इने-गिने मुख्य मार्गों तक ही डाक-व्यवस्था सीमित थी। 1854 के पहले, डाकखानों में विभिन्न प्रान्तों के भिन्न-भिन्न स्थानों के लिए अलग-अलग नियम और महसूल की दरों के आधार पर काम होता था। कलकत्ता से बम्बई को पत्र भेजने में प्रति तोला (2/5 औंस) एक रुपया और कलकत्ता से आगरा के लिए बारह आना प्रति तोला का महसूल लगता था। आमतौर से आठ-दस दिन में पत्र कलकत्ता से बम्बई पहुँचता था। डाक वाहकों द्वारा दौड़ कर या पैदल चलकर, घोड़ों, ऊंटों, बैलगाड़ी, घोड़ा-गाड़ी व नावों से पहुँचाई जाती थी। पार्सलों के ले जाने का कोई क्रम न था।

रेलों के चलने से डाक-व्यवस्था दूर-दूर फैल गयी और हिफाजत से जल्द बराबर पहुँचने लगी। प्रत्येक लाइन के चालू होते ही, डाक उसी से लाइन के सब डाकखानों को भेजी जाने लगी। गाड़ी के आखिरी स्टेशन के आगे की भी डाक उसी गाड़ी में जाती थी, जहाँ से डाक के हरकारे दौड़ कर या किसी सवारी पर जाकर डाक बाँटते थे।

1863 के पहले, डाक के थैले आमतौर से गार्ड के डिब्बे में जाया करते थे। बहुत भारी डाक होने पर ही, गार्ड की देख-रेख में अलग डिब्बा लगाया जाता था। चलती गाड़ी पर डाक के छांटने का कोई प्रबन्ध न होने के कारण, हर डाकखाने को हर दूसरे डाकखाने के लिए अलग से थैला बनाना पड़ता था, जिन्हें डाक का गार्ड हर स्टेशन पर लेता-देता था। धीरे-धीरे, इन थैलों की संख्या बेशुमार बढ़ने लगी और डाक के थैलों को छांटने के लिए बीच के कई स्टेशनों पर काफी देर तक गाड़ियाँ रुकने लगीं। 1870 में, ईस्ट इण्डियन रेलवे ने चल डाकखाना चालू किया, किन्तु रेल की डाक-सेवा 1907 में ही चालू हो सकी।

डाक का वजन काफी बढ़ जाने पर, डाकगाड़ी में चल डाकखाने के लिए दो विशेष प्रकार के दूसरे दर्जे के डिब्बे लगने लगे। अधिक भाड़ा लेकर विशेष प्रकार की गाड़ियाँ भी मिलने लगीं।

हाल में, बड़े-बड़े शहरों के बीच हवाई जहाज से डाक भेजने का भी प्रबन्ध किया गया है। यातायात की सहायता के लिए मोटर बसें और छोटे-छोटे जहाज भी काम में लाये गये हैं। राजपूताना के रेगिस्तानी क्षेत्र में अब भी ऊँटों द्वारा डाक जाती है। कुछ क्षेत्रों में, आज भी हरकारों, घोड़ों, घोड़ा-गाड़ियों और नावों द्वारा ही पत्र और पार्सल जा सकते हैं। किन्तु रेल ही डाक-व्यवस्था का मुख्य रूप से एकमात्र आधार है। भारी डाक और पार्सलों को ले जाने में, देश के दूर-दूर के क्षेत्रों में डाक-व्यवस्था स्थापित करने में, रेलें महत्वपूर्ण काम कर रही हैं और अभी कई वर्षों तक करती रहेंगी।

23. स्वतंत्रता के बाद

भारत के इतिहास में 15 अगस्त, 1947 चिरस्मरणीय तिथि है। इस दिन भारत स्वतंत्र हुआ था। पाकिस्तान बनाने के लिए कुछ क्षेत्रों का बँटवारा हुआ था जिसका भारतीय रेलों पर भारी प्रभाव पड़ा। रेल-व्यवस्था पर युद्ध का भारी बोझ तो पहले ही पड़ चुका था जिससे इसकी हालत काफी खराब हो चुकी थी। लड़ाई के दिनों में, मीटर लाइन के इंजनों का आठ प्रतिशत व माल-डिब्बों का पन्द्रह प्रतिशत भाग और लगभग 4000 मील की रेल की पटरियां और 40 लाख स्लीपर देश के बाहर, अधिकतर मध्य-पूर्व भेजे गए। भाप के इंजनों और डिब्बों की बहुत कमी हो गयी थी। साथ ही मरम्मत और बदलाव का काम भी बहुत पिछड़ गया था। अत्यधिक प्रयोग के कारण रेलों के सामान पुराने हो गये थे। देश में मरम्मत और सुधार के साधन बहुत सीमित थे। इंजन, मशीन और दूसरे सामान बहुत बढ़े हुए दामों पर विदेशों से मँगाने पड़े।

बढ़ा हुआ यातायात

साथ ही 1947-48 की तुलना में रेल का यातायात भी बेहद बढ़ गया। पाकिस्तान के हिस्से में जो रेलें चली गयीं उनको छोड़ कर 1938-39 के मुकाबले इस साल सवारियों की संख्या 35 करोड़ 50 लाख से बढ़कर 90 करोड़ 20 लाख पहुँच गयी। यह 154 प्रतिशत की वृद्धि थी। यात्रियों की कुल मील-संख्या 1938-39 के 12 अरब 58 करोड़ 80 लाख मील से बढ़कर 29 अरब 1 करोड़ 30 लाख मील हो गयी। यह 130 प्रतिशत की वृद्धि थी। माल-यातायात में 11 प्रतिशत की वृद्धि हुई। इसके विरुद्ध गाड़ियों की कुल मील-संख्या 1938-39 के 13 करोड़ 53 लाख 80 हजार से घट कर 1947-48 में 13 करोड़ 47 लाख मील रह गयी। इससे, स्पष्ट है कि सवारी गाड़ियों में असाधारण भीड़ हुई, यातायात का जमघट हो गया और माल के आने-जाने में काफी देर और दिक्कतें होने लगीं।

विभाजन

देश के बँटवारे के फलस्वरूप नयी समस्याएं और कठिनाइयां खड़ी हो गयीं। पूर्वी सीमा की बंगाल-आसाम रेलवे और उत्तर-पश्चिम की नार्थ वेस्टर्न रेलवे दोनों देशों में बँट गयीं। दोनों देशों के रेल-कर्मचारियों की अदला-बदली से नित्य के काम में बड़ी अड़चनें पैदा हो गयीं। कुछ बड़े-बड़े कारखाने, पुल और लाइनों के डिपो और माल-गोदाम निकाले गये और उनकी जगह पर कोई नया प्रबन्ध नहीं किया गया। दंगा-फसाद, गड़बड़ी और भारी संख्या में शरणार्थियों के सीमा पार करने से हालत और भी बिगड़ गयी। आसाम

रेलवे का देश के अन्य भागों से सम्बन्ध टूट गया। भारत की सीमा से होकर आसाम तक सीधा रेल-मार्ग तुरन्त बनाना पड़ा। विभाजन के कारण यातायात के ढांचे में भी बड़े-बड़े परिवर्तन हुए। उत्तरी भारत की ओर के यातायात को, जो अब तक कराची से होकर था, अब बम्बई की ओर मोड़ना पड़ा। इस प्रकार बम्बई और दिल्ली के बीच की लाइनों पर, उनकी शक्ति से अधिक बोझ पड़ गया। इस बढ़ते हुए बोझ को संभालने के लिए अतिरिक्त लाइनें और यार्ड की सुविधाएं जुटानी पड़ीं।

विभाजन से पहले, पठानकोट बड़ी लाइन का आखिरी स्टेशन था और कांगड़ा वेली रेलवे की छोटी लाइन यहीं से शुरू होती थी। इससे कुलू, धर्मशाला, डलहौजी और आस-पास के दूसरे पहाड़ी स्टेशनों की जरूरतें सड़क द्वारा पूरी होती थीं। अधिकतर सारा यातायात लाहौर से था जो पाकिस्तान का अंग बन गया। जम्मू और कश्मीर के यातायात की जरूरतें रावलपिण्डी (पाकिस्तान) और जम्मू के रेल-अड्डों से पूरी होती थीं। ये दोनों सीधे लाहौर से सम्बन्धित थे। देश के विभाजन से जम्मू और कश्मीर इन दोनों रास्तों से वंचित हो गये और इस प्रकार भारत के दूसरे भागों से बिल्कुल अलग हो गये। विभाजन के तुरन्त बाद पठानकोट से जम्मू को, रावी नदी को पार करके, एक सड़क चालू की गयी और पठानकोट से जम्मू और कश्मीर के बढ़े हुए यातायात को पूरा करने की आशा की जाने लगी। विभाजन से पहले के, लाहौर होकर होनेवाले यातायात को, दिल्ली की ओर मोड़ना पड़ा, जिससे तुरन्त कई समस्याएं पैदा हो गयीं और उन पर ध्यान देना आवश्यक हो गया।

बहुमुखी-योजनाएँ

स्वतंत्रता के बाद उद्योगों को अपना उत्पादन बढ़ाने का स्वाभाविक प्रोत्साहन मिला। बाहर से बहुत बड़ी तादाद में भारी-भारी सामान मँगाने पड़े, बचत के इलाकों से कमी की जगहों को तुरन्त माल भेजना पड़ा। बाहर से मँगाया हुआ अनाज बहुत बड़ी मात्रा में समुद्री रास्ते से देश के भीतरी भागों में पहुँचाया गया। आर्थिक विकास और राष्ट्र-निर्माण के प्रतीक स्वरूप दामोदर घाटी, भाखड़ा बाँध, तुंगभद्र बांध और हीराकुण्ड तथा अन्य कई जल-विद्युत और सिंचाई की बहुमुखी योजनाएं थीं, जिनके काम आनेवाले भारी सामान पहुँचाने के लिए रेलों को समुचित प्रबन्ध करना पड़ा।

सबसे पहले भारतीय रेलों को चालन-शक्ति की कमी को पूरा करना था, जिसके कारण रेल के संचालन में बड़ी बाधा पड़ रही थी। लड़ाई के दिनों में, बदलने वाले सामान के न मिलने के कारण इंजनों का अनुरक्षण कठिन हो गया था। जो थोड़े से नये इंजन आये वे अपर्याप्त थे। हालत इतनी बिगड़ चुकी थी कि 31 मार्च 1949 को, भारत सरकार की रेलों के करीब 30 प्रतिशत इंजन बिल्कुल पुराने हो चुके थे। इंजनों के अनु-रक्षण और उनकी मरम्मत के भारी खर्च के अलावा उनके चलते-चलते खराब हो जाने से भी काफी परेशानी हो जाती थी। 863 इंजन मंगाने का प्रबन्ध किया गया। बाद में, विदेशों से और भी अधिक इंजन मँगाने के आर्डर दिये गये। बड़ी लाइन के इंजनों के सम्बन्ध में रेलवे को स्वावलम्बी बनाने के लिए चितरंजन में इंजन-कारखाना 1948 में शुरू होकर पहली नवम्बर 1950 को पूरा हुआ।

माल और सवारी डिब्बों की भी हालत अच्छी न थी। देश के अन्दर, इस्पात की कमी और उत्पादन की सीमित क्षमता के कारण, पुराने खराब डिब्बों की जगह नये डिब्बे बनाने में बड़ी अड़चनें पड़ रही थीं। चालू सवारी डिब्बों में काफी मरम्मत की जरूरत थी। साथ ही लड़ाई के बाद बढ़े हुए यात्री यातायात के लिए वे पर्याप्त न थे। रेल-कारखानों, माल-डिब्बे बनानेवाली देशी कम्पनियों और हिन्दुस्तान एयर क्रॉफ्ट फैक्ट्री की पूरी ताकत सवारी माल-डिब्बों के सुधारने और उनकी मरम्मत करने और नये ढंग के अच्छे डिब्बे बनाने में लगा दी गयी।

कर्मचारी

लड़ाई के बाद कर्मचारियों की समस्याएं भी सामने थीं। इनमें से एक समस्या बड़ी संख्या में अस्थायी कर्मचारियों की थी। किसी भी निश्चित नीति के लागू करने से पहले ही, विभाजन के फलस्वरूप आये हुए कर्मचारियों ने काफी परेशानी पैदा कर दी। इन कर्मचारियों की स्थायी जगहों पर नियुक्ति शुरू हुई और मार्च 1952 तक इस प्रकार के 224,166 कर्मचारी स्थायी जगहों पर रखे गये। वेतन और काम की हालतों में सुधार करने की कार्यवाहियाँ भी की गयीं। काम के घंटों, विश्राम की अवधि और छुट्टी के सम्बन्ध में न्यायाधीश, श्री राजाध्यक्ष के निर्णय को, जो 1947 में प्रकाशित हुआ था, सरकार ने जून 1948 में मान लिया और भारत सरकार की पहले की नौ रेलों को इन्हें कार्यान्वित करने के लिए तीन वर्ष का समय दिया गया। इस निर्णय को लागू करने से काम के घण्टों में कमी हुई, विश्राम-अवधि तथा अतिरिक्त समय के काम की दर में वृद्धि हुई, छुट्टी के नियम निश्चित हो गये, जिससे अतिरिक्त कर्मचारियों की नियुक्ति हुई। 'निर्णायक' की काम के घण्टों और विश्राम-सम्बन्धी सिफारिशें, भारत सरकार की पहले की नौ रेलों ने, जिन्होंने झगड़े का निपटारा कराना स्वीकार किया था, कार्यान्वित कर दिया, जिससे कुल मिलाकर पचास हजार के अधिक कर्मचारी और रखने पड़े। भारतीय रेलों के पुनर्वर्गीकरण के समय भूतपूर्व देशी राज्यों की रेलों के मिल जाने पर, निर्णायक की भारतीय रेल-सम्बन्धी सिफारिशें उनपर भी एकसी लागू कर दी गयीं। पाकिस्तान से आये हुये पन्द्रह हजार से अधिक लोग तथा बर्मा से लौटे हुये बहुत से भारतीय निर्णायक के फैसले से उत्पन्न जगहों में रख लिये गये।

इसी समय, रेलवे-सेवा से सम्बन्धित केन्द्रीय वेतन कमीशन की सिफारिशें भी कार्यान्वित की गयीं। इन सिफारिशों ने, रेल-मजदूर संगठन के अनुसार, कुछ गड़बड़ी पैदा कर दी, जिनका लागू होने के पहले सुधार करना जरूरी हो गया। मई 1949 में, एक संयुक्त परामर्श समिति बनायी गयी, जिसमें चार मजदूरों के प्रतिनिधि, चार रेलवे बोर्ड के प्रतिनिधि और एक स्वतंत्र अध्यक्ष, सदस्य थे। इस संयुक्त परामर्श समिति की सिफारिशों ने मजदूरों पर कितना अच्छा प्रभाव डाला इसका अनुमान कमेटी के एक प्रमुख मजदूर सदस्य के कथन से जाना जा सकता है। उसने कहा कि 'उनका काम बहुत महान था और इस कमेटी को बेमिसाल सफलता मिली है।' इस कमेटी की सिफारिशों को लागू

करने की तुरन्त कार्यवाही की गयी। इन कार्यवाहियों के फलस्वरूप तनखाहें बढ़ने और नौकरियों में अधिक प्रतिनिधित्व मिलने से कर्मचारियों को बड़ा लाभ हुआ। छुट्टी के नियमों में उदारता से काम लिया गया और उन अस्थायी कर्मचारियों को भी जिन्होंने एक साल की लगातार नौकरी कर ली है, राजकीय रेलवे संचित कोष की सुविधा दे दी गयी। सस्ते अनाज की दुकानें रहने दी गयीं। लागत के दाम पर सस्ता और अच्छा भोजन देनेवाले जलपान घर, कारखानों, यार्डों और बड़े स्टेशनों पर कर्मचारियों के लिए जलपान घर और कैन्टीन बनाये गये जहाँ उनके लिए बिना नफा लिए सस्ते और अच्छे भोजन का प्रबन्ध किया गया। रेलवे विभाग में उपभोक्ता सहयोग भण्डार के विकास को भी बढ़ावा मिल रहा है।

रेल-कर्मचारियों के रहने के लिए बड़ी संख्या में अच्छे किस्म के मकान ही नहीं बनाये गये, (1951-52 में, 6,825 नये मकान बने), बल्कि मौजूदा रेल की बस्तियों की हालत सुधारने में भी काफी रुपया खर्च किया गया है। कर्मचारियों को ट्रेनिंग और उनके बच्चों की शिक्षा के लिए भी काफी सुविधाएँ दी गयी हैं। उनकी चिकित्सा आदि के लिए भी अच्छी व्यवस्था कर दी गयी है। साथ ही सामाजिक और सांस्कृतिक विकास के लिए भी कर्मचारियों को सुविधाएँ दी गयी हैं। इन सब बातों से कर्मचारियों में जो विश्वास और सद्भावना फैली उसका स्पष्ट संकेत इस बात से मिलता है कि हड़तालें बहुत कम हुईं। श्रमदिनों की कुल संख्या का बरबाद हुआ भाग 1948-49 में 0.2 प्रतिशत था जो 1951-52 में घटकर 0.013 प्रतिशत रहगया। इस सद्भावना और सहयोग के कारण कर्मचारियों की कार्य-पटुता अपने आप बढ़ गई, जिससे रेलों ने बड़ी बड़ी समस्याओं और कठिनाइयों का न केवल सफलतापूर्वक सामना किया, किन्तु अपने प्रबन्ध में भी बड़े बड़े सुधार किये।

यातायात के जमघट को मिटाने की कोशिश

कार्य-संचालन में उन्नति और सुधार करने की कोशिशों के कारण रेलों ने, 1949-50 तक दूसरे विश्वयुद्ध तथा अगस्त 1947 के बाद की घटनाओं द्वारा उत्पन्न कई जगहों की गाड़ियों के जमघट को मिटा दिया। इस समय में माल के टन मील-संख्या 1938-39 के मुकाबिले, जो 1947-48 से भी कहीं ज्यादा थी, 36 प्रतिशत और सवारियों की मील-संख्या 161 प्रतिशत तक बढ़ गई। गाड़ियों की मील-संख्या भी 8.56 प्रतिशत बढ़ी। इस समय में, इस अतिरिक्त भार को न केवल सफलतापूर्वक सम्भाला गया, किन्तु 1949 में तो लोहा और इस्पात, कपड़े और सीमेण्ट जैसे मूल उद्योगों के कच्चे और बने हुए दोनों सामान के लिए शत प्रतिशत यातायात सुलभ कर दिया गया था। इसके साथ अनाज और कोयले का यातायात ऊँची प्रथमता के आधार पर चल ही रहा था।

रेलों ने स्थिति का सामना और कठिनाइयों को हल करने के लिए कुछ विशेष तरकीबें निकालीं। नमक, शक्कर, अनाज, चारा, कच्चा मेंगनीज आदि बहुत सी जरूरी चीजों के शीघ्र यातायात के लिए, 1948 के अन्तिम भाग में, कुछ स्टेशनों से चुनी हुई जगहों के लिए स्पेशल गाड़ियाँ चलायी गयीं। धीरे-धीरे यह प्रबन्ध पूरे भरे हुए डिब्बे के

अलावा मुख्य केन्द्रों से फुटकर और साधारण माल के यातायात के लिए भी लागू कर दिया गया। ये गाड़ियाँ निश्चित तारीखों पर समयानुसार चलती थीं, जिससे निश्चित समय के अन्दर माल निर्दिष्ट स्थान पर पहुँच जाता था।

गाड़ियों में भीड़ कम करने के लिए सवारी गाड़ियों की संख्या बढ़ा दी गयी। नीचे के दर्जों में अधिक भीड़ होने के कारण, सिर्फ तीसरे दर्जे के यात्रियों के लिए जनता एक्सप्रेस के नाम से स्पेशल गाड़ियाँ चलायी गयीं। 1952 के अन्त तक, भूतपूर्व पूर्वी पंजाब रेलवे (वर्तमान उत्तर रेलवे) में दिल्ली और पठानकोट के बीच, भूतपूर्व ईस्ट इण्डियन रेलवे (वर्तमान उत्तर और पूर्व रेलों के भाग) में दिल्ली और हावड़ा के बीच, भूतपूर्व अवध-तिरहुत रेलवे (वर्तमान पूर्वोत्तर रेलवे) में लखनऊ और कटिहार के बीच, भूतपूर्व साउथ इण्डियन रेलवे (वर्तमान दक्षिण रेलवे) में मद्रास (सेण्ट्रल) और मंगलोर तथा मद्रास (एगमोर) और त्रिचनापल्ली के बीच और मध्य रेलवे में बम्बई और पूना तथा बम्बई और मद्रास के बीच, जनता एक्सप्रेस चलने लगीं।

1946-47 में, बड़ी लाइन की केवल 54 प्रतिशत डाक और एक्सप्रेस गाड़ियाँ और मीटर लाइन की 43.2 प्रतिशत गाड़ियाँ समय पर चलीं। बहुत बार तो कई घण्टे बाद गाड़ियाँ पहुँची। 1951-52 तक, बड़ी लाइन का प्रतिशत बढ़कर 74 और मीटर लाइन का 73 हो गया। सामान्यरूप से ठीक समय पर पहुँचनेवाली सवारी गाड़ियों का प्रतिशत 1947-48 में बड़ी लाइन पर 67.6 और मीटर लाइन पर 69.7 से बढ़कर 1949-50 में क्रमशः 81.4 और 76.7 तक पहुँच गया।

इंजन

इंजनों के उपयोग में काफी उन्नति हुई। प्रति इंजन घण्टा की शुद्ध टन-मील संख्या 1951-52 में 1947-48 से बढ़कर बड़ी लाइन की 1,755 से 2,057 और मीटर लाइन की 725 से 768 तक पहुँच गयी। साधारण गाड़ी द्वारा ढोये गये बोझ का औसत 1947-48 से 1951-52 में बड़ी लाइन पर 423 से 487 और मीटर लाइन पर 176 से 187 हो गया। इसी अवधि में माल-डिब्बों का उपयोग भी प्रति वैगन दिन बड़ी लाइन पर 34.3 से बढ़कर 40.9 मील और मीटर लाइन पर 28.5 से 32.4 मील हो गया। परिचालन और सब तरफ की यह प्रगति तभी सम्भव हुई जब भारतीय रेलों ने 1951-52 तक अपनी बहुत सी त्रुटियाँ पूरी कर लीं और साथ ही साथ पूर्व आयोजित विस्तार और विकास की ओर मेहनत से बढ़ती गयीं।

इसी समय, आसाम रेल को भारतीय रेलों से मिलाने की कार्यवाही की गयी और कश्मीर के भारत में शामिल हो जाने के कारण पठानकोट के बढ़े हुए यातायात के लिए दूसरा रास्ता निकालना पड़ा। जनवरी 1948 में, आसाम रेल लिंक योजना पर काम शुरू हुआ। पहाड़ी इलाकों, घने जंगलों, भारी बरसात और तेज बहनेवाली नदियों की घोर कठिनाइयों के बीच, इस काम का दिसम्बर 1949 के आरम्भ में पूरा हो जाना इंजीनियरिंग की कुशलता का उल्लेखनीय उदाहरण है।

आसाम रेल-लिंक

आसाम रेल-लिंक 143 मील लम्बी है। इसका रास्ता मलेरिया के मच्छरों से भरे घने जंगलों से होकर जाता है। छान-बीन करने, जमीन तैयार करने, पुल बनाने और पटरी बिछाने से पहले इस जंगल को साफ़ करना जरूरी था। नवम्बर 1948 और अप्रैल 1949 के बीच, 20 करोड़ घन फीट मिट्टी जमीन तैयार करने और रास्ते को ठीक करने के लिए हटायी गयी। पूर्वी बिहार और पच्छिमी आसाम के कछारी मैदानों के दोनों सिरों के बीच, भव्य हिमालय की तलहटी पड़ती थी, जो विशालकाय पत्थरों से पटी पड़ी थी। रास्ते में काफ़ी गहरे कटाव और ऊँचे टीले थे। सबसे बड़ी समस्या 250 मील तक फैले हुए 368 नालों और नालियों के ऊपर 3 फीट से लेकर 1,425 फीट तक के दरवाले पुलों के बनाने की थी। यह काम साढ़े पाँच महीने के खुले मौसम में पूरा करना था और ऐसी जगह जहाँ आमतौर से साल में 250 इंच से अधिक बरसात होती है।

टिस्टा, तोरसा और संकोश को मिलाकर 22 नदियाँ थीं जिनपर पुल बनाने के लिए गहरे कुएँ की नींव डालना जरूरी था। बाढ़ वाले रास्तों तथा पहाड़ी चश्मों के ऊपर चुनाई के खम्भों पर इस्पात के गाटर लगाकर पुल बनाये गये। कुओं के गलाने में 6 फीट व्यासार्ध तक के बड़े-बड़े पत्थर के ढेर और गड़े हुए पेड़ों के तनों को निकाल बाहर करना पड़ा। नदियों की गहराई, बाढ़ के पानी के भीषण वेग और पानी में बड़ी-बड़ी चीजों के बहने के कारण इंजीनियरों ने इस इलाके में पानी की दिशा नियन्त्रित करने के लिए बाँध बनाना अनुपयुक्त समझा। इसकी जगह प्रत्येक नदी और चश्मे के ऊपर एक किनारे से दूसरे किनारे तक पुल बनाकर बाद में हर साल आवश्यकतानुसार बहाव को सम्हालने के लिए किनारों पर रोक बनती गयी। इस योजना में कहीं-कहीं एक किनारे से दूसरे किनारे तक पुलों का बनाना बहुत खर्चीला समझा गया और कुछ सुधार के साथ बहाव की दिशा को नियन्त्रित करने के लिए बाँध बनाये गए।

तार के ढाँचे में भरी हुई सीमेण्ट के गाटर

पुलों के दरों को पाटने के लिए भारतीय रेल के प्रमाणित इस्पाती गाटर और फौज के प्रमाणित लोहे के गाटरों का उपयोग होता था। तीन पुलों में 60 फीट और 40 फीट के दरों के लिए उसी जगह तार के ढाँचे में सीमेण्ट भर कर गाटर ढाल दिये गए। रेलों के बोझ को सम्भालने के लिए इस प्रकार गाटरों की ढलाई भारत में और शायद संसार में पहली बार की गयी और यह तरीका पुल बनाने के काम में अनोखा और सराहनीय समझा गया। एक जगह सड़क के नीचे के पुल में, 44 फीट दर के लिए 48 डिग्री तिरछा झुका हुआ दो हुकों पर सधा हुआ ठोस सीमेण्ट का ढाँचा बनाया गया।

सब मिलाकर, 250 फीट का एक दर, 150 फीट के 29 दर, 100 फीट के चार दर, 80 फीट के 14 दर, 60 फीट के 18 दर, 40 फीट के 20 दर तथा 30 फीट और उससे कम के 100 दर बनाये गये। कार्यालय और कर्मचारियों के निवास के लिए बनायी गयी इमारतों का कुल क्षेत्रफल 550,000 वर्ग फीट है। पूरी योजना में 8,89,71,204 रुपये खर्च हुए, जिसका औसत 6,22,176 रुपया प्रति मील होता है।

मुकरियाँ-पठानकोट लाइन

मुकरियाँ-पठानकोट लाइन पर नवम्बर 1949 में काम शुरू हुआ और यह लाइन यातायात के लिए 7 अप्रैल 1952 को खोल दी गयी। इस रास्ते से मुकरियाँ और पठानकोट के बीच का फासला 27 मील से कुछ ही कम है। यह क्षेत्र उपजाऊ है और यहाँ चावल, गेहूँ, मकई आदि की अच्छी पैदावार होती है। यहाँ आम और नीबू आदि फल भी काफी होते हैं। इस लाइन से दिल्ली और पठानकोट—कश्मीर और कुल्लू घाटियों का प्रवेश द्वार—के बीच के फासले में 44 मील की कमी हो जाती है। इस लाइन में कई पुलों के कारण 3.77 करोड़ रुपये खर्च हुए हैं। जल मार्गों के प्रति मील 132.14 फीट में, करीब 82 फीट व्यास नदी और 13 फीट चक्की नदी के भाग हैं। सिर्फ व्यास नदी और चक्की नदी के पुलों में कुल लागत का करीब 50 प्रतिशत खर्च हुआ है। 18 इंच व्यास के सीमेण्ट के गोल ह्यम पाइप की पुलियों से लेकर चक्की नदी के 350 फीट के एक दर के पुल सहित कुल 108 पुल बनाये गये हैं।

इस काम में 35,000 टन सीमेण्ट, 12,000 टन इस्पात के गाटर और लाइन का सामान और 1,500,000 घन फीट पत्थर लगा, जो बहुत दूर-दूर से पहुँचाया गया। कुल 100,000,000 घन फीट मिट्टी हटायी गयी और 102,000 वर्ग फीट जमीन पर स्थायी इमारतें बनायी गयीं।

काण्डला-डीसा लाइन

भारत के विभाजन और कराची बन्दरगाह के निकल जाने के बाद, भारत के पश्चिमी तट पर एक बड़े बन्दरगाह की जरूरत मालूम होने लगी। इसके लिए कच्छ का काण्डला उपयुक्त समझा गया जिसका बाद में गान्धीधाम नाम पड़ा। नवम्बर 1949 में, भारत सरकार ने काण्डला और डीसा, जो उस समय मीटर लाइन रेल का आखिरी स्टेशन था, के 170.04 मील के बीच एक मीटर लाइन बनाने का आदेश दिया। जनवरी 1950 में इस लाइन पर काम शुरू हुआ और भारत के राष्ट्रपति ने इसे यातायात के लिए 2 अक्टूबर 1952 को नियमितरूप से चालू किया।

डीसा और वाराही के बीच की कुछ जमीन समतल और उपजाऊ है। अदेसर और भाचऊ के बीच, रेलवे लाइन ऊँची-नीची पहाड़ियों के बीच होकर जाती है, जहाँ कई नालों और चश्मों के ऊपर बहुत से पुल बनाने पड़े। बनास नदी इस नयी लाइन की सबसे बड़ी नदी है। इसके बहाव का क्षेत्रफल 1,264 वर्गमील है, जो अधिकतर अरावली पहाड़ियों में पड़ता है। जिस जगह (डीसा से करीब दो मील) रेल की लाइन नदी को पार करती है वहाँ की जमीन रेतीली है और मील में 5.62 फीट का ढाल है। इस जगह नदी का सबसे अधिक बहाव 240,000 घन फीट प्रति सेकण्ड माना जाता है। बनास नदी के ऊपर का पुल इस लाइन का सबसे लम्बा पुल है। इसमें 80 फीट के 14 दर हैं और प्लेट गाटर लगे हैं। यह पुल 22 फीट व्यास के सीमेण्ट के कुओं पर बने हुए बड़े-बड़े खम्भों पर सधा हुआ है। यद्यपि गान्धीधाम-डीसा रेल लिंक पर इस समय भाप के इंजनों का उपयोग हो रहा है, फिर भी इस क्षेत्र का पानी सख्त होने के कारण, भाप के इंजन के

उपयुक्त नहीं है। इस लाइन पर तेल द्वारा संचालित इंजनों को काम में लाने का विचार किया गया है।

रेल-संचालन को फिर से अपनी जगह लाने और देश की शीघ्र उन्नति में सहायक होने के लिए, इस प्रकार के आयोजित कामों में बड़ी लागत की जरूरत थी। एक बार खर्च होने वाली बड़ी रकमों को छोड़कर, युद्ध के पहले के आंकड़ों की तुलना में, 1950-51 में बार-बार लगने वाली रकमों में केवल मजदूरी पर तिगुना खर्च था। नये सामान लगाने और पुराने सामानों के बदलाव में भी इसी प्रकार वृद्धि हुई। इंधन का दाम करीब 400 प्रतिशत बढ़ गया। रेलों की आमदनी में भी तेजी से बेमिसाल वृद्धि हुई, किन्तु उससे खर्च पूरा नहीं हो सकता था। 1949-50 में, आमदनी में 190 प्रतिशत वृद्धि के मुकाबिले संचालन व्यय 264 प्रतिशत बढ़ गया। 1951-52 में हालत सुधरी और अन्यत्र दिये हुए वित्तीय आँकड़ों के हिसाब से संचालन व्यय के अनुपात में कमी की गयी।

ये आँकड़े वित्त की उन बहुत सी जटिल समस्याओं की ओर संकेत करते हैं, जिनका सामना रेलों को बड़े कठिन समय में करना पड़ा। इस समय सरकार की आर्थिक स्थिति में तंगी आ जाने के कारण रेल प्रशासनों की परेशानियाँ और भी बढ़ गयीं। इस समय रेलों को अपने आरक्षित कोष से आवश्यकता के अनुसार रुपया निकालने की छूट नहीं थी। यातायात की बढ़ी हुई लागत को पूरा करने के लिए, अप्रैल 1951 में किराये की दर कुछ बढ़ा दी गयी।

संशोधित रेल अभिसमय (कन्वेन्शन)

इस समय यह अनुभव किया गया कि रेलवे वित्त को सामान्य वित्त से अलग करने वाले 1924 के अभिसमय में तात्कालिक संशोधन की आवश्यकता है। 1924 का अभिसमय, रेलों के वित्तीय शासन में समयानुकूल परिवर्तन करने के लिए अपनाया गया था, जिससे खुलकर व्यापारिक ढंग पर काम किया जा सके और विकास और विस्तार की नीति में छूट बनी रहे। इसको लागू करने के 25 वर्ष बाद यह अनुभव किया गया कि इनमें से किसी उद्देश्य की पूर्ति नहीं हो पायी। सरकारी कोष में दी गयी रेलों की बचत का भाग सदा अनिश्चित रहा, जो प्रत्येक साल की बचत के हिसाब से घटता-बढ़ता रहा। ऐसी स्थिति में, पहले से कोई आयोजन या ठीक अनुमान नहीं किया जा सकता था। इससे रेलों को समृद्धि काल के बचत कोष को भी काफी बढ़ाने का मौका नहीं मिला, जिससे मन्दी के जमाने में उनका सामान्य कोष में कम से कम भाग देना सुनिश्चित हो जाता। इस तरह उदाहरण के तौर पर, 1930-40 के बीच, उनकी बचत इतनी कम हो गयी कि वे पूंजी पर व्याज भी देने में समर्थ न हो सकीं। केवल बचत-कोष ही खाली नहीं हुआ, मूल्य ह्रास कोष पर भी हाथ लगाने की नौबत आ गयी। हालत इतनी नाजुक हो गयी थी कि ऋणस्थगन की शरण लेनी पड़ी लेकिन विचित्र बात यह है कि इसी बीच में युद्ध-संकट से रेलों की दशा में सुधार होने लगा।

रेल अभिसमय की अन्य बातों से भी कोई अच्छा फल नहीं निकला। आय और पूंजी के बीच खर्च के बंटवारे के नियमों से भी, रेलों की सामान्य वित्तीय स्थिति पर उल्टा

असर पड़ा और उनसे यात्रियों की सुविधाओं और रेलों के संचालन में भी खराबियाँ आ गयीं। जैसे, इन नियमों से यात्रियों और कर्मचारियों की सुविधाओं के लिये खर्च करने में अड़चन पड़ गयी; क्योंकि ऐसे खर्च से कोई लाभ नहीं था। कम्पनी-प्रबन्ध की रेलों ने योजनाओं पर खर्च करना उचित नहीं समझा, क्योंकि ऐसा करने से नुकसान न होने पर भी पूँजी के कुल मुनाफे में कमी हो सकती थी। ऐसी रेलों के सरकार के अधीन आते ही अनुरक्षण और संचालन की भूलों तथा जनता और कर्मचारियों की आवश्यक सुविधाओं की कमी के सवाल सामने आये।

1949 में, पालियामेण्ट की एक समिति बनायी गयी, जिसे वित्तीय पक्षों की पूरी जाँच और नया अभिसमय तैयार करने के अधिकार दिये गये। समिति के एक प्रस्ताव में दी हुई सिफारिशों को पालियामेण्ट ने दिसम्बर 1949 में मान लिया और पहली अप्रैल 1950 से उनको लागू कर दिया।

नयी वित्त व्यवस्था

नये अभिसमय में रेलों और सामान्य वित्त का सम्बन्ध बदल दिया गया, जिससे साधारण करदाता को रेल के कामों में, सरकार की उधार दी हुई पूँजी पर चार प्रतिशत सालाना के आश्वासित लाभ पर, एक मात्र साझे का अधिकार मिला। मूल्यह्रास निधि के लिए कम से कम 15 करोड़ रुपया सालाना रखा गया, जो 1950-51 में बढ़ाकर 30 करोड़ रुपया कर दिया गया। इस प्रकार रेल की बचत के हिसाब से अतिरिक्त रुपया लगाने की छूट मिल गयी। पूँजी और आय के बीच खर्च के बँटवारे के संशोधित नियमों से फालतू पूँजी की स्थिति सुधारने का प्रयास किया गया, जो पहले ठीक नहीं हो पाती थी। बदले जाने वाले सामान (सुधार की चीजों और अन्य कीमती सामान को मिलाकर) की कुल लागत अब मूल्यह्रासनिधि से वसूल की जाने लगी। विकास कोष की बचत से एक विकास निधि बनाई गयी, जिससे यात्रियों के आराम, मजदूरों के कल्याण तथा राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था के अनुकूल योजनाओं के लिए खर्च का प्रबन्ध किया गया। अन्त में, उधार खाते को अवरुद्ध खाते से अलग कर दिया गया। पहले में व्यय की पूँजी और दूसरे में योजना की सम्पत्ति का विवरण रहता था, चाहे रुपया आमदनी या उधार की रकम से लिया गया हो।

यह अभिसमय पाँच साल के लिए बनाया गया। यह रेलों की प्रगतिशील वित्तीय नीति के विकास का आवश्यक अग्रिम कदम है। इससे रेलों को युद्ध के बाद की बहुत सी विकास योजनाओं के बनाने और चालू करने का मौका मिला। पूँजी के मुनाफा को चुका देने के बाद की बचत से उन्होंने अपने बचत-कोष को बढ़ाया। इससे वृद्धि और विकास के कामों में खर्च के लिए काफी पूँजी सुनिश्चित हो जायगी।

इन परिवर्तनों का फल 1951-52 के रेल-संचालन के अध्ययन से स्पष्ट होता है। भारतीय रेलों की कुल आमदनी 290.82 करोड़ रुपया थी। यह अब तक की आमदनी में सबसे ज्यादा थी और 1950-51 के मुकाबले में 27.81 करोड़ अधिक थी। यात्री-यातायात से 109.88 करोड़ और माल-यातायात से 156.79 करोड़ की

आमदनी हुई, बाकी 24.15 करोड़ रुपये फुटकर कमाई से मिले। परिचालन खर्च 194.04 करोड़ रुपया था, जो पिछले साल से 13.81 करोड़ रुपया अधिक था। मूल्य-ह्रास निधि के हिस्से में 30.00 करोड़ रुपया था। इस तरह, 1947-48 से अगले वर्षों में परिचालन अनुपात इस साल सबसे नीचा रहा और 1950-51 के 79.9 प्रतिशत के मुकाबिले 77.00 प्रतिशत था।

मूल्यह्रास निधि में अपना भाग देकर तथा सभी खर्चों को पूरा करने के बाद, इस साल की अन्तिम बचत 61.75 करोड़ रुपये रही। इसमें 33.41 करोड़ संशोधित अभि-समय के अन्तर्गत लाभ के रूप में, सरकार की सामान्य आय में दे दिये गये। बाकी 28.34 करोड़ बचा। इसके मुकाबले 1950-51 में 15.05 करोड़ और 1949-50 में 14.59 करोड़ रुपये की बचत हुई थी। इससे 10 करोड़ रुपया विकास निधि और 18.34 करोड़ रुपया बचत निधि में जमा कर दिया गया।

परिवर्तन

अपनी पुनर्वास, विस्तार और विकास की जरूरतों को पूरा करने के साथ-साथ रेलों ने, जैसा 1951 में उस समय के परिवहन और रेल मंत्री ने बताया, हाल के वर्षों में अपनी तीन अलग आरक्षित निधियों की बड़ी-बड़ी बचत की रकमों के जरिये, सरकार की सामान्य वित्तीय स्थिति को सम्भालने में बहुत बड़ी मदद पहुँचाई। रकम के हिसाब से, यह मदद 1948-49 के अन्त में 121.71 करोड़ और 1949-50 के अन्त में 129.63 करोड़ थी। इस सीधी सहायता के साथ-साथ रेलों ने, अपनी बचत-निधि से सीमित रकम निकालकर सरकार की मदद की, जिससे खेती, उद्योग और दूसरे प्रकार के यातायात के विकास में सरकार को खर्च की तंगी न रहे। इस प्रकार रेलों ने सरकार की चालू विकास-योजनाओं को सम्भाल कर राष्ट्र की बहुत बड़ी सेवा की है। इस संक्रान्ति काल में रेलों की सफलताओं का अधिक सुन्दर और सही वर्णन प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू के भाषण के अतिरिक्त अन्यत्र नहीं मिलेगा। 14 अप्रैल 1952 को, उत्तर, पूर्वोत्तर और पूर्व रेलों के उद्घाटन समारोह पर उन्होंने नयी दिल्ली में कहा था :—

'मुझे याद है, पांच साल पहले, या इसके आस-पास, उस समय भारतीय रेलों की स्थिति का सवाल हम लोगों, हमारी सरकार और हमारे मंत्रिमण्डल के सामने बारबार आता था। लड़ाई के बाद की हालत बहुत खराब थी। हमारे साधन खत्म हो चुके थे। सभी किस्म के इंजन, डिब्बे और लाइनें मेसोपोटेमियाँ और दूसरे देशों को भेज दी गयीं थीं, जिससे बदलने और मरम्मत करने की कोई चीज नहीं रह गई थी। इसके साथ हमें काफी बढ़े हुए यातायात का सामना करना पड़ा। असल में, खुद यात्रा करके नहीं, लोगों को कष्ट के साथ यात्रा करते देखकर बड़ा दुख होता था। अगर मैं अपनी आंखों नहीं देखता, तो मुझे मुश्किल से यकीन होता कि किस तरह तीसरे दर्जे और किसी कदर दूसरे दर्जे में लोग भर दिये जाते थे। जहाँ तक माल का सम्बन्ध है, मुझे ऐसा लगता है कि बन्दरगाहों पर उनके पहाड़ लग गये थे। मुझे याद है, बम्बई में, अचरज में डाल देने वाला ढेर इकट्ठा हो गया था, जिससे उद्योग, व्यापार तथा सभी लोगों को बड़ी परेशानी उठानी पड़ी। यह

बड़ी बदनामी की बात थी कि बहुत से लोगों को, विलम्ब शुल्क चुका देने पर भी, माल ले जाने की सुविधा नही मिली।

यह हालत करीब पांच साल पहले थी। इसके कुछ महीनों बाद, देश का बँटवारा हुआ जिससे भारत के उत्तर और उत्तर-पूर्वी भागों की रेल-व्यवस्था अचानक टूट गयी। वह यह बहुत बड़ा धक्का था, जो ऐसे समय लगा जब हम लड़ाई के बोझ के नीचे लड़खड़ा कर सम्भलने की कोशिश में लगे थे। बँटवारे के तुरन्त बाद, असल में उसके साथ ही साथ, विशाल जन-समूह का यातायात शुरू हुआ। लाखों की तादाद में शरणार्थी पाकिस्तान से भारत और भारत से पाकिस्तान को आने-जाने लगे। जिसने भी रेल,, सड़क तथा दूसरे तरीकों से इस विशाल जनसमूह को अपनी आंखों आते-जाते देखा है वह इस आश्चर्यजनक और भयानक दृश्य को कभी नहीं भूल सकता। गाड़ियों में न सिर्फ अन्दर ही बल्कि छतों और पावदान और सभी खाली कोनों पर सताये हुये लोग लटके रहते थे। यह बड़ा भयानक दृश्य था।

यह सब भार हमारी रेलों पर उस समय पड़ा जब वे खुद अपना साधारण बोझ नहीं उठा सकती थीं। फिर भी हम बचे और हमारी रेलें बच गयीं। हमारी रेलें कैसे उठ खड़ी हुईं, किस प्रकार अनेक कठिनाइयों को हल करके, नव-निर्माण के मार्ग पर आगे बढ़ीं और आज कितने सुचारु रूप से समय पर काम कर रही हैं, यह सब ठीक-ठीक समझने के लिए हमें उन्हें आज खुद देखना चाहिए। पुराने जमाने में—मैं चार या पांच साल के ज़माने को भी जान बूझकर पुराना कहता हूँ—रेलें घण्टों देर कर दिया करती थीं और कोई भी अपने पहुँचने का ठीक समय नहीं जानता था। यह परिवर्तन विचित्र और आश्चर्यजनक है जिसका हमें सदा ध्यान रखना चाहिए। मुझे उम्मीद है कि हमारे घोर अलोचक भी इस परिवर्तन को नहीं भूलेंगे, और इस बात पर विचार करेंगे कि यह परिनर्तन कैसे हुआ और इसमें किसका हाथ रहा... । इस शकल को लाने में कितनी मेहनत और कठिन सहयोग की जरूरत पड़ी होगी इसका अनुमान आप स्वयं कर सकते हैं। मैं समझता हूँ कि राष्ट्र की हैसियत से, सरकार की हैसियत से, हम सबको इसका उचित गर्व होना चाहिए और उन सब लोगों को, जो रेल के कामों में लगे हुए हैं, इस सफलता के लिए हार्दिक बधाई देनी चाहिए।'

सकेगा। इस नीति को कार्यान्वित करने के लिए, रेलवे बोर्ड ने 1950 में, विचार और अध्ययन के बाद, भारतीय रेलों को छः अर्थात् उत्तर, पूर्वोत्तर, पूर्व, दक्षिण, मध्य और पश्चिम क्षेत्रों में पुनर्गठित करने की योजना तैयार की। इस योजना के सिद्धान्तों के फलस्वरूप मिले-जुले क्षेत्रों की छोटी-छोटी स्वतन्त्र लाइनों को, व्यापार और यातायात के स्वाभाविक सामंजस्य और आर्थिक समानता के आधार पर एक क्षेत्र की स्वावलम्बी इकाइयों में इस तरह मिलाया गया जिससे कार्य-संचालन में गड़बड़ी और कार्य-कुशलता में कोई बाधा न पड़े। राज्य सरकारों, व्यापार-मण्डलों, रेल-मजदूर संगठनों तथा सर्व-साधारण की सम्मतियों के आधार पर संशोधित योजना को रेलों की केन्द्रीय परामर्श समिति ने दिसम्बर 1950 में स्वीकार कर लिया।

नये क्षेत्र

यह पुनर्वर्गीकरण दक्षिण भारत से आरम्भ हुआ और उस तरफ की रेलों को मिलाकर, 14 अप्रैल 1951 में एक क्षेत्र बना और इस प्रकार दक्षिण रेलवे का उद्घाटन मद्रास में हुआ। इसमें, मद्रास और दक्षिण-मराठा, दक्षिण भारत, तथा मैसूर की रेलें शामिल हैं।

भारत के नक्शे पर घड़ी की सूई की तरह बढ़ते हुए, मध्य और पश्चिम रेलों के क्षेत्र 5 नवम्बर 1951 को बनाये गये। मध्य रेलवे, जी० आई० पी०, निजाम स्टेट, सिंधिया और धौलपुर राज्य की रेलों को मिलाकर बनायी गयी। पश्चिम रेलवे, सौराष्ट्र, राजस्थान और जैपुर राज्य की रेलों को बम्बई, बड़ौदा एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया में मिला कर बनी।

पुनर्वर्गीकरण का अन्तिम दौर 14 अप्रैल 1952 को पूरा हुआ, जब उत्तर, पूर्वोत्तर और पूर्व रेलों का उद्घाटन भारत के प्रधान मन्त्री ने किया। उत्तर रेलवे, पंजाब, जोधपुर बीकानेर और ईस्ट इण्डियन रेलवे के तीन क्षेत्रों को मिलाकर बनायी गयी। पूर्वोत्तर रेलवे में अवध-तिरहुत और आसाम रेलवे के खण्ड मिलाये गए। पूर्वोत्तर रेलवे, शेष ईस्ट इण्डियन और बंगाल-नागपुर रेलवे को मिलाकर बनायी गयी।

राज्य के स्वामित्व और रेलवे बोर्ड के नियंत्रण में एकसा वित्तीय नियंत्रण, इंजन और डिब्बों का एकत्रीकरण, सीधी गाड़ियों का चलाना और जरूरत के सामान को इकट्ठा खरीदने का काम शुरू हुआ जिससे क्षेत्रीय वर्गीकरण सरल हो गया। केन्द्रीय अधिकारियों ने कई साल तक इंजनों, डिब्बों तथा बदली की चीजों की मान-निर्धारण की योजनाओं को प्रोत्साहित किया। यात्री-किराये के स्तर को निश्चित करने और रेल-भाड़े की दरों का तर्कपूर्ण आधार कायम करने की भी कार्यवाही की गयी। एक प्रकार से रेलों का पुनर्वर्गीकरण कई साल पहले की आरंभ की हुई प्रक्रिया की तर्कसंगत पूर्ति है।

पुनर्वर्गीकरण से लाभ

भारतीय रेलों के पुनर्वर्गीकरण के सम्भावित लाभ का सारांश स्व० श्री गोपालस्वामी आयंगर ने मध्य और पश्चिम रेलों के उद्घाटन-समारोह में इस प्रकार दिया था:—

'छोटी-छोटी रेलों के कार्य-संचालन की वर्तमान असमानता, जनता की समुचित सेवा करने के अनुकूल नहीं है। उनके इकट्ठा होने से वे शक्तियां काम करने लगेंगी जो धीरे धीरे संचालन की सभी रीतियों में समानता, उच्च स्तर और आधुनिकता लायेंगी। मिलने वाली रेलों के विस्तृत साधनों से स्थानीय आवश्यकताओं की पूर्ति जल्दी और संतोषजनक रीति से होने लगेगी। पुनर्वर्गीकरण का प्रभाव शासनतन्त्र और संचालन पर भी कम न पड़ेगा। जंजीर की शक्ति उसकी सबसे कमजोर कड़ी से जानी जाती है। छोटी-छोटी लाइनों के विलीन होने से वर्तमान यातायात की कमजोर कड़ियां समाप्त हो जायेंगी। शासन का पुनर्संगठन, नियंत्रण की कड़ाई, बड़ी इकाइयों के साधनों का अधिक से अधिक प्रयोग, पुनरावृत्ति और बरबादी का अन्त, सामान और चीजों के खरीदने, उनके उपयोग और इकट्ठा करने में पैसे की बचत आदि कुछ ऐसे काम हैं, जिनसे परिचालन की कुल लागत में कमी होगी, जिससे राष्ट्र और व्यक्ति दोनों को लाभ होगा। जब हम यह अनुभव करते हैं कि भारत में नित्य एक टन-मील का केवल पाँचवाँ भाग आबादी के प्रति व्यक्ति के हिसाब से ढोया जाता है, जो ग्रेट ब्रिटेन के इसी प्रकार के आंकड़ों का छठा और अमेरिका के आँकड़ों का पचासवाँ भाग है, तब पता चलता है कि हम कितने पिछड़े हुए हैं। सरकार कृषि के तात्कालिक पुनर्संचार, शीघ्र औद्योगीकरण तथा प्रत्येक पुरुष, स्त्री और बालक के उचित जीवनस्तर के बनाने के आर्थिक विकास की योजनाओं से बँधी हुई है। इस प्रकार की कोई भी कार्यवाही रेल यातायात को पूर्ण महत्व दिये बिना सफल नहीं हो सकती। इससे रेलों द्वारा ढोये गये माल के वजन में असाधारण वृद्धि होगी, उनकी रफ्तार काफी बढ़ानी पड़ेगी, उन्हें जल्दी जल्दी भेजना होगा और उनका सामान्य परिचालन दक्षता के ऊँचे स्तर पर लाना होगा। स्थानीय और दूर-दूर का यात्री-यातायात, निश्चित गति से बढ़ता जा रहा है और आगे भी बढ़ता रहेगा। मुझे पूर्ण आशा है कि नयी रेलें, अपने क्षेत्रों के बढ़ते हुए यातायात के बड़े भार को, पूर्ण रूप से वहन करेंगी।'

पुनर्वर्गीकरण के अन्तिम दौर पर, राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र प्रसाद ने अपने संदेश में कहा था :

मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि रेलों के पुनर्वर्गीकरण का क्रम, जो किफायत के साथ रेलों के कुशल-सचालन के लिए अपनाया गया है, उत्तर, पूर्वोत्तर और पूर्व रेलों के चालू होते ही पूर्ण हो जायेगा। समय, इस पुनर्संगठन के सम्पूर्ण लाभ को स्वयं प्रकट करेगा। मुझे आशा है कि इसकी पूर्ति के बाद हमारी रेलें, जो सबसे प्रमुख राष्ट्रीय उद्योग हैं, भविष्य में सुदृढ़ विस्तार और प्रगति की ओर अग्रसर होंगी। पुनर्वर्गीकरण का पूरा प्रभाव आँकड़ों और तथ्यों के रूप में कुछ समय बाद ही जाना जा सकेगा। किन्तु विभिन्न क्षेत्रों में चालू की गयी योजना के इस अल्प-काल में ही रेलों की कार्यकुशलता बहुत कुछ बढ़ गयी है और जनता की सेवा में बराबर सुधार हुआ है।

25. भविष्य की ओर

आज की भारतीय रेलें, प्रधान मन्त्री श्री जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में, 'हमारी सबसे बड़ी राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। उनका संचालन, आयोजन, नियंत्रण और प्रबन्ध राज्य द्वारा होता है।'* राष्ट्र की आर्थिक व्यवस्था बनाने में पहले उन्होंने कुछ भी काम किया हो, स्वतन्त्र भारत में तो उनसे और भी अधिक और महत्वपूर्ण काम करने की आशा की जाती है। भारतीय रेलों का छः बड़े-बड़े खण्डों में विभाजन केवल उन सिद्धान्तों और साधनों का आरम्भ मात्र है जिनसे देश के यातायात का संचालन सुचारु रूप से चलाया जा सकेगा।

पंच वर्षीय योजना

आज इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि हमारे देश का उत्पादन बढ़े, लोगों के जीवन स्तर में सुधार हो और राष्ट्रीय सम्पत्ति की तात्कालिक वृद्धि हो। 1951-56 की पंच वर्षीय योजना के ढाँचे से पता चलता है कि देश के राष्ट्रीय पुनर्निर्माण और विकास की बहुतेरी योजनाएँ जल्द पूरी करनी हैं। इस योजना में खेती, उद्योग, खान, आदि की सफलता में अधिकांश में रेलों के आवश्यक यातायात को जुटाने की शक्ति पर आश्रित थीं।

भारत के नक्शे को देखते ही मालूम हो जाता है कि रेलों के सौ वर्ष के विकास और विस्तार के बाद भी देश के बहुत बड़े भाग में अभी रेलें नहीं पहुँच पायी हैं, जिससे उनके आर्थिक विकास में अड़चन पड़ती है। पंच वर्षीय योजना के बनानेवालों ने इन बातों पर ध्यान से विचार किया है और उसमें रेलों के विकास की योजनाओं को भी शामिल कर लिया है।

पुनस्स्थापन

आज रेलों के सामने सबसे कठिन समस्या पुनस्स्थापन और नए सामान जुटाने की है। यह कितना बड़ा काम है इसका पता पुराने सामान की भारी तादाद से लगता है। हर साल 190 इंजन, 650 सवारी गाड़ियाँ और 5000 माल के डिब्बों को बदलने के औसत आँकड़ों के मुकाबिले, 31 मार्च 1951 तक 1050 इंजन, 5,514 सवारी गाड़ियाँ और 21,418 माल के डिब्बे बदलने के लिए इकट्ठा हो गए थे। 1951-56 की पूरी स्थिति को समझने के लिए, इस समय के अन्दर पुराने पड़ जानेवाले सामान को भी जोड़ देना चाहिए। जो सामान 31 मार्च 1956 तक बदलने लायक हो जायेंगे उसमें 2,092 इंजन, 8,535 सवारी गाड़ियाँ और 47,533 माल के डिब्बे होंगे।

---

* 14 अप्रैल 1952 को उत्तर पूर्वोत्तर, और पूर्व रेलों के उद्घाटन-समारोह पर दिये गये भाषण से।

स्थिर सामान की हालत भी कम चिन्ताजनक न थी। पिछले बीस वर्षों में लाइनों की हालत बहुत बिगड़ गयी थी। पिछले बीस वर्षों में केवल परिचालन की सुरक्षा को सामने रख कर पटरियाँ बदली गयीं और बहुत सी लाइनों को बदलने का काम आगे के लिए स्थगित कर दिया गया।

इंजन और सवारी-डिब्बे

1947 से रेलों की स्थिति सुधारने के लिए कई कदम उठाये गए और भविष्य के लिए एक निश्चित योजना तैयार की गयी। बाहर से जरूरी सामान मँगाने के साथ-साथ, देश तथा रेलों को अपनी जरूरतों को स्वयं पूरा करने के लिए तैयार किया जा रहा है। चितरंजन रेल-इंजन कारखाने के अलावा, सरकार ने टाटा लोकोमोटिव इंजीनियरिंग कम्पनी को दो करोड़ रुपये की पूँजी की सहायता दी है। योजना की अवधि के अन्दर चितरंजन में हर साल 120 इंजन और 50 फालतू बॉयलर तथा टाटा के कारखाने में लगभग 200 इंजन तैयार होने की आशा है।

1948-49 में देश में सवारी गाड़ी के 238 डिब्बे तैयार हुए। 1949-50 में, यह संख्या बढ़कर 337 और 1951-52 में 673 तक पहुँच गयी। योजना-काल में 4,380 सवारी डिब्बों के बनने का अनुमान लगाया गया है। इस उत्पादन की सहायता के लिए पेरम्बूर में सवारी डिब्बे बनाने का कारखाना लगभग चार करोड़ रुपये की लागत से बनाया गया है। इसकी वार्षिक उत्पादन शक्ति 300 से 350 तक स्टील के सवारी डिब्बों की रखी गयी है।

1948-49 में, माल-डिब्बों का उत्पादन, 2,520, 1949-50 में 1095 और 1951-52 में 3,707 रहा। अनुमान है कि योजना-काल में 30,000 माल-डिब्बे बनकर तैयार हो जायेंगे।

रेल की लाइन

पटरियों की दुर्दशा का पता इसी से लग जाता है कि इस समय 2000 मील से अधिक के रास्ते पर रफ्तार की रोक लगी हुई है। हर साल 400 से 500 मील रास्ते को सुधारने का विचार है। लाइनों के बदलाव के लिए, देश के साधनों का ही अधिक से अधिक उपयोग करने का विचार किया गया है। 1949-50 में, पहली श्रेणी की रेलों ने देश में 23 लाख लकड़ी के स्लीपर 3.90 करोड़ रूपये में खरीदे। इसके अतिरिक्त, उन्होंने 8 लाख से अधिक ढले हुये लोहे के और 6 लाख से अधिक स्टील के स्लीपर खरीदे। अनुमान है कि योजना-काल में भी इतने ही स्लीपर खरीदे जायेंगे। अपने देश में बनीं चीजों का अधिक से अधिक प्रयोग करने के लिए, मीटर और छोटी लाइनों पर आधे गोल स्लीपरों को लगाने का विचार किया जा रहा है तथा स्लीपरों को अधिक टिकाऊ बनाने के लिए, रसायन की क्रिया से लकड़ी की दशा सुधारने के कई केन्द्र खोले जा रहे हैं। लकड़ी को कोल-तार आदि से अधिक टिकाऊ बनाने के लिए, पंजाब के छिलवान और आसाम के नरकटिया केन्द्रों के अलावा, क्लटरबक गंज और कोयम्बटूर में भी दो नये केन्द्र खोले जा रहे हैं।

पिछले पाँच वर्षों में यात्रियों और विशेषकर तीसरे वर्ग के यात्रियों को अधिक सुविधा देने की ओर विशेष ध्यान दिया गया है। इस नीति के अनुसार, पंचवर्षीय योजना में यात्री-सुविधा के काम पर तीन करोड़ रुपये की रकम निर्धारित की गयी है।

माल यातायात

माल यातायात भी धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है और योजना-काल में, औद्योगीकरण के विस्तार और बड़े बड़े आयोजनों के विकास से इसमें अधिक वृद्धि की आशा की जा रही है। किसी नयी योजना का रेल यातायात पर कितना असर पड़ता है, इसका महत्वपूर्ण उदाहरण 1951 में चालू सरकार की सिन्दरी फर्टीलाइजर फेक्ट्री है। इसके लिए रेलों को नित्य दो हजार टन जिपसम राजस्थान से बिहार में फैक्ट्री तक पहुँचाना पड़ता है। बम्बई के पास ट्रामबे में तेल-शोधन शाला के चलते ही सामान ले जाने के लिए लगभग 1955 तक 250 माल के और टंकी के डिब्बों की जरूरत पड़ेगी। विकास की दूसरी बड़ी-बड़ी योजनाओं के निकट भविष्य में चालू होते ही रेल यातायात पर और अधिक भार पड़ जायेगा। कोयला, शक्कर और पाट आदि उद्योगों के उत्पादन में भी वृद्धि हुई है। इनके तथा दूसरे उद्योगों के कच्चे और बने हुए माल को ले जाने के कारण यातायात बढ़ा। रेलों ने पंच वर्षीय योजना में इनको पूरा करने की व्यवस्था कर ली है।

मरम्मत और पुनस्स्थापन के बहुत पिछड़े हुए कामों को पूरा करने और विकास की तात्कालिक योजनाओं के बढ़े हुए यातायात को ठीक-ठीक चलाने के लिए, रेलों ने योजना के पांच वर्षों में प्रति वर्ष 80 करोड़ या कुल मिलाकर 400 करोड़ रुपया खर्च करने का विचार किया है। 20 करोड़ रुपये की लागत की नयी लाइनें खोलने का भी प्रस्ताव है। इस 400 करोड़ रुपये की रकम में, 320 करोड़ रुपया रेलें खुद अपने साधनों से देंगी और 80 करोड़ रुपया केन्द्रीय राजस्व से मिलेगा। प्रति वर्ष केन्द्र की वार्षिक 16 करोड़ रुपये की सहायता के साथ-साथ रेलों को अपनी चालू आमदनी से 64 करोड़ रुपया लगाना होगा।

1952-53 में, पंच वर्षीय योजना को कार्यान्वित करने के लिए बहुत से काम किये गये। इस दिशा में, 1953-54 में काम को और आगे बढ़ानेवाली विस्तृत योजना की रूप-रेखा रेल मंत्री, श्री लाल बहादुर शास्त्री ने, 18 फरवरी 1953 को, रेलवे बजट पेश करते समय लोक सभा में बतलाया था।

नयी लाइनें

लड़ाई के जमाने की उखड़ी हुई बारह लाइनों में से, जिनका बनाना केन्द्रीय यातायात बोर्ड ने 1950 में मंजूर कर लिया था, दो पूरी हो चुकी हैं, और दूसरी दो इसी साल पूरी होनेवाली हैं। उत्तर-रेलवे की रोहतक-गोहाना-पानीपत लाइन, जिसके लिए 22 लाख रुपया रखा गया है, 1953-54 में बन जायगी। 1953-54 में 267 मील की नयी लाइनों पर काम चालू किया जायगा, जिसके लिए 12.79 करोड़ रुपया रखा गया है। इन लाइनों में सबसे महत्वपूर्ण, 186 मील लम्बी, खण्डवा-हिंगोली लिंक और स्टील उत्पादन को बढ़ाने के लिए कच्चे लोहे को ले जानेवाली, गुआ-बारबिल और मनोहर-रूरकेला के बीच

की 31 मील की लाइनें हैं। 1952-53 में सौराष्ट्र की भावनगर-तारपुर लाइन का सर्वे, आरम्भ किया गया। इसके अलावा इन्दौर, मध्य भारत और उड़ीसा के बारविल और सम्बलपुर के बीच की बड़ी लाइनों की छान-बीन शुरू हुई जो अब लगभग पूरी हो चुकी है। इसके अलावा, 1953-54 में सात दूसरी योजनाओं की जाँच शुरू हो जायगी। ये हैं, बम्बई की दीवा-दासगाँव लाइन, पश्चिमी बंगाल में कलकत्ता के उपनगरों में बिजली की व्यवस्था, मद्रास और मैसूर की मंगलौर-हसन लाइन, उत्तर प्रदेश में एटा और पंजाब में चन्डीगढ़ तक लाइन, पश्चिमी बंगाल की तिलडंगा-खजुरिया-मालवा लाइन तथा राजस्थान की फतेहपुर-चुरू लाइन।

गंगा का पुल

मोकामा के पास गंगा पर रेल-सड़क पुल बनाने का काम अब फिर चालू कर दिया गया है। यह काम कुछ समय पहले बन्द कर दिया गया था क्योंकि पुल बनाने के स्थान के सम्बन्ध में मतभेद था। इस पुल के बन जाने से उत्तर और दक्षिण बिहार के बीच रेल-सम्बन्ध कायम हो जायेगा।

बेजवाड़ा और मद्रास के बीच जैसे यातायात के जमघटों को दूर करने, साबरमती जैसे विभिन्न गेज के कुछ जंकशनों में एक लाइन से दूसरी लाइन पर माल बदलने की कठिनाइयों को हल करने तथा कुछ अन्य भागों में कोयला, लोहा और स्टील के बढ़े हुए यातायात को ठीक से चलाने के लिए चार करोड़ रुपया खर्च करने का निश्चय किया गया है। अतिरिक्त गाड़ियाँ चलाकर तथा चालू गाड़ियों के चालनक्षेत्र को बढ़ाकर, भीड़ कम करने और यात्रियों को अधिक सुविधाएँ देने की भी आशा की जाती है। पहली अप्रैल 1952 और पहली जनवरी 1953 के बीच, 109 नयी गाड़ियाँ चलायी गयीं और 108 गाड़ियों का चालन क्षेत्र बढ़ाया गया, जिससे नित्य की सवारी गाड़ियों की मील-संख्या में 9,850 की वृद्धि हुई।

यात्रियों को सुविधाएँ

तीसरे दर्जे के यात्रियों की तकलीफों को दूर करने और छोटे-छोटे स्टेशनों की हालत सुधारने के सम्बन्ध में, रेल मंत्री ने, 18 फरवरी 1953 को अपने बजट भाषण में एक महत्वपूर्ण घोषणा की। उन्होंने कहा :

'साफ-सुथरे प्रतीक्षालय, बैठने के लिए बेंचें, पीने के पानी का प्रबन्ध, अच्छे फर्श के प्लेटफार्म, टिकट-घर की उचित व्यवस्था आदि कुछ बहुत मामूली सुविधाएँ बिना भेद-भाव के सभी स्टेशनों पर धीरे-धीरे मिलने लगेंगी। प्रमुख स्टेशनों पर अच्छी रोशनी, यात्रियों के लिए छतदार प्लेटफार्म और माल-असबाब के लिए अधिक अच्छी व्यवस्था की जायगी।'

जनमत

रेल के प्रबन्धकों और उपभोक्ताओं के बीच रेल सम्बन्धी मामलों में अधिक निकट सम्पर्क कायम करने के लिए, विभिन्न स्तरों पर, इस समय की परामर्श समितियों की जगह, निम्नलिखित समितियाँ बनाने का निश्चय किया गया है :

1. रेल-उपभोक्ता सलाहकार समितियाँ, जो हर रेलवे के प्रत्येक भाग के लिए बनेंगी।
2. क्षेत्रीय रेल उपभोक्ता सलाहकार समिति जो प्रत्येक रेल के प्रधान कार्यालय से सम्बन्धित रहेगी।
3. राष्ट्रीय रेल-उपभोक्ता सलाहकार परिषद केन्द्र में बनेगी। प्रत्येक खण्ड की सलाहकार समितियों में उस भाग के रेल-उपभोक्ताओं के हितों का प्रतिनिधित्व रहेगा। इन समितियों में कृषि के प्रतिनिधि भी रखे जायेंगे। केन्द्र की राष्ट्रीय रेल-उपभोक्ता सलाहकार परिषद अखिल भारतीय महत्व की समस्याओं का निपटारा करेगी और क्षेत्रीय समितियाँ इसी प्रकार की प्रत्येक क्षेत्र की समस्याओं की देख-रेख करेंगी।

राष्ट्र और रेल

पिछले सौ वर्षों में, रेलों ने देश के विकास और उन्नति में महत्वपूर्ण काम किया है। जितनी सेवाएँ उन्होंने की हैं, यदि उससे अधिक वे नहीं कर सकीं, तो इसकी जिम्मेदारी देश पर, प्राकृतिक कठिनाइयों, राजनैतिक और आर्थिक स्थितियों पर है। फिर भी, रेलों ने जिस कुशल परिचालन का स्तर कायम रखा है उस पर किसी भी देश और सार्वजनिक संस्था को गर्व हो सकता है।

देश की आर्थिक व्यवस्था में भारतीय रेलों के सफल संचालन के महत्व का हवाला देते हुए प्रधान मंत्री, श्री जवाहर लाल नेहरू ने मध्य और पश्चिम रेलों के उद्घाटन के समय जो सन्देश दिया था, उसमें उन्होंने कहा था कि :—

> 'रेलवे हमारी सबसे बड़ी राष्ट्रीय योजना है और रहेगी : उसका देश के करोड़ों लोगों से निकट सम्बन्ध है और उनके आराम और सुभीते की उसे देख-भाल करनी है। रेलों में बहुत बड़ी संख्या में, सभी श्रेणी के कर्मचारी काम करते हैं। इनकी भलाई का उन्हें बराबर ध्यान रखना चाहिए। रेल जैसा महान राष्ट्रीय और राजकीय संगठन केवल महत्वपूर्ण राष्ट्रीय सम्पत्ति ही नहीं, उसकी जिम्मेदारियाँ भी उतनी ही बड़ी हैं। इसका ठीक-ठीक संचालन तभी सम्भव है जब लोग अपना पूरा सहयोग दें। रेलों को जनता की भलाई और इस विशाल संगठन में लगे हुए कर्मचारियों की भलाई का सदा ध्यान रखना होगा।'

परिशिष्ट-1

31 मार्च 1948 को भारतीय रेलों की शासन व्यवस्था

(कुल ग्रामदनी के हिसाब से श्रेणीबद्ध करके भारतीय रेलों के संचालन का माध्यम, स्वामित्व और मील-संख्या का विवरण)

भारतीय रेलों की आंकड़ों के हिसाब से तीन श्रेणियां की गयी हैं :—

श्रेणी 1—जिन रेलों की कुल सालाना ग्रामदनी 50 लाख रुपया या अधिक है ।

श्रेणी 2—जिन रेलों की कुल सालाना ग्रामदनी 50 लाख रुपये से कम किन्तु 10 लाख से अधिक है ।

श्रेणी 3—जिन रेलों की कुल सालाना ग्रामदनी 10 लाख रुपया या इससे कम है ।

रेल का नाम	गेज (पटरी के बीच की दूरी)		मील-संख्या	स्वामित्व	संचालन माध्यम
श्रेणी 1 की रेलें	फीट	इंच			
1. आसाम					
(1) आसाम	3	$3\frac{3}{8}$	1,131	भारत सरकार	भारत सरकार
(2) चपरमुख-सिलघाट*	3	$3\frac{3}{8}$	51	ब्रांच लाइन कम्पनी	,, ,,
(3) काटाखाल-लाल बजार*	3	$3\frac{3}{8}$	24	,,	,, ,,
(4) कूच बिहार राज्य	3	$3\frac{3}{8}$	33	देशी राज्य	,, ,,
2. बंगाल नागपुर					
(1) बंगाल नागपुर	5	6	2,463	भारत सरकार	भारत सरकार
(2) मयूर भंज	2	6	71	ब्रांच लाइन कम्पनी†	,, ,,
(3) पारलकी मेदी लाइट	2	6	56	महाजनी कम्पनी	,, ,,
(4) पुरलिया-रांची	2	6	117	भारत सरकार	,, ,,
(5) रायपुर-धमतरी	2	6	55	,, ,,	,, ,,
(6) सतपुरा	2	6	626	,, ,,	,, ,,
3. बीकानेर राज्य					
(1) बीकानेर राज्य	3	$3\frac{3}{8}$	876	देशी राज्य	देशी राज्य

* इस लाइन को भारत सरकार का आश्वासन प्राप्त है और आसाम सरकार से आर्थिक सहायता भी मिलती है ।

† छूट की शर्त लागू है ।

रेल का नाम	गेज (पटरी के बीच की दूरी)		मील संख्या	स्वामित्व	संचालन माध्यम
	फीट	इंच			
) सादुलपुर-खोरी लाइन का नाभा खण्ड	3	$3\frac{3}{8}$	7	देशी राज्य	देशी राज्य
बम्बई, बड़ौदा व सेन्ट्रल इंडिया					
1) बम्बई, बड़ौदा व सेंट्रल इंडिया	5	6	1,198	भारत सरकार	भारत सरकार
	3	$3\frac{3}{8}$	1,968	" "	" "
2) नागदा-उज्जैन	5	6	35	देशी राज्य	" "
3) गायकवाड़ पेटलाद केम्बे (आनन्द-तारपुर खण्ड)	5	6	21	" "	" "
(4) गायकबाड़-पेटलाद केम्बे (तारपुर-केम्बे खण्ड)	5	6	12	देशी राज्य	" "
(5) पालनपुर स्टेट	3	$3\frac{3}{8}$	17	" "	" "
(6) चम्पानेर शिवराजपुर पानी लाइट	2	6	31	भारत सरकार	" "
(7) गोधरा लुनवाड़ा	2	6	26	" "	" "
(8) नड़ियाद कापड़वंज	2	6	28	" "	" "
(9) राजपीपला स्टेट	2	6	58	देशी राज्य	" "
(10) पिपलाद-देवगढ़ बरिया	2	6	10	" "	" "
5. ईस्ट इण्डियन					
(1) ईस्ट इण्डियन	5	6	4,358	भारत सरकार	भारत सरकार
(2) कानपुर-बाराबंकी व अन्य रेलवे	3	$3\frac{3}{8}$	4	" "	" "
(3) शान्तिपुर नवद्वीप	5	6	17	" "	" "
6. ईस्टर्न पंजाब					
(1) ईस्टर्न पंजाब	5	6	1,484	भारत सरकार	भारत सरकार
(2) लुधियाना-धुरी-जाखल	5	6	79	देशी राज्य	भारत सरकार
(3) राजपुरा-भटिंडा	5	6	108	" "	" "
(4) जीन्द-पानीपत	5	6	26	" "	" "
(5) सरहिन्द-रूपड़	5	6	31	" "	" "

रेल का नाम	गेज (पटरी के बीच की दूरी)		मील संख्या	स्वामित्व	संचालन माध्यम
	फीट	इंच			
(6) रूपड़-तलौरा*	5	6	22	भारत सरकार	भारत सरकार
(7) कालका-शिमला	2	6	60	,, ,,	,, ,,
(8) कांगड़ा घाटी†	2	6	68	,, ,,	,, ,,
ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला					
(1) ग्रेट इण्डियन पेनिनशुला	5	6	3,041	,, ,,	,, ,,
(2) भोपाल-इटारसी	5	6	57	देशी राज्य‡	,, ,,
(3) भोपाल-उज्जैन	5	6	115	,, ,,	,, ,,
(4) बीना-बारन	5	6	147	,, ,,	,, ,,
(5) ढोंढ-बारामती	2	6	27	भारत सरकार	,, ,,
(6) एलिचपुर-यवतमाल	2	6	118	ब्रांच लाइन कम्पनी θ	,, ,,
(7) पचोरा-जामनेर	2	6	35	,, ,, ,,	,, ,,
(8) पुलगांव-अरवी	2	6	22	,, ,, ,,	,, ,,
8. जोधपुर					
(1) जोधपुर	3	$3\frac{3}{8}$	807	देशी राज्य	देशी राज्य
(2) जोधपुर-हैदराबाद (पाकिस्तान खण्ड)	3	$3\frac{3}{8}$	319	विदेशी (पाकिस्तान)	,, ,,
9. मद्रास व सदर्न मराठा					
(1) मद्रास व सदर्न मराठा	5	6	1,091	भारत सरकार	भारत सरकार
	3	$3\frac{3}{8}$	1,712	,, ,,	,, ,,
(2) कोलार गोल्ड फील्ड (एम. एस. रेलवे)	5	6	10	देशी राज्य	,, ,,
(3) तेनाली-रेपल्ली	5	6	21	डिस्ट्रीक्ट बोर्ड	,, ,,
(4) अलनावर-दण्डेली	3	$3\frac{3}{8}$	19	भारत सरकार	,, ,,
(5) कोल्हापुर राज्य	3	$3\frac{3}{8}$	29	देशी राज्य	,, ,,
(6) सांगली राज्य	3	$3\frac{3}{8}$	5	,, ,,	,, ,,
(7) वेस्ट आफ इंडिया	3	$3\frac{3}{8}$	51	विदेशी राज्य	,, ,,

* भारत सरकार और प्रान्तीय सरकार के संयुक्त स्वामित्व में।

† प्रान्तीय सरकार द्वारा आश्वासित।

‡ भारत सरकार और देशी राज्य के संयुक्त स्वामित्व में।

θ छूट की शर्तों सहित।

रेल का नाम	गेज (पटरी के बीच की दूरी)		मील संख्या	स्वामित्व	संचालन माध्यम
	फीट	इंच			
10. मैसूर राज्य					
(1) मैसूर राज्य	3	$3\frac{3}{8}$	609	देशी राज्य	देशी राज्य
(2) बंगलौर-चिकबल्लापुर	2	6	39	,, ,,	,, ,,
(3) कोलर डिस्ट्रिक्ट*	2	6	64	,, ,,	,, ,,
(4) तारीकर-नरसिंह राजपुर ट्रॉमवे	2	0	27	,, ,,	,, ,,
11. निजाम राज्य					
(1) निजाम राज्य	5	6	667†	देशी राज्य	देशी राज्य
	3	$3\frac{3}{8}$	659‡	,, ,,	,, ,,
(2) बेजवाड़ा का विस्तार खण्ड	5	6	22	भारत सरकार	देशी राज्य
(3) द्रोणाचलम-करनूल	3	$3\frac{3}{8}$	36	,, ,,	,, ,,
12. अवध तिरहुत θ	3	$3\frac{3}{8}$	3,073	,, ,,	भारत सरकार
13. साउथ इण्डियन					
(1) साउथ इण्डियन	5	6	559	,, ,,	,, ,,
	3	$3\frac{3}{8}$	1,479	,, ,,	,, ,,
(2) शोरानूर-कोचीन	5	6	69	देशी राज्य	,, ,,
(3) कोचीन हारबर	5	6	4	बिना सहायता की कम्पनी	,, ,,
(4) नीलगिरी	3	$3\frac{3}{8}$	29	भारत सरकार	,, ,,
(5) पेरालम-कराईकल	3	$3\frac{3}{8}$	15	विदेशी राज्य	,, ,,
(6) पाण्डिचेरी	3	$3\frac{3}{8}$	8	,, ,,	,, ,,

* मैसूर राज्य और कोलर डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के संयुक्त स्वामित्व में और डिस्ट्रिक्ट बोर्ड की ओर से मैसूर राज्य द्वारा आश्वासित।

† काजीपेट-वलहरशाह, कारपल्ली-कोटागुडिम व विकराबाद और विस्तार की ब्रांचों को मिलाकर।

‡ हिंगोली ब्रांच, हैदराबाद-गोदावरी वेली, पारभनी-पुरली, सिकन्दराबाद-भारतीय सीमा जंकपेट-बोधन और मुखेद-हिमायत नगर, ब्रांच शामिल हैं।

θ बी. एन. डब्यू जोन, रुहेलखण्ड-कुमायूं, मशरक टावी, तिरहुत और बंगाल-नागपुर खण्ड आदि शामिल हैं।

रेल का नाम	गेज (पटरी के बीच की दूरी)		मील संख्या	स्वामित्व	संचालन माध्यम
	फीट	इंच			
(7) तिन्नवल्ली-तिरुचेन्दर	3	$3\frac{3}{8}$	38	डिस्ट्रिक्ट बोर्ड	भारत सरकार
(8) त्रावणकोर (भारत सरकार खण्ड)	3	$3\frac{3}{8}$	51	भारत सरकार	,, ,,
(9) त्रावणकोर (देशी राज्य खण्ड) जिसमें क्विलन त्रिवेन्द्रम मध्य-वर्त्ती विस्तार खण्ड भी शामिल है	3	$3\frac{3}{8}$	98	भारत सरकार और त्रावणकोर दरबार के संयुक्त स्वामित्व में	,, ,,
श्रेणी 1 की रेलों की कुल मील-संख्या			30,341		
श्रेणी 2 की रेलें					
1. बारसी लाइट	2	6	203	बिना सहायता की कम्पनी	बारसी लाइट रेलवे कम्पनी
2. भावनगर स्टेट	3	$3\frac{3}{8}$	307	देशी राज्य	देशी राज्य
3. दारजिलिंग हिमालयन					
(1) दारजिलिंग हिमालयन	2	0	51	*आर्थिक सहायता प्राप्त	दारजिलिंग-हिमालयन रेलवे कं०
(2) दारजिलिंग हिमालयन विस्तार खंड	2	0	95	†ब्रांच लाइन कम्पनी	दारजिलिंग-हिमालयन रेलवे कं०
4. गायकवाड़ बड़ौदा राज्य					
(1) गायकवाड़ बड़ौदा राज्य	3	$3\frac{3}{8}$	308	देशी राज्य	देशी राज्य
	2	6	405	,, ,,	,, ,,
(2) ड्योदिली छोटा उदयपुर	2	6	23	,, ,,	,, ,,
5. गोण्डल	3	$3\frac{3}{8}$	213	,, ,,	,, ,,
6. जयपुर राज्य	3	$3\frac{3}{8}$	253	,, ,,	,, ,,
7. जामनगर द्वारका	3	$3\frac{3}{8}$	212	,, ,,	,, ,,
8. जूनागढ़ राज्य	3	$3\frac{3}{8}$	219	,, ,,	,, ,,
9. मोरवी	3	$3\frac{3}{8}$	173	,, ,,	,, ,,

* स्थानीय सरकार द्वारा।

† छूट की शर्तों सहित।

रेल का नाम	गेज (पटरी के बीच की दूरी)		मील संख्या	स्वामित्व	संचालन माध्यम
	फीट	इंच			
10. शाहदरा (दिल्ली) सहारनपुर लाइट	2	6	93	आर्थिक सहायता प्राप्त	शाहदरा (दिल्ली) सहारनपुर लाइट रेलवे कम्पनी
श्रेणी 2 की रेलों की कुल मील संख्या			2,565		
श्रेणी 3 की रेलें					
1. अहमदपुर कटवा	2	6	32	*ब्रांच लाइन कम्पनी	अहमदपुर-कटवा रेलवे कम्पनी
2. आरा सासाराम लाइट	2	6	65	†आर्थिक सहायता प्राप्त	आरा सासाराम लाइट रेलवे कं०
3. बांकुरा दामोदर नदी	2	6	60	*ब्रांच लाइन कम्पनी	बांकुरा-दामोदर रिवर रेलवे कं०
4. बारासेट बशीरहाट लाइट	2	6	52	†आर्थिक सहायता प्राप्त	बारासेट-बशीरहाट लाइट रेलवे कं०
5. बंगाल प्राविंशियल					
(1) बंगाल प्राविंशियल	2	6	33	बिना सहायता प्राप्त	बंगाल प्राविंशियल रेलवे कम्पनी
(2) दसघरा-जमालपुर गंज	2	6	8	*ब्रांच लाइन कं०	बंगाल प्राविंशियल रेलवे कम्पनी
6. बख्तियारपुर-बिहार लाइट	2	6	33	†सहायता प्राप्त कं०	बख्तियारपुर-बिहा लाइट रेलवे कं०
7. बर्दवान कटवा	2	6	32	*ब्रांच लाइन कम्पनी	बर्दवान कटवा रेलवे कं०
8. कच्छ स्टेट	2	6	72	देशी राज्य	देशी राज्य
9. देहरी रोहतास लाइट	2	6	24	†सहायता प्राप्त कं०	देहरी-रोहतास लाइट रेलवे कं०
10. धौलपुर राज्य	2	6	55	देशी राज्य	देशी राज्य

° सरकार से केवल भूमि मिली हुई है।

* भारत सरकार द्वारा आश्वासित।

† डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा।

	रेल का नाम	गेज (पटरी के बीच की दूरी)		मील संख्या	स्वामित्व	संचालन माध्यम
		फीट	इंच			
11.	फतवा इस्लामपुर	2	6	27	ब्रांच लाइन कम्पनी*	फतवा-इस्लामपुर लाइट रेलवे कं०
12.	हावड़ा अमता लाइट	2	0	44	सहायता प्राप्त कं०†	हावड़ा-अमता लाइट रेलवे कं०
13.	हावड़ा शियाखाला लाइट	2	0	20	,, ,, ,,†	हावड़ा-शियाखाला लाइट रेलवे कं०
14.	जगाधरी लाइट	2	0	3	बिना सहायता प्राप्त	जगाधरी लाइट रेलवे कम्पनी
15.	कालीघाट फालता	2	6	26	ब्रांच लाइन कम्पनी*	कालीघाट फालता रेलवे कं०
16.	माथेरान (हिल) लाइट	2	0	13	सहायता प्राप्त कं०‡	माथेरान (हिल) लाइट रेलवे कं०
17.	मेवाड़ राज्य	3	$3\frac{3}{8}$	163	देशी राज्य	देशी राज्य
18.	सिन्धिया राज्य	2	0	294	,, ,,	,, ,,
19.	तेजपुर-बालीपारा लाइट	2	6	20	सहायता प्राप्त कं०†	तेजपुर-बालीपारा लाइट रेलवे कं०
	श्रेणी 3 की रेलों की कुल मील-संख्या			1,079		

* भारत सरकार द्वारा आश्वासित।

† डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा।

‡ भारत सरकार द्वारा। यह सहायता 1914-15से बन्द हो गयी।

परिशिष्ट-2

16 अप्रैल 1953 को भारतीय रेलों की शासन व्यवस्था

कुल आमदनी के हिसाब से श्रेणीबद्ध की गयी भारतीय रेलों का संचालन माध्यम, स्वामित्व और मील संख्या का विवरण।

भारतीय रेलों की आँकड़ों के हिसाब से तीन श्रेणियाँ की गयी हैं :—

श्रेणी 1—जिन रेलों की कुल सालाना आमदनी 50 लाख रुपया या अधिक है।

श्रेणी 2—जिन रेलों की कुल सालाना आमदनी 50 लाख रुपये से कम किन्तु 10 लाख से अधिक है।

श्रेणी 3—जिन रेलों की कुल सालाना आमदनी 10 लाख रुपया या इससे कम है।

रेल का नाम	गेज (पटरी के बीच की दूरी) फीट	इंच	मील संख्या	स्वामित्व	संचालन माध्यम
श्रेणी 1 की रेलें					
1. मध्य रेलवे	5	6	4,091	भारत सरकार	भारत सरकार
(1) मध्य रेलवे	3	$3\frac{3}{8}$	773	,, ,,	,, ,,
	2	6	117	,, ,,	,, ,,
	2	0	307	,, ,,	,, ,,
(2) एलिचपुर-यवतमाल	2	6	118	ब्रांच लाइन कम्पनी*	,, ,,
(3) पुलगाँव-अरवी	2	6	22	,, ,, ,,	,, ,,
2. पूर्व रेलवे	5	6	4,733	भारत सरकार	भारत सरकार
	2	6	942	,, ,,	,, ,,
3. पूर्वोत्तर रेलवे					
(1) पूर्वोत्तर रेलवे	5	6	2†	भारत सरकार	भारत सरकार
	3	$3\frac{3}{8}$	4,655	,, ,,	,, ,,
	2	0	72	,, ,,	,, ,,
(2) चपरमुख-सिलघाट	3	$3\frac{3}{8}$	51	ब्रांच लाइन कम्पनी‡	,, ,,
(3) काटाखाल-लाल बजार	3	$3\frac{3}{8}$	23	,, ,, ,,	,, ,,

* छूट की शर्तों सहित।

† पाकिस्तान से सीधे यातायात के लिए यह लाइन हलदीबारी और पाकिस्तान सीमा के बीच में है।

‡ यह भारत सरकार द्वारा आश्वासित है और आसाम सरकार से सहायता पाती है।

रेल का नाम	गेज (पटरी के बीच की दूरी) फीट	इंच	मील संख्या	स्वामित्व	संचालन माध्यम
4. उत्तर रेलवे					
(1) उत्तर रेलवे	5	6	3,870	भारत सरकार	भारत सरकार
	3	$3\frac{3}{8}$	1,997	,, ,,	,, ,,
	2	6	128	,, ,,	,, ,,
(2) रूपड़-नंगल डेम θ	5	6	34	,, ,,	,, ,,
5. दक्षिण रेलवे					
(1) दक्षिण रेलवे	5	6	1,729	भारत सरकार	भारत सरकार
	3	$3\frac{3}{8}$	4,006	,, ,,	,, ,,
	2	6	102	,, ,,	,, ,,
(2) तेनाली-रेपल्ली	5	6	22	डिस्ट्रिक्ट बोर्ड गुंटूर	,, ,,
(3) कोचीन बंदरगाह विस्तार खण्ड	5	6	4	कोचीन बंदरगाह अधिकारी	,, ,,
(4) अलनावर-दंदेली (प्राविंशियल)	3	$3\frac{3}{8}$	19	बम्बई सरकार	,, ,,
(5) वेस्ट आफ इंडिया पुर्तगीज़	3	$3\frac{3}{8}$	51	वेस्ट आफ इंडिया पुर्तगीज रेलवे कं०	,, ,,
(6) पेरालम-कराईकल	3	$3\frac{3}{8}$	15	फ्रांस की सरकार	,, ,,
(7) पाण्डिचेरी	3	$3\frac{3}{8}$	8	पाण्डिचेरी रेलवे कम्पनी	,, ,,
(8) तिन्नवेली-तिरुचेन्दर	3	$3\frac{3}{8}$	38	डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, तिन्नवेली	,, ,,
(9) नंजनगढ़ टाउन-चामराज नगर	3	$3\frac{3}{8}$	22	मैसूर और माण्डया दोनों के डिस्ट्रिक्ट बोर्ड	,, ,,
6. पश्चिम रेलवे	5	6	1,266	भारत सरकार	भारत सरकार
	3	$3\frac{3}{8}$	3,573	,, ,,	,, ,,
	2	6	792	,, ,,	,, ,,

श्रेणी 1 की रेलों की कुल मील संख्या 33,582

श्रेणी 2 की रेलें

1. बारसी लाइट	2	6	203	बिना सहायता प्राप्त	बारसी लाइट रेलवे कं०

θ भारत सरकार और पंजाब सरकार के संयुक्त स्वामित्व के आधीन ।

रेल का नाम	गेज (पटरी के बीच की दूरी)		मील संख्या	स्वामित्व	संचालन माध्यम
	फीट	इंच			
2. शाहदरा (दिल्ली) सहारनपुर लाइट	2	6	93	सहायता प्राप्त कं०*	शाहदरा (दिल्ली) सहारनपुर लाइट रेलवे कं०
श्रेणी 2 की रेलों की कुल मील-संख्या			296		
श्रेणी 3 की रेलें					
1. अहमदपुर कटवा	2	6	32	ब्रांच लाइन कम्पनी†	अहमदपुर कटवा रेलवे कं०
2. आरा सासाराम लाइट	2	6	65	सहायता प्राप्त कं०‡	आरा-सासाराम लाइट रेलवे कं०
3. बाँकुरा दामोदर नदी	2	6	60	ब्रांच लाइन कम्पनी†	बांकुरा-दामोदर रिवर रेलवे कं०
4. बारासेट बशीरहाट लाइट	2	6	52	सहायता प्राप्त कं०‡	बारासेट बशीरहाट लाइट रेलवे कं०
5. बंगाल प्राविंशियल					
(1) बंगाल प्राविंशियल	2	6	33	बिना सहायता प्राप्त	बंगाल प्राविंशियल रेलवे कं०
(2) वसधरा-जमालपुरगंज	2	6	9	ब्रांच लाइन कम्पनी†	बंगाल प्राविंशियल रेलवे कं०
6. बख्तियारपुर बिहार लाइट	2	6	33	डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, पटना	डिस्ट्रिक्ट बोर्ड, पटना
7. बर्दवान कटवा	2	6	33	ब्रांच लाइन कम्पनी†	बर्दवान-कटवा रेलवे कं०
8. देहरी रोहतास लाइट	2	6	24	सहायता प्राप्त कं०‡	देहरी-रोहतास लाइट रेलवे कं०
9. फतवा इस्लामपुर	2	6	27	ब्रांच लाइन कम्पनी†	फतवा-इस्लामपुर लाइट रेलवे कं०
10. हावड़ा अमता लाइट	2	0	44	सहायता प्राप्त कं०‡	हावड़ा-अमता लाइट रेलवे कं०
11. हावड़ा शियाखाला लाइट	2	0	20	,, ,, ,,	हावड़ा-शियाखाला लाइट रेलवे कं०
12. जगाधरी लाइट	2	0	3	बिना सहायता प्राप्त कम्पनी	जगाधरी लाइट रेलवे कं०
13. कालीघाट फालता	2	6	26	ब्रांच लाइन कम्पनी†	कालीघाट-फालता रेलवे कं०
श्रेणी 3 की रेलों की कुल मील-संख्या			461		

* सरकारी से केवल भूमि मिली हुई है।

† भारत सरकार द्वारा आश्वासित। ‡ डिस्ट्रिक्ट बोर्ड द्वारा।

परिशिष्ट-3

रेलवे को सामान्य वित्त से अलग करने का 20 सितम्बर, 1924 का विधान सभा का निश्चय और 1943, 1949 और 1954 के अभिसमय-निश्चय

रेलवे के अनुमान को सामान्य बजट में शामिल करने से जो भारी कमी-बेशी होती है, उससे सामान्य बजट को मुक्त करने और रेलवे को यह अवसर देने के लिए कि वह ऐसी नीति अपनाये जिससे सरकार द्वारा लगायी गयी पूंजी के बदले सामान्य राजस्व को कुछ मिल सके, विधान सभा गवर्नर जनरल इन कौंसिल से सिफारिश करती है कि :—

1. रेलवे वित्त को देश के सामान्य वित्त से अलग कर दिया जाय और रेलवे द्वारा सामान्य राजस्व को हर साल एक निश्चित रकम दी जाय। यह रकम रेलवे की शुद्ध आमदनी पर पहला प्रभार होगी।
2. इस रकम का निर्णय वाणिज्य लाइनों पर लगी हुई पूंजी और उसके संचालन के परिणाम के आधार पर किया जाय और यह रकम पिछली से पहली माली साल के अंत में वाणिज्य लाइनों पर लगी हुई पूंजी (इसमें कम्पनियों और रियासतों द्वारा लगायी गई पूंजी शामिल नहीं है) के 1 प्रतिशत और उसके बाद बचत के पांचवें भाग के जोड़ के बराबर होगी। लेकिन शर्त यह है कि यदि किसी साल रेलवे-राजस्व से पूंजीगत लागत पर 1 प्रतिशत की निर्धारित रकम अदा न की जा सके तो अगले वर्ष या वर्षों में जो लाभ होगा उसे पिछली कमी पूरी न होने तक बांटा नहीं जा सकेगा।

सैनिक महत्व पूर्ण की लाइनों पर पूंजीगत लागत और उनके संचालन व्यय का भार सामान्य राजस्व पर होगा और हर साल रेलवे की ओर से सामान्य राजस्व को जो अंशदान दिया जायगा उससे यह काट लिया जायेगा।

3. यदि सामान्य राजस्व को भुगतान के बाद कुछ रकम बचे, तो उसे रेलवे की आरक्षित निधि में डाला जाय। लेकिन यदि यह रकम 3 करोड़ से अधिक हो तो 3 करोड़ से अधिक रकम का केवल $\frac{2}{3}$ भाग रेलवे आरक्षित निधि में डाला जाय। बाकी धन सामान्य राजस्व को दे दिया जाय।
4. सामान्य राजस्व को वार्षिक अंशदान देने, आवश्यकता पड़ने पर मूल्यह्रास का पिछला बकाया पूरा करने, पूंजी में जमा करने या पूंजी घटाने और जनता को अधिक सुविधा पहुँचाने के साथ साथ किराये और भाड़े आदि में कमी करने के उद्देश्य से रेलों की माली हालत मजबूत करने के लिए इस आरक्षित निधि का उपयोग किया जाय।
5. रेलवे को अधिकार होगा कि वह भारत सरकार की शर्तों के अनुसार ऐसे खर्च को पूरा करने के लिए पूंजी या आरक्षित निधि से कर्ज ले जिनके लिए राजस्व-

बजट में व्यवस्था नहीं की गयी या कम व्यवस्था की गयी है। लेकिन इस कर्ज का अगले वर्षों में भुगतान करना होगा।

6. रेलवे की एक स्थायी वित्त समिति बनायी जायेगी जिसका अध्यक्ष विधान सभा का कोई मनोनीत सरकारी सदस्य होगा। बाकी सदस्य विधान सभा के चुने हुए सदस्य होंगे। स्थायी वित्त समिति के सदस्य केन्द्रीय सलाहकार परिषद् के पदेन सदस्य होंगे। केन्द्रीय सलाहकार परिषद् में अधिक से अधिक एक और मनोनीत सरकारी सदस्य होगा, छः ऐसे गैर सरकारी सदस्य होंगे जिन्हें राज्य परिषद् के सदस्यों द्वारा राज्य परिषद् के 8 सदस्यों के पेनल में से चुना जायेगा और छः ऐसे गैर सरकारी सदस्य होंगे जिन्हें विधान सभा द्वारा विधान सभा में से चुने गये आठ सदस्यों के पेनल में से चुना जायेगा।

रेलवे के अनुमान की मांग पर बहस से पहले किसी दिन रेलवे अपने खर्च का अनुमान स्थायी वित्त समिति के सामने रखेगी। यह अनुमान जहां तक हो सके, खर्च-कार्यक्रम-राजस्व में दिखाने की बजाय पूंजी और राजस्व पर प्रभार सम्बन्धी नियमावली के अनुसार बनायी गयी मूल्यह्रास निधि में दिखाया जाये।

7. यदि हो सके तो रेलवे बजट विधान सभा में सामान्य बजट से पहले पेश किया जाय और इस पर बहस करने के लिए अलग दिन रखे जायें। तब रेलवे के कार्यभारी मेम्बर रेलवे के लेखा और संचालन पर एक सामान्य व्याख्यान देंगे। रेलवे बजट में प्रस्तावित खर्च, अनुदान की मांगों के रूप में विधान सभा के सामने पेश किया जायगा। इसमें मूल्यह्रास निधि और रेलवे आरक्षित निधि से किये जाने वाले खर्च भी शामिल होंगे। सामान्य बजट से अलग होने पर रेलवे बजट का क्या रूप होगा, इसमें कौन से ब्यौरे दिये जायेंगे और कौन सी मांगें होंगी जिन पर वोट लेना है, इन सब बातों पर रेलवे बोर्ड प्रस्तावित स्थायी वित्त समिति की सलाह से विचार करेगा, ताकि यदि हो सके तो आगामी बजट में समय पर सुधार किया जा सके।

8. इन नियमों का समय-समय पर संशोधन किया जा सकता है लेकिन कम से कम तीन साल तक परीक्षण के रूप में इन पर अमल किया जाय।

9. चूंकि भारतीय रेलों के सरकारी प्रबन्ध के बारे में फरवरी 1923 में जो प्रस्ताव पास किया गया था, उसे विधान सभा स्वीकार करती है, इसलिए ये नियम तब तक लागू रहें जब तक ईस्ट इण्डियन और ग्रेट इण्डियन पैनिनशुला रेलवे और सरकार द्वारा संचालित दूसरी रेलें सरकारी प्रबन्ध में रहें। विधान सभा के इस निश्चय के होते हुए भी सरकार इनमें से किसी रेलवे का प्रबन्ध कम्पनी को सौंपने के बारे में बातचीत कर सकती है, लेकिन इस तरह का कोई समझौता तब तक पूरा न समझा जायेगा, जब तक विधान सभा इस पर विचार न कर ले। यदि विधान सभा की सलाह के खिलाफ इन रेलों में से किसी रेल के प्रबन्ध का ठेका किसी कम्पनी को दिया जाय, तो विधान सभा को अधिकार होगा कि इस तरह का प्रबन्ध रद्द कर दे।

उपरोक्त अभिसमय के अलावा यह विधान सभा यह भी सिफारिश करती है कि :—

1. अधिक से अधिक भारतीयों को रेलवे में नियुक्त किया जाय और जितनी जल्दी हो सके, रेलवे बोर्ड में भी भारतीय सदस्य रखे जायें।
2. सरकारी रेलों के सामान भारत सरकार के सामान-क्रय विभाग द्वारा खरीदे जायें।

1943 का अभिसमय-निश्चय

2 मार्च, 1943 को विधान सभा ने निम्नलिखित निश्चय किया :

विधान सभा के 20 नवम्बर, 1924 के निश्चय के अनुसार जो अभिसमय लागू किया गया था उसका उद्देश्य यह था कि सामान्य बजट में रेलवे के अनुमान शामिल करने से उसमें जो भारी कमी-बेशी होती है उसे दूर किया जाय और रेलवे को ऐसी नीति अपनाने का अवसर दिया जाय जिससे रेलवे पर लगायी गयी रकम के बदले सामान्य राजस्व को एक निश्चित रकम मिले। चूंकि यह अनुभव किया गया है कि अभिसमय इस ध्येय में सफल नहीं रहा, इसलिए विधान सभा 'गवर्नर जनरल इन कौंसिल' से सिफारिश करती है कि :—

1. अभिसमय के अनुसार सामान्य राजस्व को जो पिछला बकाया और चालू अंशदान मिलना है, उसके अलावा 1942-43 में 2,35,32 हजार रुपये और दिये जायें।
2. 1 अप्रैल 1943 से अभिसमय का वह भाग लागू नहीं होगा जिसमें सामान्य राजस्व को बचत से अंशदान और आबंटन देने की व्यवस्था है।
3. 1953-54 में वाणिज्य लाइनों की बचत मूल्यह्रास का ऋण चुकाने में लगायी जाय और इसके बाद उसका 25 प्रतिशत रेलवे आरक्षित निधि और 75 प्रतिशत सामान्य राजस्व को दिया जाय। सुरक्षा लाइनों में यदि घाटा हो, तो उसे सामान्य राजस्व से पूरा किया जाय।
4. आगामी वर्षों में जब तक नया अभिसमय लागू न किया जाय, रेलवे आरक्षित निधि और सामान्य राजस्व के बीच वाणिज्य लाइनों की बचत का बंटवारा रेलवे और सामान्य राजस्व की जरूरतों को ध्यान में रखकर किया जाय और सुरक्षा लाइनों से यदि कोई घाटा हो, तो उसे सामान्य राजस्व से पूरा किया जाय।

1949 का अभिसमय-निश्चय

भारत की विधान सभा (विधायिका) ने 21 दिसम्बर 1949 को यह निश्चय किया :—

रेलवे को सामान्य वित्त से अलग करने के सम्बन्ध में 20 सितम्बर 1924 के अभिसमय पर फिर विचार करने के लिए अप्रैल 1949 में जो समिति बनायी गयी थी, उसकी सिफारिशों पर विचार करने के बाद यह विधान सभा 1924 के अभिसमय और उससे सम्बन्धित दूसरे प्रस्तावों को रद्द करके यह निश्चय करती है कि :—

1. रेलवे वित्त सामान्य वित्त से पहले की तरह अलग रहे।

2. रेलवे के सामान्य कर-दाता को पूरे हिस्सेदार का पद प्राप्त हो।
3. रेलवे पर सामान्य राजस्व से लगी हुई पूंजी प्रतिवर्ष जितनी होगी, उस पर सामान्य राजस्व को हर साल निश्चित लाभांश मिले।
4. 1950-51 से अगले 5 वर्षों तक लगी हुई पूंजी पर 4 प्रतिशत की दर से वार्षिक लाभांश दिया जाय लेकिन बिना आमदनी वाली सुरक्षा लाइनों की पूंजी पर लाभांश न दिया जाय।
5. ऊपर बतलायी गयी अवधि के बीत जाने पर सदन की एक समिति रेलवे की राजस्व-प्राप्ति, सरकार द्वारा ऋण लेने की औसत दर और दूसरी सम्बन्धित बातों को ध्यान में रखते हुए आगामी वर्षों के लिए लाभांश की दर पर विचार करे और उसमें कमी-बेशी करने का सुझाव दे।
6. वर्तमान रेलवे आरक्षित निधि का नाम बदल कर राजस्व आरक्षित निधि रखा जाय और इसका उपयोग सामान्य राजस्व को मंजूर रकम देने और रेलवे के संचालन में घाटा होने पर उसे पूरा करने के लिए किया जाय।
7. नीचे लिखे कामों के खर्च के लिए विकास निधि बनायी जायः—
   (क) यात्री सुविधा
   (ख) कर्मचारी हित
   (ग) अलाभप्रद किन्तु आवश्यक रेलवे लाइनें
8. रेलवे सामान के नवीकरण और बदलाव के खर्च को पूरा करने के लिए अगले 5 वर्षों तक रेलवे के संचालन व्यय में से 15 करोड़ रुपये सालाना मूल्यह्रास निधि से दिये जायें।
9. वार्षिक न्यूनतम अंशदान देने के बाद रेलवे बचत का बंटवारा राजस्व आरक्षित निधि, विकास निधि और मूल्यह्रास निधि की अन्तिम मांगों का ध्यान रखते हुए किया जाय।
10. 23 मार्च, 1949 को इस सदन ने जो निश्चय किया था उसके अनुसार रेलवे की स्थायी वित्त समिति और केन्द्रीय सलाहकार परिषद् का गठन किया जाय।
11. विधान सभा द्वारा अनुदान की मांग पर बहस होने की तारीख से पहले रेलवे के खर्च का वार्षिक अनुमान स्थायी वित्त समिति के सामने रखा जाय।
12. यदि हो सके तो रेलवे बजट सदन में सामान्य बजट से पहले पेश किया जाय और इस पर बहस के लिए सामान्य बजट से अलग दिन निर्धारित किये जायें। रेल-मन्त्री रेलवे लेखा और संचालन के सम्बन्ध में बयान दें। बजट में प्रस्तावित खर्च के साथ मूल्यह्रास आरक्षित निधि में विनियोग, विकास निधि और राजस्व आरक्षित निधि, अनुदान की मांग के रूप में सदन में पेश किये जायें। बजट की रूप रेखा कैसी होनी चाहिए, इसमें क्या विवरण दिये जायें और कुल मत का विभाजन कितने अनुदानों में किया जाय, इस सम्बन्ध में रेलवे की स्थायी वित्त समिति की सलाह से रेलवे मंत्रालय कार्यक्रम तैयार करे।

2,—यह निश्चय 1 अप्रेल 1950 से लागू किया जाये।

परिशिष्ट-4

सूची–1

(सभी भारतीय रेलों की कुल चालू मील-संख्या, खर्च की पूंजी, कुल आमदनी, संचालन खर्च और अन्तिम बचत का विवरण)

साल	चालू मील-संख्या	खर्च की पूंजी	कुल आमदनी	संचालन खर्च	अन्तिम बचत
			(लाख रुपयों में)		
1853	20	38	0.90	0.41	0.49
1854	71	400	2	1	1
1855	169	550	8	4	4
1856	272	800	16	7	9
1857	287	1200	25	10	15
1858	427	1600	34	16	18
1859	625	2250	57	28	29
1860	838	2666	67	37	30
1861	1587	3400	99	58	41
1862	2333	4800	134	80	54
1863	2507	5300	220	133	87
1864	2958	5800	286	171	115
1865	3363	6300	426	224	202
1866	3563	7000	492	259	233
1867	3929	8000	545	294	251
1868	4008	8400	567	307	260
1869	4255	8900	613	342	271
1870	4771	9001	667	363	304
1871	5074	9001	659	368	291
1872	5369	9001	683	373	310
1873	5697	9173	723	378	345
1874	6226	9587	834	404	430
1875	6541	10096	791	397	394
1876	6860	10478	934	447	487
1877	7320	10904	1211	539	672

साल	चालू मील संख्या	खर्च की पूंजी	कुल आमदनी	संचालन खर्च	अन्तिम बचत
1878	8201	11830	1125	562	563
1879	8475	12233	1208	626	582
1880	8996	12857	1287	648	639
1881	9858	14081	1432	707	725
1882	10069	14324	1535	767	768
1883	10447	14831	1639	797	842
1884	11527	15545	1607	816	791
1885	12208	16192	1799	886	913
1886	12865	17050	1870	893	977
1887	14068	18288	1847	910	937
1888	14525	19304	1976	987	989
1889	15900	20505	2049	1038	1011
1890	16404	21367	2067	1031	1036
1891	17283	22106	2404	1130	1274
1892	17769	22730	2323	1090	1233
1893	18459	23318	2408	1135	1273
1894	18840	23779	2551	1198	1353
1895	19467	24438	2624	1212	1412
1896	20209	26895	2536	1214	1322
1897	21115	28212	2560	1248	1312
1898	22024	29209	2741	1299	1442
1899	23507	30850	2937	1393	1544
1900	24752	32953	3154	1509	1645
1901	25363	33917	3360	1572	1788
1902	25931	34977	3393	1670	1723
1903	26956	34111	3601	1711	1890
1904	27565	35286	3965	1878	2087
1905	28278	35852	4170	1995	2175
1906	29089	37127	4414	2202	2212
1907	29957	39187	4731	2433	2298
1908	30576	41192	4483	2700	1783
1909	31490	42983	4706	2638	2068
1910	32099	43905	5114	2716	2398

पुनर्वर्गीकरण से पूर्व पहले दर्जे की रेलों के बिल्ले ।



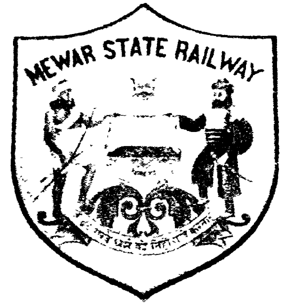
पुनर्वर्गीकरण से पूर्व पहले दर्जे की रेलों के बिल्ले ।

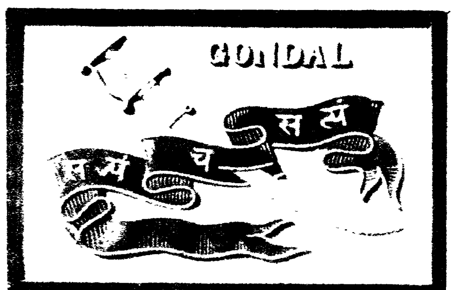


दूसरे और तीसरे दर्जे की कुछ रेलों के बिल्ले











साल	चालू मील संख्या	खर्च की पूंजी	कुल आमदनी	संचालन खर्च	अन्तिम बचत
1943–44	40512	85854	19932	11411	8521
1944–45	40509	86437	23290	14881	8409
1945–46	40518	87268	24359	16935	7424
1946–47	40524	63927	16707	12842	3865
1947–48‡	33985	74220	18369	16394	1975
1948–49	33861	77588	23412	18406	5006
1949–50	34022	81307	25832	20723	5109
1950–51	34079	83818	26462	21439	5023
1951–52	34119	86155	29414	22759	6655

‡ 15अगस्त 1947 को देश का विभाजन हुआ।

सूची–2

यात्रियों की संख्या, यात्रियों से आमदनी, माल यातायात की तादाद तथा माल यातायात से आमदनी (हजार की संख्या में)

साल	यात्रियों की संख्या	उनसे आमदनी	माल यातायात (टन में)	उससे आमदनी
		रुपये		रुपये
1871	19283	20249	3542	42003
1881	54764	37923	13214	95597
1891	122855	68613	26159	156081
1901	194749	100717	43392	212367
1911	389863	184908	71268	329332
1921–22	569684	342932	90142	49,5231
1931–32	505836	313544	74575	587251
1941–42	623072	396856	96997	896335
1951–52	1232073	1114176	98025	1539493

परिशिष्ट 5.

संसार के कुछ विख्यात रेलवे पुल व मार्ग-पुल (वायडक्ट)

पुल अथवा वायडक्ट	लम्बाई (फीट में)	चालू होने की तिथि
1. ग्रेट साल्ट लेक वायडक्ट, यूटा, अमेरिका	63,360	8 मार्च 1904
2. ह्यू पी. लांग ब्रिज, न्यू ऑर्लियंस, अमेरिका	23,235	16 दिसम्बर, 1935
3. बे ब्रिज, केलीफोर्निया, अमेरिका	22,720	12 नवम्बर, 1936
4. लोअर जेमबेसी ब्रिज, पुर्तगीज ईस्ट अफ्रीका	12,064	1934
5. टे ब्रिज, फर्थ आफटे, स्काटलैण्ड	11,653	12 जून, 1887
6. स्टोरस्ट्राम ब्रिज, डेनमार्क	10,537	26 सितम्बर, 1937
7. विक्टोरिया ब्रिज, मांट्रीयल, कनाडा	10,284	17 दिसम्बर, 1859
8. अपर सोन ब्रिज, इण्डिया	10,052	27 फरवरी, 1900
9. ह्वांग-हो ब्रिज, चीन	9,873	नवम्बर, 1905
10. गोदावरी ब्रिज, भारत	9,096	6 अगस्त, 1900
11. फोर्थ ब्रिज, स्काटलैण्ड	8,298	8 मार्च, 1890
12. डेलावेयर रिवर ब्रिज, फिलाडेलफिया, अमेरिका	8,126	जुलाई, 1926
13. क्वीन्सबरो ब्रिज, न्यूयार्क, अमेरिका	7,449	1909
14. विलियम्सबर्ग ब्रिज, न्यूयार्क, अमेरिका	7,308	19 दिसम्बर, 1903
15. महानदी ब्रिज, भारत	6,912	11 मार्च 1900
16. ब्रुकलिन ब्रिज, न्यूयार्क, अमेरिका	6,537	24 मई, 1883
17. इजट ब्रिज, इलाहाबाद, भारत	6,381	31 अक्टूबर, 1912
18. मोरडिक ब्रिज, हालैण्ड	4,592	1880
19. सिडनी हारबर ब्रिज, आस्ट्रेलिया	3,770	19 मार्च 1932
20. क्यूबेक ब्रिज, कनाडा	3,238	3 दिसम्बर, 1917

परिशिष्ट 6.

संसार के सबसे लम्बे रेलवे स्टेशन—प्लेटफार्म

	लम्बाई (फीट में)
1. सोनपुर, पूर्वोत्तर रेलवे भारत	2,415
2. खड़गपुर, पूर्व रेलवे, भारत	2,350
3. बुलावेयो, रोडेशिया रेलवे	2,302
4. न्यू लखनऊ स्टेशन, उत्तर रेलवे, भारत	2,250
5. मैनचेस्टर, विक्टोरिया एण्ड एक्सचेंज, ब्रिटिश रेलवेज, लन्दन मिडलैण्ड रीजन	2,194
6. बेजवाड़ा, दक्षिण रेलवे, भारत	2,210
7. झांसी, मध्य रेलवे, भारत	2,025
8. कोटरी, एन०, डब्ल्यू०, आर०, पाकिस्तान	1,896
9. माण्डले, बरमा रेलवेज, बर्मा	1,788
10. बोर्न माउथ (सेण्ट्रल) ब्रिटिश रेलवेज, सदर्न रीजन	1,734
11. पर्थ, ब्रिटिश रेलवेज, स्काटिश रीजन	1,714
12. यार्क, ब्रिटिश रेलवेज, नार्थ ईस्टर्न रीजन	1,704
13. केम्ब्रिज, ब्रिटिश रेलवेज, ईस्टर्न रीजन	1,629
14. एडिनबरा (वेवरली), ब्रिटिश रेलवेज स्काटिश रीजन	1,608
15. एबरडीन, ब्रिटिश रेलवेज, स्काटिश रीजन	1,596
16. त्रिचनापल्ली, दक्षिण, रेलवे, भारत	1,546
17. रानाघाट, पूर्व रेलवे, भारत	1,522
18. क्रीवी, ब्रिटिश रेलवेज, लन्दन मिडलेण्ड रीजन	1,509
19. डाकोर, पश्चिम रेलवे भारत	1,470
20. विक्टोरिया, लंदन ब्रिटिश रेलवेज, सदर्न रीजन	1,430
21. ब्रिस्टल (टेम्पिल मीड्स) ब्रिटिश रेलवेज	1,300
22. न्यूकेसिल (सेण्ट्रल) ब्रिटिश रेलवेज, नार्थ ईस्टन रीजन	1,365

परिशिष्ट 7.

भारत का रेल-प्रबन्ध

१—भारत सरकार की सर्वोच्च शासन समिति के रेल-सदस्यों की सूची

(1904-1947)

1.	सर जॉन प्रेसकॉट हिवेट	वाणिज्य-उद्योग सदस्य	1904-06
2.	सर चार्ल्स लेविस टपार	,, ,, ,,	(1906)
3.	श्री जेम्स फेयर बेर्नफिनले	,, ,, ,,	1907-1908
4.	श्री विलियम लेथम हार्वे	,, ,, ,,	1908-10
5.	सर बेनजमिन राबर्टसन	,, ,, ,,	(1910)
6.	सर विलियम हेनरी क्लार्क	,, ,, ,,	1910-16
7.	सर राबर्ट वुडबर्न गिलन	,, ,, ,,	(1914)
8.	सर जार्ज स्टेपिल्टन वार्नस	,, ,, ,,	1916-21
9.	सर टामस हेनरी हालैण्ड	,, ,, ,,	(1919), (1921)
10.	सर चार्ल्स एलेक्ज़ेण्डर इन्स	वाणिज्य सदस्य	1921-27
11.	सर डेविड टामस चेडविक	,, ,,	(1923)
12.	सर जार्ज रेनी	,, ,,	1927-32
13.	सर जोजेफ़ विलियम मोर	,, ,,	1932-35
14.	सर सी० पी० रामास्वामी अय्यर	,, ,,	(1932)
15.	सर मुहम्मद जफरुल्ला खां	,, ,,	1935-38
16.	सर सैयद सुलतान अहमद	,, ,,	(1937)
17.	सर टामस एलेक्जेण्डर स्टीवर्ट	संचार सदस्य	1937-39
18.	सर एण्ड्र गोरले क्लो	,, ,,	1939-42
19.	सर सत्येन्द्र नाथ राय	,, ,,	(1942)
20.	सर एडवर्ड बेन्थाल	युद्ध यातायात व रेल सदस्य	1942-46
21.	श्री आसफ अली	यातायात व रेल सदस्य	1946-47
22.	डा० जानमथाई	,, ,,	1947

अध्यक्ष, रेलवे बोर्ड

सर फ्रेड्रिक अपकाट 1905-08

प्रधान (प्रेसीडेण्ट), रेलवे बोर्ड

1. सर ट्रेवेडिन रेंशले विन	1908-14
2. सर हेनरी बर्ट	1914-15
3. सर रावर्ट वुड वर्नीगलन	1915-19
4. सर आर्थर राबर्ट एण्डरसन	1919-20
5. कर्नल सर डेनवर्स वेगहार्न	1920-22
6. सर अरनेस्ट बेल	1922

मुख्य कमिश्नर

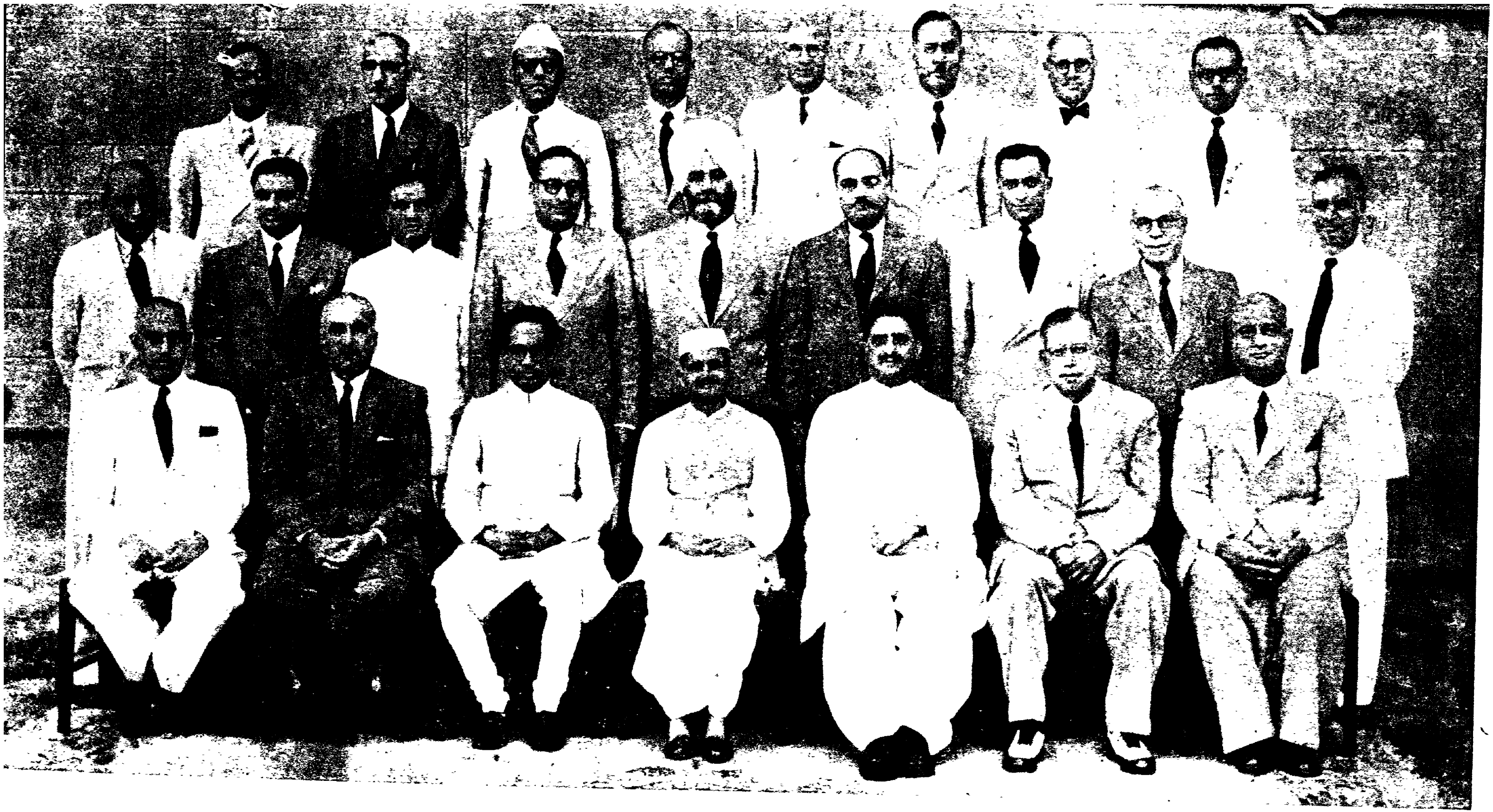
1. सर क्लीमेन्ट हिन्डले	1922-28
2. सर आस्टेन हेडो	(1925), (1927), 1928-29.
3. सर गवरी रसेल	1929-40
4. सर मारिस ब्रेशे	(1933), (1935)
5. सर लियोनार्ड विलसन	(1938), 1940-44
6. सर ह्यू रेपर	1944-45
7. सर आर्थर ग्रिफिन	1945-46
8. सर लक्ष्मीपति मिश्र	(1945)
9. कर्नल रेल्फ बिलिंग इमरसन	1946-47
10. श्री एस. जे. पी. केम्ब्रिज	(1947)

वित्तीय कमिश्नर

1. श्री जी. जी. सिम	1923-26
2. सर एलन पारसन्स	(1924), 1926-32
3. श्री ए. एम. हेमैन	(1926)
4. सर पी. राघवेन्द्र राव	(1929), (1931), 1932-37
5. श्री टी. एस. शंकर अय्यर	(1935), (1939), 1941-43
6. सर बरटी स्टेग	1937-41
7 श्री जाहिद हुसेन	1943-44
8. श्री ए. सी. टरनर	1945-46
9. श्री आई. एस. पुरी	(1943), 1946-47

सदस्य

1. सर ट्रेवेडिन रेंशले विन	1905-07
2. श्री डब्ल्यू. एच. हुड	1905-13
3. सर स्टीफेन फिन्ने	1908-13



रेलवे मंत्रालय के अधिकारी और रेलों के जनरल मैनेजर
(मार्च 1953)

4. सर हेनरी बर्ट	1912-13
5. सर आर्थर राबर्ट एण्डरसन	1914-17
6. सर राबर्ट वुडबर्न गिलन	1914-15
7. श्री एफ. डी. कोचमन	1915-20
8. सर जार्ज गोडफ्रे	1917-19
9. मेजर जनरल एच. एफ. ई. फ्रीलैण्ड	1918-19
10. श्री एफ. डब्ल्यू. हेनसन	(1919)
11. कर्नल डब्ल्यू. डी. वेंगहार्न	1919-20
12. श्री ए. एम. क्लार्क	1920-23
13. सर अरनेस्ट बेल	1920-22
14. श्री जी. रिचर्ड्स	(1923)
15. श्री पी. सी. शेरीडन	1923-29
16. सर आस्टन हेडो	(1924), 1925-26, (1928)
17. कर्नल एल. ई. हापकिन्स	(1925)
18. श्री जे. एम. डी. रेंच	1926-27
19. श्री बी. एम. क्रास्थवेट	(1927)
20. सर गदरी रसेल	(1928)
21. सर मारिस ब्रेशे	1929-32
22. श्री एच. ए. एम. हेन्ने	(1929), (1932)
23. श्री ए. एम. हेमेन	1929-32
24. श्री सी. पी. कालविन	(1931), 1933-34
25. श्री एफ. सी. पेब्री	(1931)
26. श्री ए. ई. टी. पेटेनसन	1934-39
27. श्री जे. सी. हिगेट	1936-38
28. श्री एफ. डीसोजा	1938-39
29. श्री एफ. आर. हाक्स	1938-39
30. खान बहादुर मुजफ्फर हुसेन	1939-42
31. सर ह्यू रेपर	1939-44
32. कर्नल एच. डब्ल्यू. वेगस्टाफ	1942-46
33. सर लक्ष्मी पति मिश्रा	1943-45
34. डा० एच. जे. निकोल्स	1945-47
35. खान बहादुर जेड. एच. खान	(1945), (1946), 1947,
36. श्री एस. ई. एल. वेस्ट	1945-46
37. श्री जी. ए. रोलरसन	1946-47

2. श्री पी. सी. भट्टाचार्य	रेल के वित्तीय कमिश्नर
3. श्री बी. नीलकण्ठन	सदस्य, कर्मचारी विभाग
4. श्री एस. एस. वशिष्ठ	सदस्य, यातायात
5. श्री एच. के. एल. सेठी	संचालक, सिविल इंजीनियरिंग
6. श्री पी. एन. सकसेना	संचालक, इस्टैब्लिशमेण्ट
7. श्री एन. सी. देब	संचालक, वित्त (बजट)
8. श्री के. सदागोपन	संचालक, वित्त (स्पेशल ड्यूटी)
9. श्री पी. मारिस	संचालक, यांत्रिक इंजीनियरिंग
10. श्री ए. के. बसु	संचालक, यातायात (सामान्य)
11. श्री रंजीतसिंह	संचालक, यातायात (परिवहन)
12. श्री बी. सी. मलिक	संचालक, रेल यातायात (कलकत्ता)
13. श्री एस. एल. कुमार	संचालक, अनुसंधान व परीक्षण केन्द्र (लखनऊ)
14. श्री एल. ए. नटेसन	आर्थिक परामर्शदाता
15. श्री के. एल. घई	विशेष कार्याधिकारी (स्टोर्स पुनर्संगठन विभाग)

परिशिष्ट 8.

31 मार्च 1953 को भारतीय रेलों के जनरल मैनेजर और विभागीय अध्यक्षों की सूची

1. जनरल मैनेजर

1.	मध्य रेलवे	श्री एच० पी० हीरा
2.	पूर्व रेलवे	श्री के० बी० माथुर
3.	उत्तर रेलवे	श्री कर्नेल सिंह
4.	पूर्वोत्तर रेलवे	श्री जी० पाण्डे
5.	दक्षिण रेलवे	श्री के० आर० रामानुजम्
6.	पश्चिम रेलवे	श्री के० पी० मुशरान
7.	चितरंजन रेल-इंजन कारखाना	श्री पी० सी० मुकर्जी

2. सीनियर डिप्टी जनरल मैनेजर

1.	मध्य रेलवे	श्री ए० सलवाना
2.	पूर्व रेलवे	श्री एम० एन० चक्रवर्ती
3.	उत्तर रेलवे	श्री एम० के० कौल
4.	पूर्वोत्तर रेलवे	श्री बी० अरोड़ा
5.	दक्षिण रेलवे	श्री टी० ए० जोजेफ
6.	पश्चिम रेलवे	श्री सी० टी० वेणुगोपाल

3. मुख्य इंजीनियर

1.	मध्य रेलवे	श्री जे० ई० जैक
2.	पूर्व रेलवे	श्री पी० सी० चक्रवर्ती
3.	उत्तर रेलवे	श्री के० पी० माडवेल
4.	पूर्वोत्तर रेलवे	श्री डब्ल्यू० जी० लेथम
5.	दक्षिण रेलवे	श्री वी० जगन्नाथ
6.	पश्चिम रेलवे	श्री टी० बेल

4. मुख्य संचालन अधीक्षक

1.	मध्य रेलवे	श्री आर० बी० लाल
2.	पूर्व रेलवे	श्री एन० सी० कपूर
3.	उत्तर रेलवे	श्री बी० बी० माथुर
4.	पूर्वोत्तर रेलवे	श्री जे० एस० माथुर

5. दक्षिण रेलवे	श्री एस० ग्रार० शर्मा
6. पश्चिम रेलवे	श्री एस० ए० यूसुफ

5. मुख्य वाणिज्य अधीक्षक

1. मध्य रेलवे	श्री एम० जी० ग्रय्यर
2. पूर्व रेलवे	श्री जे० एन० दास
3. उत्तर रेलवे	श्री ए० ग्रार० राव
4. पूर्वोत्तर रेलवे	श्री बी० मजूमदार
5. दक्षिण रेलवे	श्री एस० ग्रार० कल्यानरमन्
6. पश्चिम रेलवे	श्री दार जहांगीर

6. मुख्य यांत्रिक इंजीनियर

1. मध्य रेलवे	श्री जे० डब्ल्यू० ई० गुर
2. पूर्व रेलवे	श्री के० रामचन्द्रन्
3. उत्तर रेलवे	श्री ए० के० मल्लिक
4. पूर्वोत्तर रेलवे	श्री पी० जी० सी० पेटन
5. दक्षिण रेलवे	श्री ग्रार० जे० बाटलीवाला
6. पश्चिम रेलवे	श्री बी० वेंकटरमन्

7. वित्तीय सलाहकार तथा मुख्य लेखा अधिकारी

1. मध्य रेलवे	श्री के० कृष्णाराव
2. पूर्व रेलवे	श्री डी० पी० माथुर
3. उत्तर रेलवे	श्री ग्रपजीत सिंह
4. पूर्वोत्तर रेलवे	श्री के० सी० चौधरी
5. दक्षिण रेलवे	श्री एस० रमैय्या
6. पश्चिम रेलवे	श्री पी० के० सरकार

8. कण्ट्रोलर आफ स्टोर्स

1. मध्य रेलवे	श्री ग्रनीस ग्रहमद
2. पूर्व रेलवे	श्री पी० सी० बसु
3. उत्तर रेलवे	श्री जे० एल० कपूर
4. पूर्वोत्तर रेलवे	श्री प्रेमनाथ
5. दक्षिण रेलवे	श्री ई० ला० बी० पेरीसाट
6. पश्चिम रेलवे	श्री ए० ग्रार० सरीन

9. मुख्य चिकित्सा अधिकारी

1. मध्य रेलवे	श्री एस० एन० लाहिरी
2. पूर्व रेलवे	श्री पी० एन० गोखले

3. उत्तर रेलवे	श्री सी० एच० एच० राबर्टसन
4. पूर्वोत्तर रेलवे	श्री पी० एन० कपूर
5. दक्षिण रेलवे	श्री ई० सोमशेखर
6. पश्चिम रेलवे	श्री एफ० बी० लम्बता

10. मुख्य सिगनल और तार इंजीनियर

1. मध्य रेलवे	श्री डब्ल्यू डनकन
2. पूर्व रेलवे	श्री बी० सी० बसु
3. उत्तर रेलवे	श्री जी० आई० हिवेट
4. पूर्वोत्तर रेलवे	श्री जे० ए० मेनजी
5. दक्षिण रेलवे	श्री एस० सेन
6. पश्चिम रेलवे	श्री एस० सी० टावर्स

11. मुख्य बिजली इंजीनियर

1. मध्य रेलवे	श्री पी० एल० वर्मा
2. पूर्व रेलवे	श्री पी० पी० कुलकर्नी
3. उत्तर रेलवे	श्री के० एन० रंगाराव
4. पूर्वोत्तर रेलवे	श्री एस० एल० नारायन अय्यर
5. दक्षिण रेलवे	श्री जी० के० आम्बदी
6. पश्चिम रेलवे	श्री एन० सी० साबिकी

लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय
Lal Bahadur Shastri National Academy of Administration Library
मसूरी
MUSSOORIE

अवाप्ति सं०
Acc. No...............................

कृपया इस पुस्तक को निम्न लिखित दिनांक या उससे पहले वापस कर दें।

Please return this book on or before the date last stamped below.

दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.	दिनांक Date	उधारकर्ता की संख्या Borrower's No.

GL H 385.0954
BHA
122095
LBSNAA

H
385.0954
भारती

अवाप्ति सं.
ACC No. ~~4068~~

वर्ग सं. पुस्तक सं.
Class No................... Book No ....

लेखक
Author...................

शीर्षक भारतीय रेल के एक सौ वर्ष
Title.........................
1853–1953 ।

निर्गम दिनांक	उधारकर्ता की सं.	हस्ताक्षर

H
385.0954
भारती
~~4068~~

LIBRARY
LAL BAHADUR SHASTRI
National Academy of Administration
MUSSOORIE

Accession No. 122095

1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgently required.
2. An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
4. Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
5. Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.

Help to keep this book fresh, clean & moving